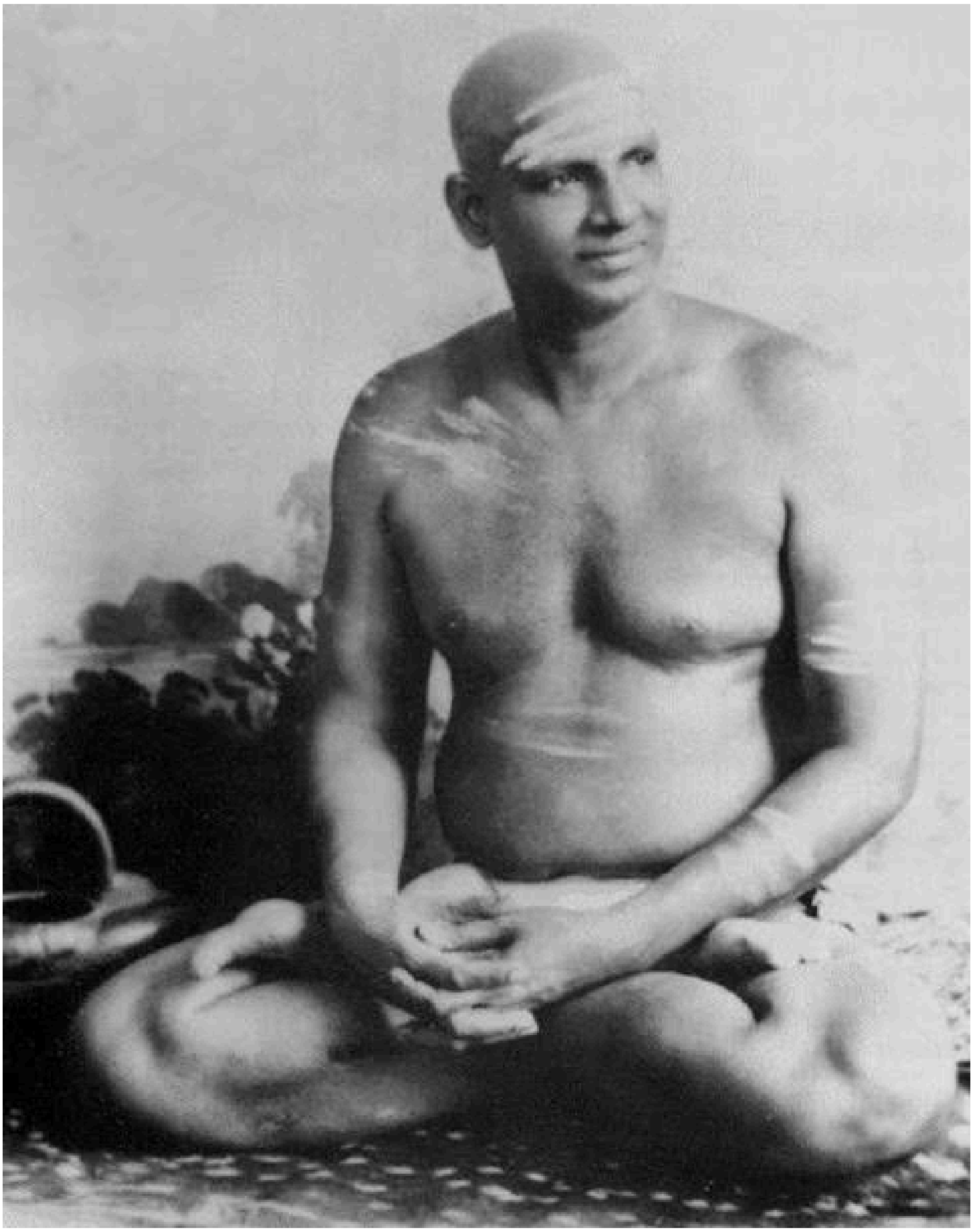
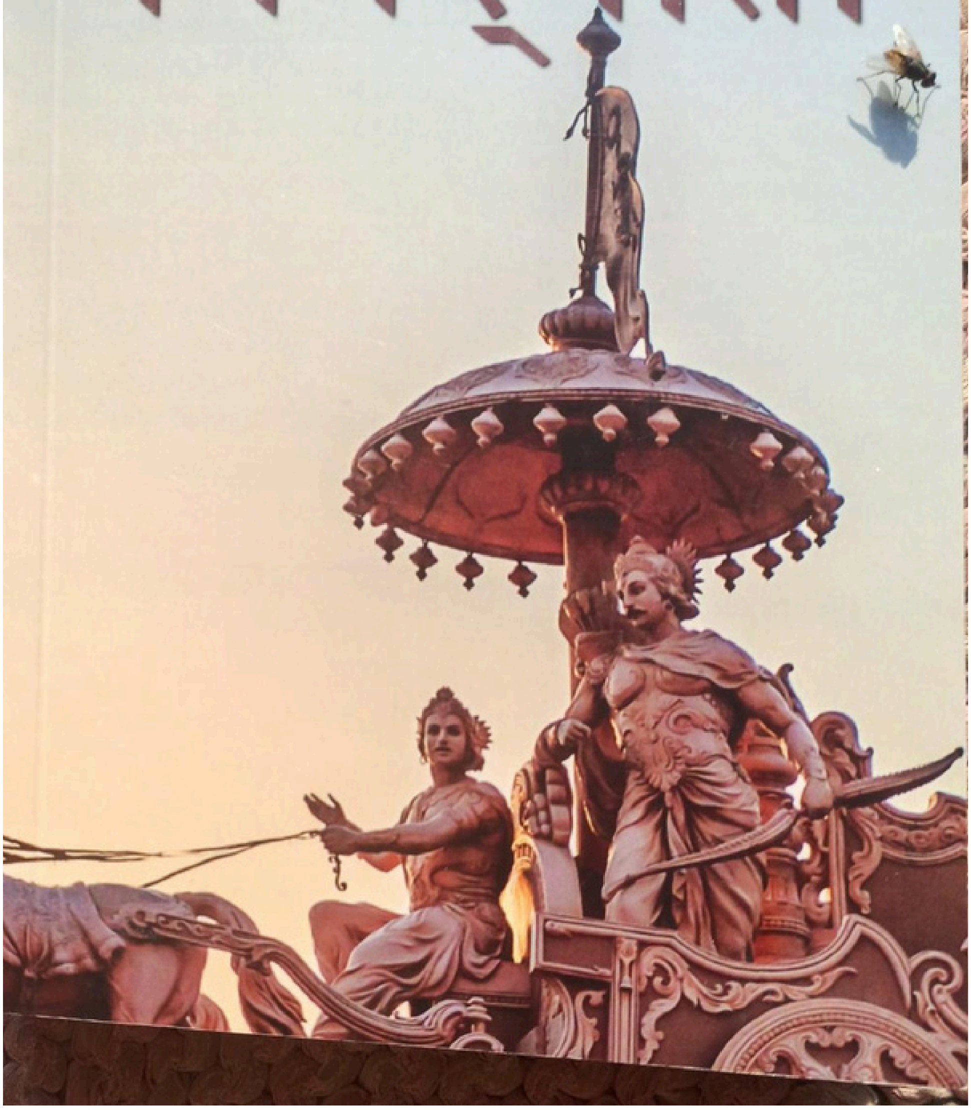


डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन

भगवद्गीता



हिन्द पॉकेट बुक्स

भगवद्गीता

डॉ० सवपवल्ली राधाकृष्णन भारत के प्रथम उप-राष्रपतत (1952-1962) और द्ववतीय राष्रपतत रि। वे भारतीय संस्कृतत के संविाक, प्रख्यात शिक्षाववद, मिान दाितवनक, एक मिान लेखक और एक आस्थावान हिन्दू ूववचारक थे। उनके इन्िीं गुणों के कारण सन् ्1954 में भारत सरकार ने उन्िें सवोच्च सम्मान भारत रत्न से अलंकृत ककया था। उनका जन्महदन (5 शसतम्बर) भारत में शिक्षक हदवस के रूप में मनाया जाता िै।

भगवद्गीता

डॉ. सवेपल्ल्ल राधाकृष्णन् ◌्

हिन्द पॉकेट बुक्स

पेंगुइनरैंडमिाउसइल्म्प्रंट

हिन्द पॉकेट बुक्स

यूएसए | कनाडा | यूके | आयरलडैं | ऑस्ेशलया | शसंगांपुर
न्यूजीलडैं | भारत | दक्षक्षण अफ्रीका | चीन

हिन्द पॉकेट बुक्स, पेंगुइन रैंडम िाउस ग्रुप ऑफ कम्पनीज़ का हिस्सा िै,
ल्जसका पता global.penguinrandomhouse.com पर शमलेगा
पेंगुइन रैंडम िाउस इंडडया प्रा. शल.,
चौथी मंल्जल, कैवपटल टावर 1, एमजी रोड,
गुरुग्राम 122002, िररयाणा, भारत

पेंगुइन रैंडम िाउस इंडडया

प्रथम हिन्दी संस्करण हिन्द पॉकट बुक्स द्वारा 2004 में प्रकाशित यि हिन्दी संस्करण हिन्द पॉकेट बुक्स में
पेंगुइन रैंडम िाउस द्वारा 2021 में प्रकाशित

1098765432

ISBN9789353490102

मुद्रक : रेप्रो इंडडया शलशमटेड

www.penguin.co.in

FSC Paper from

MIX

FBC C047271

This is a legitimate digitally printed version of the book and therefore might not

have certain extra finishing on the cover.

मिात्मा गाधीी को

विषय-सूची

भूशमका 7

भगवद्गीता 9

पररचय 10

अध्याय

1अजुनव कीदुवुवधाऔरववषाद 71

2.सांख्य-शसद्धान्तऔरयोगकाअभ्यास 88

3.कमयव ◌ोगयाकायवकीपद्धतत 119

4.ज्ञानमागव 139

5.सच्चा संन्यासत्याग) 160

6.सच्चा योग 172

7.ईश्वर औरजगत् ◌् 195

8.ववश्व केववकासकाक्रम 209

9.भगवान् अपनी सृष्टि से बडा ै 218

10.परमात्मासबकामूलैउसेजानलेनासबकुछजानलेनैा 236

11.भगवान्कादृव्यरूपान्तर 248

12.व्यक्तक भगवान् कीपूजा ◌ा परब्रह्म की उपासना की अपेक्ष ◌ा अधधक अच्छी ै 267

13.िरीर क्षेत्रैआत्माक्षेत्रज्ञैऔरइनदोनोंमेंअन्तर 276

14.सब वस्तुओंऔरप्राखणयोंकारिस्यमयजनक 288

15.जीवन कावृक्ष 299

16.दैवीय औरआसुरीयमनकास्वभाव 306

17.धाशमकव तत्वपरलागूककएगएतीनोंगुण 314

18.तनष्कषव 323

सिायक ग्रन्थसूची 353

अनुक्रमखणका 354

भूशूमका

युद्ध और युद्धोत्तर कालों की प्रवृवृत्त ववज्ञानों के मूल्य को और वविेषे रूप से उनके व्याविाररक प्रयोगों के मित्व को प्रमुखता देनेकी ओर रिती िै। ये ववज्ञान युद्धों को चलाने और िाल्न्त के समय नागररकों को सुख-सुववधा देने की दृल्ष्ट से मित्वपूण विैं। परन्तु यहद िमें जीवन में मनुष्य के दृल्ष्टकोण को वविाल और बुद्धधमत्तापूण वबनाना िो, तो िमें िास्त्रीय ववद्याओं पर भी ज़ोर देना चाहिए। ववज्ञानों का िास्त्रीय ववद्याओं से सम्बन्ध मोटे तौर पर साधन और साध्य का सम्बन्ध किा जा सकता िै। साधनों के प्रतत अत्यधधक उत्सािा में िमें साध्यों को दृल्ष्ट से ओझल निींकर देना चाहिए। उधचत और अनुधचत की धारणाएं ववज्ञान के क्षेत्र में निीं, किफर भी अन्ततोगत्वा मानवीय कम वऔर आनन्द का आधार इन धारणाओं को केन्द्र बनाकर ककया गया ववचारों का अध्ययन िी िै। ककसी भी सन्तुशलत संस्कृतत में इन दोनों वविाल अधभवागों में समस्वरता स्थावपत की जानी चाहिए। भगवद्गीता जीवन के सवोच्च लक्ष्यों को हृदयंगम करने ेमें मित्वपूण वसिायता देती िै।

भगवद्गीता के अनेक संस्करण िैं और इसके कई अच्छे अंग्रेज़ी अनुवाद भी िो चुके िैं; और यहद यि मान शलया जाए कक अंग्रेज़ी पाठकों के शलए केवल एक अनुवाद-भर की आवश्यकता िै, तो इस एक और अनुवाद का कोई औधचत्य न िोगा। जो लोग गीता को अंग्रेज़ी में पढ़ते िैं, उनके शलए भी, यहद उन्िें इसका अथ वहृदयंगम करने ेमें पथभ्रान्त न िोना िो, तो हटप्पखणयों की कम-से-कम उतनी आवश्यकता तो िै िी, ल्जतनी कक गीता को संस्कृत में पढ़नेवालों के शलए िै। प्राचीन टीकाओं में िमें यि संकेत शमलता िै कक उन टीकाकारों और उनके समकालीन लोगों की दृल्ष्ट में गीता का क्या अथ वथा। प्रत्येक धमग्रवन्थ के दो पक्ष िोतेिैं, एक तो सामतयक और नश्वर, जो उस काल और दिे के लोगों के ववचारों से सम्बल्न्धत िोता िै, ल्जसमें कक वि धमग्रवन्थ रचा गया िोता ैं; और दूसूरा िाश्वत और अनश्वर पक्ष, जो सब देिों और कालों पर लागू िो सकता िै। बौद्धधक अशभव्यल्क्त और मनोवैज्ञातनक भाषा काल की उपज िैं, जब कक िाश्वत सत्य सब कालों में, जीवन में अपनाए जा सकतेिैं और बौद्धधक दृल्ष्ट की अपेक्षा एक उच्चतर दृल्ष्ट द्वारा देखे जा सकते िैं। ककसी भी प्राचीन ग्रन्थ की प्राणिल्क्त उसकी इस िल्क्त में तनहित िोती िै कक वि समय-समय पर ऐसे लोगों को जन्म दे सके, जो उस ग्रन्थ में प्रततपाहदत सत्यों को अपनेअनुभव से पुष्ट कर सकें और उनकी ग़लततयों को सुधार सकें। टीकाकार िमें अपने अनुभव की बात बतातेिैं और धमग्रवन्थ के प्राचीन वववेक को एक नये रूप में, ऐसे रूप में, जो उनके काल से संगत था और जो उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल था, प्रकट करते िैं। सब बडे–बडे ेशसद्धान्त, जैसा कक िताल्ददयों के काल-प्रविा में अनेक बार िुआ िै, उस काल के प्रततक्षेपों के रंग में रंगे रितेिैं, ल्जस काल में वे प्रकट िोतेिैं और उन पर उस व्यल्क्त की छाप रिती िै, जो उन्िें नये शसरे से प्रस्तुत करता िै। िमारा काल शभन्न िै। िमारी ववचार की पद्धतत, वि मानशसक पृष्ठभूशम, ल्जससे कक िमारे अनुभव सम्बल्न्धत िैं, ठीक वैसी निीं ंिै, जैसी कक प्राचीन टीकाकारों की थी। आज िमारे सम्मुख ववद्यमान ववद्यमान मुख्य समस्या मानव-जातत के मेल-शमलाप की समस्या िै। इस प्रयोजन के शलए गीता वविेषे रूप से उपयुक्त िै, क्योंकक इसमें धाशमकव चेतना के पृथृक् पृथृक् और प्रकट रूप में परस्पर- ववरोधी दीख पडने ेवाले रूपों का समन्वय करनेका प्रयत्न ककया गया िै और धम वकी

उन मूल धारणाओं पर ज़ोर हदया गया ि◌ै, जो न तो प्राचीन ि◌ैं और न आधुतनक, बल्ल्क ि◌ाश्वत ि◌ैं; और अतीत, वतमवान और भववष्यत की मानवता के अंग-प्रत्यंग से सम्बल्न्धत ि◌ैं। इततिास ि◌मारे सम्मुख समस्याए प्रस्तुत करता ि◌ै और यहद ि◌म प्राचीन शसद्धान्तों को नये रूपों में पुनः प्रस्तुत करते ि◌ैं, तो इसशलए र्निीं ◌ंकक ि◌म वैसा करना चािते ि◌ैं, अवपतु इसशलए कक वैसा ि◌में करना ि◌ी ि◌ोता ि◌ै। ि◌ाश्वतता के सत्यों का इस प्रकार पुनःकथन ि◌ि◌

मिारे इस काल में एकमाल ऐसा उपाय ि◌ै, ल्जसके द्वारा कोई मिान् ◌्धमग्रवन्थ मानव-जातत के शलए सजीव रूप में मूल्यवान् ◌्ि◌ो सकता ि◌ै। इस बात को दृल्ष्ट में रखते ि◌ुए बुद्धधमान् ◌् पाठक ि◌ा यद सामान्य भूशमका और हटप्पखणयों

को उपयोगी पा सके। ऐसे अनेक स्थल ि◌ैं, जिां ◌ंगीता की ववस्तृत व्याख्याओं को लेकर ववद्वानों में मतभेद ि◌ैं। मनैं ेहटप्पखणयों में केवल उन मतभेदों की ओर संकेतमान कर हदया ि◌ै, क्योंकक यि पुस्तक उस सामान्य पाठक को दृल्ष्ट में रखकर तैयार की गई ि◌ै, जो अपने आध्याल्त्मक पररवेि का ववस्तार करना चािता ि◌ै, गीता का वविेषज्ञ बनना चािनेवालों को र्निीं।

ककसी भी अनुवाद को अपना उद्देश्य पूरा करने ◌ेके शलए इतना स्पष्ट ि◌ोना चाहिए, ल्जतना कक उसकी ववषयवस्तु उसे स्पष्ट ि◌ोने ◌ेदे सके। अनुवाद सुपाठ्य तो ि◌ोना चाहिए, परन्तु वि उथला न ि◌ो; वि आधुतनक ि◌ोना चाहिए, ककन्तु सहृदयता से ि◌ीनूय र्निीं। परन्तु गीता के ककसी भी अनुवाद में वि प्रभाव और चारुता र्निीं आ सकती, जो मूल में ि◌ै। इसका माधुय वऔर ि◌ददों का जादू ◌ूककसी भी अन्य माध्यम में ज्यों का त्यों ला पाना बिुत कहठन ि◌ै। अनुवादक का यत्न ववचार को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करनेका रिता ि◌ै, परन्तु वि ि◌ददों की आत्मा को पूरी तरि सामनेर्नििींला सकता। वि पाठक में उन मनोभावों को र्निीं जगा सकता, ल्जनमें कक वि ववचार उत्पन्न ि◌ुआ था और न वि पाठक को द्रष्टा की भाव-समाधध में ि◌ी पिुंचा सकता ि◌ै और न उसे वि हदव्य-दिनव ि◌ी करा सकता ि◌ै, ल्जसे वि स्वयंकरता ि◌ै। इस बात का अनुभव करते ि◌ुए, मनैं मूल पाठ भी दे हदया ि◌ै, ल्जससे जो लोग संस्कृत जानते ि◌ैं, वे मूल संस्कृत पर ववचार करते ि◌ुए गीता के अथ वको पूणतवया हृदयंगम करने ◌ेमें समथ विों।

राधाकृ ष्णन् ◌्

भगवद्गीता

यं भगवान्स्ि्नारायण ने अजुनव को ल्जसका उपदिे हदया था, प्राचीन मुतन स्व व्यास ने ल्जसे
मिाभारत के बीच में संकशलत ककया िै, जो अद्वैतज्ञान का अमृत बरसानेवाली तथा पुनजन्वम का नाि करने े
वाली िै, ऐसी अट्ठारि अध्यायों वाली िे मांभगवती गीता, म ैंतेरा ध्यान करता िंूं।'[1]

"यि प्रशसद्ध गीतािास्त्र सम्पूण ववैहदक शिक्षाओं के तत्वाथ वका सार-संग्रि िै। इसकी शिक्षाओं का ज्ञान सब मानवीय मित्वाकांक्षाओ की शसद्धध करानेवाला िै।"[2]

"मुझेभगवद्गीता में एक ऐसी सान्त्वना शमलती िै, जो मुझे े'समनव ऑन हद माउण्ट' (बाइबल का एक प्रसंग) तक में निीं ंशमलती। जब तनरािा मेरे सामने आ खडी िोती िै और जब बबल्कुल एकाकी मुझको प्रकाि की कोई ककरण निींहदखाई पडती, तब म ैंगीता की िरण लेता िंूं। जिां-तिां कोई-न-कोई श्लोक मुझेऐसा हदखाई पड जाता कक म ैंववषम ववपवत्तयों में भी तुरन्त मुस्कुराने ेलगता िंूं - और मेरा जीवन बाह्य ववपवत्तयों से भरा रिा िै- और यहद वे मुझपर अपना कोई दृश्यमान, अशमट धचह्न निींछोड सकी, तो इसका सारा श्रेय भगवद्गीता की शिक्षाओंको िी िै।"

---

1 ओऽम् ्पाथायव प्रततबोधधतां भगवता नारायणेन स्वयं, ं
व्यासेन यधथतां ंपुराणमुतनना मध्ये मिाभारतम् ्।
अद्वैतामृतववषणवी भगवतीमष्टादिाध्यातयनी-
मम्ब त्वामनुसन्दधाशम भगवद्गीते ेभवद्वेवषणीम् ्॥
मामा तवेवा पवारसंग्रि भूतम् ्समस्त पुरुषाथशवसद्धधम् ्। भगवतीला पर िंकराचाय वकी टीका की भूशमका।

2

पररचय

1. इस ग्रन्थ का मित्

'भगवद्गीता' एक दिनवग्रन्थ कम और एक प्राचीन धमग्रवन्थ अधधक ि ै। यि कोई गुह्य ग्रन्थ निीं ि ै, जो वविेषे रूप से दीक्षक्षत लोगों के शलए शलखा गया ि ो और ल्जसे केवल वे ि ी समझ सकते ि ों, अवपतु एक लोकवप्रय काव्य ि ै, जो उन लोगों की भी सिायता करता ि ै 'जो अनेक और पररवतनिील वस्तुओंके क्षेत्र में भटकते कफर रि ेि ैं।' इस पुस्तक में सब सम्प्रदायों के उन साधकों की मित्वाकांक्षाओ को वाणी प्रदान की गई ि ै, जो परमात्मा के नगर की ओर आन्तररक माग वपर चलना चिाते ि ैं। ि म वास्तववकता को उस अधधकतम गिराई पर स्पि वकरते ि ैं, जिां ंमनुष्य संघष वकरते ि ैं, ववफल ि ोतेि ैं और ववजय पाते ि ैं। ि ताल्ददयों तक करोडों हिन्दुओं[3] को इस मिान् ् ग्रन्थ से ि ाल्न्त प्राप्त ि ोती रिी ि ै। इसमें संक्षक्षप्त और ममस्वपिी ि ददों में एक आध्याल्त्मक धम वके उन मूलभूत शसद्धान्तों की स्थापना की गई ि ै, जो दुरुधाररत तथ्यों, अवैज्ञातनक कट्टर शसद्धान्तों या मनमानी कल्पनाओं पर हटके ि ुए निीं ि ै। आध्याल्त्मक बल के एक लम्बे इततिास के साथ यि आज भी उन सब लोगों को प्रकाि देने का काम कर रिी ि ै, जो इसके वववेक की गम्भीरता से लाभ उठाना चािते ि ैं। इसमें एक ऐसे संसार पर ज़ोर हदया गया ि ै, जो उसकी अपेक्षा किीं अधधक ववस्तृत और गम्भीर ि ै, ल्जसे कक युद्ध और क्राल्न्तयां स्पि वकर सकती ि ैं। आध्याल्त्मक जीवन के पुननवीकरण में यि एक सबल रूपतनधारवक तत्व ि ै और इसने संसार के मिान् ्धमग्रवन्थों में अपना एक सुतनल्श्चत स्थान बना शलया ि ै।

---

[3] गीता का प्रभाव बिुत अधधक रिा ि ै। यि प्रारल्म्भक हदनों में चीन और जापान तक फैला ि ुआ था और बाद में पल्श्चम के देिों में भी फैल गया। बौद्ध धम वकी मिायान ि ाखा के दो प्रमुख ग्रन्थों, 'मिायानश्रद्धोत्पवत्त' (मिायान में श्रद्धा का जागरण) और 'सद्धमपुवण्डरीक' (सच्चेधम वका कमल) पर गीता की शिक्षाओं का गिरा प्रभाव ि ै। यि बता देना मनोरंजक ि ोगा कक जमनव धम'व के अधधकृत भाष्यकार जे. डदल्यू, ि ोअर ने, जो संस्कृत का ववद्वान् ्था और कुछ वष वतक भारत में धमप्रवचारक का काम करता रिा था, जमनव धम वमें गीता को बिुत मित्वपूण वस्थान हदया ि ै। उसने गीता को 'एक अनश्वर मित्व का ग्रन्थ' बताया ि ै। उसका कथन ि ै कक यि पुस्तक "ि में न केवल गम्भीर अन्तदृल्ष्ट प्रदान करती ि ै, जो सब कालों में और सब प्रकार के धाशमकव जीवन के शलए प्रामाखणक ि ै, अवपतुइसमें साथ ि ी इण्डो-जमनव धाशमकव इततिास के एक सबसे मित्वपूण वदौर का अत्यन्त प्रामाखणक तनरूपण भी ककया गया ि ै... यि ि में इण्डो- जमनव धम वकी मूल प्रकृतत और उसकी आधारभूत वविेषेताओं ंके सम्बन्ध में भी माग वहदखाती ि ै।" वि गीता के केन्द्रीभूतू सन्दिे को इन ि ददों में प्रस्तुत करता ि ै : "ि मसे जीवन के अथ वको ि ल करने के शलए निीं किा गया, अवपतुउस कम वको खोज तनकालने के शलए, ल्जसकी ि मसे अपेक्षा की जाती ि ै, और उस कम वको करने के शलए और इस प्रकार कम वद्वारा जीवन की पिेल को सुलुझाने के शलए किा गया ि ै।" (अप्रैल 1940 के हिदबटव जनलव में पृष्ठ 341 पर उद्धत। परन्तु गीता का कम वका सन्दिे जीवन के दिनव पर आधाररत ि ै: गीता चािती ि ै कक कम वसे जुटने से पिले ि म जीवन के अथ वको समझें। यि ववचार के गौरव की उपेक्षा करके कम व(व्यविार) के प्रतत अन्धभल्क्त का समथनव निीं करती। इसका कम वका दिनव इसके आत्मा के दिनव से तनकला ि ै, ब्रह्मववद्यान्तगतवकमयवोगिास्त्र। नैततक कम वआधधववद्यक अनुभूतत से तनकला ि ै। ि ंकराचाय वका कथन ि ै कक गीता का उद्देश्य ि में बन्धन से छूटने का उपाय शसखाना ि ै, केवल कम वकरने की प्रेरेणा देना निीं, ि ोकमोिादसंसारकमतवनवृत्त्यथ,व गीता ि ास्त्रम् ्न प्रवतकवम्। ्

गीता का उपदिे ककसी एक ववचारक या ववचारकों के ककसी एक वग वद्वारा सोच तनकाली गई आधधववद्यक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत निीं ककया गया; यि उपदिे एक ऐसी परम्परा के रूप में प्रस्तुत ककया गया िै, जो मानव-जातत के धाशमकव जीवन में से प्रकट िुई िै। इस परम्परा को एक ऐसे गम्भीर द्रष्टा ने स्पष्ट दिदों में किा िै, जो सत्य को उसके सम्पूण वपिलुओंकी दृल्ष्ट से देख सकता िै और उसकी उद्धारक िल्क्त में ववश्वास रखता िै। यि हिन्दू ्धम वके ककसी एक सम्प्रदाय का प्रततततनधधत्व निीं ्करती, अवपतु ्समूचे रूप में हिन्दू ्धम वका प्रततततनधधत्व करती िै; न केवल हिन्दू ्धम वका, बल्ल्क ल्जसे धम वकिा जाता िै, उस सबका, उसकी उस ववश्वजनीनता के साथ प्रततततनधधत्व करती िै, ल्जसमें काल और दिे की कोई सीमाएं निीं िैं।'[4] इसके समन्वय में मानवीय आत्मा का, असभ्य लोगों की अपररष्कृत जडपूजा से लेकर सन्तों की सृजृनात्मक उल्क्तयों तक, समस्त सप्तक समाया िुआ िै। जीवन के अथ वऔर मूल्य के सम्बन्ध में गीता द्वारा प्रस्तुत ककए गए सुझाव, िाश्वत जीवन के मूल्यों की भावना और वि रीतत, ल्जसके द्वारा परम रिस्यों को तकव के प्रकाि द्वारा आलोककत कर हदया गया िै, और नैततक अन्तदृल्ष्ट मन और आत्मा के उस मतैक्य के शलए आधार प्रस्तुत कर देते िैं, जो इस संसार को एक बनाए रखनेके शलए परम आवश्यक िै; यि संसार सभ्यता के बाह्य तत्वों की सावभवौम स्वीकृतत के कारण भौततक रूप से तो एक बन िी चुका िै।

जैसा कक गीता की पुल्ष्पका से प्रकट िै, भगवद्गीता अधधववद्या और नीततिास्त्र, ब्रह्मववद्या और योगिास्त्र, वास्तववकता (ब्रह्म) का ववज्ञान और वास्तववकता (ब्रह्म) के साथ संयोग की कला, दोनों िी िै। आत्मा के सत्यों को केवल वे लोग िी पूरी तरि समझ सकतिैं, जो कठोर अनुिासन द्वारा उन्िें ग्रिण करनेके शलए अपने-आप को तैयार करते िैं। आल्त्मक ज्ञान प्राप्त करने ्के शलए िमें अपनेमन को सब प्रकार के ववक्षेपों से रहित करना िोगा और हृदय को सब प्रकार की भ्रष्टता से स्वच्छ करना िोगा।5 कफर, सत्य के ज्ञान का पररणाम जीवन का पुननवीकरण िोता िै। आत्मजगत् ्जीवन के जगत् ्से बबलकुल अलग-थलग निीं ्िै। मनुष्य को बाह्य लालसाओं और आन्तररक गुणों में ववभक्त कर देना मानवीय जीवन की अखंडता को खंडडत कर देना िै। ज्ञानवान् ्आत्मा ईश्वर के राज्य के एक सदस्य के रूप में काय वकरती िै। वि ल्जस संसार को स्पि वकरती िै, उस

---

[4] तुलना कील्जए ऐल्बुअस िक्सले : "गीता िाश्वत दिनव के कभी भी रचे गए सबसे स्पष्ट और सबसे सवागां-सम्पूण वसारांिि में से एक िै। इसीशलए न केवल भारतीयों के शलए अवपतु सम्पूण वमानव-जातत के शलए इसका इतना स्थायी मूल्य िै... सम्भवतः भगवद्गीता िाश्वत दिनव का सबसे अच्छा सुसंगत आध्याल्त्मक वववरण िै।" स्वामी प्रणवानन्द और कक्रस्टोफर इिवुड द्वारा शलखखत 'भगवद्गीता की भूशमका (1945)।

[5] तुलना कील्जए :

ज्योततरात्मतन नान्यत्र समं तत्सवजवन्तुषु।
स्वयं ्च िक्यतेद्रष्टुं सुसुमाहितचेतसा ॥
"परमात्मा की ज्योतत आत्मा में रिती िै, अन्यत्र किीं ्निीं। यि सब प्राखणयों में समान रूप से चमकती िै और इसे अपने मन को समाधध में िान्त करके स्वयं ्देखा जा सकता िै।"

पर प्रभाव डालती ◌ै और दूसूरों के शलए उद्धारक बन जाती ◌ै।6 वास्तववकता (ब्रह्म) के दो प्रकार, एक अनुभवातीत (लोकोत्तर) और दूसूरा अनुभवगम्य (लौककक), एक-दूसूरे से घतनष्ठ रूप से सम्बद्ध ◌ैं। गीता के प्रारल्म्भक भाग में मानवीय कम वकी समस्या का प्रश्न उठाया गया ◌ै। ◌म ककस प्रकार उच्चतम आत्मा में तनवास कर सकते ◌ैं और कफर भी संसार में काम करते रि सकते ◌ैं? इसका जो उत्तर हदया गया ◌ै, वि हिन्दू ◌ूधम वका परम्परागत उत्तर ◌ै। यद्यवप यिां ◌ंइसे एक नये सन्दभ वके साथ प्रस्तुत ककया गया ◌ै।

अधधकृत पदसंज्ञा'[7] की दृल्ष्ट से गीता को उपतनषद् किा जाता ◌ै, क्योंकक इसकी मुख्य प्ेरेरणा धमग्रवन्थों के उस मित्वपूण वसमूि से ली गई ◌ै, ल्जसे उपतनषद् किा जाता ◌ै। यद्यवप गीता ◌में प्रभावपूण वऔर गम्भीर सत्य का दिनव कराती ◌ै, यद्यवप यि मनुष्य के मन के शलए नये माग वखोल देती ◌ै, कफर भी यि उन मान्यताओं को स्वीकार करती ◌ै, जो अतीत की पीहढ़यों की परम्परा का एक अंग ◌ै और जो उस भाषा में जमी ◌ुई ◌ैं, जो गीता में प्रयुक्त की गई ◌ै। यि उन ववचारों और अनुभूततयों को मूततमवान और केल्न्द्रत कर देती ◌ै, जो उस काल के ववचारिील लोगों में ववकशसत ◌ो रिी थीं। इस भ्रातृघृाती संघष वको उपतनषदों के प्राचीन ज्ञान, प्रज्ञा पुराणी पर आधाररत एक आध्याल्त्मक सन्दिे के ववकास के शलए अवसर बना शलया गया ◌ै।'[8]

उन अनेक तत्वों को, जो गीता की रचना के काल में हिन्दू ◌ूधम वके अन्दर एक-दूसूरे से ◌ोड करने में जुटे ◌ुए थे, इसमें एक जगि ले आया गया ◌ै और उन्िें एक उन्मुक्त और ववशाल, सूक्ष्म और गम्भीर सवागां-सम्पूणू व समन्वय में शमलाकर एक कर हदया गया ◌ै। इसमें गुरु ने ववशभन्न ववचारधाराओं को, वैहदक बशलदान की पूजा-पद्धतत को, उपतनषदों की लोकातीत ब्रह्म की शिक्षा को, भागवत के ईश्वरवाद और करुणा को, सांख्य के अद्वैतवाद को और योग की ध्यान-पद्धतत को पररष्कृत ककया ◌ै और उनमें आपस में मेल बबठाया ◌ै। उसने हिन्दू–ूजीवन और ववचार के इन सब जीववत तत्वों को एक सुगहठत एकता में गूंथ हदया ◌ै। उसने तनषेध की निीं, अवपतु अथावबोध की पद्धतत को अपनाया ◌ै और यि हदखा हदया 5/5 कक ककस प्रकार वे ◌ेववशभन्न ववचारधाराएं एक ◌ी उद्देश्य तक जा पिुंचती ◌ैं।

2. कालऔरमूलपाठ

---

[6] 4, 35

[7] पुल्ष्धकासे तुलनाकील्जए भग़वद्गीतासु उपतनषत्सु ।

[8] 'वैष्णवीय तन्त्रसार' के एक लोकवप्रय श्लोक में यि बात किी गई ◌ै कक गीता उपतनषदों की मूल शिक्षाओं ◌ंको ◌ी नये रूप में प्रस्तुत करती ◌ै। उपतनषदें गौएं ◌ैं। ग्वाले का पुल कृष्ण दूधू दुिने वाला ◌ै। अजुनव बछडा ◌ै। बुद्धधमान् ◌्मनुष्य पीने वाला ◌ै और अमृतृरूपी गीता बहढ़या दुधु ◌ै।

सवोपतनषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पाथो वत्सः सुधीभोक्ता दुग्धुे गीतामृतृंमित् ◌्॥

भगवद्गीता उस मिान आन्दोलन के बाद की, ल्जसका प्रततततनधधत्व प्रारल्म्भक उपतनषद् करते िैं, और दितवनक प्रणाशलयों के ववकास और उनके सूतों में बांधे जानेके काल से पिले की रचना िै। इसकी प्राचीन वाक्य-रचना और आन्तररक तनदिेंों से िम यि पररणाम तनकाल सकतेिैं कक यि तनल्श्चत रूप से ईसवी-पूव वकाल की रचना िै। इसका काल ईसवी-पूव वपांचवीं ितादद्दी किा जा सकता िै, िालांकक बाद में भी इसके मूल पाठ में अनेक िेर-फेर िुए िैं।'[9]

मिें गीता के रचतयता का नाम मालूम निीं िै। भारत के प्रारल्म्भक साहित्य की लगभग सभी पुस्तकों के लेखकों के नाम अज्ञात िैं। गीता की रचना का श्रेय व्यास को हदया जाता िै, जो मिाभारत का पौराखणक संकलनकताव िै। गीता के अट्ठारि अध्याय मिाभारत के भीष्मपव वके 23 से 40 तक के अध्याय िै।

यि किा जाता िै कक उपदिे देते समय कृष्ण के शलए युद्धक्षेत्र में अजुनव के सम्मुख 700 श्लोकों को पढ़ना सम्भव निीं ंिुआ िोगा। उसने कुछ थोडी- सी मित्वपूण वबातें किी िोंगी, ल्जन्िेंबाद में लेखक ने एक वविाल रचना के रूप में ववस्तार से शलख हदया। गने के मतानुसार, भगवद्गीता पिले एक सांख्य- योग-सम्बन्धी ग्रन्थ था, ल्जसमें बाद में कृष्ण-वासुदेव-पूजा पद्धतत आ शमली और ईसवी-पूव वतीसरी ितादद्दी में इसका मेल-शमलाप कृष्ण को ववष्णु का रूप मानकर वैहदक परम्परा के साथ बबठा हदया गया। मूल रचना ईसवी-पूव व200 में शलखी गई थी और इसका वतमवान रूप ईसा की दूसूरी ितादद्दी में ककसी वेदान्त के अनुयायी द्वारा तैयार ककया गया िै। गने का शसद्धान्त सामान्यतया अस्वीकार ककया जाता िै। िोपककन्स का ववचार िै कक "अब जो कृष्णप्रधान रूप शमलता िै, वि पिले कोई पुरानी ववष्णुप्रधान कववता थी और उससे भी पिले वि कोई एक तनस्सम्प्रदाय रचना थी, सम्भवतः ववलम्ब से शलखी गई कोई उपतनषद् ।"[10]' िौल्ज़मन गीता को एक सवेश्वरवादी कववता का बाद में ववष्णुप्रधान बनाया गया रूप मानता िै। कीथ का ववश्वास िै कक मूलत: गीता श्वेताश्वतर के ढंग की उपतनषद् थी, परन्तु बाद में उसे कृष्णपूजा के अनुकूल ढाल हदया गया। बानेंट का ववचार िै कक गीता के लेखक के मन में परम्परा की ववशभन्न धाराएं गड्डमड्ड िो गई। रूडोल् ओटो का कथन िै कक "मूल गीता मिाकाव्य का एक िानदार खण्ड थी और उसमें ककसी प्रकार का कोई सैद्धाल्न्तक साहित्य निीं ंथा।" कृष्ण का इरादा "मुल्क्त का कोई लोकोत्तर उपाय प्रस्तुत करने ेका निीं ंथा, अवपतु ुअजुनव को उस भगवान् ्की सविवल्क्तिशलनी इच्छा को पूरा करने ेकी वविेष सेवा के शलए तैयार करना था, जो युद्धों के भाग्य का तनणयव करता िै।"" ओटो का ववश्वास िै कक सैद्धाल्न्तक अंि प्रक्षक्षप्त िैं। इस ववषय में उसका जैकोबी से मतैक्य िै, ल्जसका ववचार िै कक ववद्वानों ने मूल छोटे-से केन्द्र-बबन्दु ुको ववस्तृत करके वतमवान रूप दे हदया िै।

---

[9] राधाकृष्णन्कीइल्ण्डयन कफलॉसफी', खण्ड 1, पृ.ृ 522-25

[10] ररशलजन्स ऑफ इल्ण्डया (1908), पृ.ृ 389। इसके ववषय में फनिुवार शलखता िै कक "यि एक पुरानी पद्य उपतनषद् िै, जो सम्भवतः श्वेताश्वतर के बाद शलखी गई िै और ल्जसे ककसी कवव नेकृष्णवाद के समथनव के शलएईसवी सन् ्के बाद गीता के वतमवान रूप में बाल हदया िै।" * आउटलाइन ऑफ हद ररशलजस शलटरेचर ऑफ इल्ण्डया' (1920), अनुभाग 95 2. ओररल्जनल गीता, अंग्रेजी अनुवाद (1939), पृ.ृ 12, 14

इन ववशभन्न मतों का कारण यि तथ्य प्रतीत िोता िै कक गीता में दितवनक और धाशमकव ववचार की अनेक धाराएं अनेक ढंगों से घुमा-कफराकर एक जगि शमलाई गई िैं; अनेक परस्पर ववरोधी दीख पडने ेवाले ववश्वासों को एक सीधी-सादी एकता में गूंथ हदया गया िै, ल्जससे वे ेसच्ची हिन्दू ूभावना से उस काल की आवश्यकता को पूरा कर सकें और इन सब ववश्वासों के ऊपर इस भावना ने परमात्मा की चारुता बबखेर दी िै। गीता ववशभन्न ववचारधाराओं में मेल बबठानेमें किां ंतक सफल िुई िै, इस प्रश्न का उत्तर सारे ग्रन्थ को पढ़नेके बाद पाठक को अपनेशलए स्वयंदेना िोगा। भारतीय परम्परा में सदा िी यि अनुभव ककया गया िै कक परस्पर असंगत दीख पडने ेवाले तत्व गीता के लेखक के मन में शमलकर एक िो चुके थे और जो िानदार समन्वय उसनेसुझाया िै और स्पष्ट ककया िै, वि सच्चे आल्त्मक जीवन को बढ़ाता िै, 'भले िी गीताकार ने उसे युल्क्तयांदेकर ववस्तारपूवकव शसद्ध निीं ककया ।

अपनेप्रयोजन के शलए िम गीता के उस मूल पाठ को अपना सकतेिैं, ल्जसे िंकराचाय वने अपनी टीका में अपनाया िै, क्योंकक इस समय गीता की विीं सबसे पुरानी ववद्यमान टीका िै।'[11]

3. प्रमुख टीकाकार

गीता िताल्ददयों से हिन्दू ूधम वका एक प्राचीन धमग्रवन्थ मानी जाती रिी िै, ल्जसकी प्रामाखणकता उपतनषदों और 'ब्रह्मसूत्न' के बराबर िै और ये तीनों शमलकर प्रामाखणक ग्रन्थलयी (प्रस्थानलय) किलाती िैं। वेदान्त के आचायों के शलए यि आवश्यक िो गया कक वे अपनेवविेषे शसद्धान्तों को इन तीन प्रामाखणक ग्रन्थों के आधार पर उधचत ठिराएं और इसीशलए उन्िोंने इन पर टीकाएं शलखीं, ल्जनमें उन्िोंने ेयि प्रततपाहदत ककया कक ककस प्रकार ये मूलग्रन्थ उनके ववशिष्ट दृल्ष्टकोण की शिक्षा देते िैं। उपतनषदों में परब्रह्म के स्वभाव के सम्बन्ध में और संसार के साथ उसके सम्बन्ध के बारे में ववशभन्न प्रकार के सुझाव ववद्यमान िैं। ब्रह्मसूल इतना सामाशसक और अस्पष्ट िै कक उसमें से अनेक प्रकार के अथ वतनकाल शलए गए िैं। गीता में अपेक्षाकृत अधधक सुसंगत दृल्ष्टकोण प्रस्तुत ककया गया िै, इसशलए उन टीकाकारों का काम अपेक्षाकृत अधधक कहठन िो जाता िै, जो उसकी व्याख्या अपना मतलब तनकालने के शलए करना चािते िैं। भारत में बौद्ध धम वके ह्रास के बाद ववशभन्न मत उठ खडे िुए, ल्जनमें से प्रमुख अद्वैत अथात्व ्द्वैत का न िोना, ववशिष्टाद्वैत अथात्व ्सोपाधधक अद्वैत, द्वैत अथात्व ् दो की सत्ता को स्वीकार करना और िुद्धाद्वैतै अथात्व ्वविुद्ध अद्वैत थे। गीता की ववशभन्न टीकाएं आचायों द्वारा उनके अपनेसम्प्रदायों के समथनव और दूसूरे सम्प्रदायों के खण्डन के शलए शलखी गईं। ये सब लेखक गीता में अपने-अपने धाशमकव ववचारों और अधधववद्या की प्रणाशलयों को ढूंढ़ पानेमें समथ विुए, क्योंकक गीता के लेखक ने यि सुझाव प्रस्तुत ककया िै कक वि िाश्वत सत्य, ल्जसे िम खोज रिे िैं और ल्जससे अन्य सब सत्य तनकले िैं, ककसी एक अकेले गुर में बांधकर बन्द निींककया जा सकता। कफर, इस धमग्रवन्थ के अध्ययन और मनन से िमें

[11] कश्मीरी संस्करणों में मूल पाठ में जो थोडे-बिु ुत अन्तर हदखाई पडतेिैं, उनका गीता की सामान्य शिक्षाओंपर कोई प्रततकूल प्रभाव निीं पडता। देखखए, एफ. ए. श्रेडर की पुस्तक 'हद कश्मीर ररसैन्नि ऑफ हद भगवद्गीता' (1930) ।

उतना िी अधधक जीववत सत्य और आध्याल्त्मक प्रभाव प्राप्त िो सकता िै, ल्जतना ग्रिण कर पाने में िम समथ व िैं।

किंराचाय वकी टीका (ईसवी सन् ्788-820) इस समय ववद्यमान टीकाओंमें सबसे प्राचीन िै। इससे
पुरानी भी अन्य टीकाएं थीं, ल्जनका तनदिे िंकराचाय वने अपनी भूशमका में ककया िै, परन्तु वे इस समय प्राप्त
निीं ंिोतीं।[12] किंराचाय वने इस बात को जोर देकर किा िै कक वास्तववकता या ब्रह्म एक िी िै और उससे शभन्न दूसूरी वस्तु कोई निीं िै। यि हदखाई पडने ेवाला ववववध-रूप संसार अपने-आप में वास्तववक निीं िै; यि केवल उन लोगों को वास्तववक प्रतीत िोता िै, जो अज्ञान में (अववद्या में) जीवन बबताते िैं। इस संसार में फंस जाना एक
बन्धन िै, ल्जसमें िम सब फंसे िुए िैं। यि दुदुविा िमारे अपनेप्रयत्नों से निीं ंिटाई जा सकती। कम वव्यथ िैं और
वे िमें इस अवास्तववक ववश्व-प्रकक्रया (संसार) से, कारण और काय वकी अन्तिीन परम्परा से मज़बूती से जकड
देते िैं। केवल इस ज्ञान से, कक ववश्वव्यापी ब्रह्म और व्यल्क्त की आत्मा एक िी वस्तु िै, िमें मुल्क्त शमल सकती िै। जब यि ज्ञान उत्पन्न िो जाता िै, तब जीव ववलीन िो जाता िै; भटकना समाप्त िो जाता िै और िमें पूण व आनन्द और परम सुख प्राप्त िोता िै।
ब्रह्म का वणनव केवल उसके अल्स्तत्व के रूप में िी ककया जा सकता िै, क्योंकक वि सब वविेषणों से परे िै; वविेष रूप से कताव, कम,व और ज्ञान की कक्रया के सब भेदों से ऊपर िै। इसशलए उसे व्यल्क्त-रूप में निीं ंमाना जा सकता और उसके प्रतत कोई प्ेरम या श्रद्धा निीं ंकी जा सकती।

किंराचाय वका मत िै कक जिां मन को िुद्ध करने ेके शलए साधन के रूप में कम वअत्यन्त आवश्यक िै, विांज्ञान प्राप्त िो जाने पर कम वदूरू छूट जाता िै। ज्ञान और कम वएक-दूसूरे के ठीक वैसे िी ववरोधी िैं, जैसे प्रकाि और अन्धकार।'[13] यि ज्ञान-कमसवमुच्चय'[14] के दृल्ष्टकोण को स्वीकार निीं करता। उसका ववश्वास िै कक वैहदक ववधधयां ंकेवल उन लोगों के शलए िैं, जो अज्ञान और लालसा में डूबे िुए िैं। मुल्क्त के अशभलावषयों को कमकवाण्ड की ववधधयों का पररत्याग कर देना चाहिए। िंकराचाय वके मतानुसार15, गीता का उद्देश्य इस बाह्य (नाम-

---

12 आनन्दधगरर िंकराचाय वकी भगवद्गीता की टीका पर अपनी टीका में, दूसूरे अध्याय के दसवें श्लोक में, किता िै कक वृत्तकार ने, ल्जसने ब्रिासूत्र पर बदी वविाल टीका शलखी िै, गीता पर भी एक ज्ञान और अकेला कम वआध्याल्त्मक मुल्क्त तक ले जा सकता िै, अवपतु इन दोनों के सल्म्मशलत अभ्यास से िम उस लक्ष्य तक पिुंच सकते िैं।

13 4.37; 4.33

तस्माद् गीतासु ुकेवलादेव तत्वज्ञानान्मोक्ष प्राल्प्तः, न कमसवमुलुच्चतात्।् भगवद्गीता की िंकराचाय वको टीका, 2, 11।

14

भले िी कममुवल्क्त का तात्काशलक कारण न भी िो, तो भी यि रक्षा करने वाले ज्ञान को प्राप्त करने का एक आवश्यक साधन िै। िंकराचाय वनेइसे स्वीकार ककया िै :
"कमतवनष्ठया ज्ञानतनष्ठाप्राल्प्तेतुत्वेन पुरुषाथिेवतुत्वंन स्वातंत्र्येण।"

15 अववद्याकामवत् ्एव सवाखवण श्रौतादीतन दशितवातन

रूपमय) संसार'[16] का पूण वदमन िै, ल्जसमें कक सारा कम विोता िै, यद्यवप िंकराचाय वका अपना जीवन ज्ञान-प्राल्प्त के बाद भी कम वकरते जानेका उदिारण िै।

िंकराचाय वके दृल्ष्टकोण का ववकास आनन्दधगरर ने, जो सम्भवतः तेरिवीं िताददी में िुए, श्रीधर (ईसवी सन् ् 1400) ने और मधुसूदन (सोलिवींिताददी) ने तथा अन्य कुछ लेखकों ने ककया। मिाराष्ट्रीय सन्त तुकाराम और ज्ञानेश्वर मिान् ् भक्त थे, यद्यवप अधधववद्या में उन्िोंनेिंकराचाय वके मत को स्वीकार ककया।

रामानुज (ईसा की ग्यारिवीं िताददी) ने अपनी टीका में संसार की अवास्तववकता और कम-वत्याग के माग वके शसद्धान्त का खण्डन ककया। उसनेयामुनाचाय वद्वारा अपने 'गीताथसंवग्रि' में प्रततपाहदत व्याख्या का अनुसरण ककया । ब्रह्म सवोच्च वास्तववकता, आत्मा िै। परन्तु वि तनगुणव निीं ंिै। उसमें आत्मचेतना िै और अपना ज्ञान भी िै, और संसार के सृजन की और अपनेजीवों को मुल्क्त प्रदान करने ेकी सचेत इच्छा भी उसमें िै। सब आदि वगुणों, असीम और अनन्त गुणों का वि आधार िै। वि सारे संसार से पिले और सारे संसार से ऊपर िै। उस जैसा दूसूरा कोई निीं ंिै। वैहदक देवता उसके सेवक िैं, ल्जन्िें कक उसनेबनाया िै और उनके तनयत कतव्वयों को पूरा करने के शलए उन-उनके स्थानों पर उन्िें तनयुक्त ककया िै। संसार कोई माया या भ्रम निीं िै, बल्ल्क सत्य और वास्तववक िै। संसार और परमात्मा ठीक वैसे िी एक िैं, जैसे िरीर और आत्मा एक िैं। वे समूचे रूप में एक िैं, परन्तुसाथ िी अपररवतनवीय रूप से परस्पर शभन्न भी िैं। सृल्ष्ट से पिले संसार एक सम्भाववत (गशभतव या अव्यक्त) रूप में रिता िै, जो इस समय ववद्यमान और ववशभन्न प्रकट रूपों में ववकशसत निीं ंिुआ िोता। सृल्ष्ट िोने ेपर यि नाम और रूप में ववकशसत िो जाता िै। संसार को परमात्मा का िरीर बताकर यि सुझाव प्रस्तुत ककया गया िै कक संसार ककसी ववजातीय तत्व से, जो दूसूरा मूल तत्व िो, बना िुआ निीं िै, अवपतु इसे भगवान् ्ने स्वयंअपनी प्रकृतत में से िी उत्पन्न ककया िै। परमात्मा इस संसार का बनानेवाला िै और स्वयं परमात्मा से िी यि संसार बना भी िुआ िै। आत्मा और िरीर की उपमा संसार की ईश्वर पर पूण वतनभरवता को सूधचत करने ेके शलए प्रयुक्त की गई िै, ठीक उसी प्रकार जैसे कक िरीर आत्मा पर तनभरव िोता िै। यि संसार केवल ईश्वर का िरीर निीं ंिै, अवपतुउसका अवशिष्ट भाग िै, ईश्वरस्य िेषः, और यि वाक्यांिसंसार की पूण वपराधश्रतता और गौणता का सूचक िै।

सब प्रकार की चेतना में यि पूवधवारणा ववद्यमान िै कक एक कताव िोगा और एक कम विोगा; और यि उस चेतना से शभन्न िै, ल्जसे रामानुज ने आधश्रत तत्व (धमभूवत द्रव्य) माना िै, जो स्वयं बिार तनकल पाने में समथ व िै। यि (जीव) अवास्तववक निीं िै और मुल्क्त की दिा में वि लुप्त निीं िो जाता। उपतनषद् के प्रसंग, तत् ्त्वम् ् अशस, 'वि तू िै' का अथ वयि िै कक "ईश्वर म ेैस्वयं िूँ"; ठीक उसी प्रकार, जैसे मेरी आत्मा मेरे िरीर का आत्म िै। परमात्मा आत्मा को संभालनेवाला, उसका तनयन्त्रण करनेवाला मूल तत्व िै; ठीक उसी प्रकार, जैसे आत्मा िरीर को संभालने वाला मूल तत्व िै। परमात्मा और आत्मा एक िैं; इसशलए निीं कक दोनों ठीक एक िी वस्तु िैं,

[16] गीतािास्त्रस्य प्रयोजनं ्परं तनःश्रेयसम्, ् सिेतुकस्य संसारस्य अत्यन्तोपरामलक्षणम्। ् भगवद्गीता पर िंकराचाय वकी टीका की भूशमका।

बल्ल्क इसशलए कक परमात्मा आत्मा के अन्दर तनवास करता िै और उसके अन्दर तक प्रववष्ट िुआ िै। वि आन्तररक मागदविकव िै, अन्तयामवी, जो आत्मा के अन्दर खूब गिराई में तनवास करता िै और इस रूप में उसके जीवन का मूल तत्व िै। परन्तु अन्तव्यावपता तद्रूपूदा (तादात्म्य) निीं िै। काल और िाश्वतता, दोनों में िी जीव स्रष्टा से पृथृक् रिता िै।

रामानुज ने गीता पर अपनी टीका में एक प्रकार का वैयल्त्तक रिस्यवाद ववकशसत ककया िै। मानवीय आत्मा के सुगुप्त स्थानों में परमात्मा तनवास करता िै. परन्तु आत्मा उसे तब तक पिचान निींपाती, जब तक आत्मा को मुल्त्तदायक ज्ञान प्राप्त निीं ंिो जाता। यि मुल्त्तदायक ज्ञान िमें अपनेसम्पूण वमन और आत्मा द्वारा परमात्मा की सेवा करनेसे प्राप्त िो सकता िै। पूण ववववश्वास केवल उन लोगों के शलए सम्भव िै, ल्जन्िें दैवीय कृपा इसके शलए वरण कर (चुन) लेती िै। रामानुज यि स्वीकार करता िै कक गीता में ज्ञान, भल्त्त और कम व इन तीनों का वणनव िै। परन्तु उसका मत िै कक गीता का मुख्य बल भल्त्त पर िै। रामानुज ने पाप की घृखृणतता, भगवान् ्को पाने की तीव्र लालसा, परमात्मा के सववववजयी पे्रम में ववश्वास और श्रद्धा की अनुभूतत और ईश्वर द्वारा वरण कर शलए जाने की अनुभूतत पर ज़ोर हदया िै।

रामानुज के शलए भगवान् ्ववष्णु िै। विीं केवल एकमात्र सच्चा देवता िै, ल्जसके हदव्य गौरव में अन्य कोई साझी निीं। मुल्त्त वैकुण्ठ या स्वग वमें परमात्मा की सेवा और सािचय वका नाम िै।

मध्व ने (ईसवी सन् ्1199-1276 तक) भगवद्गीता पर दो ग्रन्थ 'गीताभाव्य' और 'गीता-तात्पय'व शलखे। उसनेगीता में से द्वैतवाद के शसद्धान्त खोज तनकालनेका प्रयत्न ककया िै। उसका कथन िै कक आत्मा को एक अथ वमें परमात्मा के साथ तद्रूपू मानना और दूसूरे अथ वमें उससे शभन्न मानना आत्म- ववरोधी बातें िैं। जीव और परमात्मा को िाश्वत रूप से एक-दूसूरे से पृथृक् माना जाना चाहिए, और उन दोनों में आंशिक या पूण वएकता का ककसी प्रकार समथनव निींककया जा सकता। 'वि तू िै' इस प्रसंग की व्याख्या वि यि अथ वबताकर करता िै कक िमें मेरे और तेरे के भेदभाव को त्याग देना चाहिए और यि समझना चाहिए कक प्रत्येक वस्तु भगवान् ्के तनयन्त्रण के अधीन िै।17' माध्व का मत िै कक गीता में भल्त्त-पद्धतत पर बल हदया गया िै।

तनम्बाकव (ईसवी सन् ्1162) ने द्वैताद्वैत के शसद्धान्त को अपनाया िै। उसने'ब्रह्मसूत्र' पर भी टीका शलखी और उसके शिष्य केिव कश्मीरी ने गीता पर एक टीका शलखी, ल्जसका नाम 'तत्वप्रकाशिका' िै। तनम्बाकव का मत िै कक आत्मा (जीव), संसार (जगत) और परमात्मा एक-दूसूरे से शभन्न िैं। कफर भी आत्मा और संसार का अल्स्तत्व और गततववधध परमात्मा की इच्छा पर तनभरव िै। तनम्बाकव की रचनाओं का मुख्य वण्य-ववववषय भगवान् ् की भल्त्त िै।

---

[17] मदीयतदीयम्इतत्भेदम्अपिाय्सवम् व ्ईश्वराधीनम् ्इतत ल्स्थततः । भागवत-तात्पय।व

वल्लभाचाय व(ईसवी सन् ्1479) ने उस मत का ववकास ककया, ल्जसे ि्ुद्धाद्वैत किा जाता िै। जीव, जब वि ि्ुद्ध अवस्था में िोता िै और माया द्वारा अन्धा िुआ निीं रिता, और परब्रह्म एक िी वस्तु िैं। आत्माएं ईश्वर का िी अंि िैं, जैसे धचनगाररयां अल्ग्न का अंि िोती िैं, और वे ेभगवान् ्की कृपा के बबना मुल्क्त पाने के शलए आवश्यक ज्ञान प्राप्त निीं ंकर सकतीं। मुल्क्त पानेका सबसे मित्वपूण वसाधन भगवान् ्की भल्क्त िै। भल्क्त प्ेरेमशमधश्रत धम विै।'[18]

गीता पर और भी अनेक टीकाकारों ने, और िमारे अपनेसमय में बालगंगाधर ततलक और श्री अरववन्द ने भी टीकाएं शलखी िैं। गीता पर गांधीजी के अपनेअलग ववचार िैं।

सामान्यतया यि माना जाता िै कक व्याख्याओं में अन्तर व्याख्याकार द्वारा अपनाए गए दृल्ष्टकोणों के कारण िै। हिन्दू ूपरम्परा का यि ववश्वास िै कक ये ववशभन्न दृल्ष्टकोण एक-दूसूरे के पूरक िैं। भारतीय दिनविास्त्र की प्रणाशलयां भी अलग-अलग दृल्ष्टकोण या दिनव िी िैं, जो एक-दूसूरे के पूरक िैं और ववरोधी निीं। भागवत में किा गया िै कक ऋवषयों ने मूल तत्वों का िी वणनव अनेक रूपों में ककया िै।19 एक लोकवप्रय श्लोक में, जो िनुमानरधचत माना जाता िै, किा गया िै : "िरीर के दृल्ष्टकोण से म ैंतेरा सेवक िंू, जीव के दृल्ष्टकोण से म ैंतेरा अंग िंू और आत्मा के दृल्ष्टकोण से म ैंस्वयं तू िी िंू; यि मेरा दृढ़ ववश्वास िै।"[20] परमात्मा का अनुभव उस स्तर के अनुसार 'तू' या 'म'ैं के रूप में िोता िै, ल्जसमें कक चेतना केल्न्द्रत रिती िै।

4. सिाच्च िास्तविकता

अपनी आधधववद्यक ल्स्थतत (अशभमत) के समथनव में गीता में कोई युल्क्तयां ंप्रस्तत निीं की गईं। भगवान् ्की वास्तववकता ऐसा प्रश्न निींि, ल्जसे ऐसी तकव- प्रणाली द्वारा िल ककया जा सके, ल्जसे मानव जातत का वविाल बिुमत समझ पाने में असमथ वरिेगा। तकव अपने-आप, ककसी व्यल्क्तगत अनुभव के तनदिे के बबना मिें ववश्वास निींहदला सकता। आत्मा के अल्स्तत्व के सम्बन्ध में प्रमाण केवल आल्त्मक अनुभव से प्राप्त िो सकता िै।

उपतनषदों में परब्रह्म की वास्तववकता की बात जोर देकर किी गई िै। यि परब्रह्म अद्ववतीय िै। उसमें कोई गुण या वविेषेताएं निीं िैं। यि मनुष्य की गरुतम आत्मा के साथ तद्रूपू िै। आध्याल्त्मक अनुभव एक सवोच्च एकता के चारों ओर केल्न्द्रत रिता िै, जो ज्ञाता और ज्ञेय के द्वैत पर ववजय पा लेती िै। इस अनुभव को पूरी तरि हृदयंगम कर पाने की असमथतवा का पररणाम यि िोता िै कक उसका वणनव एक िुद्ध और तनवविेवषे के रूप में ककया जाता िै। ब्रह्म स्वतन्त्र सत्ता के रूप में ववमान तनवविेवषेता िै। वि अन्तःस्फुरणा में, जो कक उसका

---

18 प्ेरेमलक्षणाश्रद्धा।अमृततरंधगणी।

19 "इतत भानाप्रसंख्ंयाने तत्वानांकववशभः कृतम्।्"

20 दिेबुद्ध्या तु दासोऽि, जीवबुद्ध्या त्वदंकिः । आत्मबुद्ध्या त्वमेविाशमतत में तनल्श्चता मततः ॥

(चतुथ वपाद में पाठभेद िै: 'इतत वेदान्तडडल्ण्डमः' - अनुवादक।) साथ िी देखखए आनन्दधगरर का 'िंकरहदल्ग्वजय'।

अपना अल्स्तत्व ि, अपना ववषय स्वयं िी िोता ि। यि वि वविुद्ध कताव ि, ल्जसके अल्स्तत्व को बाह्य या वस्तुरूपात्मक जगत् ्में निंछोडा जा सकता ।

यहद ठीक-ठीक किा जाए, तो िम ब्रह्म का ककसी प्रकार वणनव निं ंकर सकते। कठोर चुप्पी िी वि एकमात्र उपाय ि, ल्जसके द्वारा िम अपने अटकते िुए वणनवों और अपूण वप्रमापों की अपयाप्वतता को प्रकट कर सकतिं।21 बृिदारण्यक उपतनषद् का कथन ि : "जिंप्रत्येक वस्तुवस्तुतः स्वयंआत्मा िी बन गई ि, विंकौन ककसका ववचार करे और ककसके द्वारा ववचार करे ? सावभवौम ज्ञाता का ज्ञान िम ककस वस्तु के द्वारा प्राप्त कर सकतिं?"[22] इस प्रकार तकवमूलक ववचार की ज्ञाता और ज्ञेय के बीच की अद्वैत की भावना से ऊपर उठा जाता ि। वि िाश्वत (ब्रह्म) इतना असीम रूप से वास्तववक ि कक िम उसे एक का नाम देनेकी भी हिम्मत निंकर सकते, क्योंकक एक िोना भी एक ऐसी धारणा ि, जो लौककक अनुभव (व्यविार) से ली गई ि। उस परमात्मा के सम्बन्ध में िम केवल इतना कि सकतिं कक वि अद्वैत ि।23 और उसका ज्ञान तब प्राप्त िोता ि, जब कक सब द्वैत उस सवोच्च एकता में ववलीन िो जाते ि। उपतनषदों में उसका नकारात्मक वणनव हदया गया ि कक ब्रह्म यि निं ंि, यि निं (नेतत नेतत)। "वि स्नायुरहित ि; वि ककसी िस्त्र से ववद्ध निं ंि और उसे पाप छूता निं ंि।"[24]

---

21 लाओत्से से तुलना कील्जए: "वि ताओ, ल्जसेकोई नाम हदया जा सकता ि, सच्चा ताओ निं ि।" "तनराकार की वास्तववकता और ल्जसका आकार ि, उसकी अवास्तववकता सबको मालूम ि। जो लोग ज्ञान-प्राल्प्त के माग वपर चल रि ि, वे इन बातों की परवाि निं करते, े परन्तु अन्य लोग इन चीजों पर वाद-वववाद करतिं। ज्ञान-प्राल्प्त का अथ वि-वववाद न करना। वाद- वववाद करनेका अथ वि-ज्ञान की प्राल्प्त न िोना। प्रकट रूप में दीख पडने वाले ताओ का कोई वस्तुरूपात्मक मूल्य निं ि; इसशलए बिस करने की अपेक्षा मौन रिना अधधक अच्छा ि। इसे वाणी द्वारा प्रकट निं ंककया जा सकता; इसशलए यि अधधक अच्छा ि कक कुछ किा िी न जाए। यिी मिान् ्उपलल्दध किी जाती ि।" सूटहिल : हद धि ररशलजन्स ऑ़ॅ चाइना; दूसूरा संस्करण (1923), पृ.् 56-57। जब बुद्ध से ब्रह्म और तनवाणव की प्रकृतत के सम्बन्ध में प्रश्न ककया गया, तो उसनिोन्त मौन धारण कर शलया। ईसा नेभी, जब उससे पौल्ण्टयस पाइलेट नेसत्य की प्रकृतत के ववषय में प्रश्न ककया था, तब इसी प्रकार की चुप्पी साध ली थी।प्लौहटनस से तुलना कील्जए: यहद कोई प्रकृतत से यि पूछे कक वि उत्पादन क्यों करती ि, तो यहद वि सुनने और बोलने को इच्छुक िो, तो वि यि उत्तर देगी कक तुम्िं यि बात पूछनी निं चाहिए, बल्ल्क मौन रिते िुए समझनी चाहिए। जैसे म ंमौन रिती ि, क्योंकक मुझेबोलने की आदत निं ि।

22 2, 4, 12-14

23 'कुलार्णव-तन्त्र' से तुलना कील्जए :

अद्वैत केधचहदच्छल्न्त द्वैतैशमच्छल्न्त चापरे।
मम तत्त्वं ववजानन्तो द्वैताद्वैतै वववल्जतवम् ्॥
कुछ संस्करणों में 'ववजानन्तो' के स्थान पर 'न जानल्न्त' पाठ ि।

24 ईिोपतनषद् 8। भगवान् ्तद् एकम् ्तनगुणव और तनवविेष ि: "वि न तो ववद्यमान ि और न अववद्यमान।" ऋग्वेद, 10, 1291 माध्यशमक बौद्ध परम वास्तववकता को ख़ाली या िून्य किते ि, ल्जससे कि ंउसे कोई अन्य नाम देकर वे उसे भ्रमवि सीशमत न कर बैठे। उनकी दृल्ष्ट में यि वि वस्तु ि, ल्जसका ज्ञान तब िोगा, जबकक सब ववरोधी वस्तुएं सवोच्च एकता में ववलीन िो जाएंगी। सेण्ट जॉन ऑफ डेमेस्कस से तुलना कील्जए: "यि किना असम्भव ि कक परमात्मा अपने-

"उसकी कोई छाया या काशलमा निीं ंिै। उसके अन्दर या बिार जैसी वस्तु कुछ निीं ंिै।"[25] भगवद्गीता में अनेक स्थानों पर उपतनषदों के इस दृल्ष्टकोण का समथनव ककया गया िै। भगवान् ्को 'अव्यक्त, अधचन्त्य और अववकाय2व6' बताया गया िै।' 'वि न सत् ्िै और न असत्।्"[27] भगवान् ्के शलए परस्पर ववरोधी वविेषेण यि सूधचत करने ेके शलए प्रयुक्त ककए गए िैं कक उस पर अनुभवगम्य धारणाएं लागू ूनिीं ंकी जा सकतीं। "वि गतत निीं करता और कफर भी वि गतत करता िै। वि बिुत दूरू िै, पर कफर भी पास िै।"[28] इन वविेषेणों से भगवान् ्का दुिरा स्वरूप सामने आता िै। एक तो उसका सत् ्(अल्स्ततवमय) स्वरूप और एक नाम-रूपमय स्वरूप। वि 'परा' अथातव ् लोकातीत िै और 'अपरा' अथातव ्अन्तव्यापवी िै; संसार के अन्दर और बिार दोनों जगि ववद्यमान िै।*[29]

परब्रह्म की अवैयल्क्तकता उसका सम्पूण वमित्व निीं िै। उपतनषदों में हदव्य गततववधध और प्रकृतत में आग लेने की पुल्ष्ट की गई िै और िमारे सम्मुख एक ऐसे परमात्मा का रूप प्रस्तुत ककया गया िै, जो केवल असीम और केवल सलीम से किीं ंअधधक िै। ल्जस ल्जज्ञासा के कारण प्लेटो को अकादेमी के ज्योततवषयों को यि आदिे देने की पे्रेरणा शमली कक वे प्रकट दीख पडने ेवाली वस्तुओं (प्रतीततयों) से बचें, उसी रुधच के कारण उपतनषदों के ऋवषयों को संसार को अथपूवण वसमझने ेकी पे्रेरणा शमली। तैवत्तरीय उपतनषद् के िददों में- "भगवान् ् वि िै, ल्जससे ये सब वस्तुएं उत्पन्न िोती िैं, ल्जससे ये सब जीववत रिती िैं और ल्जसमें ववदा िोतेसमय ये सब ववलीन िो जाती िैं।" वेद के अनुसार, "परमात्मा वि िै, जो अल्ग्न में िै और जो जल में िै, ल्जसने ेशलखखत ववश्व को व्याप्त ककया िुआ िै। उसे, जो कक पौधों में और पेडों में िै, िम बारम्बार प्रणाम करते िैं।"[30] "यहद यि सवोच्च

~~आप में क्या िै और उसके ववषय में इस ढंग से वणनव कर पाना अधधक सिी िै कक अन्य सब वस्तुओंका वजनव कर हदया~~ जाए। वस्तुतः वि अपने-आप िोने के अलावा और कुछ भी निीं ंिै।"

[25] बृिदारण्यक उपतनषद् 3, 8, 8। मिाभारत में भगवान, जो कक आचाय विै, नारद को बताता िै कक उसका वास्तववक रूप "देखा निीं ंजा सकता, सूघा निीं ंजा सकता, छुआ निीं ंजा सकता; वि गुणों से रहित िै, अंगों से रहित िै, अजात (जो उत्पन्न निीं िुआ) िै, िाश्वत िै, तनत्य िै और तनष्कम विै।" देखखए िाल्न्तपव व339, 21-38। यि "अज्ञान का बादल िै" या ल्जसे एररयोपेगाइट ने 'अत्यन्त दील्प्तमान अन्धकार' किा िै, या ऐकिाटव के िददों में, "हदव्यता का तनःदिद मरुस्थल... 'जो ठीक-ठीक कोई अल्स्तत्व निीं ंिै।" ऐंगेलस शसलेशसयस से तुलना कील्जए : "परमात्मा केवल कुछ निीं ंिै। उसका सम्बन्ध न इस काल से और न इस स्थान से िै।" प्लौहटनस से भी तुलना कील्जए: "वि सबका जनक िोतेिुए भी उन सबमें से कोई निीं िै। न वि वस्तु िै, न गुण, न बुद्धध, न आत्मा; वि न गतत में िै, न ल्स्थरता में िै, न दिे में िै, न काल में िै; वि अपनी पररभाषा आप िी िै। उसका रूप तनराला िी िै, या और ठीक किा जाए, तो वि रूपीन िै; वि उससे पिले ववद्यमान था, जब रूप या गतत या ववश्राम उत्पन्न िुआ। ये सब वस्तुएं अल्स्तत्व से सम्बल्न्धत िैं और अल्स्तत्व को बिुववध बनाती िैं।" (ऐनीड्स, मैक्कैना- कृत अंग्रेजी अनुवाद 6, 9) ।

[26] 2,25

[27] 13, 12;13,15-17

[28] इिापतनषद् 5। साथ िी देखखए मुण्डकोपतनषद् 2, 1, 6-8; कठोपतनषद् 2, 14; बृिदारण्यक उपतनषद् 2, 37; श्वेताश्वतर उपतनषद् 3, 17

[29] बहिरन्तश्च भूतानाम् ्। 13, 15

[30] यो देवोऽनो योप्सु यो ववश्व भुवनमाववविे,

भगवद्गीता 21 आनन्द आकिा में न िोता, तो कौन पररश्रम करता और कौन जीववत रिता?"[31] ईश्वरवादी यि स्वर

श्वेताश्वतर

उपतनषद् में और भी प्रमुख िो उठता िै। "वि जो एक िै और ल्जसका कोई रूप-रंग निीं, अपनी बुिववध िल्क्त को धारण करके ककसी गुप्त उद्देश्य से अनेक रूप-रंगों को बनाता िै और आहद में और अन्त में ववश्व उसी में ववलीन िो जाता िै। वि परमात्मा िै। वि िमें ऐसा ज्ञान प्रदान करे, जो िुभ कमों की ओर ले जाता िै।"[32] कफर "तू

स्त्री िै, तू िी पुरुष िै; तू िी युवक िै और युवती भी िै; तू िी वृद्ध पुरुष िै, जो लाठी लेकर लडखडाता चलता िै; तू

िी नवजात शििु िै; तू सब हदिाओं ंकी ओर मुख ककए िुए िै।"[33] कफर, "उसका रूप देखा निींजा सकता। आंख से उसे कोई निीं ंदेखता। जो लोग उसे इस प्रकार हृदय द्वारा और मन द्वारा जान लेते िैं कक उसका तनवास हृदय में िै, वे अमर िो जाते िैं।"[34] वि सावभवौम परमात्मा िै, जो अपने-आप िी यि ववश्व भी िै, ल्जसे उसने अपनी अन्दर धारण ककया िुआ िै। वि िमारे अन्दर ववद्यमान प्रकाि िै, 'हृद्यन्तोततः'। वि भगवान् ्िै, जीवन और मृत्यु ल्जसकी छाया िैं।[35]

उपतनषदों में िमें भगवान् ्का वणनव अववकाय वऔर अधचन्त्य के रूप में शमलता िै और साथ िी यि दृल्ष्टकोण भी शमलता िै कक वि ववश्व का स्वामी िै। यद्यवप वि समस्त वस्तुओंका स्रोत िै, कफर भी वि अपने-आपसदा अववचल रिता िै।'[36] िाश्वत वास्तववकता न केवल अल्स्तत्व को संभाले रखती िै, अवपतु वि संसार में सकक्रय िल्क्त भी िै। परमात्मा अनुभवातीत, दुष्प्राप्य प्रकाि में तनवास करने ंवाला िै, पर साथ िी वि ऑगस्टाइन के िददों में, "आत्मा के साथ उससे भी अधधक घतनष्ठ िै, ल्जतना कक आत्मा स्वयंआत्मा के साथ िै।" उपतनषद् में एक वृक्ष पर बैठे दो पक्षक्षयों का उल्लेख िै, ल्जनमें से एक तो फल खाता िै, परन्तु दूसूरा खाता निीं िै; वि देखता-भर िै। वि आनन्द से दूरू रिनेवाला मौन साक्षी िै।'[37] अव्यल्क्तकता (तनगुणव) और व्यल्क्तकता (सगुण) मन की मनमानी रचनाएं या कल्पनाएं निीं, ये तो िाश्वत को देखने की दो ववधधयां ंिैं। भगवान् ्अपने परम, स्वतः ववद्यमान रूप में ब्रह्म िै परब्रह्म; और संसार का स्वामी और सृजन करने ंवाला भगवान्,् ल्जसके अन्दर सब ववद्यमान िै और जो सबका तनयन्त्रण करता िै, वि ईश्वर किलाता िै। "चिो यो ओषधधषुयोवनस्पततषुतस्मैदेवायनमोनमः।

---

31 को िेवान्यात् ्कः प्राण्यात् ्यदेष आकिा आनन्दो न स्यात् ्?

32 4, 1
33 4, 3
34 4, 20
35 ऋग्वेद 10, 121, 2 : साथ िी देखखए कठोपतनषद् 3, 1 I दयूटरोनोमी से तुलना कील्जए: "म ंैमारता िंूं और ल्जलाता िंूं।" 32, 39

36 रूमी से तुलना कील्जए : "तेरा प्रकाि सब वस्तुओंसे साथ–ी-साथ शमला िुआ िै और सबसे अलग भी िै।" िम्स-ए-तबरीज (तनकल्सनकृत अंग्रेज़ी अनुवाद) गीत 19।

37 मुण्डकोपतनषद् 3, 1, 1-3 I बोएिमी से तुलना कील्जए: "अन्धकार का गम्भीर समुद्र उतना िी ववस्तृत िै, ल्जतना कक प्रकाि का तनवास स्थान; और वे एक-दूसूरे सेज़रा भी दूरू निीं िै. बल्ल्क एक-दूसूरे से शमले-जुले साथ-साथ ववद्यमान िैं और उनमें से ककसी का भी न आहद िै, न अन्त।" श्री वप्रंशंसपल्स, 14, 76

भगवान् ्को तनगुणव माना जाए, चिो सगुण, इस शिव को सनातन समझना चाहिए। जब उसे सृलूष्ट से पृथृक् करके देखा जाता िै, तो वि तनगुणव िोता िै और जब उसे सब वस्तुओंके रूप में देखा जाता िै, तब वि सगुण िोता िै।"[38] यहद यि संसार एक ववश्व िै और कोई अरूप अतनल्श्चतता निीं ंिै, तो यि परमात्मा की देखरेख के कारण िी िै। भागवत में बताया गया िै कक वि एक वास्तववकता, जो अववभक्त चेतना के ढंग की िै, ब्रह्म, भगवान्, ् आत्मा या परमात्मा किलाती िै।39 विी सवोच्च मूल तत्व िै: विी िमारे अन्दर ववद्यमान वास्तववक आत्मा िै और साथ संसार िी विी पूजनीय परमात्मा िै। भगवान् ्अनुभवातीत भी िै, ववश्वरूप भी िै और वैयल्क्तक वास्तववकता भी िै। अपने अनुभवातीत रूप में वि ववुिद्ध आत्म िै, ल्जस पर ककसी कम वया अनुभव का कोई प्रभाव निीं ंपडता। वि अशलप्त और असंग िै। अपनेततिील ववश्वरूप में वि न केवल सारे ववश्व की कक्रया को संभालता िै, बल्ल्क उसका िासन करता िै; और यिी वि आत्म िै, जो सबके अन्दर एक िी िै और सबसे ऊपर िै और व्यल्क्त के अन्दर ववद्यमान िै।40

परमात्मा बुराई के शलए अप्रत्यक्ष रीतत के शसवाय और ककसी प्रकार उत्तरदायी निीं ंिै। यहद यि ववश्व ऐसे सकक्रय व्यल्क्तयों से बना िुआ िै, जो अपने कम वका चुनाव स्वयंकरते िैं, ल्जनको प्रभाववत तो ककया जा सकता िै,
ककन्तु तनयल्न्त्रत निीं ंककया जा सकता, क्योंकक परमात्मा कोई ताणििा निीं िै, तो इसमें संघष वअवश्यम्भावी िै। यि मानने का, कक संसार में स्वतन्त्र आत्माएं ववद्यमान िैं, अथ वयि िै कक बुराई सम्भव और सम्भाव्य िै। एक याल्न्त्रक जगत् ्की तुलना में उसका दूसूरा ववकल्प जोखखम और अशभयान का जगत् ्िै। यहद गलततयों, कुरूपता और बुराई की सब प्रववृत्तयों का वजनव कर देना िो, तो सत्य, शिव और सुन्दर की खोज िो िी निींसकती। यहद सत्य, सुन्दर और शिव के इन आदिों की सचेत कामना िोनी िो, तो उनके ववरोधी शमथ्या, कुरूपता और बुराई को केवल अव्यक्त सम्भावना निीं ंरिना िोगा, अवपतु वे ऐसी सकारात्मक प्रववृत्तयां ंिोंगी, ल्जनका िमें प्रततरोध करना िै। गीता के शलए यि संसार अच्छाई और बुराई के मध्य िोने ेवाले एक सकक्रय संघष वकी भूशम िै,

~~ल्जसमें परमात्मा की गिरी हदलचस्पी~~ िै। वि अपने पे्रम की सम्पवत्त उन मनुष्यों की सिायता करनेके शलए

[38] तनगुणवः सगुणश्चेतत शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
तनगुणवः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥

[39] वदल्न्त तत् ्तत्त्वववदः तत्त्वं यज्ज्ञानमयम्।्
ब्रह्मेतत परमात्मेतत भगवातनतत िदद्यते े॥

साथ िी तुलना कील्जए :

उत्पवत्तं ंच ववनिां च भूतानामगतत गततम् ्।
वेवत्त ववद्यामववद्या स वाच्यो भगवातनतत ॥

[40] बृिदारण्यक उपतनषद् पर िंकराचाय वको टीका से तुलना कील्जए 3, 8, 12। मोटे तौर पर िम कि सकते िैं कक अपने अनुभवातीत, ववश्वरूप और व्यल्क्तगत पक्ष की दृल्ष्ट से परमात्मा ईसाई धम वके वपता, पुत्र और पववत्र आत्मा की त्रयी से मेल खाता िै।

लुटाता ि, जो उन सब वस्तुओंका प्रततरोध करते िैं, जो शमथ्या, कुरूपता और बुराई को जन्म देती िैं। क्योंकक परमात्मा पूणतवया अच्छा िै और उसका प्रेम असीम िै, इसशलए वि संसार के कष्टों के सम्बन्ध में धचल्न्तत िै। परमात्मा सविवल्क्तमान् ्िै, क्योंकक उसकी िल्क्त की कोई बाह्य सीमाएं निीं ंिैं।

संसार की सामाल्जक प्रकृतत परमात्मा पर निीं ंथोपी गई, अवपतु ुवि परमात्मा की इच्छा से बनी िै। इस प्रश्न के उत्तर में, कक क्या परमात्मा अपनी सवज्ञव ता िसे इस बात को पिले से जान सकता िै कक मनुष्य ककस ढंग से आचरण करेंगे और वे ेकम वका चुनाव कर पाने की स्वतन्त्रता का सदुपुयोग या दुरुपयोग करेंगे िम केवल यि कि सकते िैं कक परमात्मा ल्जस वस्तु को निीं ंजानता, वि सत्य निीं िै। वि जानता िै कक प्रववृत्तयां ंअतनधारवरत िैं और जब वे वास्तववक रूप धारण कर लेती िैं, तो उसे उनका ज्ञान िो जाता िै। कम वका शसद्धान्त परमात्मा की सविवल्क्तमत्ता को सीशमत निींकरता। हिन्दू ूववचारक ऋग्वेद की रचना के काल तक में प्रकृतत की तकवसंगतता और तनयमपरायणता को जानते थे। ऋत या व्यवस्था सब वस्तुओं में ववद्यमान िै। तनयम का राज्य परमात्मा की इच्छा और संकल्प िै और इसशलए उसे परमात्मा की िल्क्त की सीमा निीं ंमाना जा सकता। संसार के व्यल्क्तक (सगुण) स्वामी का एक कालमय पक्ष िै, ल्जसमें पररवतनव िोतेरितेिैं।

गीता में वैयल्क्तक परमात्मा के रूप में भगवान् ्पर बल हदया गया िै, जो अपनी प्रकृतत में इस अनुभवगम्य संसार का सृजन करता िै। वि प्रत्येक प्राणी के हृदय में तनवास करता िै।41' वि सब बशलयों का आनन्द देने वाला और स्वामी िै।42 वि िमारे हृदय में भल्क्त जताता िै और िमारी प्राथनवाओं को पूण वकरता िै।43 वि सब मान्यताओं का मूल स्रोत और उन्िेंबनाए रखने वाला िै। पूजा और प्राथनवा के समय उसका िमसे व्यल्क्तगत सम्बन्ध स्थावपत िोता िै।

वैयल्क्तक ईश्वर इस ववश्व की सृल्ष्ट, रक्षा और संिार करता िै।44' भगवान् ्की दो प्रकृततयां ंिैं—एक उच्चतर (परा) और दूसूरी तनम्नतर (अपरा)।45 जीववत आत्माएं उच्चतर प्रकृतत का प्रतततनधधत्व करती िैं और भौततक माध्यम तनम्नतर प्रकृतत का प्रतततनधध िै। परमात्मा उस आदि वयोजना और उस सुतनहदवष्ट माध्यम, दोनों का िी बनानेवाला िै, ल्जनके द्वारा आदि ववास्तववक बनता िै, धारणात्मक वस्तु ववश्व बन जाता िै। धारणात्मक (काल्पतनक) योजना को सुतनहदवष्ट रूप देने के शलए एक पररपूण वअल्स्तत्व की, क्षमतिाील भौततक माध्यम में वस्तुओंका रूप ढाल देनेकी आवश्यकता िोती िै। एक ओर जिां ंपरमात्मा के ववचार अल्स्तत्वमान िोने ेके शलए प्रयत्निील िैं, विांयि अल्स्तत्वमय संसार पूणतवा तक पिुंचने ेके शलए भी प्रयत्निील िै। दैवीय योजना और क्षमतिाील भौततक तत्व, ये दोनों उस परमात्मा से तनकले िैं, जो आहद, मध्य और अन्त, ब्रह्मा,

---

41 18,61

42 9,42

43 7,22

44 जैकब बोएिमी से तुलना कील्जए: "सृल्ष्ट वपता का काय वथी। अवतार पुत्र का काम था, जब कक सृल्ष्ट का अन्त पववन आत्मा के काय वद्वारा िोगा।"

45 7,4-5

ववष्णु और शिव िै। अपने सृजनिील ववचारों से युक्त परमात्मा ब्रह्मा िै। वि परमात्मा, जो अपना प्रेम सब ओर लुटाता िै और इतने ेधैय वके साथ काय वकरता िै कक उस धैय वकी तुलना केवल उसके प्रेम से की जा सकती िै, ववष्णु ै, जो तनरन्तरं संसार की रक्षा के काय वमें लगा रिता िै। जब धारणात्मक वस्तु ववश्व बन जाती िै, जब स्वग व पृथ्वी पर उतर आता िै, तब िमें एक पूणतवा प्राप्त िोती िै, ल्जसका प्रततततनधध शिव िै। परमात्मा एक साथ िी ज्ञान, प्रेम और पूणतवा तीनों िै। इन तीनों कृत्यों को पृथक् पृथक् निीं ककया जा सकता। ब्रह्मा, ववष्णु और शिव मूलतः एक िैं, भले िी उनकी कल्पना तीन अलग-अलग रूपों में की गई िो। गीता की रुधच संसार को मुल्क्त हदलानेकी प्रकक्रया में िै, इसशलए ववष्णु-पक्ष पर अधधक बल हदया गया िै। कृष्ण भगवान् ्के ववष्णु रूप का प्रततततनधध िै।

ववष्णु ऋग्वेद का एक अत्यन्त प्रशसद्ध देवता िै। वि मिान्,् व्यापक िै। ववष्णु िदद विव् ्धातु से बना ै, ल्जसका अथ विै-व्याप्त करना।46 वि आन्तररक तनयामक िै, जो सारे संसार को व्याप्त ककए िुए िै। वि तनरन्तर बढ़ती िुई माला में िाश्वत भगवान् ्की ल्स्थतत और गौरव को अपनेअन्दर समेटता जाता िै। तैवत्तरीय आरण्यक में किा गया िै: "नारायण की िम पूजा करते िैं: वासुदेव का िम ध्यान करते िैं और इस काय वमें ववष्णु मिारी सिायता करे।"[47]

गीता का उपदेि देनेवाले कृष्ण48 को ववष्णु के साथ, जो कक सूय वका प्राचीन देवता िै, और नारायण के साथ, जो ब्रह्माण्डीय स्वरूप वाला प्राचीन देवता िै और देवताओं और मनुष्यों का लक्ष्य या ववश्राम-स्थान िै, एकरूप कर हदया गया िै।

वास्तववक भगवान् ्ववश्व के ऊपर उठा िुआ सनातन, स्थानातीत और कालातीत ब्रह्मा िै, जो स्थान और काल में इस दृश्यमान ववश्व को संभाले िुए िै। वि सावभवौम आत्मा िै परमात्मा, जो ववश्व के रूपों और गततयों की आत्मा िै। वि परमेश्वर िै, जो व्यल्क्तगत आत्माओंऔर प्रकृतत की गततयों का अध्यक्ष िै और ववश्व

---

46 अमर (किो) का कथन िै: व्यापके परमेश्वरे। ववष्णु का मूल विव् ्धातु में भी किा जाता िै, ल्जसका अथ विै प्रविै करना। तैवत्तरीय उपतनषद् का कथन िै: "इस संसार को रचने के बाद वि इसमें प्रविै कर गया।" साथ िी देखखए, पद्मपुराण: भगवान् ् के रूप में ववष्णु प्रकृतत में प्रविै कर गया। स एव भगवान् ्ववष्णुः प्रकृत्याम् ्आववविै ।

47 10,1, 6। नारायणाय ववद् मिे वासुदेवाय धीमहि तन्नो ववष्णुः प्रचोदयात्।् नारायण किता िै : "सूय वकी भांतत िोने के कारण म ैंसारे संसार को ककरणो से आच्छाहदत करता िंूं और म ैंसब प्राखणयों का धारण करने वाला िंूं और इसीशलए म ैं वासुदेव किलाता िूँ।" मिाभारत, 12, 341,41

48 कषतवत सव वकृष्णः। जो सबको अपनी ओर खींचंता िै या सबमें भल्क्त जगाता िै, वि कृष्ण िै। 'वेदान्त-रल-मंजूषा' में (पृ.ृ 52) किा गया िै कक कृष्ण का यि नाम इसशलए िै, क्योंकक वि अपने भक्तों के पापों को दूरू कर देता िै, पापंकषयवतत, तनमूलवयतत । 'कृष्ण' िदद कृष् ्धातु से बना िै, ल्जसका अथ विै खुरचना। क्योंकक वि अपने भक्तों के सब पापों को और बुराई के अन्य स्रोतों को खुरच देता िै, इसशलए वि कृष्ण किलाता िै। कृष्टेववलेखनाथस्वय रूपं ंभक्तजनपापाहददोषकषणवात् ् कृष्णः। गीता पर िंकराचाय वकी टीका, 6, 34

के अल्स्तत्व का तनयन्त्रण करता िै। वि पुरुषोत्तम भी िै, सवोच्च पुरुष, ल्जसकी द्ववववधप्रकृतत ववश्व के ववकास में व्यक्त िोती िै। वि िमारे अल्स्तत्व को पूण वकर देता िै; िमारी बुद्धध को प्रकाशित करता िै और उसकी गुप्त कमातनयों को गततमान कर देता िै।49

पुरुषोत्तम से लेकर नीचे तक सब वस्तुएं सत् ्और असत् ्की द्वैतता का अंग िैं, यिां ंतक कक परमात्मा तक में भी तनषेधात्मकता या माया का तत्व ववद्यमान िै, भले िी वि उसका तनयन्त्रण क्यों न करता िो ! वि अपनी सकक्रय प्रकृतत (स्वां प्रकृतत) को सामनेलाता िै और उन आत्माओं का तनयन्त्रण करता िै, जो अपनी-अपनी प्रकृतत द्वारा तनधारवरत हदिाओं में अपनी भववतव्यता को पूरा कर रिी िैं। एक ओर जिां यि सब काम भगवान् ्इस संसार में प्रयुक्त की जा रिी तनजी िल्क्त द्वारा करता िै, विां दूसूरी ओर उसका एक और पक्ष िै, जो इस सबसे बबलकुल अछूता रिता िै। वि अवैयल्क्तक, परम और साथ िी साथ अन्तव्यावपी संकल्प िै। वि सबका कारण िै, पर उसका कोई कारण निीं। वि सबको गतत देनेवाला िै, पर उसे गतत देनेवाला कोई निीं। मनुष्य और प्रकृतत में तनवास करने ेवाला भगवान् ्इन दोनों से अधधक मिान् ्िै। सीमिीन स्थान और काल में रखा यि असीम ववश्व उसके अन्दर ववश्राम कर रिा िै, पर परमात्मा इसमें ववश्राम निीं ंकर रिा।50 गीता के परमात्मा को ववश्व की प्रकक्रया के साथ एकरूप निीं ंसमझा जा सकता, क्योंकक वि इससे परे िै ।51 इस संसार में भी वि अपने कुछ पक्षों में अधधक व्यक्त िै, और कुछ में कम। सवेश्वरवाद का िीनतर अथ वमें आरोप गीता के दृल्ष्टकोण पर निीं ंककया जा सकता। जिां ंयि ठीक िै कक वास्तववकता एक िी िै, जो सवोच्च रूप से पूण वै, विा प्रत्येक वस्तु, जो सुतनहदवष्ट और वास्तववक िै, उतने िी समान रूप से पूण वनिीं ंिै।

5. गुरु कृष्ण

---

49 विअज्ञातनयोंकोज्ञान काप्रकिा देता िै, तनबलवों को िल्क्त का बल देता िै, पावपयों को क्षमा की मुल्क्त देता िै, दुःखखयों को दया की िाल्न्त देता िै, बेचैनों को चैन देता िै... ज्ञानम् ्अज्ञानानो, िल्क्तरिक्तानाम्, ् क्षमा सापराधानाम्, ् कृपा दुःखखनाम्, ् वात्सल्यैसदोषानाम्, ् िीलं ंमन्दानाम् ्आजवंकुहटलानाम्, ् सौिाई दुष्टाहृदयानाम्, ् मादवंववश्लेषभीरूणाम्। ् साथ िी तुलना कील्जए ; "तू सुखु और आनन्द िै, तू िाल्न्त का धाम िै; तू प्राखणयों के दुःख का नाि करता िै और उन्िें सुख देता िै।"

आनन्दामृतरूपस्त्वं त्वंच िाल्न्ततनकेतनम्। ्

रिशस प्राखणनां दुःखं ववदधाशस सदा सुखम् ्॥

" तू अक्तों का आश्रयदाता िै और पावपयों का लाता िै।"

दीनानां िरणं त्वंहि, पावपनां मुलुक्तसाधनम्। ्

'इसे भी देखें: "तू जो तेजस्वी िै, मुझेभी तेज से भर दे; तू जो वीयवान् ्िै, मुझेवीययुवक्त कर दे; तू जो बलयुक्त िै, मुझेभी बल दे: तू जो ओजस्वी िै, मुझे ेभी ओजमय कर दे; तू जो (अनुधचत के ववरुद्ध) रोष से पररपूण वै, मुझमें भी वि रोष भर दे; तू जो सिनिील िैमुझेभी सिनिीलतासेभरदे।" तेजोऽशसतेजो मतयधेहि,वीयम्

, अ्शसवीयम्व ्मतय घेहि बलम्अ्शस बलं ं मतय धेहि, ओजोऽशस ओजो मतय घेहि, मन्युरशस मन्यु मतय धेहि, सिोऽशस सिो मतय धेहि। िुकुल यजुवेद ,19,9

50 9, 6, 10

51 10, 41 - 42

जिा ॅंतक भगवद्गीता की शिक्षा का प्रश्न ि, इस बात का कोई मित्व निीं ि कक इसका उपदि देने वाला कृष्ण कोई ऐततिाशसक व्यल्क्त ि या निीं। मित्वपूण वबात भगवान् ्का सनातन अवतार ि, जो इस ववश्व में और मनुष्य की आत्मा में पूण वऔर हदव्य जीवन को लानेकी िाश्वत प्रकक्रया ि।

परन्तु कृष्ण की ऐततिाशसकता के पक्ष में बिुत कि़ी प्रमाण ववद्यमान िैं। छान्दोग्य उपतनषद् में देवकीपुल कृष्ण का उल्लेख ि और उसे घोर आंधगरस52 का शिष्य बताया गया ि। घोर आंधगरस, कौिीतकक ब्राह्मण53 के अनुसार, सूय वका पुजारी था। बशलदान के अथ वकी व्याख्या करने और यि बताने के बाद, कक पुरोहितों के शलए सच्ची दक्षक्षणा तप, दान, ईमानदारी, अहिंसा और सत्यभाषण आहद सद्गुणों का अभ्यास िी ि54, इस उपतनषद् में किा गया ि कक "जब घोर आंधगरस ने यि बात देवकीपुत्ल कृष्ण को समझाई तो उसने यि भी किा कक अल्न्तम समय में मनुष्य को इन तीन ववचारों की िरण लेनी चाहिए : 'तू अववनश्वर (अक्षत) ि; तू अववचल (अच्युत) ि; तू ूसारे जीवन का सार (प्राण) ि।'[55] इस उपतनषद् में घोर आंधगरस की शिक्षाओंऔर गीतों में कृष्ण की शिक्षाओं में परस्पर बिुत अधधक समानता ि।

कृष्ण का मिाभारत की कथा में भी बिुत मित्वपूण वस्थान ि, जिांउसे अजुनव के शमल के रूप में प्रस्तुत ककया गया ि। पाखणतन ने वासुदेव और अजुनव को पूजा का पात्र बतलाया ि।56 कृष्ण प्राचीन यदुवंि की वृल्ष्ण या सात्वत िाखा में उत्पन्न िुआ था। इस वंि का स्थान सम्भवतः मथुरा के आसपास किीं ंथा। मथुरा का नाम इततिास-परम्परा और गाथा में कृष्ण के नाम के साथ जुडा िुआ ि। कृष्ण वैहदक धम वके याजकवाद का ववरोधी था और उन शसद्धान्तों का की भी प्रचार करता था, जो उसनेघोर आंधगरस से सीखे थे। वैहदक पूजा-पद्धतत से उल्लेख उसका ववरोध उन स्थानों में प्रत्यक्ष हदखाई पडता ि, जिां इन्द्र पराल्जत िोनेके बाद कृष्ण के सम्मुख झुक जाता ि।'[57] गीता में उन लोगों का भी उल्लेख ि, जो कृष्ण की शिक्षाओं के सम्बन्ध में शिकायत करते िैं और कृष्ण पर अश्रद्धा करते िैं।58 मिाभारत में ऐसे संकेत िैं, ल्जनसे पता चलता ि कक कृष्ण की सवोच्चता बबना उसे चुनौती हदए स्वीकार निीं की गई थी। मिाभारत में कृष्ण को एक ऐततिाशसक व्यल्क्त59 और भगवान् ्का अवतार, दोनों िी रूपों में प्रस्तुत ककया गया ि। कृष्ण ने सात्वतों को सूय वकी पूजा करना शसखाया था और सम्भवतः सात्वतों ने अपने गुरु कृष्ण को उस सूय वके साथ एकरूप मान शलया, ल्जसकी पूजा उसनेउन्िें शसखाई

52 3,17, 6

53 30,6

54 तपोदानम् ्आजवम् ्अहिंसां सत्यवचनम्।् देखखए भगवद्गीता, 16, 1-3

55 भगवद्गीता से तुलना कील्जए: 8, 11-13 । सम्भवतः उसने ऋग्वेद के आठवें मण्डल के चौित्तरखें सूक्त की रचना की थी, क्योंकक उसे कौिीतकक ब्राह्मण में कृष्ण आंधगरस किा गया ि। 30,9

56 4, 3, 98

57 "म ंदेवताओं ंका इन्द्र िंूं, परन्तु तुम्िें गौओं ंके ऊपर इन्द्र को िल्क्त प्राप्त िो गई ि। गोववन्द के रूप में मनुष्य सदा तुम्िारी स्तुतत करतेरिेंगे।" िररवंि, 4004

58 3, 32; 9, 11; 18, 67

59 कृष्ण के बाल्य-जीवन की किानी गाथाओं ंऔर कल्पनाओं के साथ शमली-जुली भागवत और िररवंि पुराण में प्राप्त िोती िैं।

थी।60 ईसवी-पूव वचौथी ितादधी तक वासुदेव की पूजा- पद्धतत भलीभांतत स्थावपत िो चुकी थी। बौद्ध ग्रन्थ 'तनद्देस' (ईसवी-पूव वचौथी ितादधी) में जो कक पाशल शसद्धान्त-ग्रन्थों में सल्म्मशलत ककया गया िै, लेखक ने अन्य सम्प्रदायों के साथ-साथ वासुदेव और बलदेव के उपासकों का उल्लेख ककया िै। मैगस्थनीज़ (ईसवी पूव व 320) ने शलखा िै कक िैराक्लीज़ की पूजा सौरासैनोई (िूरूसेन) लोगों द्वारा की जाती थी, ल्जनके दिे में दो बडे ििर मैथोरा (मथुरा) और क्लीसोबोरा (कृष्णपुर) िैं। तक्षशिला के यूनानी भागवत िीशलयोडोरस ने बेसनगर के शिलालेख (ईसवी-पूव व180) में वासुदेव को देवादेव (देवताओंका देवता) किा िै। नानाघाट के शिलालेख में, जो ईसवी-पूव वपिली ितादधी का िै, प्रारल्म्भक श्लोक में अन्य देवताओं के साथ-साथ वासुदेव की भी स्तुतत की गई िै। राधा, यिोदा और नन्द जैसे प्रमुख व्यल्क्तयों का उल्लेख बौद्ध गाथाओं में भी शमलता िै। पतंजशल ने पाखणतन पर टीका करते उए अपनेमिाभाष्य में 4, 3, 98 में, वासुदेव को भागवत किा िै। यि पुस्तक अभगवद्गीता' किलाती िै, क्योंकक भागवत धम वमें कृष्ण को श्री भगवान् ्समझा जाता िै। कृष्ण ने ल्जस शसद्धान्त का प्रचार ककया िै, वि भागवत धम विै। गीता में कृष्ण ने किा िै कक वि कोई नई बात निींकि रिा, अवपतु केवल उसी बात को दिुरा रिा िै, जो पिले उसने वववस्वान् ्को बताई थी और वववस्वान् ्ने मनु को और मनुने इक्ष्वाकु को बताई थी।"[61] मिाभारत में किा गया िै कक "भागवत धम वपरम्परागत रूप से वववस्वान् ्से मनु को और मनु से इक्ष्वाकु को प्राप्त िुआ था।62" ये दो सम्प्रदाय, जो एक िी रूप में प्रारम्भ ककए गए थे,े अवश्य एक िी रिे िोंगे। कुछ अन्य प्रमाण भी िैं। नारायणीय या भागवत धम वके प्रततपादन में किा गया िै कक पिले इस धम व का उपदिे भगवान् ्ने भगवद्गीता में ककया था।63 कफर यि भी बताया गया िै कक "इसका उपदिे भगवान् ्ने कौरवों और पांडवों के युद्ध में उस समय ककया था, जबकक दोनों पक्षों की सेनाए युद्ध के शलए तैयार खडी थींऔर अजुनव मोिग्रस्त िो गया था।"[64] यि एकेश्वरवादी (ऐकाल्न्तक) धम विै।

गीता में कृष्ण को उस परब्रह्म के साथ तद्रूप माना गया िै, जो इस बिुरूप दीखनेवाले ववश्व के पीछे ववद्यमान एकता िै, जो सब दृश्य वस्तुओं के पीछे ववद्यमान अपररवतनविील सत्य िै, जो सबसे ऊपर िै और सवान्वत-व्यापी िै। वि प्रकट भगवान् ्िै,[65] ल्जसके कारण मत्य वलोगों को उसे जानना सरल िो जाता िै। अनश्वर ब्रह्म की खोज करने ेवाले उसे ढूंढ़ अवश्य लेते िैं, परन्तु उसके शलए उन्िें बिुत बडा तप करना पडता िै। इस रूप में वे भगवान् ्को सरलता से पा सकतेिैं। वि परमात्मा किा जाता िै, ल्जसमें यि अथ वतनहित िै कक वि सवातवीत िै।

---

60 भागवत के अनुसार सात्वत लोग भगवान् ्की भगवान् ्और वासुदेुव के रूप में पूजा करते िैं। 9, 9, 50 । यामुनाचाय वने अपने ग्रन्थ 'आगमप्रामाण्य' में किा िै कक जो लोग आत्मा को पववन्नता के साथ भगवान् ्की पूजा करतेिैं, वे भागवत और सात्वत किलाते िैं। सत्त्वाद् भगवान् ्भज्यतेयैः परः पुमान् ्ते सात्वता 'भागवता इत्युच्यन्ते ेद्विवजोत्तमैः ।

61 4. 1. 3

िल्न्तपव,व 348,51-52

62

63 कधथतो िररगीतासु ु। िल्न्तपव व346, 10

64 समुपोढेष्वनीकेषुकुरुपाण्डवयोमृधेव। अजुनव ववमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ्॥ िल्न्तपव,व 348,8

65 12, 1 से आगे।

इस वि जीवभूत िै, अथात् व ्सबका प्राणरूप िै। िम ककसी ऐततिाशसक व्यल्क्त को भगवान् ्ककस प्रकार मान सकते ैं?

मि ककसी ऐततिाशसक व्यल्क्त को भगवान ककस प्रकार मान सकतैं? हिन्दू ूववचारधारा में ककसी व्यल्क्त को परमात्मा के साथ एकरूप मानना साधारण बात िै। उपतनषदों में बताया गया िै कक पूणतवया जागररत आत्मा, जो परब्रह्म के साथ वास्तववक सम्बन्ध को समझ लेती िै, इस बात को देख लेती िै कक वि मूलतः परब्रह्म के साथ एकरूप िै और वि अपने ब्रह्म के साथ एकरूप िोने की घोषणा भी कर देती िै। ऋग्वेद 4, 26 में वामदेव किता िै: "म ैंमनुिँ, म ैंसूय विँ। म ैंववद्वान् ्ऋवष कक्षक्षवान् ्िँूं। मनैं ेअजुनवी के पुल ऋवष कुत्स की पूजा की िै। म ैंववद्वान् ्उिना िँूं। मेरी ओर देखो...।" कौीतकक उपतनषद् (3) में इन्द्र प्रतदवन से किता िै : "म ैंप्राण िँूं : म ैं चेतन आत्मा िँूं : मुझेजीवन और प्राण मानकर मेरी पूजा करो। जो मुझे ेजीवन या अमरता मानकर मेरी पूजा करता िै, वि इस संसार में पूण वजीवन प्राप्त करता िै; वि स्वगलवोक में जाकर अमरता और अनश्वरता प्राप्त करता िै।"[66] गीता में लेखक किता िै : "राग, भय और क्रोध से मुक्त िोकर, मुझमें लीन िोकर, मुझमें िरण लेकर अनेक लोग ज्ञानमय तप द्वारा पववत्त िोकर मेरे रूप को प्राप्त िो चुके िैं।"[67] जीव अपनेसे शभन्न ककसी ऐसी वस्तुका सिारा लेता िै, ल्जसके प्रतत वि अपने-आप को समवपतव कर सके। इस समपणव में िी उसका रूपान्तरण िै। मुक्त आत्मा अपनिेरीर को िाश्वत की अशभव्यल्क्त के शलए विान के रूप में प्रयुक्त करती िै। कृष्ण ने ल्जस हदव्यता का दावा ककया िै, यि सब सच्चे आध्याल्त्मकं अन्वेषकों को प्राप्त िोने ेवाला सामान्य प्रततफल िै। वि कोई ऐसा नायक निींि, जो कभी पृथूवी पर चलता-कफरता था और अपनेवप्रय शमत्ल और शिष्य को उपदेि देनेके बाद इस पृथूवी को छोडकर चला गया िै, अवपतु वि तो सब जगि ववद्यमान िै और इस सबके अन्दर ववद्यमान िै; और वि सदा िमें उपदेि देने को उसी प्रकार तैयार रिता िै, जैसा कक वि कभी भी ककसी को

---

66 िंकराचाय वने इस पर टीका करते िुए किा िै: "इसका अथ वयि िै कक इन्द्र ने, जो कक एक देवता िै, िास्त्रों के अनुसार ऋवषयों को प्राप्त िोने वाली दृल्ष्ट से अपने-आप को परब्रह्म के रूप में देखतिुए यि किा िै कक 'मुझेजानो', ठीक उसी प्रकार जैसे कक इसी सत्य को देखतिुए वामदेव को अनुभव िुआ था कक 'म ैंमनु िँूं, म ैंसूय विँ।' शुरुतत में (अथात्व ्बृिदारण्यक उपतनषद् में) यि किा गया िै, 'उपासक उस देवता के साथ, ल्जसे वि सचमुचु देखता िै, एकरूप िो जाता िै।"

67 4, 101 ईसा ने अपना जीवन एकान्त-प्राथनवा, ध्यान और सेवा में बबताया था। वि भी िम लोगों का भांतत प्रलोशभत िो जाता था। उसे मिान् ्रिस्यवाहदयों की भांतत आध्याल्त्मक अनुभूततयां ंिोती थीं ंऔर एक बार आल्त्मक यन्त्रणा के क्षण में, जब उसे परमात्मा की उपल्स्थतत की अनुभूतत िोनी बन्द िो गई, वि धचल्ला उठा: "मेरे परमात्मा, मेरे परमात्मा, तूने मुझे े क्यों छोड हदया िै?" (माकव 15, 34) । वैसे सारे समय वि परमात्मा पर स्वयंको आधश्रत अनुभव करता रिा। "वपता मुझसे बडा िै" : (जॉन 14, 28)। "तू मुझे ेअच्छा क्यों किता िै? एक परमात्मा को छोडकर और कोई अच्छा निीं ंिै।" (ल्यूक 18, 19) । "परन्तु उस हदन और उस समय के ववषय में कोई निीं जानता; स्वग वमें रिने वाले देवदूत भी निीं; पुल भी निीं;ं केवल वपता जानता िै।" (माकव 13, 32) । "वपता, म ैंतेरे िाथों में अपनी आत्मा को सौंपता िँूं।" (ल्यूक 23, 46) । यद्यवप ईसा को अपनी अपूणतवाओंका ज्ञान था, कफर उसने परमात्मा की चारुता और प्ेरेम को पिचाना और स्वेच्छापूवकव अपने-आप को पूणतवया उसके सम्मुख तनवेहदत कर हदया। इस प्रकार वि सारी अपूणतवा से मुक्ुत िो गया और परमात्मा में िरण लेकर वि हदव्यता के स्तर तक पिुंच गया। "म ैंऔर वपता एक िैं।" (जॉन 10, 30) ।

भी उपदिे देनेके शलए तैयार था। वि कोई ऐसा व्यल्क्तत्व निीं ंिै, जो कक अब समाप्त िो चुका िो, अवपतु वि तो अन्तवासवी आत्मा िै, जो िमारी आध्याल्त्मक चेतना का लक्ष्य िै।

परमात्मा साधारण अथ वमें कभी जन्म निीं लेता। जन्म और अवतार की वे प्रकक्रयाएं, ल्जनमें सीशमत िो जानेका अथ वतनहित िै, उस पर लागू निीं ंिोती। जब यि किा जाता िै कक परमात्मा ने अपने-आप को ककसी खास
समय या ककसी खास अवसर पर प्रकट ककया, तो उसका अथ वकेवल इतना िोता िै कक ऐसा प्रकट िोना ककसी सीशमत अल्स्तत्व को लेकर िोता िै। ग्यारिवें अध्याय में सारा संसार परमात्मा के अन्दर हदखाया गया िै। संसार की कताधवश्रत और वस्तु-रूपात्मक प्रकक्रयाएं भगवान् ्की केवल उच्चतर और तनम्नतर प्रकृततयों की अशभव्यल्क्तयां-मात्न िैं। कफर भी जो भी कोई वस्तु िानदार, सुन्दर और सबल िै, उसमें परमात्मा का अल्स्तत्व किीं ंअधधक अच्छी तरि अशभव्यक्त िोता िै। जब ककसी सीशमत व्यल्क्त में आध्याल्त्मक गुण ववकशसत िो जाते
िैं और उसमें गिरी अन्तदृवल्ष्ट और उदारता हदखाई पडती िै, तब वि संसार के भले-बुरे का तनणयव करता िै और एक आध्याल्त्मक और सामाल्जक उथल-पुथल खडी कर देता िै; तब िम कित्ते िैं कक परमात्मा ने अच्छाई की रक्षा और बुराई के ववनाि के शलए और धम वके राज्य की स्थापना के शलए जन्म शलया िै। व्यल्क्त के रूप में कृष्ण उन करोडों रूपों में से एक िै, ल्जनके द्वारा ववश्वात्मा अपने-आप को प्रकट करता िै। गीता के लेखक ने ऐततिाशसक कृष्ण का उल्लेख उसके शिष्य अजनव के साथ-साथ अनेक रूपों में से एक रूप के तौर पर ककया िै।'[68] अवतार मनुष्य के आध्याल्त्मक साधनों और प्रसुप्त हदव्यता का प्रदिनव िै। यि हदव्य गौरव का मानवीय रूपरेखा की सीमाओं में ... अवतरण। ईश्वरत्व के स्तर तक ऊंचा उठ जाना। यद्यवप भगवान् ्जन्म निीं ंलेता या उसमें कोई पररवतनव निीं िोता, कफर भी वि बिुत बार जन्म ले चुका िै। कृष्ण ववष्णु का मानवीय साक्षात् ्रूप िै। वि भगवान् ्िै, जो संसार को ऐसा प्रतीत िोता िै, मानो उसने जन्म ले शलया िै और िरीर धारण कर शलया िै।69 हदव्य ब्रह्म द्वारा मानवीय स्वभाव को अंगीकार कर लेनेसे ब्रह्म की अखण्डता समाप्त निीं ंिोती और न उसमें कोई वृद्धध िी िोती िै, ठीक उसी प्रकार जैसे संसार के सृजन से ब्रह्म

---

68 10.37

69 िंकराचाय वने शलखा िै : स च भगवान् ्ज्ञानैश्वयविल्क्तबलवीयतेवजोशभः सदा सम्पन्नः तनगुणाल्त्मका वैष्णवीं स्वांमायाव मूलप्रकृतत विीकृत्य अजोऽव्ययो भूतूानामीश्वरो तनत्यिुद्धबुद्धमुकुतस्वभावोऽवप सन् ्स्वमायया दिेवान् ्इव जात इव लोकानुग्रि कुवल्वन्नव लक्ष्यते।े 'अंिेन सम्बभूव' का अथ वयि निीं िै कक कृष्ण भगवान् ्के अंि से उत्पन्न िुआ िै या वि भगवान् ्का अंिवतार िै। आनन्दधगरर ने 'अंिेन' की व्याख्या करते िुए यि अथ वतनकाला िै कक "अपनी इच्छा से रचे गए ताल्त्वक रूप में," स्वेच्छातनशमतेवने मायामयेन स्वरूपेण । जिां अपोसल-सम्प्रदाय में परमात्मा के पुत्न को मानवीय प्रकृतत पर ज़ोर हदया गया िै, "ल्जसका गभाधवान पववत्न आत्मा नेककया था, ल्जसे कुमारी मेरी नेजन्म हदया था, ल्जसने पौल्ण्टयस पाइलेट के अधीन कष्ट सिे, ल्जसे क्रॉस पर चढ़ाया गया था, जो मरा था और ल्जसे दफनाया गया था, " विां नाइसीन सम्प्रदाय नेइतनी बात और जोड दी िै कक "वि स्वग वसे नीचे आया और िरीर बन गया।" 'यि नीचे ेआना' या 'परमात्मा का उतरकर िरीर धारण कर लेना' िी अवतार िै।

की अखण्डता पर कोई प्रभाव निीं ंपडता। सृलूष्ट और अवतार दोनों का सम्बन्ध व्यक्त जगत् ्से ि, परमात्मा से निीं।70

यहद असीम परमात्मा सदा सीशमत अल्स्तत्वों में प्रकट रिता ि, तो उसका काली एक वविशष्ट समय में वविेषे रूप से और ककसी एक मानवीय स्वभाव को रिण करके प्रकट िोना उसी गततववधध को स्वेच्छापूवकव पूण व करना-भर ि, ल्जसके द्वारा दैवीय प्रचुरता स्वतन्त्रतापूवकव अपने-आप को पूण वकरती ि और ससीम की ओर झुकती रिती ि। इसके फलस्वरूप उसके अलावा कोई नई समस्या खडी निीं ंिोती, जो सृलूष्ट के कारण खडी िोती ै। यहद कोई मानवि–रीर परमात्मा की मूतत वके रूप में गढ़ा जा सकता ि, यहद आवतनविेल ऊजाव की सामग्री से नये नमूनेरचे ेजा सकतिैं, यहद इन रीततयों से िाश्वतता को आनुक्रशमकता में समाववष्ट ककया जा सकता ि, तो हदव्य वास्तववकता (ब्रह्म) अपनेअल्स्तत्व के परम स्वरूप को एक पूणतवया मानवीय िरीर के रूप में और उस मानवीय िरीर के द्वारा प्रकट कर सकती ि। मध्यकालीन दितवनक धम-वववज्ञातनयों ने िमें बताया ि कक परमात्मा सब प्राखणयों में 'सार, साल्न्नध्य और िल्क्त द्वारा ववद्यमान रिता ि। परम, असीम, स्वतः ववद्यमान और अववकाय वका ससीम मानव-प्राणी के साथ, जो सांसाररक व्यवस्था में फंसा िुआ ि, सम्बन्ध कल्पनातीत रूप से घतनष्ठ ि, िालांकक इस सम्बन्ध की पररभाषा कर पाना और उसका स्पष्टीकरण कर पाना कहठन ि। उन मिान् ्आत्माओं को, ल्जन्ें िम अवतार कितिैं, परमात्मा, जो मानव के अल्स्तत्व और गौरव के शलए उत्तरदायी ि, इस अल्स्तत्व और गौरव को आश्चयजवनक रूप से नवीन रूप दे देता ि। अवतारों में उस सनातन का, जो ववश्व की प्रत्येक घटना में ववद्यमान ि. आनुक्रशमकता में प्रवेि एक गम्भीरतर अथ वमें प्रकट िोता ि। िमें स्वतन्त्र इच्छािल्क्त प्रदान करनेके बाद परमात्मा िमें छोडकर अलग खडा निीं ंिो जाता कक िम

स्वेच्छापूवकव अपना जवमगाकभी स्वतन्त्रता के दुरुपयोग के फलस्वरूप अधम वबढ़ जाता ि और संसार की गाडी ककसी लीक में फंस जाती ि, तो संसार को उस लीक में से तनकालने के शलए और ककसी नये रास्ते पर उसे चला देनेके शलए वि स्वयंजन्म लेता ि। अपनेप्रेम के कारण वि सृलूष्ट के काय वको उच्चतर स्तर पर ले जानेके शलए बार-बार जन्म लेता ि। मिाभारत के एक श्लोक के अनुसार, ववश्व की रक्षा के शलए सदा उद्यत भगवान् ्के चार रूप िैं। उनमें एक पृथ्वी पर रिकर तप करता ि; दूसूरा ग़लततयांकरने ेवाली मानवता के कायों पर सतकव दृल्ष्ट रखता ि; तीसरा मनुष्य-जगत् ्में कम वमें लगा रिता ि और चौथा रूप एक ज़िार साल की नींद में सोया रिता ि।'[71] पूण वतनल्ष्क्रयता िी ब्रह्म के स्वभाव का एकमात्र पक्ष निीं ंि। हिन्दू ू

---

70 िूकर से तुलना कील्जए: परमात्मा का मनुष्य के साथ वि स्तुत्य सल्म्मलन उस उच्चतर स्वभाव में कोई पररवतनव उत्पन्न निीं ंकर सकता; क्योंकक परमात्मा के शलए और कोई भी वस्तु इतनी स्वाभाववक निीं ंि, ल्जतना कक उसका ककसी भी पररवतनव का ववषय न बनना।" ऐक्लील्जयेस्टीकल पॉशलटी (1888 का संस्करण) खण्ड, 2, पृ.ृ 234

71 चतुमूतवतरवि िश्वल्लोकलाणाथमुवद्यतः ।

आत्मानं ंप्रववभज्यैि लोकानां ंहितमादधे ॥

एका मूततस्वतपश्चयां ंकुरुते ेमें भुवव ल्स्थता ।
अपरा पश्यतत जगत् ्कुवाणंसाध्वसाधुनी ॥

अपरा कुरुतेकम वमानुषं लोकमाधश्रता ।

परम्परा में बताया गया ि◌ै कक अवतार केवल मानवीय स्तर तक ि◌ी सीशमत निीं ि◌ै। कष्ट और अपूणतवा की ववद्यमाताका मूल मनुष्य के ववद्रोिी संकल्प में निीं ◌ंबताया गया, अवपतु परमात्मा के सृजृनात्मक प्रयोजन और वास्तववक संसार के मध्य ववद्यमान ववषमता में बताया गया ि◌ै। यहद कष्ट का मूल मनुष्य के 'पतन' को माना जाए, तो ि◌म तनदोष प्रकृतत की अपूणतवाओं की, उस भ्रष्टता की, जो सब जीववत वस्तुओंमें ववद्यमान ि◌ै, और रोग के ववधान (व्यवस्था) की व्याख्या निीं ◌ंकर सकते। इस तनदिकव प्रश्न से, कक मछशलयों को कैंसर क्यों ि◌ोता ि◌ै, ककसी प्रकार वपंड निीं छुडाया जा सकता। गीता बताती ि◌ै कक एक हदव्य स्रष्टा ि◌ै, जो अगाध ि◌ून्य पर अपने रूपों का आरोप करता ि◌ै। प्रकृतत एक अपररष्कृत पदाथ वि◌ै, एक अव्यवस्था, ल्जसमें से व्यवस्था का ववकास ककया जाना ि◌ै; एक रातत ल्जसे प्रकाशित ककया जाना ि◌ै। जब भी दोनों के संघष वमें गततरोध उत्पन्न ि◌ो जाता ि◌ै, तभी उस गततरोध को दूरू करने ◌ेके शलए दैवीय ि◌स्तक्षेप ि◌ोता ि◌ै। इसके अततररक्त एक अद्भुत प्रकिान की धारणा ववश्व के सम्बन्ध में ि◌मारे वतमवान दृल्ष्टकोणों के साथ कहठनाई से ि◌ी मेल खाती ि◌ै। कबीलों का परमात्मा धीरे-धीरे पृथ्वी का परमात्मा बना और पृथ्वी का परमात्मा अब ववश्व का परमात्मा, सम्भवतः अनेक ववश्वों में से एक ववश्व का परमात्मा बन गया ि◌ै। यि बात सोचनेकी भी निीं ि◌ै कक भगवान् ◌्का सम्बन्ध केवल क्षुद्रतम ग्रिों में एक इस ग्रि के केवल एक अंिसे ि◌ी ि◌ै।

अवतार का शसद्धान्त आध्याल्त्मक जगत् ◌्के तनयम की एक वाक्पटुतापूण वअशभव्यल्क्त ि◌ै। यहद परमात्मा को मनुष्यों का रक्षक माना जाए, तो जब भी कभी बुराई की ि◌ल्क्तयां मानवीय मान्यताओंका ववनाि करने ◌ेको उद्यत प्रतीत ि◌ोती ि◌ों, तब परमात्मा को अपने-आप को प्रकट करना ि◌ी चाहिए। अवतार परमात्मा का मनुष्य में अवतरण ि◌ै, मनुष्य का परमात्मा में आरोिण निीं, जैसाकक मुक्त आत्माओंके मामले में ि◌ोता ि◌ै। यद्यवप प्रत्येक चेतन सत्ता इस प्रकार का अवतरण ि◌ै, परन्तु वि केवल एक आच्छाहदत प्रकटन ि◌ै। अिो की आत्मचेतन सत्ता और उसी की अज्ञान से आवृतूत सत्ता में अन्तर ि◌ै।

अवतरण या अवतार का तथ्य इस बात का द्योतक ि◌ै कक ब्रह्म का एक पूण वसप्राण और ि◌ारीररक प्रकटन से ववरोध निीं ि◌ै। यि सम्भव ि◌ै कक ि◌म भौततक ि◌रीर में जी रि ि◌ों और कफर भी ि◌ममें चेतना का पूण व सत्य ववद्यमान ि◌ो। मानवीय प्रकृतत कोई बेडी निीं ि◌ै, अवपतु ◌ुयि हदव्य जीवन का एक उपकरण बन सकती ि◌ै। मि सामान्य मत्य वलोगों के शलए जीवन और ि◌रीर-अशभव्यल्क्त के अज्ञानपूण,व अपूण वऔर अक्षम साधन ि◌ोतिैं, परन्तु यि आवश्यक निींकक वे सदा ऐसे ि◌ी ि◌ों। हदव्य चेतना इनका उपयोग अपनेप्रयोजन के शलए करती ि◌ै, जब कक अस्वतन्त्र मानवीय चेतना का ि◌रीर, प्राण और मन की ि◌ल्क्तयों पर ऐसा पूण वतनयन्त्रण निींरिता ।

यद्यवप गीता अवतार में इस ववश्वास को स्वीकार करती ि◌ै कक ब्रह्म संसार में ककसी प्रयोजन को पूरा करने ◌ेके शलए अपने-आप को सीशमत कर देता ि◌ै और तब भी उसके उस सीशमत ि◌रीर में पूण वज्ञान ववद्यमान

तिैचतुथीत्वपरातनद्रांवषसविशस्रकीम्॥

◌्

-द्रोणपवक्29, 32-34

रिता िै; साथ िी यि िाश्वत अवतार पर भी बल देती िै, अथात् व ्कक परमात्मा मनुष्य में ववद्यमान रिता िै, हदव्य चेतना मानव-प्राणी में सदैव ववद्यमान रिती िै। ये दो दृल्ष्टकोण ब्रह्म के अनुभवातीत और अन्तव्यापवी पिलुओं के द्योतक िैं और ये दोनों एक-दूसूरे के ववरोधी निीं समझे ेजा सकते। गुरु कृष्ण, जो मानव-जातत के आध्याल्त्मक प्रबोधन में रुधच ले रिा िै, अपनेअन्दर ववद्यमान ब्रह्म की गिराई में से बोल रिा िै। कृष्ण का अवतार िमारे अन्दर ववद्यमान आत्मा के प्रकटन का, अन्धकार में तछपे िुए ब्रह्म के प्रकािन का एक उदािरण िै। भागवत के अनुसार'[72], "मध्य रातत में, जब कक घने से घना अन्धकार था, घट-घटव्यापी भगवान् ्ने अपने-आप को हदव्य देवकी में प्रकट ककया, क्योंकक भगवान् ्सब प्राखणयों के हृदय में स्वयं तछपा िुआ िै।"[73] उज्ज्वल प्रकाि काली से काली रात में प्रकट िोता िै। रिस्यों और प्रकािनों की दृल्ष्ट से रात बिुत समृद्ध िै। राल्त्र की उपल्स्थतत प्रकाि की उपल्स्थतत को कम वास्तववक निीं बना देती। सच तो यि िै कक यहद रात न िो, तो मनुष्य को प्रकाि की अनुभूतत िी न िो। कृष्ण के जन्म का अथ वि- अन्धकारमयी रातत में ववमोचन (उद्धार) का तथ्य। कष्ट और दासत्व के क्षणों में ववश्व के उद्धारकताव का जन्म िोता िै।

कृष्ण का जन्म वासुदेव और देवकी से िुआ किा जाता िै। जब िमारी सत्त्व प्रकृतत िुद्ध िो जाती िै74, जब ज्ञान के दपणव से वासनाओंकी धूल को िटाकर उसे स्वच्छ कर हदया जाता िै, तब वविुद्ध चेतना का प्रकाि उसमें प्रततबबल्म्बत िोता िै। जब सब कुछ नष्ट िो गया प्रतीत िोता िै, तब आकाि से प्रकाि फूट पडता िै और वि िमारे मानवीय जीवन को इतना समृद्ध कर देता िै कक उसे िददों द्वारा किकर निीं ंबताया जा सकता। सिसा एक चमक िोती िै; िमें आन्तररक आलोक प्राप्त िोता िै और जीवन बबलकुल नया और ताजा हदखाई पडने ेलगता िै। जब िमारे अन्दर ब्रह्म का जन्म िोता िै, तब िमारी आंखों से केंचुली उतर जाती िै और कारागार के द्वार खुल जाते िैं। भगवान् ्प्रत्येक प्राणी के हृदय में तनवास करता िै और जब उस गुप्त तनवासस्थान का पदाव फट जाता िै, तब िमें हदव्य नाद सुनाई पडता िै, हदव्य प्रकाि प्राप्त िोता िै और िम हदव्य िल्क्त से काय वकरने

---

72 तनिीथे तु तमोद्भूते ेजायमाने जनादवने, देवक्या देवरूवपण्यां ंववष्णुः सवगुिावियः... । वसुदेवगृिे साक्षाद् भगवान् ्पुरुषः परः जतनष्यते े। - भागवत 11.23 । ईसा के िरीरधारण के सम्बन्ध में जो कुछ किा गया िै, उससे तुलना कील्जए: "जब सब वस्तुए िान्त तनस्तदधता में मग्न थीं और राल्त्र अपने तीव्र पथ का आधा भाग पार कर चुकी थी, तब तेरा सविवल्क्तमान् ्िदद स्वग वमें तेरे राजशसंिासिन से नीचे आया। ऐलेलुइया।" अवतार के शसद्धान्त ने ईसाई-जगत् ्को कािी कुछ ववक्षुदुध ककया। एररयस का मत था कक पुल (ईसा) वपता के बराबर निीं, अवपतु उसके द्वारा उत्पन्न ककया गया िै। यि दृल्ष्टकोण, कक वे एक-दूसूरे से पृथक् निीं िैं, अवपतु एक िी सत्ता के केवल ववशभन्न पक्ष िैं, सैबैशलयस का शसद्धान्त िै। पिली ववचारधारा में वपता और पुत्र की पृथकता पर और वपछले शसद्धान्त में उन दोनों की एकता पर जोर हदया गया िै। अन्त में जो दृल्ष्टकोण प्रचशलत िुआ वि यि था कक वपता और पुत्र बराबर िैं और एक िी तत्व िैं: परन्तु वे एक-दूसूरे से पृथक् व्यल्क्त िैं।

73 10 : 20; 18. 61

74 सत्त्वं ेविुद्धं वसुदेविल्ददतम्।् भागवत् ्। देवकी दैवी प्रकृतत िै, हदव्य प्रकृतत।

लगते िैं। िरीरधाररणी मानवीय चेतना ऊपर उठकर अजन्मा िाश्वत के रूप में बदल जाती िै। कृष्ण का अवसार भगवान् ्का िरीर में रूपान्तरण उतना निीं िै, ल्जतना कक मनुष्यत्व को ऊंचा उठाकर भगवान् ्में रूपान्तरण।75

यिां ंगुरु िनैः िनैः शिष्य को उस स्तर तक पिुंचने के शलए माग वहदखाता िै, ल्जस पर वि स्वयं पिुंचा िुआ िै, मम साधम्यम्व ्(मेरे साथ समानता)। शिष्य अजुनव उस संघष वकरती िुई आत्मा का प्रतीक िै, ल्जसने अभी तक उद्धार करनेवाले सत्य को उपलदध निींककया िै। वि अन्धकार, असत्य, सीशमतता और मरणिीलता की ल्क्तयों से, जो उच्चतर संसार के माग वको रोके िुए िैं युद्ध कर रिा िै। जब उसका सम्पूण वअल्स्तत्व कक्ंकतव्वयववमूढ़ िो जाता िै जब उसे यि पता निीं ंचलता कक उधचत कत्तव्वय क्या िै, तब वि अपनेउच्चतर आत्म में, ल्जसका प्रतीक जगद्गुरु,[76] संसार-भर को उपदेि देने वाला कृष्ण िै, िरण लेता िै और उससे ज्ञान देनेकी कृपा करने की प्राथनवा करता िै। "म ैंतेरा शिष्य िंूं; मेरी चेतना को प्रकाशित कर; मुझमें जो कुछ तमोमय िै, उसे टिा दे, जो कुछ म ैंगंवा चुका िंूं, अथात्व ्कम वका एक स्पष्ट तनयम, वि मुझे ेकफर प्रदान कर।" िरीर के रथ में सवार योद्धा अजुनव िै, परन्तु सारथी कृष्ण िै और उसे िी इस याला का मागदविनव करना िै। प्रत्येक व्यल्क्त शिष्य िै, पूणतवा तक पिुंचने ेका मित्वाकांक्षी, भगवान् ्का ल्जज्ञासुः और यहद वि सचाई से श्रद्धा के साथ अपनी खोज जारी रखता िै, तो लक्ष्य भगवान् ्िी मागदविकव भगवान् ्बन जाता िै। जिां तक गीता की शिक्षाओं की प्रामाखणकता का प्रश्न िै, इस बात का मित्व बिुत कम िै कक इसका लेखक कोई ऐततिाशसक व्यल्क्त िै या मनुष्य

---

75 मेरे ववचार से ईसाइयों के पुनरुत्थान के शसद्धान्त का अथ वयिी िै। ईसा का िारीररक पुनरुत्थान मित्वपूण ववस्तु निीं िै, अवपतु हदव्य (ब्रह्म) का पुनरुत्थान मित्वपूण ववस्तु िै। मनुष्य का पुनजन्वम, जो उसकी आत्मा के अन्दर एक ऐसी घटना के रूप में िोता िै, ल्जसके फलस्वरूप उसेवास्तववकता (ब्रह्म) का गम्भीरतर ज्ञान िो जाता िै और परमात्मा तथा मनुष्य के प्रतत उसका प्ेरम बढ़ जाता िै, सच्चा पुनरुज्जीवन िै, जो मानवीय जीवन को उसके अपने हदव्य स्वरूप और लक्ष्य की चेतना तक ऊंचा उठा लेता िै। परमात्मा अववराम सृजनिीलता िै, अनवरत कम।व वि मनुष्य का पुल िै, क्योंकक मनुष्य पुनः उत्पन्न परमात्मा िी तो िै। जब सनातन और सामतयक के बीच का पदा विट जाता िै, तब मनुष्य परमात्मा के साथ-साथ और उसके संकेत पर चलने लगता िै। ऐंगेलस शसलेशियस से तुलना कील्जए:

चािे ईसा िज़ार बार
बैथैलिम में जन्म ले,
पर यहद उसने तेरे अन्दर जन्म निीं शलया
तो तेरी आत्मा अब भी भटकी िुई िै;
गलगोथा पर खडा क्रॉस
तेरी आत्मा की रक्षा कभी न करेगा;
तेरे अपने हृदय में खडा क्रॉस
िी तुझेपूण वबना सकता िै।

76 तुलना कील्जए :

अज्ञानततशमरान्धस्य ज्ञानाव्जनिलाकया। चक्षुरुन्मीशलतंयेन तस्मैश्रीगुरुवे नमः ॥

म ैंउस हदव्य गुरु को नमस्कार करता िै, जो अज्ञान के रोग से अन्धे िो गए लोगों की आंखों को ज्ञान का अंजन डालकर खोल देता िै।

के रूप में अवतररत स्वयं भगवान्;् क्योंकक आत्मा की वास्तववकताएं अब भी वैसी ही हैं, जो आज से हजारों साल पहले थींऔर जातत एवं राष्ट्रीयता के अन्तर उन पर कोई प्रभाव नहींडालते। असली वस्तु सत्य या साथकवता है, और ऐतिहासिक तथ्य उसकी मूतत वसे अधधक कुछ भी नहीं है।"[77]

6. ससांार की स्स्थतत और माया की धारणा

यहद ब्रह्म का मूल स्वरूप तनगुणव अथात्व गुणहीन और अधचन्त्य (अथात्व ्ल्जसके ववषय में कुछ सोचा भी न जा सके) हो, तो संसार एक ऐसी व्यक्त वस्तु है, ल्जसका सम्बन्ध परब्रह्म से तकवसंगत ढंग से नहींजोडा जा सकता। ब्रह्म की अपररवतनवीय शाश्वतता में सब चल और ववकसमान वस्तुए आधाररत हैं। उसके द्वारा ही उनका अल्स्तत्व है और भले ही वह ककसी वस्तु का भी कारण नहीं है।रा कुछ नहीं करता, ककसी बात का तनधारवण नहीं करता, कफर भी उसके बबना वे वस्तुएँ रह नहीं सकतीं। यह संसार तो ब्रह्म पर तनभरव है, परन्तु ब्रह्म इस संसार पर तनभरव नहीं है। यह एकपक्षीय तनभरवता और परम वास्तववकता तथा संसार के मध्य सम्बन्ध की तकवपूण व अधचन्तनीयता 'माया' शब्द से सामने आ सती है। यह संसार ब्रह्म की भांतत कोई मूल अल्स्तत्व (सत्)् नहीं और न बत अनल्स्तत्व (असत्)् ही है। इसकी पररभाषा सत् ्या असत्,् दोनों में से ककसी के श्री द्वारा नहीं की जा सकती।'[78] धाशमकव अनुभूततयों द्वारा आत्मा की परम वास्तववकता के आकल्स्मक आववभाव के कारण हम बहुत बार संसार को शुद्ध ज्ञान या शमथ्याथ वग्रिण के बजाय भ्रम (माया) समझनेलगते हैं। यह एक पररसीमन है, जो अमावपत और अमाप्य से पृथृक् वस्तुहै। परन्तु यह पररसीमन ककसशलए है? इस प्रश्न का उत्तर तब तक नहीं हदया जा सकता, जब तक हम अनुभूततमूलक स्तर पर हैं।

प्रत्येक धम वमें परम वास्तववकता की कल्पना इस रूप में की गई है कक वह हमारी काल-व्यवस्था से, ल्जसका आहद और अन्त है, ल्जसमें गतत और उतार-चढ़ाव हैं, असीम रूप से ऊपर है। ईसाई धम वमें परमात्मा को इस रूप में प्रदशितव ककया गया है कक उसमें पररवतनवीलता नहीं या अदल-बदल की छाया तक नहीं है। वह आहद से अन्त तक देखता हुआ शाश्वत वतमवान में तनवास करता है। यहद वही बात होती, तो हदव्य जीवन और

---

77 ल्स्पनोज़ा से तुलना कील्जए: "मुल्क्त प्राप्त करने के शलए हीरधारी के रूप में ईसा को जानना बबलकुल आवश्यक नहीं है; परन्तु तथाकधथत परमात्मा के उस शाश्वत पुल के सम्बन्ध में (डी ऐटनों इल्लो डेई क़शलयो), जो परमात्मा का सनातन ज्ञान है, जो सब वस्तुओंमें और मुख्य रूप से मनुष्य के रूप में और सबसे अधधक ववैष रूप में ईसा में व्यक्त हुआ है, बात ठीक इससे उल्टी है; उसके ज्ञान के बबना कोई मनुष्य परमं आनन्द की अवस्था तक नहीं पहुंच सकता; क्योंकक इसके शसवाय और कोई वस्तु उसे यह नहीं शसखा सकती कक क्या सत्य है और क्या शमथ्या, क्या अच्छा है और क्या बुरा।" इस प्रकार ल्स्पनोजा ऐतिहाशसक ईसा और आदि वईसा में भेद करता है। ईसा की हदव्यता एक ऐसा धम-वशसद्धान्त है, जो ईसाइयों को अन्तरात्मा में पनपा है। खीस्तिास्त्रीय शसद्धान्त एक ऐततिाशसक तथ्य की धमववज्ञानी व्याख्या है। इस सम्बन्ध में लोइसी का कथन है: "ईसा का पुनरुज्जीवन उसके भौततक जीवन का अल्न्तम काय,व मनुष्यों के बीच उसकी सेवा का अल्न्तम काय वनहीं था, अवपतु धमप्रवचारकों की श्रद्धा और ईसाई धम वकी आध्याल्त्मक स्थापना का पहला काय वथा।" मॉड पीटर: लोइसी (1944), पृ.् 65-66

78 सदसद्भ्याम अतनवचवनीयम् ्।

इस वववववध- रूप संसार में एक ऐसा पक्का भेद िो जाता, ल्जसके कारण इन दोनों में ककसी भी प्रकार का सल्म्मलन असम्भव िो जाता। यहद परम वास्तववकता एकाकी, तनल्ष्क्रय और अववचल िो तो काल, गतत और इततिास के शलए कोई अवकाि िी न िोगा; काल अपनी पररवतनव और अनुक्रशमकता की प्रकक्रयाओं के साथ केवल एक आभास-मात्र बन जाएगा। परन्तु परमात्मा एक सप्राण मूल तत्व िै, एक व्यापक अल्ग्न। यि प्रश्न ककसी ऐसी प्रबल सत्ता का निीं ंिै, ल्जसके साथ वववववध-रूपता का आभास जुडा िुआ िै या ककसी ऐसे सप्राण परमात्मा का, जो इस बिुववध ववश्व में काय वकर रिा िै। ब्रह्म यि भी िै और वि भी। िाश्वतता का अथ वकाल या इततिास का तनषेध निीं ंिै। यि समय का रूपान्तरण िै। काल िाश्वतता से तनकलता िै और उसी में पूणतवा को प्राप्त िोता िै। भगवद्गीता में िाश्वतता और काल में कोई ववरोधधता निीं ंिै। कृष्ण के अंकन द्वारा िाश्वत और ऐततिाशसक के मध्य एकता घोवषत की गई िै। ऐहिक गततववधध का सम्बन्ध सनातन की आन्तररकतम गम्भीरताओं के साथ िै।

आत्मा सब द्वैतों से ऊपर रिती िै; परन्तुजब उसे ववश्व के दृल्ष्टकोण से देखा जाता िै, तो वि अनुभवातीत ववषय-वस्तु के सम्मुख खडे ेअनुभवातीत कताव के रूप में बदल जाती िै। कताव और ववषय-वस्तु एक िी वास्तववकता के दो ध्रुव िैं। वे परस्पर असम्बद्ध निीं िैं। वस्तु-रूपात्मकता का मूल तत्व, मूल प्रकृतत, जो सम्पूण वअल्स्तत्व की अव्यक्त सम्भावना िै, ठीक उसी प्रकार की वस्तुिै, ल्जस प्रकार की वस्तु सृजनात्मक िदद ब्रह्म, ईश्वर िै। सनातन 'अि' अधसवनातन 'नि' के सम्मुख रिता िै, नारायण जल में ध्यानमग्न रिता िै। क्योंकक 'नि', प्रकृतत, आत्मा का एक प्रततबबम्ब-माल िै, इसशलए यि आत्मा के अधीन िै। जब परब्रह्म में तनषेधात्मकता का तत्व आ घुसता िै, तब उसकी आन्तररकता अल्स्तत्व (नाम-रूप) धारण की प्रकक्रया में प्रकट िोने ेलगती िै। मूल एकता ववश्व की सम्पूण वगततववधध से गशभतव िो उठती िै।

ववश्व की प्रकक्रया सत् ्और असत् ्के दो मूल की तत्वों पारस्पररक कक्रया िै। परमात्मा ऊपरी सीमा िै, ल्जसमें असत् ्का न्यूनतम प्रभाव िै और ल्जसका असत् ्पर पूण वतनयन्त्रण िै, और भौततक तत्व या प्रकृतत तनचली सीमा िै, ल्जस पर सत् ्का प्रभाव न्यूनतम िै। ववश्व की सारी प्रकक्रया सवोच्च परमात्मा की प्रकृतत पर कक्रया िै। प्रकृतत की कल्पना एक सकारात्मक सत्ता के रूप में की गई िै, क्योंकक इसमें प्रततरोध करने की िल्क्त िै। प्रततरोधक रूप में यि बुरी िै। केवल परमात्मा में पिुंचकर यि पूरी तरि से तछन्न और परास्त िो पाती िै। िेषे सारी सृल्ष्ट में यि कुछ कम या अधधक रूप में प्रकाि पर आवरण डालने वाली िल्क्त िै।

गीता आधधववद्यक द्वैतवाद का समथनव निीं ंकरती, क्योंकक असत् ्का मूल तत्व सत् ्पर तनभरव िै। भगवान् ्के दिनव के शलए असत् ्वास्तववकता में एक आवश्यक मित्वपूण ववस्तु िै। संसार जो कुछ िै, उसका कारण तनाव िै। काल और पररवतनव का संसार पूणतवा तक पिुंचने के शलए तनरन्तर प्रयत्निील िै। असत्,् जो सब अपूणतवाओं के शलए ल्जम्मेदार िै. संसार में एक आवश्यक तत्व िै, क्योंकक यिी वि सामग्री िै, ल्जसमें

परमात्मा के के ववचार मूत विोते िैं ।79 हदव्य रूप (पुरुष) और भौततक तत्व (प्रकृतत) एक िी आध्याल्त्मक समस्त के अंग िैं। जब सारा संसार बन्धन से मुक्त िो जाता िै, जब यि तनदोषता की ल्स्थतत तक ऊंचा उठ जाता िै, जब यि पूणतवया आलोककत िो जाता िै, तब भगवान् ्का प्रयोजन पूरा िो जाता िै और संसार कफर अपनी मूल वविुद्ध सत् ्अवस्था में पिुंच जाता िै, जो सब ववभेदों से ऊपर िै।

असत् ्क्यों िै? पतन, या 'परम सत्'् से अल्स्तत्वमान् ्(नाम-रूपमय) िोनेकी ल्स्थतत क्यों िोती िै? यि प्रश्न दूसरे दिदों में यि पूछना िै कक सत् ्और असत् ्के मध्य अववराम संघष ववाला यि संसार ककसशलए बना िै? परम ित, एक परमात्मा, संसार के पीछे भी िै, परे भी और संसार में भी िै। वि साथ िी सवोच्च सप्राण परमात्मा भी िै, जो संसार से प्ेरेम करता िै और अपनी दया द्वारा उसका उद्धार करता िै। संसार अपनेक्रशमक सोपान-तन्त्र के साथ जो कुछ िै, उस रूप में यि क्यों िै ? िम केवल इतना कि सकते िैं कक अपने-आप को इस रूप में प्रकट करना भगवान् ्का स्वभाव िै। िम संसार के िोने ेका कारण निीं बतला सकते; िम केवल इसकी प्रकृतत के ववषय में बतला सकते िैं, जो अल्स्तत्वमान् ्िोने ेकी प्रकक्रया में सत् ्और असत् ्के बीच चल रिे संघष वके रूप में िै। ववुिद्ध सत् ्संसार से ऊपर िै और ववुिद्ध असत् ्तनम्नतम ववद्यमान वस्तुसे भी नीचेिै। यहद िम उससे भी नीचेजाएं, तो िम िून्य तक पिुंच जाएंगे, जो बबलकुल परम अनल्स्तत्व िै। सच्चे अल्स्तत्वमान जगत्,् संसार, में िमें सत् ् और असत् ्के दो मूल तत्वों के बीच संघष वहदखाई पडता िै।

पारस्पररक कक्रया की पिली उपज ब्रह्माण्ड िै, ल्जसके अन्दर व्यक्त सत् ्की सम्पूणतवा तनहित रिती िै। बाद में िोनेवाले सब ववकास उसके अन्दर बीज-रूप में रिते िैं। उसके अन्दर अतीत, वतमवान और भववष्य, एक सवोच्च 'अब' (अधुना) में तनहित रिते िैं। अजुनव सारे ववश्व-रूप को एक वविाल आकृतत में देखता िै। वि ब्रह्म के रूप को अल्स्तत्व की सम्पूण वसीमाओंको तोडतेिुए, सम्पूण वआकाि और ववश्व को व्याप्त करते िुए देखता िै, ल्जसमें लोक जलप्रपातों की भांतत बि रिे िैं।

जो लोग भगवान् ्को अव्यल्क्तक (तनगुणव) और सम्बन्धिीन मानतेिैं, वे आत्म-प्रकािन की िल्क्त समेत ईश्वर की धारणा को अज्ञान (अववद्या) का पररणाम मानते िैं।80' ववचार की वि िल्क्त, जो उन रूपों को उत्पन्न करती िै जो क्षखणक िैं और इसीशलए िाश्वत वास्तववकता की तुलना में अवास्तववक िैं, इन रूपों को उत्पन्न करनेके कारण अववद्या किलाती िै। परन्तु अववद्या ककसी इस या उस व्यल्क्त का ववलक्षण गुण निीं ं ै। यि भगवान् ्की आत्म-प्रकािन की िल्क्त िी जाती िै। भगवान् ्का कथन िै कक भले िी वि वस्तुतः

---

79 प्रॉक्लस से तुलना कील्जए, जो भौततक तत्व को 'परमात्मा के शििु' के रूप में मानता िै, ल्जसे अवश्य िी आत्मा में रूपान्तररत ककया जाना िै।

80 िंकराचाय वका कथन िै कक "वे नाम और रूप, ल्जन्िें आत्मा की प्रकृतत के अज्ञान के फलस्वरूप परमेश्वर में ववद्यमान समझा जाता िै और ल्जनके ववषय में यि कि पाना सम्भव निीं ंिै कक वे भगवान् ्से शभन्न िैं या अशभन्न, शुरुतत और स्मृतत ग्रन्थों में सवनव परमेश्वर की माया, िल्क्त औ प्रकृतत किे गए िैं।" ब्रह्मसूल पर िांकर भाष्य, 2; 1, 14

अजन्मा ि◌ै, परन्तु वि अपनी ि◌ल्क्त द्वारा, आत्ममायया81, जन्म लेता ि◌ै। माया ि◌दद 'मा' धातु से बना ि◌ै, ल्जसका अथ वै - बनाना, रचना करना और मूलतः इस ि◌दद का अथ वथा - रूप उत्पन्न करने ◌ेकी क्षमता। वि सृजृनात्मक ि◌ल्क्त, ल्जसके द्वारा परमात्मा ववश्व को गढ़ता ि◌ै, योगमाया किलाती ि◌ै। इस बात का कोई संकेत निीं ◌ंि◌ै कक माया द्वारा या परमात्मा मावी, की रूप गढ़नेकी ि◌ल्क्त द्वारा उत्पन्न ककए गए रूप, घटनाएं और वस्तुएं केवल भ्रम ि◌ैं।

कभी-कभी माया को मिो का स्रोत भी बताया जाता ि◌ै। "प्रकृतत के इन तीन गुणों से मूढ़ ि◌ोकर यि संसार मुझे ◌ेनिींपिचान पाता, जो कक म ◌ैंउन तीनों गणों से ऊपर अनश्वर ि◌ूँ।"[82] माया की ि◌ल्क्त के कारण ि◌मारे अन्दर एक भ्रशमत रिती ि◌ै और दृश्य तत्व के जगत् ◌्में रिती ि◌ै। परमात्मा का वास्तववक अल्स्तत्व रित की क्रीडा और इसके गुणों द्वारा आवृतूत ि◌ो जाता ि◌ै। संसार को भ्रामक इसशलए किा जाता ि◌ै, क्योंकक परमात्मा अपने-आप को अपनी सृलूष्ट के पीछे तछपा लेता ि◌ै। संसार अपने-आप में धोखा निीं ि◌ै, अवपतु ◌ुयि धोखे का तनशमत्त ववजाता ि◌ै। वास्तववकता को जानने के शलए ि◌में सब रूपों को तछन्न-शभन्न करके बावरण के पीछे पिुंचना ि◌ोगा। यि संसार और इसके पररवतनव परमात्मा का अवधान (तछप जाना) बन जाते ि◌ैं या स्रष्टा को उसकी सृलूष्ट द्वारा धुंचला या ववरिनीय कर देते ि◌ैं। मनुष्य की प्रववृत्त अपनेमन को स्रष्टा की ओर प्ेरेररत करने के बजाय संसार के ववषयों की ओर झुकनेकी रिती ि◌ै। परमात्मा एक मिान् ◌्इशलया प्रतीत ि◌ोता ि◌ै, क्योंकक वि इस संसार को और इल्न्द्रयों के ववषयों को उत्पन्न करता ि◌ै और ि◌मारी इल्न्द्रयों को बहिमुखव कर देता ि◌ै।83 अपने-आप को धोखा देने की प्रववृत्त इल्न्द्रयों के ववषयों को प्राप्त करने ◌ेकी इच्छा में तनहित ि◌ै। यि इच्छा वस्तुतः मनुष्य को परमात्मा से दूरू ले जाती ि◌ै। संसार की चमक-दमक ि◌म पर अपना जादू ◌ूफेर देती ि◌ै और ि◌म उससे प्राप्त ि◌ोने वाले पुरस्कारों के दास बन जाते ि◌ैं। यि दुतुनया या वस्तु-रूपात्मक प्रकृतत या संसार पततत, दास और ववजातीय ि◌ै और यि कष्टों से भरा ि◌ुआ ि◌ै, क्योंकक आन्तररक सत्ता से ववजातीय बन जाना कष्ट ि◌ै। जब यि किा जाता ि◌ै कक 'मेरी इस हदव्य माया को

81 4, 61 "भगवान् ◌्नेअपनी योग की ि◌ल्क्त का प्रयोग करके लीला करने की इच्छा की।" भगवान् ◌्अवप रन्तुं मनश्चक्ने योगमायाम् ◌्उपाधश्रतः। भागवत 10, 29, । सामने रखकर प्रारम्भ निीं की गई, क्योंकक परमात्मा हदव्य गततववधध ककसी अपने प्रयोजन को तो तनत्यतृपूत ि◌ै। यि अनासल्क्त का तत्व लीला ि◌दद के प्रयोग द्वारा स्पष्ट ककया गया ि◌ै। लोकवत्तु ◌ु लीलाकैवल्यम्।◌् ब्रह्मसूल, 2, 1, 33। राधा उपतनषद् में किा गया ि◌ै कक वि एक परमात्मा संसार की ववववध गततववधधयों में सदा क्रीडा करता रिता ि◌ै। एको देवो तनत्यलीलानुरक्तः । 4.3

82 7, 13। नारद पंचरान से तुलना कील्जए: "वि एक भगवान् ◌्सदा सबमें और प्रत्येक में रिता ि◌ै। सब प्राणी उसके कम वसे ि◌ी उत्पन्न ि◌ोते ि◌ैं, परन्तु वे उसकी माया द्वारा ठगेजाते ि◌ैं।" 2, 1, 22 । मिाभारत में किा गया ि◌ै: "ि◌े नारद, जो तुम देखते ि◌ो, वि माया ि◌ै, ल्जसे मनैं उत्पन्न ककया ि◌ै। यि मत समझो कक मेरे रचे ि◌ुए संसार में जो गुण पाए जाति◌ैं, वे मुझमें ववद्यमान ि◌ैं।"

माया ह्येषा मया सृषूटा यन्मां पश्यशस नारदा।
सवभूवतगुणैयुक्वतं ◌ंनैव त्वंज्ञातुमिवशस ॥

ि–ाल्न्तपव व339, 44

83 कठोपतनषद्, 4, 1

जीतना बिुत कहठन िै' तो इसका अथ वयि िोता िै कक िम संसार और उसकी गततववधधयों को आसानी से भेदकर उनके पीछे निींपिुंच सकते ।84

यिां ंपर िम उन ववशभन्न अथों में अन्तर कर सकते िैं, ल्जनमें 'माया' अवव िदद का प्रयोग ककया गया िै, और गीता में इसका स्थान तनयत कर सकते िैं। (1) यहद परम वास्तववकता संसार की घटनाओंसे अप्रभाववत रिती िै, तो इन घटनाओं का िोना एक ऐसा रिस्य बन जाता िै, ल्जसकी व्याख्या िो िी निीं सकती। गीता का लेखक 'माया' िदद का प्रयोग इस अथ वमें निींकरता, भले िी उसके ववचार में यि अथ वककतना िी तनहित क्यों न रिा िो। एक आहदिीन और साथ िी अवास्तववक अववद्या की धारणा, जो इस सारे संसार की प्रकृतत का कारण िै, गीता के लेखक के मन में निींआई। (2) व्यल्क्तक ईश्वर के सम्बन्ध में यि बताया गया िै कक वि अपने सत् ्और असत् ्को शमलाता िै। उसके अन्दर ब्रह्म की अतनवायतवा भी िै और साथ िी अल्स्तत्वमान् ्िोनेका ववकार या पररवतनव भी िै।'[85] माया वि िल्क्त िै, जो उसे पररवतनिीील प्रकृतत को उत्पन्न करने में समथ वबनाती िै। यि ईश्वर की िल्क्त या ऊजाव या आत्मववभूतत िै; अपने-आप को अल्स्तत्वमान् ्बनानेकी िल्क्त। इस अथ वमें ईश्वर और माया परस्पराधश्रत िैं, और आहदिीन िैं।86 गीता में भगवान की इस िल्क्त को माया किा गया िै।87 (3) क्योंकक परमात्मा अपनेअल्स्तत्व के दो तत्वों, प्रकृतत और पुरुष, भौततक तत्व और चेतना द्वारा संसार को उत्पन्न कर सकता िै, इसशलए वे दोनों तत्व भी परमात्मा की (उच्चतर और तनम्नतर) माया किे जाते िैं।*[88] (4) क्रमि: माया का अथ वतनम्नतर प्रकृतत िो जाता िै, क्योंकक पुरुष को तो वि बीज बताया गया िै, ल्जसे भगवान् ् संसार की सृलूष्ट के शलए प्रकृतत के गभ वमें डालता िै। (5) क्योंकक यि व्यक्त जगत् ्वास्तववकता को मत्य वप्राखणयों की दृल्ष्ट से तछपाता िै, इसशलए इसे भी भ्रामक ढंग का बताया गया िै।89 यि संसार कोई भ्राल्न्त निीं, यद्यवप इसे परमात्मा से असम्बद्ध केवल प्रकृतत का याल्न्त्रक तनधारवण समझ लेने के कारण िम इसके दैवीय तत्व को समझने ेमें असमथ वरितेिैं। तब यि भ्राल्न्त का कारण बन जाता िै। दैवीय माया अववद्या माया बन जाती िै। परन्तु यि केवल िम मत्योंम वके शलए, जो सत्य तक निीं पिुंच सकते, अववद्या माया िै, परन्तु परमात्मा के शलए, जो सब-कुछ जानता िै और इसका तनयन्त्रण करता िै, यि ववद्या माया िै। ऐसा लग कि कक परमात्मा माया के एक वविाल आवरण में शलपटा िुआ िै।'[90] (6) क्योंकक यि संसार परमात्मा का एक काय-वमाल िै और परमात्मा इसका कारण िै और जगि कारण काय वकी अपेक्षा अधधक यि संसार, जो कक काय-वरूप िै, कारण-रूप परमात्मा की अपेक्षा कम वास्तववक, किा जाता िै। संसार की यि आपेक्षक्षक अवास्तववकता अल्स्तत्वमान् ्िोने

---

84 7, 14; साथ िी देखखए ईिोपतनषद् 16

85 9, 19

86 देखखए िाल्ण्डल्य सूत, 2, 13 और 15; श्वेताश्वतर उपतनषद्, 4, 10

87 18,61; 4,6

88 4, 16

89 7, 25 और 14

90 जो माया अववद्या को उत्पन्न निीं करती, वि साल्त्वकी माया किलाती िै। जब यि दूवूषत िो जाती िै, तब यि अज्ञान या अववद्या को जन्म देती िै। ब्रह्म जब पिले प्रकार की माया में प्रततबबल्म्बत िोता िै, तब वि ईश्वर किलाता िै और जब वि वपछले प्रकार की माया में प्रततफशलत िोता िै, तो वि जीव या व्यल्क्तक आत्मा किलाता िै। यि परवतींवेदान्त िै : देखखए पंचदिी, 1, 15-17, गीता इस दृल्ष्टकोण से पररधचत निीं ंिै।

किा प्रकक्रया की आत्मववरोधी प्रववृत्त द्वारा पुष्ट िो जाती िै। अनुभव के जगत् ्में ववरोधी वस्तुओंमें संघष वचलता रिता िै और वास्तववक (ब्रह्म) सब ववरोधों से ऊपर िै।[91]

7. व्यस्क्तक आत्मा

वास्तववकता (ब्रह्म) स्वभावतः असीम, सवोच्च, तनष्कलुष और अपनी एकता और परम आनन्द से इस प्रकार युक्त िै कक उसमें ककसी ववजातीय तत्व का प्रवेि निीं िो सकता। ववश्व की प्रकक्रया में वे द्वैत और ववरोध उत्पन्न िोते िैं, जो असीम और अववभक्त वास्तववकता को आंख से ओझल कर देते िैं। तैवत्तरीय उपतनषद के िददों में ववश्व की प्रकक्रया भौततक तत्व[92]' (अन्न), जीवन (प्राण), मन (मनस्)्, बुद्धध (ववज्ञान) और परम आनन्द (आनन्द) की पांच अवस्थाओं में से गुज़री िै। सब वस्तुओंको जीवन की सृजनात्मक दौड में भाग लेनेके कारण उन्िें एक आन्तररक प्रेरणा दी गई िै। मानव-प्राणी ववज्ञान या बुद्धध की चौथी अवस्था में िै। वि अपने कमों का स्वामी निीं िै। उसे उस सावभवौम वास्तववकता का ज्ञान िै, जो इस सारी योजना के पीछे काय वकर रिी िै। भौततक तत्व, जीवन और मन को जानता प्रतीत िोता िै। उसने एक क सीमा तक भौततक जगत्,् प्राखण जगत् ् और यिां तक कक मन के अस कक्रया-कलापों पर अधधकार कर शलया िै, परन्तु अभी तक वि पूणतवया प्रबु चेतना निीं ंबन सका। ल्जस प्रकार भौततक तत्व के बाद जीवन और जीवन के बाद मन और मन के बाद बुद्धध का स्थान आता िै, उसी प्रकार बुद्धधमान मनुष्य एक उच्चतर और हदव्य जीवन के रूप में ववकशसत िोगा। तनरन्तर अधधकाधधक आत्मवृद्धध प्रकृतत की तीव्र प्रेरणा रिी िै। संसार के शलए परमात्मा का ध्येय या मनुष्य के शलए ब्रह्माण्डीय भववतव्यता यि िै कक इसी मत्य विरीर द्वारा अमर मित्त्वाकांक्षा को प्राप्त ककया जाए; इस भौततक रीर और बौद्धधक चेतना में और इसी के द्वारा हदव्य जीवन को उपलदध ककया जाए।

ब्रह्म मनुष्य के अन्ततमव में तनवास करता िै और उसे ववनष्ट निीं ककया जा सकता। यि आन्तररक ज्योतत िै, एक तछपा िुआ साक्षी, जो सदा बना रिता िै और जो जन्म-जन्मान्तर में अनश्वर िै। उसे मृतूयु, जरा या दोष छू निींसकते। यि जीव का, जो आल्त्मक व्यल्ष्ट िै, मूल तत्व िै। जीव पररवततततव िोता िै और जन्म-जन्मान्तर में उन्नतत करता जाता िै और जब आत्मा का ब्रह्म के साथ पूण वएकत्व स्थावपत िो जाता िै, तब वि उस आल्त्मक अवस्था में पिुंच जाता िै, जो उसकी भववतव्यता िै; और जब तक वि दिा निीं आती, तब तक वि जन्म और मरण के फेर में पडा रिता िै।

प्रत्येक प्राणी में अल्स्तत्व के सब रूप पाए जाते िैं, क्योंकक मानवीय रूप के सुतनधारवरत लक्षणों के नीचे े भौततकता, संगठन और पिुत्व की रूपरेखाएं ववद्यमान िैं। भौततक तत्व, प्राण और मन, जो इस संसार को भरे िुए िैं, िमारे अन्दर भी ववद्यमान िैं। जो िल्क्तयां बाह्य जगत् ्में काय वकर रिी िैं, उनका अंि िममें भी िै। मिारी बौद्धधक प्रकृतत आत्मचेतना को उत्पन्न करती िै और वि आत्मचेतना मानवीय व्यल्ष्ट को प्रकृतत के

91 2,45;7,28;9,33

92 ाल्दिदक अथ वै भोजन।

साथ उसकी मूल एकता से ऊपर उठा देती िै। समिू के साथ शमले रिनेकी सिज प्रववृत्तज भावना से उसे जो सुरक्षा अनुभव िोती िै, वि जाती रिती िै और वि सुरक्षा की भावना कफर एक ऊंचेस्तर पर पिुंचकर अपने व्यल्क्तत्व को बबना गंवाए दुबुारा प्राप्त की जानी िै। अपनेआत्म के संघटन द्वारा संसार के साथ उसकी एकता एक सिज प्ेरेम और तनःस्वाथ वकाय वद्वारा उपलदध की जानी िै। प्रारल्म्भक दृश्य में अजनव प्रकतत के संसार और समाज के सम्मुख खडा िै और वि अपने-आप को बबलकुल अकेला अनुभव करता िै। सामाल्जक प्रमापों के सम्मुख झुककर आन्तररक सुरक्षा प्राप्त करना निीं ंइिता। जब तक वि अपने-आप को एक क्षववत्तय के रूप में देखता िै, ल्जसका काम सडना िै, जब तक वि अपनी पदल्स्थतत और उसके कतव्वयों से जकडा िुआ िै तब तक उसे अपनेवैयल्क्तक कम वकी पूरी सम्भावनाओं का पता निींचलता, इनमें से अधधकांलोग सामाल्जक जगत् ्में अपनेववशिष्ट स्थान को प्राप्त करके अपने जीवन को एक अथ वप्रदान करते िैं और एक सुरक्षा की अनुभूतत, एक अलीयता की भावना प्राप्त करते िैं। साधारणतया सीमाओंके अन्दर रितेिए िम अपनेजीवन की अशभव्यल्क्त के शलए अवसर पा लेते िैं और सामाल्जक हदनचयाव बन्धन अनुभव निीं ंिोती। व्यल्क्त अभी तक उभर निीं ंपाया िै। वि

ै

सामाल्जक माध्यम से शभन्न रूप में अपनेववषय में सोच भी निीं ंपाता। अजुनव सामाल्जक प्राधधकार के सम्मुख पूणतवया ववनत िोकर अपनी असिायता और दुलुश्चन्ता की अनुभूतत पर ववजय पा सकता था, परन्तु वि उसके ववकास को ग वऐवना िोता। ककसी भी बाह्य प्राधधकार के सम्मुख झुककर प्राप्त की गई सन्तोष जो और सुरक्षा की भावना आत्मा की अखण्डता के मोल पर खरीदी जाती िै। आधुतनक ववचारधाराओं, जैसे कक एकतन्त्रवाद, का कथन िै कक व्यल्क्त की रक्षा उसको समाज में लय करके िी की जा सकी िै। वे यि भूल जाते िैं कक समाज का अल्स्तत्व केवल मानवीय व्यल्क्तत्व का पूण वववकास करनेके शलए िै। अजुनव अपने-आप को सामाल्जक सन्दभ वसे अलग कर लेता िै; अकेला खडा िोता िै और संसार के संकटपूण वऔर असिाय बना देनेवाले पिलुओंका सामना करता िै। अकेलेपन और दुलुश्चन्ताओंपर ववजय पाने के शलए झुक जाना मानवोधचत रंतत निीं ंिै। अपनी आन्तररक आध्याल्त्मक प्रकृतत का ववकास करके िमें संसार के साथ एक नये प्रकार की आत्मीयता की अनुभूतत िोती िै। िम उस स्वतन्त्रता एक ऊपर उठ जाते िैं, जिां आत्मा की अखण्डता पर आंच निीं आती। तब िम सकक्रय सृजनील व्यल्क्तयों के रूप में अपने-आप को पिचान लेते िैं और तब िम बाि प्राधधकार के अनुिासन के अनुसार जीवन निीं ंबबताते, अवपतु स्वतन्त्र सत्यतनष्ठा के आन्तररक तनयम के अनुसार जीवन बबतातेिैं।

व्यल्क्तक आत्मा ईश्वर का एक अंिै; भगवान् ्का एक काल्पतनक निीं, अवपतु ुवास्तववक रूप, परमात्मा का एक सीशमत व्यक्त रूप। आत्मा, जो कक परमेश्वर से तनकली िै, भगवान् ्से तनकास के रूप में उतनी निीं ंिै, ल्जतनी कक उसके अंिके रूप में। वि अपना आदि वउसी श्ेरेष्ठ मूल तत्व से प्राप्त करती िै, जो एक वपता के रूप में िै, ल्जसने उसे अल्स्तत्व प्रदान ककया िै। आत्मा का मित्वपूण वअल्स्तत्व हदव्य बुद्धध से उत्पन्न िोता िै और जीवन में उसकी अशभव्यल्क्त उस भगवान् ्के दिनव द्वारा िोती िै, जो भगवान् ्उसका वपता और उसका सदा ववद्यमान साथी िै। इसकी ववशिष्टता उस हदव्य आदि वऔर उन इल्न्द्रयों तथा मन के उस पूवापवर-सम्बन्ध द्वारा तनधारवरत िोती िै, ल्जन्िें यि अपनेपास खींच लेती िै। सावभवौम एक सीशमत मनोमय-प्राणमय-अन्नमय

कोष में साकार िुआ िै।93 कोई भी व्यल्क्त ठीक अपने साथी जैसा निीीं। कोई भी जीवन ककसी दूसूरे जीवन की पुनरावृवृत्त निीीं, किफर भी सब व्यल्क्त ठीक एक िी नमूने पर बने िैं। जीव का सार, मानव-व्यल्क्तत्व को अन्य सबसे पृथृक् करने ेवाली वविेषेता, एक ख़ास सृजृनिील एकता िै, एक आन्तररक सोद्देश्यता, एक योजना, ल्जसने ेअपने-आप को क्रमिः एक सावयव एकता के रूप में साकार ककया िै। जैसा िमारा उद्देश्य िोता िै, वैसा िमारा जीवन िोता िै। व्यल्क्त जो भी रूप धारण करता िै, वि अवश्य िी अधधलंधधत िो जाता िै, क्योंकक वि सदा अपने-आप से ऊपर उठनेका यत्न करता िै; और यि प्रकक्रया तब तक चलती रिेगी, जब तक कक अल्स्तत्वमानता अपनेउद्देश्य सत् ्तक न पिुंच जाए। जीव परमात्मा के अल्स्तत्व में िोने ेवाली गततयाीं, जो व्यल्क्त-रूप धारण कर चुकी िैं। जब जीव अनात्म और उसके रूपों के साथ एक शमथ्या एकात्मकता में फंस जाता िै, तब वि बन्धन में पड जाता िै; पर जब उधचत ज्ञान के ववकास द्वारा वि आत्म और अनात्म की सच्ची प्रकृतत को हृदयंगम कर लेता िै और अनात्म द्वारा उत्पन्न ककए गए उपकरणों को आत्म द्वारा पूणतवया प्रकाशित िोने देता िै, तब वि स्वतन्त्र िो जाता िै। यि प्राल्प्त बुद्धध या ववज्ञान के घोवषत काय वकरते रिनेद्वारा िी सम्भव िै।

मनुष्य के सम्मुख जो समस्या िै, वि िै - उसके व्यल्क्तत्व के संघटन की, एक ऐसे हदव्य अल्स्तत्व के ववकास की, ल्जसमें कक आल्त्मक मूल तत्व आत्मा जोर िरीर की सब िल्क्तयों का स्वामी िो। यि संघहटत जीवन आत्मा द्वारा स्था आओैरत िै। िरीर और आत्मा के मध्य अन्तर, जो मनुष्य को प्रकृतत के जीवन से बाई रखता ै, अल्न्तम निीं िै। वि अन्तर उस आमूलवादी अथ वमें ववद्यमान निीं िै ल्जसमें कक डेसे्काटीज ने उसे बताया िै। आत्मा का जीवन िरीर के जीवन में ठीक उसी प्रकार रमा रिता िै, जैसे िारीररक जीवन का प्रभाव आत्मा पर रिता िै। मनुष्य में आत्मा और िरीर की एक सप्राण एकता िै। वास्तववक द्वैत आत्मा और प्रकृतत के बीच िै। स्वतन्त्रता और परविता के बीच संघहटत व्यल्क्तत्व में, िम देखते िैं कक प्रकृतत पर आत्मा की, परविता पर स्वतन्त्रता की ववजय िोती िैं। गीता, जो इन दोनों को भगवान् ्के दो पिलुओंके रूप में देखती िै, बताती िै कक िम प्रकृतत को आल्त्मक बना सकते िैं और उसमें एक अन्य गुण का आधान कर सकतेिैं। िमें प्रकृतत को कुचलने या उसका ववनाि करने ेकी आवश्यकता निीं िै।

स्वाधीनता या तनयतततवाद की समस्या का अथ वकेवल विीं तक कुछ िै, जिांतक उसका सम्बन्ध मानव-व्यल्क्तयों से िै। यि समस्या उस परब्रह्म पर लागू निीं िोती, जो सब ववरोधों से ऊपर िै; और न यि वनस्पतततयों और पिुओं की उन जाततयों पर िी लागू िोती िै, जो मनुष्य से नीचे िैं। यहद मनुष्य केवल सिजवृवृत्त से चलने वाला सीधा-सादा प्राणी िो, यहद उसकी इच्छाएं और उसके तनणयव केवल आनुवंशिकता और पररवेि की िल्क्तयों के िी पररणाम िों, तब नैततक तनणयव बबलकुल असंगत िैं। िम शसंि को उसकी भयंकरता के कारण बुरा निीं किते और न मेमने की, उसकी ववनम्रता के शलए, प्रिंसा िी करते िैं। मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त िै।'[94] जीवन के सम्पूण वदिनव का वणनव करने के बाद गुरु अजुनव से किता िै कक उसे जैसा अच्छा जान पडे,े वैसा वि करे।95 गीता

---

93 15,71आत्मा के इसहदव्यततवकोकई नाम हदए गए िैं–िीष,व भूशम, अन्ध गन,व धचनगारी, अल्न, आन्तररक ज्योतत ।

94 स्वतन्त्रः कताव । - पाखणतन

95 18,63

के सारे उपदिे में मनुष्य से यि अपेक्षा की गई िै कक वि अच्छाई को चुने और सचेत प्रयत्न द्वारा उसे प्राप्त करे। परन्तु इस चुनाव की स्वतन्त्रता में अनेक बाधाएं भी िैं।

मनुष्य एक जहटल बिुआयामी (मल्टी-डाइमेंनिल) प्राणी िै, ल्जसके अन्दर भौततक तत्व, जीवन, चेतना, बुद्धध और हदव्य ज्योतत के ववशभन्न तत्व ववद्यमान िैं। जब वि उच्चतर स्तर पर काय वकरता िै, तब वि स्वतन्त्र िोता िै और वि अन्य तत्वों का उपयोग अपनेप्रयोजन की पूतत वके शलए करता िै। परन्तु जब वि वस्तु-रूपात्मक प्रकृतत के स्तर पर िोता िै, जब वि अनात्म से अपनेभेद को पिचान निींपाता, तब वि प्रकृतत के यन्त्रजात का दास बन जाता िै। परन्तु जब वि शमथ्या रूप से अपने-आप को वस्तु-रूपात्मक ववश्व के साथ एक समझ रिा िोता िै और यि अनुभव कर रिा िोता िै कक वि प्रकृतत की आवश्यकताओं के अधीन िै, उस समय भी वि एकदम िताि निीं ंिोता, क्योंकक अल्स्तत्व के सब स्तरों पर एक िी आत्मा काम कर रिी िोती िै। भौततक तत्व भी भगवान् ्का िी एक प्रकट रूप िै। प्रकृतत के तनम्नतम रूपों में भी सिजता और सृजनिीलता का एक ऐसा तत्व ववद्यमान िै, ल्जसकी याल्न्त्रक िल्क्तयों के रूप में व्याख्या निीं की जा सकती। िमारे अल्स्तत्व के प्रत्येक स्तर की एक अपनी चेतना िै, उसके अपने ऊपरी ववचार िैं, अनुभूतत, ववचार और कम वके उसके अपनेढंग िैं, जो आदत से बने िुए िैं। जीव को अपनी अस्पष्ट और सीशमत चेतना को बनाए रखनेका िठ निीं करना चाहिए, क्योंकक वि भी इसकी वास्तववक प्रकृतत का ववकृत रूप िै। जब िम इल्न्द्रयों का दमन कर देते िैं और उन्िेंअपने वि में रखते िैं, तब आत्मा की शिखा उज्ज्वल और तनमलव रूप से जलनेलगती िै, 'जैसे वायुिीन स्थान में रखा दीपक जल रिा िो।' चेतना का प्रकाि अपनेस्वाभाववक रूप में रिता िै और अनुभवगम्य आत्म, ल्जसमें कक अनुभव के उतार-चढ़ाव चलते रिते िैं, बुद्धध द्वारा तनयल्न्त्रत रिता िै। इस बुद्धध में चेतना का प्रकाि प्रततबबल्म्बत िोता िै। तब िम प्रकृतत के इस नाटक से ऊपर उठ जाते िैं और उस वास्तववक आत्मा का दिनव करते िैं, ल्जससे सृजनात्मक िल्क्तयां तनकली िैं; िमारा सम्बन्ध उससे निीं ंरिता, ल्जसे चलाया-कफराया जाता िैऔर तब िम प्रकृतत के िाथों में असिाय उपकरण निीं ंरिते। तब िम उच्चतर जगत् ्के स्वतन्त्र सिभागी बन जाते िैं, जो तनस्तर जगत् ्में भाग ले रिे िैं। प्रकृतत तनयततवाद की व्यवस्था िै, परन्तु एक रुद्ध (बन्द) व्यवस्था निीं ंिै। आत्मा की िल्क्तयां उसे प्रभाववत कर सकती िैं और उसकी गतत की हदिा को मोड सकती िैं। आत्मा का प्रत्येक काय वसजनात्मक काय विै, जब कक अनात्म के सब काय ववस्तुतः तनल्ष्क्रय िैं। िम मूल वास्तववकता के सम्मुख, अल्स्तत्व की गम्भीरताओं के सम्मुख, अपने आन्तररक जीवन में िी आते िैं। कम वका तनयम अनात्म के क्षेत्न में पूरी तरि लागू िोता िै, जिां प्राखणिास्त्रीय और सामाल्जक आनुवंशिकता दृढ़ता से जमी िुई िै। परस्तु कताव में स्वाधीनता की सम्भावना िै; प्रकृतत के तनयततवाद पर, संसार की अतनवायतवा पर ववजय पाने की सम्भावना िै। कताव मनुष्य को वस्तु-रुपात्मक मरुष्य के ऊपर ववजय प्राप्त करनी चाहिए। वस्तु बिार से भाग्य-तनयत िोनेद्योतक िै: कताव का अथ वि - स्वतन्त्रता, अतनधारवरतता। जीव अपनी आत्मसीशमतता में, अपनी मनोवैज्ञातनक और सामाल्जक स्वतःचाशलतता में सच्चेकताव का एक ववकृत रूप िै। कम वके तनयम पर आत्मा की स्वाधीनता की पुल्ष्ट द्वारा ववजय प्राप्त की जा सकती िै। गीता में कई स्थानों पर[96] यि बात स्पष्ट रूप से किी

96 देखखए 7,5

गई िै कक आधधदैववक और आधधभौततक के बीच कोई आमूलतः द्वैत निीं िै। ववश्व की वे िल्क्तयां, ल्जनका मनुष्य पर प्रभाव पडता िै, तनम्नतर प्रकृतत की प्रततततनधध िैं। परन्तुउसकी आत्मा प्रकृतत के घेरे को तोड सकती ैं और ब्रह्म के साथ अपनेसम्बन्ध को पिचान सकती िै। िमारा बन्धन ककसी ववजातीय तत्व पर आधश्रत रिने में िै। जब िम उससे ऊपर उठ जाते िैं, तब िम अपनी प्रकृतत को आध्याल्त्मक के अवतार के शलए माध्यम बना सकतेिैं। संघषों और कष्टों में से गुजरकर मनुष्य अपनी अच्छे और बुरे में से चुनाव कर सकनेकी स्वतन्त्रता से ऊपर उठकर उस उच्चतर स्वतन्त्रता तक पिुंच सकता िै, जो तनरन्तर वरण की िुई अच्छाई में तनवास करती िै। मुल्क्त आन्तररक सत्ता कात्मकता, की ओर वापस लौट जाना िै। बन्धन वस्तु-रूपात्मक जगत् ्का, आवश्यकता का, पराधश्रतता का दास िोना िै।

न तो प्रकृतत और न समाज िी िमारे आन्तररक अल्स्तत्व पर िमारी अनुमतत के बबना आक्रमण कर सकता िै। मानव-प्राखणयों के सम्बन्ध में तो परमात्मा भी एक ववलक्षण सुकुमारता के साथ काय वकरता िै। वि मनाकर िमारी स्वीकृतत प्राप्त करता िै, परन्तु ्कभी िमें वववि निीं करता। मानवीय व्यल्क्तयों की अपनी-अपनी अलग पृथृक् सत्ताएं िैं, जो उनके ववकास में परमात्मा के िस्तक्षेप को सीशमत रखती िैं। संसार एक याल्न्त्रक ढंग से ककसी पिले से व्यवल्स्थत योजना को पूरा निीं कर रिा। सृल्ष्ट का उद्देश्य ऐसे आत्मों को उत्पन्न करना िै, जो स्वेच्छा से परमात्मा की इच्छा को पूरा कर सकें। िमसे अपने मनोवेगों को तनयल्न्त्रत करने के शलए, अपने धचत्त-ववक्षेप और पररभ्राल्न्तयों को िटा देनेके शलए, प्रकृतत की धारा से ऊपर उठनेके शलए और बुद्धध के द्वारा अपनेआचरण को तनयशमत करने ्के शलए किा जाता िै, क्योंकक अन्यथा िम उस लालसा के शिकार बन जाएंगे, 'जो लालसा कक पृथ्वी पर मनुष्य की ितु िै।"[97] गीता में व्यल्क्त की भले या बुरे का चुनाव कर सकनेकी स्वाधीनता पर और उस ढंग पर, ल्जससे कक वि इस स्वतन्त्रता का प्रयोग करता िै, जोर हदया गया िै। मनुष्य के संघषों को, उसकी ववफलता और आत्म-अशभयोजन (दोषारोपण) की भावना को मत्य वमन की बुहट किकर या द्वन्द्वात्मक प्रकक्रया का दौर-माल किकर निीं ्टाल देना चाहिए। ऐसा करना जीवन की नैततक आवश्यकता को अस्वीकार करना िोगा। जब अजुनव सनातन (भगवान्) ् की उपल्स्थतत में अपनी आतंक और भय की भावना को प्रकट करता िै, जब वि क्षमा के शलए प्राथनवा करता िै, तो वि कोई अशभनय निीं ्कर रिा, अवपतु एक संकट की दिा में से गुज़र रिा िै।

प्रकृतत तनरपेक्ष रूप से सब बातों का तनधारवण निीं ्कर देती। कम वएक दिा िै, भववतव्यता निीं। यि ककसी भी काम के पूरा िोने के शलए आवश्यक पांच घटक तत्त्वों में से एक िै। ये पांच घटक तत्व िै - अधधष्ठान अथात्व ्वि आधार या केन्द्र, ल्जस पर िम काय वकरते िैं; कताव अथात्व ्करनेवाला; करण अथात्व ्प्रकृतत के साधक उपकरण; चेष्टा अथात्व ्प्रयत्न और दैव अथात्व ्भाग्य ।98 इनमें से अल्न्तम मानवीय िल्क्त से शभन्न िल्क्त या ल्क्तयां िैं, ववश्व का वि मूल तत्व, जो पीछे खडा रिकर काय वका संधिन करता रिता िै और कम वऔर कमफवल के रूप में उसका फल देता रिता िै। िमें इन दो बातों में भेद करना चाहिए। एक तो वि अंि िै, जो प्रकृतत की

[97] 3, 37; 6,5-6
[98] 18, 14

व्यवस्था में अतनवाय विै, जि रोकथाम का कोई फल निीं ंिोता, और दूसूरा वि अंिै, ल्जसमें प्रकृतत को तनयल्न्तत ककया घरा सकता िै और उसे अपनेप्रयोजन के अनुकूल ढाला जा सकता िै। िमारे जीवन में देसी कई बातें िैं, जो ऐसी िल्क्तयों द्वारा तनधारवरत कर दी गई िैं, ल्जन पर िमारा कोई बस निींिै। िम इस बात का चुनाव निीं ंकर सकते कक िम कैसे या कब या किां या जीवन की ककन दिाओं में जन्म लें। पुनजन्वम के शसद्धान्त के अनुसार, इन बातों का चुनाव भी स्वयंमिारे द्वारा िी ककया जाता िै। िमारे पूवजवन्म के कमों द्वारा िी िमारे पूवजवों, िमारी आनुवंशिकता और पररविे का तनधारवण िोता िै। परन्तु जब िम इस जीवन के दृल्ष्टकोण से देखते िैं, तो िम कि सकतेिैं कक िमारी राल्ष्रकता, , जातत, माता-वपता या सामाल्जक िैशसयत के सम्बन्ध में िमसे कोई परामि विनिींककया गया था। परन्तु इन मयादवाओं के िोते िुए भी िमें चुनाव को स्वतन्त्रता िै। जीवन ति़ा के एक खेल की तरि िै। िमने खेल का आववष्कार निीं ंककया और न ति़ा के पत्तों के नमूने िी िमने बनाए िैं। िमने इस खेल के तनयम भी खुद निींबनाए और न िम ति़ा के पत्तों के बंटवारे पर िी तनयन्त्रण रख सकतेिैं। पत्ते िमें बांट हदए जाते िैं, चािे वे अच्छे िों या बुरे। इस सीमा तक तनयततवाद का िासन िै। परन्तु िम खेल को बहढ़या ढंग से या खराब ढंग से खेल सकते िैं। िो सकता िै कक एक कुिल खखलाडी के पास बिुत खराब पत्ते आए िों और कफर भी वि खेल में जीत जाए। यि भी सम्भव िै कक एक खराब खखलाडी के पास अच्छे पत्ते आए िों और कफर भी वि खेल का नाि करके रख दे। िमारा जीवन परविता और स्वतन्त्रता, दैवयोग और चुनाव का शमश्रण िै। अपने चुनाव का समुधचत रूप से प्रयोग करते िुए िम धीरे-धीरे सब तत्वों पर तनयन्त्रण कर सकतेिैं और प्रकृतत के तनयततवाद को बबलकुल समाप्त कर सकतेिैं। जिांभौततक तत्व की गततयां, वनस्पततयों की वृद्धधध और पिुओं के काय वकिीं अधधक पूणतवया तनयल्न्त्रत रितेिैं, विांदूसूरी ओर मनुष्य में समझ िै, जो उसे संसार के काय वमें वववेकपूवकव सियोग करने में समथ वबनाती िै। वि ककन्िींभी कायों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता िै; उनके शलए अपनी सिमतत दे सकता िै या सिमत िोने से इनकार कर सकता िै। यहद वि अपने बुद्धधमत्तापूण व संकल्प का प्रयोग निीं ंकरता, तो वि अपनी मनुष्यता के प्रततकूल आचरण कर रिा िै। यहद वि अपने मनोवेगों और वासनाओं के अनुसार अन्धा िोकर काय वकरता जाता िै, तो वि मनुष्य की अपेक्षा पिु ुकी भांतत अधधक आचरण कर रिा िोता िै। मनुष्य िोने ेके कारण वि अपने कायों को उधचत शसद्ध करता िै।

िमारे कुछ काय वकेवल देखने में िी िमारे िोते िैं। उनमें स्वत:प्रववृत्त की भावना केवल हदखावटी िोती िै। कई बार िम उन प्रेरणाओं के अनुसार काय वकरते िोते िैं, जो सम्मोिन की दिा में िमें दी जाती िैं। भले िी िम यि समझें कक िम उन कायों को सोच-समझकर, अनुभव करते िुए और अपनी इच्छा से कर रिे िैं, परन्तु सम्भव िै, िम उस दिा में भी उन प्रेरणाओं को िी अशभव्यक्त कर रिे िों, जो िमें सम्मोिन की दिा में दी गई थीं। जो बात सम्मोिन की ल्स्थतत के ववषय में सत्य िै, विी िमारे उन अनेक कायों के ववषय में भी सत्य िै, जो देखने में भले िी स्वत:प्रवृत्त जान पडते िों, परन्तु वस्तुत: वैसे निीं िोते। िम बबलकुल नई सम्मततयों को दोिरा देते िैं और यि समझतेिैं कक वे िमारे अपनेधचन्तन का पररणाम िैं। स्वत:प्रवृत्त कम वकोई ऐसी बाध्यतामूलक गततववधध निीं ंिै, ल्जसकी ओर व्यल्क्त को उसके अपनेएकाकीपन या असिायता द्वारा धकेल हदया गया िो। यि तो सम्पूण व आत्म का स्वतन्त्र कम विै। व्यल्क्त को स्वत:प्रवृत्त या सृजनात्मक गततववधध को सम्भव बनाने के शलए अपने प्रतत पारदिकव बन जाना चाहिए और उसके अन्दर ववद्यमान ववशभन्न तत्वों का एक आधारभूत समेकन िो

जाना चाहिए। यि व्यल्क्त का कत्तव्वय िै कक वि अपनेरजस् ्और तमस् ्पर अपनी सत्त्व प्रकृतत द्वारा, जो वस्तुओं को सच्चाई और कम वके उधचत ववधान की खोज में रिती िै, तनयन्त्रण करे। जब िम अपनी सत्त्वप्रकृतत के प्रभाव में रिकर कम वकर रिे िोतेिैं, तब भी िम पूणतवया स्वतन्त्र निीं िोते। सत्त्व-गुण भी िमें उतना िी बांधता िै, ल्जतना कक रजस् ्और तमस्।् केवल इतना अन्तर िै कक तब िमारी सत्य और पुण्य की कामनाएं अपेक्षाकृत उच्चतर िोती िैं। 'अिं' की भावना तब भी काय वकर रिी िोती िै। िमें अपने'अिं' से ऊपर उठना िोगा और बढ़ते िुए उस सवोच्च आत्मा तक पिुंचना िोगा, ल्जसकी कक अिं भी एक अशभव्यल्क्त िै। जब िम अपनी व्यल्क्तगत सत्ता को भगवान् ्के साथ एक कर देते िैं, तब िम शलगुणात्मक प्रकृतत से ऊपर उठ जाते िैं। िम तनगुणातीत 100

99िी जाते िैं और संसार के बन्धन से मुक्त िो जाते िैं।

8. योगशास्त्र

भारतीय दितवनक ववचार की प्रत्येक प्रणाली िमारे सम्मुख सवोच्च आदि वतक पिुँचने ेकी एक व्याविाररक पद्धतत प्रस्तुत करती िै। भले िी िम प्रारम्भ ववचार से करते िैं परन्तु िमारा उद्देश्य ववचार से परे तनश्चायक अनुभव तक पिुंचना िोता िै। दितवनक प्रणाशलयों केवल आधधववद्यक शसद्धान्त िी निीं ंबतलाती, अवपतु िैं। माशलक गतत-ववज्ञान भी शसखाती िैं। यि किा जा सकता िै कक यहद मनुष्य बिा का िी एक अंि िै, तो उसे उद्धार की उतनी आवश्यकता निीं ंिै, ल्जतनी कक अपनी वास्तववक प्रकृतत को पिचानने की। यहद उसे यि अनुभव िोता िै कक वि कापी िै, जो परमात्मा से बबछुड गया िै, तो उसे कोई ऐसी ववधध बताई जाने की आवश्यकता िै, ल्जसके द्वारा उसे यि बात याद आ जाए कक वि वस्तुतः परमात्मा का एक अंि िै और इसके प्रततकूल िोने ेवाली कोई भी अनुभूतत केवल भ्राल्न्त िै। यि ज्ञान बौद्धधक निीं ंिै, अवपतु ुमनुष्य का अवयवभूत िै। इसशलए मनुष्य की सम्पूण वप्रकृतत का सुधार करने ेकी आवश्यकता िै। भगवद्गीता िमारे सम्मुख केवल एक अधधववद्या (ब्रह्मववद्या) िी प्रस्तुत निीं करती, अवपतु ुएक प्रकार का अनुिासन (योगिास्त्र) भी प्रस्तुत करती िै। योग िदद 'युज्'् धातु से बना िै, ल्जसका अथ वि बांधना या जोडना। योग का अथ वि - अपनी आल्त्मक िल्क्तयों को एक जगि बांधना, उन्िें सन्तुशलत करना और उन्िें बढ़ाना ।'[100] अपनेव्यल्क्तत्व के तीव्रतम केन्द्रीकरण

कोरइकाइयों अपनी ऊर्जाओं और सन्नद्ध करके िम संकीण व'अिं' से अनुभवातीत व्यल्क्तत्व तक पिुंचने ेका माग वबनातेिैं। आत्मा अपने-आप को अपने कारागार से बािर खींच लाती िै। कारागार से तनकलकर वि बािर खडी िोती िै और अपनेआन्तरतमकतम अल्स्तत्व तक पिुंच जाती िै।

गीता िमारे सम्मुख एक सवागां-सम्पूण वयोगिास्त्र प्रस्तुत करती िै, जो वविाल, लचकीला और अनेक पिलुओंवाला िै; ल्जसमें आत्मा के ववकास और ब्रह्म तक पिुंचनेके ववववध दौर सल्म्मशलत िैं। ववशभन्न प्रकार
99

14,21

100 इसका प्रयोग ववशभन्न अथों में िोता िै(क) युज्यते ेएतद् इतत योगः, (ख) युज्यते ेअनेन इतत योगः, (ग) युज्यते ेतल्स्मन् ् इतत योगः ।

के योग उस आन्तररक अनुिासन के ववशिष्ट प्रयोग िैं, जो आत्मा की स्वतन्त्रता और एकता के एक नये ज्ञान और मनुष्य-जातत के एक नये अथ वतक ले जाता िै। इस अनुिासन से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु योग किलाती िै,

जैसे ज्ञानयोग अथात्व ्ज्ञान का माग;व भल्क्तयोग अथात्व ्भल्क्त का माग,व या कमयवोग अथात्व ्कम वका माग व

मानवीय स्तर पर पूणतवा प्राप्त करना एक ऐसा काय वि,ै जो सचेत प्रयत्न द्वारा पूरा ककया जाना िै। मिारे अन्दर काय वकर रिी परमात्मा की मूतत विममें एक अपयाप्वतता की भावना उत्पन्न करती िै। मनुष्य को एक यि भावना सतानेलगती िै कक सारी मानवीय प्रसन्नता हदखावटी, क्षखणक और अतनल्श्चत िै। जो लोग केवल जीवन की ऊपरी सति पर िी जीते िैं, िो सकता िै. उन्िें यि बेचैनी, यि आत्मा की तडप अनुभव न िोती िो और उनमें यि खोजनेकी इच्छा न जागती िो कक उनका सच्चा हित ककस बात में िै। वे मानवीय पिु ु(पुरुषपिु) िैं; और पिुओं की भांतत वे पैदा िोते िैं, बडे िोतेिैं, मैथुन करते िैं और अपनी सन्तान छोड जाते िैं और खुद मर जाते िैं। परन्तु जो लोग मनुष्य के रूप में अपनेगौरव को अनुभव करते िैं, वे इस बेसुरेपन को तीव्रता से अनुभव करते िैं और समस्वरता और िाल्न्त के शसद्धान्त की खोज करते िैं।

अजुनव उस प्रकार की मानवीय आत्मा का प्रततततनधध िै, जो पूणतवा और िाल्न्त तक पिुंचने ेकी खोज कर रिी िै। परन्तु प्रारल्म्भक अनुभाग में िम देखते िैं कक उसका मन आच्छन्न िै; उसके ववश्वास अतनल्श्चत िैं और उसकी सम्पूण वचेतना पररभ्राल्न्तग्रस्त िै। जीवन की दुलुश्चन्ताएं तीव्र चुभन के साथ उसे स्पि वकरती िैं। प्रत्येक व्यल्क्त के जीवन में कभी-न-कभी ऐसा समय आता िै, (क्योंकक प्रकृतत को ककसी बात को जल्दी निीं िै) जबकक वि जो कुछ भी अपने शलए कर सकता िै, वि सब ववफल रिता िै; जब वि घोर अन्धकार के गत वमें डूबता जाता िै; एक ऐसा समय, जबकक वि प्रकाि की झलक के शलए, ब्रह्म के एक संकेत के शलए अपना सवस्वव दे देनेको तैयार िो जाए। जब वि सन्देिों, तनषेधों, जीवन के ववद्वेष और घनी तनराि ा द्वारा आक्रान्त िोता िै, तब वि उनसे केवल तभी मुल्क्त पा सकता िै, जब परमात्मा उस पर अपना िाथ रख दे। यहद उस हदव्य सत्य तक, जिां ंपिुंचने की सारी मानव-जातत को छूट िै, केवल थोडे-से िी लोग पिुंच पातेिैं, तो इससे यि प्रकट िोता िै कक केवल थोडे-से लोग िी उसकी कीमत देनेके शलए तैयार िैं। अपयाप्वतता, वन्ध्यता और श्रुद्रता की भावना उस पूणतवा की कक्रया के कारण िै, उस रिस्य के कारण, जो एक इस प्रकार की व्यथा उत्पन्न करती िै, जो वीरतापूण वआदिवाद और वाद पररपूणतवा को जगाती िै। िमारे अन्दर ववद्यमान परमात्मा की मूतत वअपने-आप को आत्म-अनुभवातीतता की'[101] असीम क्षमता के रूप में प्रकट करती िै।

ज्ञान और रक्षा करने िाला ज्ञान

9.

---

101 "मानवीय मन में एक ऐसा रखा तत्व िै, जो वविुद्ध िै; ल्जसके ववशभन्न देिों और कालों में ववशभन्न नाम रिे िैं; परन्तु यि वविुद्ध िै और परमात्मा से तनकला िै। यि गम्भीर िै और आन्तररक िै। यि ककसी धम वके रूपों तक सीशमत निीं ंिै और न धम वके उन ककन्िीं रूपों से तनष्काशसत िी िै, ल्जनमें कक हृदय पूण वतनष्ठा में ल्स्थत रिता िै। यि मूल तत्व ल्जन-ल्जनके भी हृदय में जड ेंजमा लेता िै और बढ़ता जाता िै, वे चािे ककसी भी राष्र के क्यों न िों, सच्चे अथों में बन्धु बन जातेिैं।" - जॉन वूलमैन, अमेररकन क्वेकर सन्त ।

पूणतवा का लक्ष्य ककस प्रकार प्राप्त ककया जाए? संसार एक ऐेततिाशसक अल्स्तत्व मानता िै। यि एक दिा से अगली दिा की ओर िोनेवाले पररवतनवों की अस्थायी परम्परा िै। जो चीज़ सारे संसार को चला रिी िै, वि कम विी िै। यहद संसार ज्वार और भाटे के शसवाय तनरन्तर अल्स्तत्वमानता के शसवाय और कुछ निीं िै, तो यि

कम ्वकमनकारणिीकिैयमजावीयिैरइच्छकाकमूलच्छा या राग अथात्

कारण अववद्या या वस्तुओं की प्रकृतत के ववषय में अज्ञान िै। इच्छा का मूल व्यल्क्त की आत्मतनभरवता के अज्ञानपूण ववववश्वास में और व्यल्क्त पर वास्तववकता और स्थातयत्व की उपाधध थोप देनेमें तनहित िै। जब तक अज्ञान बना िुआ िै, तब तक अल्स्तत्वमानता (नाम-रूप) के दुशुचक्र से बच पाना सम्भव निीं। िम इच्छाओं का इलाज और नई इच्छाओं द्वारा निीं ंकर सकते। िम कम वका इलाज और अधधक कम वद्वारा निीं ंकर सकते। िाश्वित को ऐसी वस्तु द्वारा, जो क्षणस्थायी िै,[102] प्राप्त निींककया जा सकता। चािे िम अच्छी इच्छाओंके बन्धन में बंधे िों या बुरी इच्छाओंके बन्धन में, बन्धन तो दोनों िी िैं। इससे क्या अन्तर पडता िै कक ल्जन जंजीरों में िम बंधे िैं, वे सोनेकी िैं या लोिे की ? बन्धन से छुटकारा पानेके शलए िमें अज्ञान से छुटकारा पाना िोगा। यि अज्ञान िी अज्ञानपूण वइच्छाओंऔर इस प्रकार अज्ञानपूण वकमों का जनक िै। ववद्या या ज्ञान का अथ व िै- अववद्या, काम, कम वकी श्रृंखलाओंसे मुल्क्त।।

ज्ञान का घपला सैद्धाल्न्तक अध्ययन या सिी ववश्वासों से निीं ंकर हदया जाना चाहिए, क्योंकक अज्ञान कोई बौद्धधक भूल निीं िै। अज्ञान तो आध्याल्त्मक अन्धता िै। इसे िटाने के शलए िमें आत्मा की मशलनता को स्वच्छ करना िोगा और आध्याल्त्मक दृल्ष्ट को जगाना िोगा। वासना की आग और लालसाओं के कोलािल का दमन करना िोगा।'[103] अल्स्थर और चंचल धचत्त को इस प्रकार ल्स्थर करना िोगा कक ल्जससे उसमें ऊपर से आने वाला ज्ञान प्रततबबल्म्बत िो सके। िमें इल्न्द्रयों को तनयन्त्रण में रखना िोगा; एक ऐसी श्रद्धा प्राप्त करनी िोगी, जो बौद्धधक सन्दिों से ववचशलत न िो सके; और बुद्धध को प्रशशक्षक्षत करना िोगा।104

ज्ञान एक प्रत्यक्ष अनुभव िै, जो उसकी प्राल्प्त के माग वमें ववद्यमान बाधाओं के िटते िी स्वयं प्राप्त िो जाता िै। ल्जज्ञासु का प्रयत्न यि िोना चाहिए कक उन बाधाओं को िटा हदया जाए; अववद्या की आवरण डालने वाली प्रववृत्तयों को दूरू कर हदया जाए। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, यि ज्ञान सदा ववद्यमान रिता िै। यि कोई ऐसी वस्तुनिीं, ल्जसे किीं से प्राप्त ककया जाना िो। इसे तो केवल प्रकट- भर ककया जाना िै। िमारे अतनयत ज्ञान, जो िमारी इच्छाओंऔर संस्कारों द्वारा समधथतव िोतिैं, वास्तववकता को प्रकट निींकरते। मन और संकल्प की पूण वतन:दिदता, अिंकार का ररक्तीकरण उस प्रकिा, ज्ञान या आलोक को उत्पन्न करता िै, ल्जसके द्वारा िम

---

102 कठोपतनषद्, 2, 10

103 4,39

104 2, 44

बढ़ते-बढ़ते अपनेसच्चे अल्स्तत्व तक पिुंच जाते िैं।105 यि िाश्वत जीवन िै, िमारी प्रेम और ज्ञान की क्षमताओं का सम्पूण वपररपूरण; बोइधधयस के िददों में, "एक िी क्षण में, असीम जीवन की बबलकुल एक-साथ और पूण व प्राल्प्त ।"

ज्ञान और अज्ञान प्रकाि और अन्धकार की भांतत एक-दूसूरे के ववरोधी िै। जब ज्ञान का उदय िोता िै, तब अज्ञान मर जाता िै और बुराई की जड िी कट जाती िै। मुक्त आत्मा संसार को जीत लेती िै। कोई ऐसी वस्तु निीं ंबचती, ल्जसे जीतना िेष िो या सृजन करना िेष िो। तब कम-वबन्धन निीं ंरिता । जब िम इस ज्ञान तक पिुंच जाते िैं, तब िम भगवान् ्में जीनेलगते िैं।106 यि चेतना कोई अव्यक्त चेतना निीं ंिै। यि वि िै, "ल्जसके द्वारा तू तनरपवाद रूप से सब अल्स्तत्वों को आत्मा के अन्दर और उसके बाद मुझमें देखेगा।" सच्चा मानव-प्राणी पूणतवा के इस आदि वको प्राप्त करने के शलए वैसा िी तनष्ठावान् ्रिता िै, जैसी तनष्ठा वि ककसी ऐसी स्त्री के प्रतत हदखाता िै, ल्जसे वि प्रेम करता िै।107

10. ज्ञानमाग ग

मिारे शलए पूणतवा के लक्ष्य तक पिुंचने ्के, रक्षक सत्य को प्राप्त करने के तीन ववशभन्न माग विैं। वे िैं वास्तववकता का ज्ञान या भगवान् ्की उपासना और भल्क्त या अपने संकल्प को हदव्य प्रयोजन के अधीन कर देना (कम)व। इन तीनों में अन्तर इस आधार पर ककया गया िै कक इनमें अलग-अलग सैद्धाल्न्तक, भावनात्मक और व्याविाररक पक्ष पर बल हदया गया िै। मनुष्य ववशभन्न प्रकारों के िोते िैं : धचन्तनिील, भावुक या सकक्रय । परन्तु वे ऐकाल्न्तक रूप से इनमें से ककसी एक िी प्रकार के निींिैं। अन्त में जाकर ज्ञान, भल्क्त और कम व परस्पर शमल जाते िैं। परमात्मा अपने-आप में सत्,् धचत् ्और आनन्द, अथातव वास्तववक, सत्य और परम आनन्दमय िै। जो लोग ज्ञान की खोज करते िैं, उनके शलए वि िाश्वत प्रकाि िै, मध्याह्न के सूय वकी भांतत उज्ज्वल और देदीप्यमान, ल्जसमें अन्धकार का नाम भी निीं ंिै; जो पुण्य पाने के शलए संघष वकर रिे िैं, उनके शलए वि िाश्वत पववतता िै, ल्स्थर और समदिी; जो लोग भावुक प्रकृतत के िैं, उनके शलए वि िाश्वत प्रेम और पावनता का सौन्दय विै। ल्जस प्रकार परमात्मा में ये तत्व आधश्रत रिते िैं, उसी प्रकार मनुष्य भी आत्मा के समय जीवन को उद्देश्य बनाकर चलता िै। भले िी ताककवक दृल्ष्ट से ज्ञान, संकल्प और अनुभूतत में अन्तर ककया जा सके, परन्तु वास्तववक जीवन में और मन की एकता में इन तीनों में वस्तुतः अन्तर निीं ंककया जा सकता। वे आत्मा की एक िी गतत के ववशभन्न पिलू िै।"[108]

---

105 स्वरूप-ज्ञान या चेतना-रूप में ब्रह्म सदा ववद्यमान रिता िै। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, इसकी तनरन्तर ववद्यमानता अज्ञान को दूरू निीं करती। उल्टे यि इसे प्रकट करती िै। साक्षात्कार के रूप में ज्ञान एक वृवत्त िै और इस तरि अन्य ककसी भी प्रकार के ज्ञान की भांतत िी एक काय व(प्रभाव) िै।

106 5, 20

107 मुल्क्तकान्ता ।

108 प्लौहटनस से तुलना कील्जए: "ऐसे ववशभन्न माग विै, ल्जनके द्वारा यि (आध्याल्त्मक ज्ञान का) लक्ष्य प्राप्त ककया जा सकता िै; सौन्दय वका प्रेम, जो कवव को प्रेरणा देता िै; ककसी के प्रतत भल्क्त और ज्ञान का वि आरोिण, जो ककसी दाितवनक

पूणतवा तक पिुंचने ेके शलए बौद्धधक माग वके रूप में ज्ञान आध्यात्मक ज्ञान के रूप में ज्ञान से शभन्न वस्तु िै। वास्तववक (ब्रह्म) का आत्मक ज्ञान सेवा या भत्क्त का, या इस दृत्ष्ट से ज्ञान का काय वनिीिं, भले िी ये काय वउसकी ओर ले जाने में ककतनिी सिायक क्यों न िों। क्योंकक पूणतवा के लक्ष्य और उसकी ओर जानेवाले माग,व दोनों के शलए िी 'ज्ञान' िदद का प्रयोग िुआ िै, इसशलए कुछ लोग यि सोचनेलगे िैं कक उस लक्ष्य तक पिुंचने ेकी अन्य पद्धततयों की अपेक्षा बौद्धधक माग वअधधक उत्कृष्ट िै।

वविुद्ध और लोकातीत ज्ञान वैज्ञातनक ज्ञान से शभन्न वस्तु िै, िालांकक वि इससे एकदम पृथक् निीं िै। प्रत्येक ववज्ञान अपने-अपने ढंग से एक ववशिष्ट वस्तु-व्यवस्था में उस उच्चतर अपररवतनवीय सत्य के प्रततबबम्ब को व्यक्त करता िै, त्जसका प्रत्येक वास्तववक वस्तु आवश्यक रूप से अंग िै। वैज्ञातनक या ववभेदात्मक ज्ञान िमें उच्चतर ज्ञान के शलए तैयार करता िै। ववज्ञान के आंशिक सत्य आत्मा के सम्पूण वसत्य से शभन्न िैं। वैज्ञातनक ज्ञान इसशलए उपयोगी क स्पोंकक यि मन को कष्ट देने वाले अन्धकार को दूरू करता िै और यि अपने सार की अपूणतवा को भली भांतत हदखा देता िै और मन को एक ऐसी वस्तु के शलए तैयार करता िै, जो स्वयं इससे ऊपर िै। सत्य को जानने ेके शलए िमें आत्मा के रुपान्तरण की, आध्यात्मक दृत्ष्ट के ववकास की आवश्यकता िोती िै। अपनी साधारण आंखों से अजुनव सत्य को निीं ंदेख पाया, इसशलए उसे हदव्य दृत्ष्ट प्रदान की गई।

अत्स्तत्व के उच्चतर स्तरों पर आरोिण, उच्चतर आत्मा को प्राप्त करने ेके शलए अपना ववलोप त्जज्ञासा द्वारा अथवा ज्ञान की तनष्काम लालसा द्वारा ककया जा सकता िै। यि त्जज्ञासा मनुष्य को उसकी संकीण व सीमाओंसे ऊपर उठा देती िै और अत्स्तत्व के सावभवौम शसद्धान्तों के धचन्तन में उसे आत्मववस्मृत बना देती िै। अधधकार या यि के शलए ज्ञान प्राप्त करनेकी साधना िमें उतनी दूरू निीं ले जाती। यि साधना सत्य को प्राप्त करने ेके शलए की जानी चाहिए।

गीता में त्जस आधधववद्यक ववश्वास को स्वीकृत ककया गया िै, वि सांख्यदिनव िी िै, त्जसमें कुछ आधारभूत िेर-फेर कर हदए गए िैं। परमात्मा में गम्भीर तनष्ठा और मुत्क्त में ववश्वास के शलए तीन वस्तुओंको

की मित्त्वाकांक्षा िोता िै; वि प्रेम और वे प्राथनवाएं, त्जनके साथ कोई श्रद्धालुऔर प्रेमी आत्मा अपनी नैततक पववत्रता को पूणतवा की ओर ले जाती िै। ये िैं वे मिान् ्माग,व जो वास्तववक और ववशिष्ट से ऊपर िमें उस ऊंचाई तक ले जाते िैं, जिां पिुंचकर िम असीम के तनकट सात्न्नध्य में खडे िो जातेिैं, जो इस प्रकार चमकता िै, मानो आत्मा की गिराइयों में से चमक रिा िो।" फ्लैक्ैस के नाम पत्र। मधुसूदन का मत िै कक पूण वभगवान तक पिुंचने के शलए, जो सत् ्धचत् ्और आनन्द रूप िै, वेदों के तीन अनुभाग िै, त्जनमें कम,व उपासना और ज्ञान के सम्बन्ध में बताया गया िै। इसी प्रकार ये तीन अनुभाग गीता के अट्ठारि अध्यायों में भी रखे गए िैं।

सत्च्चदानन्दरूपं ंतत् ्पूण वववष्णोः पर पदम्,्
यत्प्राप्तये समारदधा वेदाः काण्डलयात्मकाः ।
कमोपात्स्तस्तथा ज्ञानशमतत काण्डवयंक्रमात्,्
तद्रूपाऽष्टादिाध्यायैगीता काण्डलयात्मका ॥

मानने ेकी आवश्यकता िोती िै; एक तो आत्मा, ल्जसको मुक्त ककया जाना िै; दूसूरे वि बेडी, जो उस आत्मा को बांधे िुए िै और ल्जससे उसे मुक्त ककया जाना िै; और तीसरे परमात्मा, वि सत्ता जो िमें इस बन्धन से मुक्त करती िै। सांख्यदिनव में पुरुष (आत्म) और प्रकृतत (अनात्म) के बीच द्वैत को स्पष्ट ककया गया िै। गीता में इन दोनों को परमात्मा के अधीन बताया गया िै। आत्माएं अनेक िैं और वे सदा पृथृक् रिती िैं। आत्मचेतन जीवन के सब पररवतनवों के पीछे ववद्यमान स्थायी सत्ता िै। यि आत्म सामान्य अथों में प्रयुक्त आत्मा निीं, अवपतु वि ववशुद्ध, तनल्ष्क्रय, स्वतःप्रकाशित मूल तत्व िै, जो न तो संसार से तनकला िै, न संसार पर तनभरव िै और न ल्जसका तनधावरण िी संसार द्वारा ककया जाता िै। यि अद्ववतीय और अखण्ड िै। मनुष्य आत्म निीं ि ै, अवपतु आत्म उसमें िै और मनुष्य आत्म बन सकता िै। अनात्म या प्रकृतत का एक और परम मूल तत्व िै। ल्जसकी कल्पना इस रूप में की गई िै कक वि पिले अववभक्त भौततक तत्व के रूप में था, ल्जसमें उसके सब घटक तत्व साम्यावस्था में थे। उस दिा में यि अव्यक्त थी। सब मानशसक और भौततक तत्वों109 की व्याख्या प्रकृतत के ववकास के पररणामों के रूप में की गई िै। प्रकृतत में तीन गुण िैं। गुण का िददाथ िोता िै- रस्सी के धागे। ये गुण ववशभन्न अनुपातों में प्रकट िोकर ववशभन्न प्रकार की वास्तववक सत्ताओं को उत्पन्न करते िैं। भौततक तत्व के प्रसंग में ये तीन गुण िल्कापन (सत्व), गतत (रजस्) ् और भारीपन (तमस्) ् के रूप में काय वकरते िैं। मानशसक तत्व के रूप में वे क्रमि: अच्छाई, आवेि और मूढ़ता के रूप में काय वकरते िैं। जब आत्म यि अनुभव कर लेता िै कक वि प्रकृतत के साथ सब प्रकार के सम्पकव से रहित िो गया िै, तो वि मुक्त िो जाता िै। गीता इस व्याख्या को इस आधारभूत पररवतनव के साथ स्वीकार करती िै कक सांख्य में बताए गए पुरुष और प्रकृतत, ल्जनमें कक द्वैत िै, परम मूल तत्व परमात्मा के िी स्वभाव िैं।

बुराई गुणों के बन्धन में फंसनेके कारण उत्पन्न िोती िै। यि इसशलए पैदा िोती िै, क्योंकक प्रकृतत में ल्जस जीवन के बीज या आत्मा को डाला जाता िै, वि गुणों के बन्धन में पड जाता िै। ककसी एक या अन्य गुण की प्रबलता के अनुसार आत्मा का उत्थान या पतन िोता िै। जब िम आत्म को प्रकृतत और उसके गुणों से पृथृक् पिचान लेते िैं, तब िम मुक्त िो जाते िैं। आधधववद्यक ज्ञान' योग अथात्व ्एकाग्रीकरण की पद्धतत द्वारा अनुभव110 में रूपान्तररत िो जाता िै। बिुत प्राचीन काल से िी 'योग' िदद का प्रयोग कुछ एक ववशिष्ट प्रकार के अभ्यासों और अनुभवों का वणनव करने ेके शलए िोता रिा िै, ल्जन्िें बाद में ज्ञान,भल्क्त और कम वके ववशभन्न सम्प्रदायों की शिक्षाओंके अनुसार ढाल शलया गया। इनमें से प्रत्येक ध्यानयोग या धचन्तन की पद्धतत के अभ्यास का प्रयोग करता िै। योग, पतंजशल के मतानुसार, मन की गततववधधयों का दमन िै।111 मैत्री उपतनषद का कथन िै: "जैसे ईंधन न शमलने पर आग चूल्िे में पडी-पडी बुझ जाती िै, उसी प्रकार जब मन की गततववधधयों का दमन कर हदया जाता िै (वृतृतक्षयात्) ्, तब धचत्त अपने स्थान पर पडा-पढ़ा िी बुझ जाता िै।"112 िम सपन्त प्रबल संकल्प के प्रयोग द्वारा िी ववचारों के कोलािल और इच्छाओं के उत्पात का दमन करने ेमें समथ विो सकते

---

109 परोक्षज्ञान।

110 अपरोक्ष ब्रह्म-साक्षात्कार।

111 योगल्श्चत्तवृवृत्ततनरोधः।

112 6.34। धचत्तं ंस्वयोनी उपिाम्यते।

ैं। योगी से कि जाता िै कक वि बबस्तर कम वद्वारा इस संयम को प्राप्त करे ।[113] मनुष्य अपने अल्स्तत्व के केवल एक अंि को, अपनी ऊपरी सति की मनोवृवृत्त को िी जानता िै। इस सति के नीचेभी बिुत कुछ िै, ल्जसे वि बबलकुल निींजानता, िालांकक उस नीचेबाली वस्तु का उसके आचरण पर अनेक रूपों में प्रभाव पडता िै। कभी-कभी िम पूणतवया अपनेमनोवेगों के, सिज वृवृत्त के और अस्वैल्च्छक प्रततकक्रयाओं के विीभूत िो जाते िैं, जो सचेत वववेक के तनयम को उलट देती िैं। पागल व्यल्क्त जिांइन मनोवेगों के पूणतवया अधीन िोता िै, विांिमिमें से अनेक भी उनके प्रभाव के विवती िोते िैं, िालांकक सामान्य व्यल्क्तयों में इस प्रकार की दिाएं अस्थायी िोती ैं। प्रेम या ववद्वेष की प्रबल भावना के आवेि में िम ऐसी बातें कि या कर जाते िैं, ल्जनके बारे में जब िम बाद में अपनेआपे में आते िैं, तब िमें पश्चात्ताप िोता िै। िमारी भाषा 'वि आपे से बािर िो गया', 'वि अपने आप को भुला बैठा', 'वि तो मानो वि िी निींरिा', पुरातन दृल्ष्टकोणों की इस सचाई का संकेत करती िै कक जो मनुष्य ककसी तीव्र भावना से अशभभूत रिता िै, उसमें कोई िैतान या भूत आ घुसा िोता िै।[114] जब तीव्र मनोवेग जाग उठते िैं, तब िम अधधकाधधक उद्दीप्य िो जाते िैं और सब प्रकार के असंयत ववचार िम पर िावी िो जाते िैं। साधारणतया अचेतन चेतन के साथ सियोग करता िै और िमें कभी इस बात का सन्देि तक निींिोता कक अचेतन ववद्यमान भी िै। परन्तु अगर िम अपनेमूल सिज-वृवृत्तजन्य नमूने के माग वसे िट जाते िै तब िमें अचेतन की पूरी िल्क्त का अनुभव िोता िै। जब तक व्यल्क्त पूरी तरि आत्मसजग न िो जाए, तब तक वि अपने जीवन का स्वामी निीं ंकर सकता। इसके अलावा, िरीर, प्राण और मन का समेकन ककया जाना चाहिए। वस्तुतः आत्मचेतन प्राणी के रूप में मनुष्य को अपने अन्दर ववद्यमान गम्भीरतार ववरोधों का ज्ञान िै। वि सामान्यतया कामचलाऊ से समझौते कर लेता िै और अतनल्श्चत जीवन बबताता िै। परन्तु जब तक उसकी बिुपक्षीय सम्भावनाओं में एक पूण वसमस्वरता, एक सांग सन्तुलन न िो जाए, तब तक वि पूरी तरि अपना स्वामी निीं िै। जब तक वि लालसाओं का विवती िै, जैसे कक अजुनव था, तब तक समेकन की प्रकक्रया कभी पूरी निींिो सिकती। एक बढते िए व्यल्क्तत्व के शलए अववराम देख-रेख और संभाल की आवश्यकता िै। संकल्प की िुद्धता के ववकास द्वारा सांसाररक वस्तुओंके प्रतत वासनाएं मर जाती िैं और मन में एक ऐसी िाल्न्त उत्पन्न िो जाती िै, ल्जससे एक आन्तररक तनःदिदता पैदा िोती िै, ल्जसमें आत्मा उस सनातन के साथ अपना सम्पकव स्थावपत करने ेलगती िै, ल्जससे वि पृथक् िो गई िै और अन्तवासवी परमात्मा की उपल्स्थतत का अनुभव करने लगती िै। इस तनःदिदता में, जो पाधथव संघषों के बाद आत्मा का ववश्राम िै, अन्तदृवल्ष्ट उत्पन्न िोती िै और मनुष्य वि बन जाता िै, जो कक वि वस्तुतः िै।

मिारी चेतना जब िरीर के साथ जुड जाती िै, तब वि इल्न्द्रयों द्वारा बाह्य संसार के तनयन्त्रण के काय व को पूरा करने के शलए बहिमुखवी िो जाती िै; अपनी बहिमुखवी कक्रयाओं में यि इल्न्द्रय-ग्राह्य वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करने के शलए धारणाओं का उपयोग करती िै; अन्तमुखवी िोने पर यि साधारणतया आत्म का अनुमान-

---

113 तनववकवारेण कमणवा। िररवंि, 11, 736

114 "आकषणव, मुग्धता, अपने-आप को खो बैठैना, अधधकार करना और इसी प्रकार अन्य भावनाएं अचेतन तत्वों द्वारा चेतना के ववषंग (संग से पृथृक् करना), तनयन्त्रण और दमन के तत्व िै।"- जुग : इण्टग्रेिन ऑफ पसनैवशलटी, अंग्रेज़ी अनुवाद (1940), पृ. ृ 12

शसद्ध ज्ञान उन कायों द्वारा प्राप्त करती िै, जो इस अथ वमें तुरन्त जान शलए जाते िैं कक जानी गई वस्तुएं स्वयं ज्ञान के शसवाय ककसी अन्य माध्यम द्वारा निींजानी जातीं। इस सबसे िमें यि पता निीं चलता कक आत्म अपने मूल स्वरूप में क्या िै। िम यि तो जान जाते िैं कक आत्म ककस तत्व का बना िै, परन्तु स्वयंआत्म को निीं ंजान पाते। आत्म का अल्स्तत्वात्मक अनुभव प्राप्त करने ेके शलए िमें वस्तुओं की उस बाह्य और आन्तररक ववववधता से मुक्त िोना िोगा, जो आत्म के सार के प्रत्यक्ष या अन्तःस्फुरणात्मक दिनव में बाधक िै और उसे रोकती िै। साधारणतया बाह्य और आन्तररक प्राततभाशसक जगत् ्िी रंगमंच को घेरे रिता िै और आत्म अपने सार के रूप में पिचाना निींजाता। िम अपने-आप को मनोवैज्ञातनक रूप से ल्जतना अस्पष्ट करते जाते िैप। अथातव अन्ततनरवीक्षण या मनन द्वारा अपने-आप को अस्पष्ट करते जाते िैं, रत्तर उतना िी अधधक िम आत्म की प्राततभाशसक अशभव्यल्क्तयों के सम्पकव में आते और जाते िैं। यहद िमें अपनेअन्दर ववद्यमान सवोच्च आत्म को देखना िो, तो िमें एक शभत्र प्रकार की साधना अपनानी चाहिए। िमें दृश्यमान वस्तुओंको िमें और िटा देना चाहिए: िमें अपनी प्रकृतत के रुझान के ववरुद्ध चलना चाहिक अपने-आप को नस-रूप में देखना चाहिए: प्रतीयमान अिंकार से बचना चाहिए, और वविुद्‌ध कतात्वमकता, परम आत्म के गम्भीर गत वतक पिुंचना चाहिए। भगवद्गीता में िमें बताया गया िै कक ककस प्रकार साधक उपभोग और संयम की िारीररक अततयों से दूरू रिता िै; वि ककसी ऐसे स्थान पर जाता िै, जिां ंबिार की वस्तुओंके कारण ध्यान न बंटे। वि कोई सुववधाजनक आसन लगाकर बैठता िै; अपनेश्वास को तनयशमत करता िै; अपनेमन को ककसी एक हिन्दु ुपर एकाय करता िै और इस प्रकार समस्वरतायुक्त (युक्त) बन जाता िै और कम वके फल की सब इच्छाओं से अनासक्त िो जाता िै। जब वि इस एकता को प्राप्त कर लेता िै, तब वि अपनेसब साथी-प्राखणयों के साथ एक पूण वसहृदयता अनुभव करने ेलगता िै। इसशलए निीं कक ऐसा करना उसका कत्तव्वय िै अवपतु इसशलए कक उसे उन सबके प्रतत सिानुभूतत और प्रेम का अनुभव िोने ेतगता िै। िमारे सम्मुख गौतम बुद्ध का उदािरण िै, जो सबसे मिान् ्ज्ञानी या ऋवष था और ल्जसके मानवता के प्रतत प्रेम ने उसे चालीस वष वतक मानव जातत की सेवा में लगाए रखा। सत्य को जानने का अथ वि- अपनेहृदय को भगवान् ्तक ऊपर उठाना और उसकी स्तुतत करना। ज्ञानी िी भक्त भी िोता िै और भक्तों में सवश्रेवष्ठ िोता िै।'[115]

योग का ववधधवत् ्अभ्यास करने ेका पररणाम गौण रूप से यि भी िोता िै कक साधक को अलौककक ल्क्तयां प्राप्त िो जाती िैं; परन्तु इन िल्क्तयों को प्राप्त करने ेके शलए योगाभ्यास करना व्यथ वऔर बेकार िै। बिुधा इसका पररणाम आादुरोग और ववफलता िोता िै। आध्याल्त्मक जीवन के साधक को यि चेतावनी दी जाती ैं किक वि अलौककक िल्क्तयों के आकषणव में न फंसे। इन िल्क्तयों से िमारी सांसाररक उन्नतत भले िो जाए, परन्तु वे साधुता की ओर निींले जाती । आध्याल्त्मक दृल्ष्ट से ये तनरथकव और असंगत िैं। गुप्त ववद्याओं को जानने बाले व्यल्क्त में, जो भौततक क्षेल से ऊपर की वस्तुओंको देखने में समथ विो जाता िै, कुछ ऐसी क्षमताएं ववकशसत िो जाती िैं, ल्जनके कारण वि सामान्य मानव-प्राखणयों से ऊपर उठ जाता िै; ठीक उसी प्रकार, जैसे आधुतनक तकनीक ववज्ञान के जानने वाले लोग पुराने ेज़मानेके ककसानों की अपेक्षा अधधक साधन- सम्पन्न िोते

[115] 6,17

ीं। परन्तुउसकी यि प्रगतत बाह्य हदिा में िोती िै और आत्मा को अन्तमुखव करने ेकी ओर निींिोती। योग का अभ्यास सत्य को प्राप्त करनेके शलए, वास्तववकता (ब्रह्म) से सम्पकव स्थावपत करनेके शलए ककया जाना चाहिए। कृष्ण योग का स्वामी (योगेश्वर)[116]' िै, जो िमें अपने जीवन में अपनी रक्षा करने में सिायता देता िै। वि आध्यात्ल्मक अनुभव का भी सवोच्च स्वामी िै, जो हदव्य गौरव के उन क्षणों को िम तक लाता िै, ल्जनमें कक मनुष्य िारीररक आवरण के परे पिुंच जाता िै और दैतनक अल्स्तत्व की समस्याओं के साथ उन हदव्य गौरव के क्षणों के सच्चे सम्बन्ध का भी संकेत करता िै।

11. भस्क्तमाग ग

भल्क्त व्यल्क्तक परमात्मा के साथ ववश्वास और प्रेम का सम्बन्ध िै। अव्यक्त की पूजा (अव्यक्तोपासना) साधारण मानव-प्राखणयों के शलए कहठन िै, िालांकक ऐसे मिान् ्अद्वैततयों के अनेक उदािरण ववद्यमान िैं, ल्जन्िोंनेअव्यल्क्तक वास्तववकता (तनराकार ब्रह्म) को बिुत सजीव भावुक रूप हदया।117 व्यल्क्तक परमात्मा की पूजा दुबुलव और तनम्न, अशिक्षक्षत और अज्ञानी118' सब लोगों के शलए एक सरलतर उपाय के रूप में प्रस्तुत की गई िै। प्रेम की बशल उतनी कहठन निींं, ल्जतना कक अपनी इच्छािल्क्त को भगवान् ्के प्रयोजन की ओर या अवस्थामय अनुिासन की ओर या धचन्तन के धका देनेवाले प्रयत्न की ओर मिो पाना।

भल्क्त-माग वका मूल अत्यन्त पुरातन काल की धुंध में तछपा िुआ िै। आवेद की स्तुततयों और प्राथनवाओं, उपतनषदों की उपासनाओं और भागवत धम वकी तीव्र धमतवनष्ठा का प्रभाव गीता के लेखक पर पडा िै। उसने उपतनषदों के धाशमकव पक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली उस ववचारधारा को ववकशसत करनेका प्रयत्न ककया िै, ल्जसे उपतनषदकार उन्मुक्त और सुस्पष्ट रूप में व्यक्त निींकर पाए थे। भगवान् ्ऐसा परमात्मा निीं ंिै, जो कक उस समय भी िाल्न्तपूण वअव्यक्तता में ियन करता रिता िो, जबकक आत वहृदय सिायता के शलए पुकार रिे िों, अवपतु एक प्रेमपूण वरक्षक परमात्मा िै, ल्जस पर भक्त लोग इसी रूप में ववश्वास करते िै और अनुभव करते िैं। वि उन लोगों को मुल्क्त प्रदान करता िै, जो उसमें ववश्वास करते िैं। वि घोषणा करता िै, "यि मेरा वचन िै कक जो मुझसे प्रेम करता िै, वि कभी नष्ट निीं ंिोगा।"[119]

---

116 18,78

117 भल्क्तमागी लोग अद्वैतैवाहदयों द्वारा ज्ञान पर बिुत ज़ोर देनेकी बिुत तनन्दा करतैं। वे इसेतनन्दनीय ववश्वास-भेद या आत्मा का िनन करनेवाली भूल बताते िैं, िालांकक िंकराचाय वने क्रमिः मुल्क्त की तैयारी के रूप में भल्क्त के मित्व को स्वीकार ककया िै।

118 9, 32, साथ िी देखखए 11, 53-54; 12, 1-51 "व्याध ने कौन-से अच्छे आचरण ककए थे? धुरुव की आयु िी क्या थी? गजेन्द्र का ज्ञान ककतना था? उग्रसेन नेक्या वीरता हदखाई थी ? कुदजा की सुन्दरता क्या थी? सुदामा के पास ककतना धन था? भगवान् ्तो भल्क्त के प्रेमी िै और वे भल्क्त से प्रसन्न िोते िैं। वे (अन्य) गुणों को कोई परवाि निीं ंकरते।े"

119 व्याधस्याचरण धुरुवस्य च वयो ववद्या गजेन्द्रस्य का,
का जाततववदुवरुस्य यादवपतेरुग्रस्य ककं पौरुषम्।्
कुदजायाः कमनीयरूपमधधकं ककं तत् ्सुदाम्नो धनं,ं
भक्त्या तुष्यतत केवलन तुगुणैः भल्क्तवप्रयोमाधवः।

भल्क्त िदद 'भज्'् धातु से बना ि, ल्जसका अथ वि-सेवा करना; और भल्क्त िदद का अथ वि - भगवान् ्की सेवा। यि परमात्मा के प्रतत प्रेमपूण वअनुराग ि। नारद ने भल्क्त की पररभाषा देते िुए इसे परमात्मा के प्रतत उत्कट प्रेम बताया ि।120' िाल्ण्डल्य के मत से यि परमात्मा सवोच्च अशभलाषा ि121, जो केवल इस अशभलाषा के शलए िी ि (अथात्व ्इस अशभलाषा का और कोई प्रयोजन निीं ि) ।'[122] यि भगवान् ्की करुणा के ववश्वासपूणू व आत्मसाक्षात्करण के प्रतत आत्मसमपणव ि। यि योगसूत्र का ईश्वरप्रखणधान ि, जो भोज के मतानुसार, "एक ऐसा प्रेम ि, ल्जसमें इल्न्द्रयों के आनन्द इत्याहद पररणामों की अपेक्षा ककए बबना सब काय वगुरुओं ंके गुरु को समवपतव कर हदए जाते िैं।"[123] यि एक प्रचुर अनुभव ि, जो सब लालसाओं को समाप्त कर देता ि और हृदय को परमात्मा के प्रेम से भर देता ि।124 भल्क्त-माग वके समथकवों की लोकोत्तर मुल्क्त में उतनी रुधच निीं, ल्जतनी परमात्मा की अटल इच्छा के प्रतत पूण वववितततवा में। मानवीय आत्मा परमात्मा की िल्क्त, ज्ञान और अच्छाई के धचन्तन द्वारा भल्क्तपूण वहृदय से उसके तनरन्तर स्मरण द्वारा, दूसूरे लोगों के साथ उसके गुणों के सम्बन्ध में चचावकरने

एक श्लोक में, जो िंकराचाय वका शलखा बताया जाता ि, किा गया ि: "चािे ककसी को मनुष्य का या देवता का, या पिाडी या जंगली पिु का, या मच्छर का या पालतूजानवर का, या कीडे ेका या पक्षी का, या इसी प्रकार का कोई और जन्म भी क्यों न शमला िो, परन्तु यहद उसका हृदय इस जन्म में सदा तुम्िारे चरण-कमलों के धचन्तन में लीन रिता ि, जो कक परम आनन्द का प्रवाि ि, तो िरीर ककसका ि, इसका क्या मित्व ि?"

नरत्वं देवत्व नगवनमृगत्वं मिकता,
पिुत्व कीटत्वंभवतु वविगत्वाहदजनम्।्
त्वत्पादादजस्मरणपरमानन्दलिरी,
सदा वविारासक्तंचेद् हृदयशमि ककं तेन वपुषा ॥

भल्क्त का मित्व प्रततपाहदत करने का यि कुछ अत्युल्क्तपूण-वसा ढंग ि।
9.31

120 परम प्रेम-रूपा।

121 सा परानुरल्क्तरीश्वरे। 1, 1, 2

122 तनिेतुका। भागवत से तुलना कील्जए: अिेतुकव्यवहिता या भल्क्त: पुरुषोत्तमे। साथ िी देखखए, भगवद्गीता, 12, 5: 9, 17-18

चैतन्य से तुलना कील्जए: "िे भगवान्, म ैंधन या पररजन या सुन्दररयों या कववत्व की िल्क्त निीं चािता; म ैंतो जन्म-जन्मान्तर में भगवान् ्की अिेतुक भल्क्त की िी कामना करता िूं।"

न धनंन जन वन सुन्दरी कववतां वा जगदीि कामये।
मम जन्मतन जन्मनीश्वरे भवताभल्क्तरिैतुकी त्वतय ॥

-शिक्षा
ष्टक, 4

123 1, 23।यिमािवस्तुकीबुद्धानुस्मृतृत ि।

124 नारद से तुलना कील्जए : भल्क्त सून 54; गुणरहितं ंकामनारहितंप्रततक्षणवधमवान अववल्च्छन्नम्,् सूक्ूष्मतरम्,् अनुभवरूपम्।्

के द्वारा, अपनेसाधथयों के साथ शमलकर उसके गुणों का गान करनेके द्वारा और सब कायों को उसकी सेवा समझकर करनेके द्वारा भगवान् ्के तनकट पिुंच जाती ि।125 भक्त अपने सम्पूण वअल्स्तत्व को भगवान् ्की ओर प्ेररत करता ि। ि। यहद अन्तयाशवमतावाद के दिनव की इस प्रकार व्याख्या की जाए कक वि मनुष्य प्ेरम धम वका सार ि। यि उपासक और उपास्य के मध्य द्वैत को अंगीकार करता की अपनेप्राखणत्व की भावना या भगवान् ्की लोकातीतता की भावना को नष्ट कर दें, तो उसमें भल्क्त और पूजा के शलए कोई स्थान न िोगा। प्राणी और स्रष्टा के भान्य भेद भल्क्त-धम वका सत्त्वात्मक आधार ि। भगवद्गीता में सनातन माण के को दितवनक अनुमान के परमात्मा के रूप में उतना निीं देखा गया, ल्जतना कक उस करुणामय भगवान के रूप में, ल्जसे हृदय और आत्मा चािते िैं और खोजते िैं जो व्यल्क्तक ववश्वास और प्ेरम, श्रद्धा और तनष्ठापूण वआत्मसमपणव की भावातेको जगाता ि। "ज्ञान का उदय िोनेसे पिले द्वैतता भ्रामक ि; पर जब िमारी बुद्धध ज्ञान से आलोककत िो जाती ि, तब िम अनुभव करते िैं कक द्वैत तो अद्वैत ि भी अधधक सुन्दर ि और द्वैत की कल्पना िी इसशलए की गई ि कक पूजा की जा सके।126" कफर, "सत्य अद्वैत ि; परन्तु द्वैत पूजा के शलए ि। और इस प्रकार यि पूजा मुल्क्त की अपेक्षा सौगुनी मिान् ्ि।"[127]

गीता में भल्क्त बौद्धधक प्ेरम निीं ंि, जो कक अपेक्षाकृत अधधक धचन्तनात्मक और मननात्मक िोता ि। यि ज्ञान के आधार पर हटकी ि, परन्तु स्वयं ज्ञान निीं ंि। इसमें योग-पद्धतत का कोई तनदिे तनहित निीं ंि और न भगवान् ्का आनुमातनक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा िी तनहित ि। िाल्ण्डल्य ने तकव प्रस्तुत करते िुए किा ि कक यि भल्क्त िमें ज्ञान के बबना भी आल्त्मक िाल्न्त प्रदान करती ि, जैसे गोवपयों को प्राप्त िुई थी।128' भक्त में एक अततिय ववनय की भावना िोती ि। अपनेआदि वभगवान् ्की उपल्स्थतत में वि अपने-आपको कुछ भी निीं समझता। परमात्मा ववनम्रता से, जो कक आत्मा का पूण वआत्मसमपणव ि, प्ेरम करता ि।129

---

125 नारदसूल,16-18।भागवतमेंभल्क्त की नौ दिाओं ंका वणनव ककया गया ि:

श्रवणं कीतनंवववष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ्।
अचनव वन्दनं ंदास्यं सख्यमात्मतनवेदनम् ्॥

कफर: "म ैंन तो स्वग वमें रिता िू और न योधगयों के हृदय में; म ैंतो विीं तनवास करता िंू, जिां ंकिंमेरे भक्त मेरे गुणों का गान करते िैं।"

निां वसाशम वैकुण्ठे, योधगनां ंहृदये न च।
मद्भक्तायत्न गायल्न्त, तन ततष्ठाशम नारद ॥

126 द्वैत मोिाय बोधात् ्प्राग् ्जाते बोधे मनीषया ।
भक्त्यथ वकल्ल्पतं द्वैतमद्वैतादवप सुन्दरम् ्॥
पारमाधथकवमद्वैतंद्वैत भजनितवे ।

127 तादृिी यहद भल्क्तः स्यात्,् सा तु मुल्क्तिताधधका ॥

128 अतएव तदभावाद् वल्लवीनाम् ्।

129 दैन्यवप्रयत्वम्।् नारदसून, 27

साधारणतया भल्क्त के साथ जुडे ि ुए वविेषे गुण, प्रेम और उपासना, दया और कोमलता पुरुषों की अपेक्षा ल्स्त्रयों में अधधक पाए जाते ि ैं। क्योंकक भल्क्त में ववनय, आज्ञापालन, सेवा-परायणता, करुणा और सदय प्रेम पर जोर हदया गया ि ै और क्योंकक भक्त अपने-आप को समवपतव करना, आत्मसंकल्प को त्याग देना और तनल्ष्क्रयता अनुभव करना चािता ि ै, इसशलए यि किा जाता ि ै कक भल्क्त अपेक्षाकृत स्त्री-स्वभाव की वस्तु अधधक ि ै। ल्स्त्रयां आिा करती ि ैं, कष्ट सिती ि ैं, चािती ि ैं और प्राप्त करती ि ैं। वे करुणा, दया और ि ल्न्त के शलए लालातयत रिती ि ैं। स्त्रीत्व सब प्राखणयों में ि ै। भागवत में यि बताया गया ि ै कक कन्याओं ने सवोच्च देवी कात्यायनी से प्राथनवा की कक वे ेउन्िें पितत के रूप में कृष्ण को प्रदान करें।130 जब ल्स्त्रयां अपनेअधधकतम सच्चे रूप में सामने आती ि ैं, तब वे सब-कुछ दे डालती ि ैं और बदले में कुछ भी निीं ंमांगतीं। वे प्रेम करना और प्रेम पाना चािती ि ैं। राधा प्रेममय आत्मा की प्रतीक ि ै। भगवान् ्के साथ सम्बन्ध में भक्त लोग ल्स्त्रयों की भांतत अधधक िोतीं। "सवोच्च भगवान् ्िी एकमात्र पुरुष ि ै; ब्रह्मा से लेकर नीचे तक सब प्राणी ल्स्त्रयों की भांतत ि ैं (जो उसके साथ शमलने के शलए लालातयत ि ै)। "[131]

जब आत्मा अपने-आप को परमात्मा के सम्मुख समवपतव कर देती ि ै, तब परमात्मा िमारे ज्ञान व िमारी लुहटयों को अपना लेता ि ै और वि अपयाप्वतता के सब रूपों को परे फेंक देता ि ै और सब वस्तुओंको अपनेअसीम प्रकाि और सावभवौम अच्छाई की वविुद्धता में रूपान्तररत कर देता ि ै। भल्क्त केवल 'एकाकी की एकाकी की ओर उडान', आत्मा का संसार से ववराग और परमात्मा से अनुराग मी ि ै अवपतु ुउस हदव्य भगवान् ्के प्रतत सकक्रय प्रेम ि ै, जो इस संसार का उद्धार करने ेके शलए इस संसार में प्रवेि करता ि ै।

यि दृल्ष्टकोण, कक िम स्वयंअपनेप्रयत्नों द्वारा भगवान् ्की दया प्राप्त करने ेमें समथ वनिीं िो सकते, एक तीव्र भावनामय धाशमकवता को जन्म देता ि ै। जिांभल्क्त में श्रद्धा और प्रेम की आवश्यकता िोती ि ै, विां प्रपवत्त में िम केवल अपने-आप को परमात्मा के प्रतत समवपतव कर देते ि ैं; िम अपने-आप को उसके िाथों में सौंप देते ि ैं और यि तनणयव स्वयं उसके शलए छोड देते ि ैं कक यि िमारे शलए जो ठीक समझे, े िमारे साथ करे। इसमें इस बात पर ज़ोर हदया गया ि ै कक एक ववश्वास की ववनीत और प्रत्यक्ष भावना के साथ आत्मसमपणव का सरल और तपस्यापूण ववविुद्ध सम्बन्ध स्थावपत ककया जाए। इसमें भल्क्त के अनुिासन की तीव्रता की अपेक्षा आत्मसमपणव की पूणतवा में वास्तववक धमतवनष्ठा मानी गई ि ै। िम स्वयं को अपनेआत्म से ररक्त कर देते ि ैं और तब परमात्मा िम पर अधधकार कर लेता ि ै। इस परमात्मा द्वारा अधधकार ककए जानेके रास्ते में बाधाएं िमारे अपनेगुण, अशभमान, ज्ञान, िमारी सूक्ष्म मांगें और िमारी अचेतन मान्यताएं और संस्कार ि ैं। िमें अपने-आप को सब इच्छाओं से ररक्त करना िोगा और परम सत्ता में ववश्वास रखते ि ुए प्रतीक्षा करनी िोगी। परमात्मा की व्यवस्था में ठीक जमनेके शलए िमें अपने सब दावों को त्याग देना िोगा।132' भल्क्त और प्रपवत्त के मध्य का

---

130 कात्यायतन मिामाये मियोधगन्यधीश्वरर।
नन्दगोपसुतं ंदेवव पतत मे कुरु ते नमः ॥10,22, 4

131 स एव वासुदेवोऽसौ साक्षात्पुरुष उच्यते।
स्त्रीप्रायशमतरत सव वजगद्ब्रह्मापुरस्सरम् ्॥

132 18, 66

अन्तर वानर-पद्धतत (मकवटककिोर न्याय) और बबडाल-पद्धतत (माजारवककिोर न्याय) के प्रतीकों द्वारा स्पष्ट ककया गया िै। बन्दर का बच्चा अपनी मांसे धचपट जाता िै और इस प्रकार बचा रिता िै। इसमें बच्चे की ओर से भी थोडे–से प्रयत्न की आवश्यकता िोती िै। बबल्ली अपने बच्चेको मुंि में उठाकर ले जाती िै; बच्चा अपनी सुरक्षा के शलए कुछ भी प्रयत्न निीं करता। भल्क्त में परमात्मा की दया ककसी सीमा तक यल द्वारा प्राप्त की जाती िै, प्रपवत्त में यि मुक्त रूप से प्रदान की जाती िै। प्रपवत्त में इस बात का कोई ववचार निीं रिता कक व्यल्क्त दया पाने का पाल िै या निीं, ं या उसनेककतनी सेवा की िै।133' इस दृल्ष्टकोण का समथनव प्राचीनतर परम्परा में प्राप्त िोता िै, "जब यि परमात्मा स्वयं चुनता िै, तभी यि उसके द्वारा प्राप्त ककया जा सकता िै और उसी को वि अपना रूप हदखाता िै। "[134] अजुनव को बताया जाता िै कक उसके सम्मुख हदव्य रूप भगवान् ्की दया से िी प्रकट िुआ था। कफर, यि किा गया िै कक "मुझसे िी स्मृतत और ज्ञान उत्पन्न िोते िैं और उनका क्षय भी मुझसे िी िोता िै।"[135] िंकराचाय वने भी इस बात को स्वीकार ककया िै कक केवल भगवान् ्िी िमें रक्षा करने ेवाला ज्ञान प्रदान कर सकता िै।"[136] प्रपवत्त और भल्क्त का अन्तर ईसाई ववचारधारा के उस वववाद से मेल खाता िै, जो सेण्ट ऑगस्टाइन और पैलेधगयस के प्राचीन काल से चला आ रिा िै और वि इस बात को लेकर िै कक पततत प्राणी के रूप में मनुष्य का उद्धार केवल भगवान् ्की दया से िो सकता िै या मनुष्य स्वयंभी कुछ कर सकता िै और अपनी मुल्क्त के प्रयत्न में कुछ योग दे सकता िै।137

पैलेधगयस स्वतन्त्र संकल्प में ववश्वास रखता था। उसनेमूल (आहद) पाप के शसद्धान्त का खण्डन ककया और यि किा कक मनुष्य अपनेनैततक प्रयत्न के अनुसार काय वकरते िैं। ऑगस्टाइन ने पैलेधगयस के शसद्धान्त का ववरोध ककया और यि मत प्रस्तुत ककया कक पतन से पिले आदम में स्वतन्त्र इच्छािल्क्त और िौवा ने सेब को खा जीरा िो गया और वि उनके सब वंिजों में चला आ रिा िै। िममें से कोई भी इसकी िल्क्त के द्वारा पाप से

---

133 प्रपवत्त के ये अंग िैं: (1) सबके प्रतत सद्भाव (आनुकूल्यस्य संकंल्पः); (2) दुभाुव का त्याग (प्राततकूल्यस्य वजनवम्) ्; (3) यि ववश्वास कक भगवान् ्रक्षा करेगा (रक्षक्षष्यतीतत ववश्वासः); (4) भगवान् ्को रक्षक-रूप में अंगीकार करना (गोप्तृत्ूववरणम्) ्; (5) तनतान्त असिायता की भावना (कापण्वयम्) ्; (6) पूण वआत्मसमपणव (आत्मतनक्षेपः) । इनमें से अल्न्तम को परम्परागत रूप से प्रपवत्त के तुल्य माना गया िै, जो कक अन्त और लक्ष्य िै, जो अंगी िै, जब कक बाकी पांचं घटक तत्व या अंग िैं। इस वक्तव्य से तुलना कील्जए: षड्ववधा िरणागततः, ल्जसकी व्याख्या अष्टांग योग की समानता पर की गई िै, ल्जसमें समाधध वास्तववक उद्देश्य िै और बाकी सात केवल सिायक िैं।

134 कठोपतनषद्, 2, 23

135 11,47

136 15, 15

137 तदनुग्रिेतुकेनैव च ववज्ञानेन मोक्षशसद्धधभववतुमिुवतत । ब्रह्मसूत्र पर िांकर भाष्य। अवधूत गीता का पिला श्लोक िै :

ईश्वरानुग्रिादेव पुंसामद्वैतवासना ।
मिद्भयपररत्राणाद् ववप्राणामुपजायते ॥

"केवल परमात्मा की दया से िी ज्ञानवान् ्मनुष्यों में अद्वैत अनुभव के प्रतत रुधच उत्पन्न िोती िै, जो मिान् ्संकंट से उनकी रक्षा करती िै।" कुछ जगि दूसरी पंल्क्त का पाठ इस प्रकार शमलता िै. - 'मिाभयपररत्राणा द्ववल्लाणामुपजायते । '

बचा निींरि सकता। केवल परमात्मा की दया िी पुण्यात्मा बनने में िमारी सियता कर सकती िै। क्योंकक आदम के रूप में िम सबनेपाप ककया था, इसशलए आदम के रूप में िम सब दोषी ठिराए गए िैं। कफर भी िममें से कुछ लोग परमात्मा की मुक्त दया के कारण स्वग वके शलए चुने ेजाते िैं; इसशलए निींकक िम उसके पान िैं या िम अच्छे िैं, अवपतु इसशलए कक परमात्मा की दया िमें प्रदान की गई िै। िममें से कुछ लोगों का उद्धार क्यों िो जाता ि, जिब कक अन्य लोगों को नरकवास करना पडता िै, इसके शलए परमात्मा की तनष्प्रयोजन रुधच के शसवाय और कोई कारण निींबताया जा सकता। नरकवास का दण्ड परमात्मा के न्याय को शसद्ध करता िै, क्योंकक िम सब दुष्ुट िैं। 'ऐपीसल टू हद रोमन्स' के कुछ स्थलों में सेण्ट पौल ने, सेण्ट ऑगस्टाइन ने और कैल्ल्वन ने सावभवौम पाप के दृल्ष्टकोण को स्वीकार ककया िै। परन्तु ुउस पाप के िोतेिुए भी िममें से कुछ का उद्धार िो जाता िै, यि बात परमात्मा की दया की सूचक िै। नरकवास का दण्ड और मुल्क्त, दोनों परमात्मा की अच्छाई को, उसके न्याय और उसकी दया को प्रकट करते िैं। गीता का झुकाव पैलेधगयस के शसद्धान्त की ओर िै।

'भगवान के प्रतत पूण वआत्मसमपणव में भी मनुष्य का प्रयत्न रिता िी िै। यि आत्मसमपणव संकल्पिीन या प्रयत्निीन निीं ंिो सकता। दया के शसद्धान्त की व्याख्या वविेषे चुनाव के रूप में निीं ंकी जा सकती, क्योंकक इस प्रकार की धारणा गीता के इस सामान्य मत से उल्टी पडती िै कक "सब प्राखणयों में भगवान् ्विींएक िै।"[138]

श्रद्धा भल्क्त का आधार िै। इसशलए ल्जन देवताओं में लोगों की श्रद्धा िै, उन सबको सिन कर शलया गया िै। बबलकुल प्रेम न िोने से कुछ प्रेम िोना अच्छा िै; क्योंकक यहद िम प्रेम निीं ंकरते, तो िम अपने-आप में िी
रुद्ध िो जाते िैं। इसके अततररक्त, तनम्नतर देवताओं को एक भगवान् ्के िी रूपों में स्वीकार ककया गया िै।'[139] इस तथ्य पर ज़ोर हदया गया िै कक जब कक अन्य भक्त लोग अन्य लक्ष्यों तक पिुंचते िैं, केवल वि, जो भगवान् ् का भक्त िोता िै, परम आनन्द को प्राप्त करता िै।140 जिंतक पूजा भल्क्त के साथ की जाती िै, वि हृदय को पववल करती िै और मन को उच्चतर चेतना के शलए तैयार करती िै। ि र कोई भगवान् ्की मूतत वअपनी इच्छाओंके
अनुरूप ढाल लेता िै। मरते िुए व्यल्क्त के शलए परमात्मा िाश्वत जीवन िै; जो लोग अन्धकार में भटक रि िैं उनके शलए वि प्रकिा िै।141 ल्जस प्रकार क्षक्षततज सदा िमारी आंखों के बराबर ऊंचाई पर िी रिता िै, चािे िम ककतना िी ऊंचा क्यों न चढ़ते चले जाएं, उसी प्रकार परमात्मा का स्वभाव भी िमारी अपनी चेतना के स्तर से ऊंचा ~~निीं ंिो सकता। तनम्नतर ल्स्थततयों~~ में िम धन और जीवन के शलए प्राथनवा करते िैं, और भगवान् ्को भौततक

138 9, 29; तुलना कील्जए,योगवाशिष्ठ 2, 6, 27

139 9, 23

140 7, 21। मध्व टीका करतेिुए शलखतेिैं : "अन्तो ब्रह्माहदभक्तानां मद्भक्तानामनन्तता।"

141 तुलना कील्जए:

रुजासु नाथः परमंहि भेषजं,

तमः प्रदीपा ववषमेषु संक्रमः ।

भयेषु रक्षा व्यसनेषु बान्धवो,

भवत्यगाधे ववषयाम्भशस प्लवः ॥

आवश्यकताओं को पूण वकरनेवाला माना जाता ि◌ै। बाद में चलकर धचन्तन में ि◌म अपने-आप को सत्प्रयोजनों के साथ, जो भगवान् ◌्के प्रयोजन ि◌ैं, एकात्म करते ि◌ैं। उच्चतम ल्स्थततयों में परमात्मा एक अल्न्तम सन्तुल्ष्ट बन जाता ि◌ै, वि अपर जो मानव-आत्मा को पूण वकर देता ि◌ै और भर देता ि◌ै। मधुसूदन ने भल्क्त की पररभाषा करते िुए इसे एक ऐसी मानशसक दिा बताया ि◌ै, ल्जसमें मन प्रेमाविे से प्रेररत ि◌ोकर भगवान् ◌्का रूप धारण कर लेता ि◌ै।"[142] जब परमात्मा के प्रतत भावनात्मक अनुराग अत्यधधक आनन्दमय ि◌ो उठता ि◌ै, तब भक्त-प्रेमी अपने-आप को परमात्मा में भुला देता ि◌ै।143' प्रह्लाद, ल्जसमें ि◌में परमात्मा में पूण वलीनता की आध्याल्त्मक दिा हदखाई पडती ि◌ै, परम पुरुष के साथ अपनी एकता को अशभव्यक्त करता ि◌ै। इस प्रकार का आत्मववस्मृततकारक साथ अतासमय अनुभव अद्वैतवादी अधधववद्या का समथकव निींमाना जा सकता। वपपरोक्षानुभव में या उस अल्न्तम दिा में, ल्जसमें व्यल्क्त परब्रह्म में लीन ि◌ुआ रिता ि◌ै, वि पृथक् व्यल्क्त के रूप में ि◌ेषे निीं रिता ।

भल्क्त ज्ञान की ओर ले जाती ि◌ै। रामानुज की दृल्ष्ट में यि स्मृतत-सन्तान ि◌ै। प्रपवत्त भी ज्ञान का ि◌ी एक रूप ि◌ै। जब भल्क्त प्रबल ि◌ोती ि◌ै, तब आत्मा में तनवास करनेवाला भगवान अपनी करुणा के कारण भक्त को ज्ञान का प्रकाि प्रदान करता ि◌ै। भक्त अपने-आप को भगवान के साथ घतनष्ठ रूप से संयुक्त अनुभव करता ि◌ै। भगवान् ◌्का अनुभव एक ऐसी सत्ता के रूप में ि◌ोता ि◌ै, ल्जसमें सब प्रततपक्ष लुप्त ि◌ो जाते ि◌ैं। वि अपनेअन्दर भगवान् ◌्को और भगवान् ◌्में अपने-आप को देखता ि◌ै। प्रह्लाद का कथन ि◌ै कक मनुष्य का सबसे बडा उद्देश्य भगवान् ◌्की परम भल्क्त और उसकी ववद्यमानताको सब जगि अनुभव करना ि◌ै।144 "जो नारी प्रेम करती ि◌ै, उसके शलए प्रेम के आविे में वप्रयतम के हृदय पर लेटना या प्रेम से वप्रयतम के चरणों को सिलाना, दोनों एक-सी बातें ि◌ैं।145 इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष के शलए, चािे वि समाधध में लीन रिे या पूजा द्वारा भगवान् ◌्की सेवा करे, दोनों एक-सी बातें ि◌ैं।" भक्त के शलए उच्चतर प्रकार की स्वतन्त्रता भगवान् ◌्के प्रतत आत्मसमपणव कर देनेमें ि◌ै।146 संसार के शलए भगवान् ◌्के काय वमें भाग लेना सब भक्तों का कत्तव्य ि◌ै।"[147]जो लोग अपनेकत्तव्य को छोड बैठते ि◌ैं और केवल 'कृष्ण-कृष्ण' कि◌कर भगवन का नाम जपते ि◌ैं, वे वस्तुतः भगवान् ◌्के ि◌ितु ि◌ैं और पापी ि◌ैं, क्योंकक धम व की रक्षा के शलए तो स्वयंभगवान् ◌्ने भी जन्म शलया था।"[148] जब भक्त सच्चेतौर पर अपने-आप को भगवान् ◌्के

---

142 द्रवीभावपूववकवाहि मनसोभगवदाकारता सववकल्पका वृवृत्तरूपा भल्क्तः।

143 "वृलूष्णलोग...कृष्ण के ध्यानमें लीन ि◌ो गए और अपनी पृथक् सत्ता को पूणतवया भुला बैठे।" भल्क्तरत्नावली ,16

144 एकान्तभल्क्तगोववन्दे यत्सवनव तदीक्षणम्।◌् भागवत 7, 7, 35

145 वप्रयतमहृदये वा खेलतु प्रेमरीत्या,
पदयुगपररचया ◌ंप्रेयसी वा ववधत्ताम्।◌्
वविरतु ववहदताथों तनववकवल्पे समाधौ,
ननुभजनववधौ वा तुल्यमेतद्वयं स्यात् ◌॥

146 लीनता ि◌ररपादादजे मुल्क्तररत्यशभधीयते ◌े।

147 तुलना कील्जए, मल्ज्झमतनकायः यो मां पस्सतत स धम्मंपस्सतत । जो मुझे ◌देखता ि◌ै, वि धम वको देखता ि◌ै।

148 स्वधमकवमववमुखुाः कृष्णकृष्णेततवाहदनः । ते ि◌रेडेवेषणो मूढ्ाः धमाथव वजन्म यद्धरेः ॥

प्रतत समवपतव कर देता ि◌ै, तब परमात्मा उसके मन की प्रमुख वासना बन जाता ि◌ै और तब भक्त जो भी कुछ करता ि◌ै, वि परमाला के यि के शलए करता ि◌ै। भगवद्गीता में भल्क्त अनुभवातीत के प्रतत सम्पूण व आत्मसमपणव ि◌ै। यि ि◌ै भगवान् ◌्में ववश्वास करना, उससे पे्रम करना, उसके प्रतत तनष्ठावान् ◌्ि◌ोना और उसमें लीन ि◌ो जाना। यि अपना पुरस्कार स्वयं ि◌ी ि◌ै। ऐसे भक्त में उच्चतम ज्ञान का सार और साथ ि◌ी साथ पूण व मनुष्य की ऊजाव भी ववद्यमान रिती ि◌ै।149

12. कममगाग ग

ककसी ग्रन्थ के प्रयोजन का तनधारवण करते ि◌ुए ि◌मे उस प्रश्न को देखना चाहिए, ल्जसे लेकर वि प्रारम्भ िोता ि◌ै (उपक्रम), और उस तनष्कष वको देखना चाहिए, ल्जसके साथ वि समाप्त ि◌ोता ि◌ै (उपसंिार)। गीता एक समस्या को लेकर प्रारम्भ ि◌ोती ि◌ै। अजुनव युद्ध करनेसे इनकार कर देता ि◌ै और कहठनाइयांउपल्स्थत करता ि◌ै। वि कम वसे दूरू रिने ◌ेऔर संसार को त्यागनेके शलए युल्क्तयां ◌ंप्रस्तुत करता ि◌ै, जो सुनने ◌ेमें ठीक जान पडती ि◌ैं। यि कम-वसंन्यास ि◌ा आदि वगीता की रचना के काल में कुछ सम्प्रदायों पर वविेषे रूप से प्रभाव जमाए ि◌ुए था। अजनव के मत को पररवततततव करना गीता का उद्देश्य ि◌ै। इसमें यि प्रश्न उठाया गया ि◌ै कक कम वअच्छा ि◌ै या कम व का त्याग। और ि◌ाल में यि तनष्कष वतनकाला गया ि◌ै कक कम वअच्छा ि◌ै। अजुनव यि घोषणा करता ि◌ै कक उसकी दुवुवधाएं समाप्त ि◌ो गई ि◌ैं और वि लडनेके शलए हदए गए आदेिों का पालन करेगा। सारे उपदेि में गुरु कृष्ण कम वकी आवश्यकता पर बल देता ि◌ै।150 वि अजुनव की समस्या को ि◌ल करनेके शलए संसार को 'भ्रम' और कम वको 'जाल' किकर निीं ◌ंटाल देता। वि इस संसार में मनुष्य को ऐसा पूण वसकक्रय जीवन बबताने का उपदेि देता ि◌ै, ल्जसमें उसका आन्तररक जीवन परमात्मा के साथ जुडा ि◌ुआ ि◌ो। इस प्रकार गीता कम वकरने ◌ेका आदेि ि◌ै। इसमें यि स्पष्ट ककया गया ि◌ै कक मनुष्य को न केवल सामाल्जक प्राणी के रूप में, अवपतु आध्याल्त्मक भववतव्यता वाले एक व्यल्क्त के रूप में क्या कुछ करना चाहिए। इसमें संन्यास की भावना के साथ-साथ कमकवाण्ड की

-ववष्णुपुराण। साथ ि◌ी देखखए भगवद्गीता, 9, 30; तुलना कील्जए,। जॉन 2, 9-11; 4, 18-20; तुलना कील्जए : "वि ि◌र कोई, जो ईसा-ईसा पुकारता ि◌ै, स्वग वके राज्य में प्रवेि निीं पाएगा; अवपतु वि पाएगा, जो परमवपता की इच्छा के अनुसार काम करता ि◌ै।"

149 भागवत में किा गया ि◌ै कक "भगवान वासुदेव के प्रतत की गई भल्क्त ि◌ीघ्र ि◌ी अकामता और ज्ञान को उत्पन्न कर देती ि◌ै, ल्जसके द्वारा भगवान् ◌्का दिनव प्राप्त ि◌ोता ि◌ै।"

वासुदेवेभगवतत भल्क्तयोगः प्रयोल्जतः।
जनयत्यािु वैराग्यंज्ञानं ◌ंयद्ब्रह्मदिनवम् ◌्॥

तुलना कील्जए :

ववमलमततववमवत्सरः प्रिान्तः सुचररतोऽखखलसत्त्वशमलभूतः ।
वप्रयहितवचनोऽस्तमानमायो वसतत सदा हृहद यस्य वासुदेवः ॥

-ववष्णुपुराण, 3.7

150 2,18,37;3,19;4,15;8,7;11,33;16,24;18,6,722.

धमतवनष्ठा वाले उन लोगों के ववषय में भी उधचत ढंग से चचावकी गई ि◌ै, जो इसकी नैततक संहिता के अन्तगतव आते ि◌ैं।151 सांख्य, जो गीता में ज्ञान का ि◌ी दूसूरा नाम ि◌ै, ि◌में कम वका त्याग करने को किता ि◌ै। एक सुववहदत दृल्ष्टकोण यि ि◌ै कक सब उत्पन्न ब्राणी कम वद्वारा बन्धन में फंसते ि◌ै और ज्ञान द्वारा उनका उद्धार ि◌ोता ि◌ै।152 प्रत्येक काय,व चाेि वि भला ि◌ो या बुरा, अपना स्वाभाववक पररणाम उत्पन्न करता ि◌ै और उसके कारण संसार में रीर धारण करना पडता ि◌ै और वि मुल्क्त में बाधा ि◌ै। प्रत्येक कम वकताव (करने वाले) के अिंकार और पृथृक्ता की भावना को पुष्ट करता ि◌ै और एक नई काय-वपरम्परा को चला देता ि◌ै। इसशलए यि युल्क्त प्रस्तुत की गई कक मनुष्यों को सब कमों को त्यागकर संन्यासी बन जाना चाहिए। ि◌ंकराचाय,व जो मुल्क्त प्राप्त करने के शलए ज्ञानमाग वका समथनव करता ि◌ै, यि युल्क्त प्रस्तुत करता ि◌ै कक अजुनव मध्यमाधधकारी व्यल्क्त था, ल्जसके शलए संन्यास ख़तरनाक ि◌ोता; इसशलए उसे कममवाग वको अपनानेका उपदिे हदया गया। परन्तु गीता भागवत धम व द्वारा ववकशसत ककए गए दृल्ष्टकोण को अपनाती ि◌ै, ल्जसमें ि◌में पूण वमुल्क्त प्राप्त करने ◌ेऔर इस संसार में काय व करते रिनेमें सियता देनेके शलए दुिरा प्रयोजन ववद्यमान ि◌ै।'153 दो स्थानों पर व्यास ने ि◌ुकुदेव से किा ि◌ै कक ब्राह्मण के शलए सबसे पुरानी पद्धतत ज्ञान द्वारा मुल्क्त प्राप्त करने और कम वकरते रिने की ि◌ै।154 ईिपितनषद् में भी इसी प्रकार का दृल्ष्टकोण अपनाया गया ि◌ै। यि मान लेना ग़लत ि◌ै कक हिन्दू ◌ूववचारधारा में अप्राप्य को प्राप्त करनेपर अत्यधधक बल हदया गया था और उसमें यि दोष था कक वि संसार की समस्याओंके प्रतत तनरपेक्ष रिी। जब ग़रीब लोग ि◌मारे दरवाज़ेपर नंगे और भूखे मर रि ि◌ों, उस समय ि◌म आन्तररक धमतवनष्ठा में लीन निीं ि◌ी सकते। गीता ि◌मसे किती ि◌ै कक ि◌म इस संसार में रिें और इसकी रक्षा करें।

गीता का गुरु कम वकी समस्या की अत्यधधक सूक्ष्मता की ओर संकेत करता ि◌ै, गिना कमणवो गततः।155 िमारे शलए कम वसे बचे ◌ेरि सकना सम्भव निीं। प्रकृतत सदा अपना काम करती रिती ि◌ै और यहद ि◌म यि सोचें कक इसकी प्रकक्रया को रोका जा सकता ि◌ै, तो ि◌म भ्रम में ि◌ैं। कम वको त्याग देना वांछनीय भी निीं। जडता

---

151 तुलना कील्जए, मिाभारत, ि◌ाल्न्तपव,व 348, 53 :

यतीनां ◌ंचावप यो धमःव स ते पूव वनृपोत्तम ।
कधथतो ि◌ररगीतासु समासववधधकल्ल्पतः ॥

152 कमणवा बध्यते ◌ेजन्तुः ववद्या तु प्रमुच्यते ◌े।

-मिाभारत, ि◌ाल्न्तपव,व 240, 7

153 नारायणपरो धमःव पुनरावृवृत्तदुलुभवः।
प्रववृत्तलक्षणश्चैव धमो नारायणात्मकः ॥
- मिाभारत, ि◌ाल्न्तपव,व 347, 80, 81।

कफर, प्रववृत्तलक्षण धमम्व ◌ृऋवषनारवायणोऽब्रवीत्।◌् विी, 217, 2

154 एषा पूवतवरा वृवृत्तब्राह्मणस्य ववधीयते ◌े।
ज्ञानवानेव कमाखवण कुवन्◌्सवलव शसद्धयतत ॥
- मिाभारत ि◌ाल्न्तपव,व 237, 1; 234, 29

साथ ि◌ी देखखए, ईिपितनषद्, 2 और ववष्णुपुराण, 6, 6, 12

155 4,17

स्वतन्त्रता निीं िै। कफर, ककसी कम वका बन्धन का गुण केवल उस कम वको कर देने-भर में िी तनहित निीं िै, अवपतु उस प्रयोजन या इच्छा में तनहित िै. ल्जससे प्रेररत िोकर कम वककया जाता िै। संन्यास का मतलब स्वयं कम वको त्याग देनेसे निीं िै, अवपतु उस कम वके पीछे ववद्यमान मानशसक ढ़ांचे को बदल देने से िै। संन्यास का अथ वै-इच्छा का अभाव। जब तक कम वशमथ्या आधारों पर आधाररत िै, तब तक वि व्यल्क्तक आत्मा को बन्धन म ैंडालता िै। यहद िमारा जीवन अज्ञान पर आधाररत िै, तो भले िी िम्मान िमें िरण ककतना िी परोपकारवादी क्यों न िो, वि बन्धन में डालनेवाला िोगा। गीता इच्छाओं से ववरक्त िोनेका उपदिे देती िै, कम वको त्याग देने का निीं।'[156]

जब कृष्ण अजुनव को युद्ध लडने ेका परामि वदेता िै, तो इसका अथ वयि निीं ंिै कक यि युद्ध की वैधता का समथनव कर रिा िै। युद्ध तो एक ऐसा अवसर आ पिा िै, ल्जसका उपयोग गुरु उस भावना की ओर संकेत करने ेके शलए करता िै, ल्जस भावना के साथ सब काय,व ल्जनमें युद्ध भी सल्म्मशलत िै, ककए जानेचाहिए। अजुनव िाल्न्तवादी रुख अपनाता िै और सत्य और न्याय की रक्षा के शलए िोने वाले युद्ध में भाग लेनेसे इनकार करता ै। वि सारी पररल्स्थतत को मानवीय दृल्ष्टकोण से देखता िै और चरम अहिसा का प्रततततनधध बन जाता िै। अन्त में वि किता िै:

“इससे भला तो म ैंयि समझता िंूं कक यहद मेरे स्वजन चोट करें, तो म ैंउनका तनःस्त्रि िोकर सामना करूं, और अपनी छाती खोल दूं उनके तीरों और बछो के सामने, बजाय इसके कक चोट के बदले चोट करूं। "[157]

अजुनव यि प्रश्न निीं ंउठाता कक युद्ध उधचत िै या अनुधचत। वि अनेक युद्धों में लड चुका िै और अनेक लिुओं का सामना कर चुका िै। वि युद्ध और उसकी भयंकरता के ववरुद्ध इसशलए िै, क्योंकक उसे अपने शमलों और सम्बल्न्धयों (स्वजनम) को मारना पडेगा।158 यि हिंसा या अहिंसा का प्रश्न निीिं, अवपतु अपने उन शमलों के ववरुद्ध हिंसा के प्रयोग का प्रश्न िै, जो अब ितु बन गए िैं। युद्ध के प्रतत उसकी हिचक आध्याल्त्मक ववकास या सत्व गुण की प्रधानता का पररणाम निीिं, अवपतु अज्ञान और वासना की उपज िै।'[159] अजुनव इस बात को स्वीकार करता िै कक वि दुबुलवता और अज्ञान के विीभूत िो गया िै।160 गीता िमारे सम्मुख जो आदि वउपल्स्थत करती िै, वि अहिंसा का िै; और यि बात सातवें अध्याय में मन, वचन और कम वकी पूण वदिा के, और बारिवें अध्याय में भक्त के मन की दिा के वणनव से स्पष्ट िो जाती िै। कृष्ण अजुनव को आविे या दुभाुवना के बबना, राग या द्वेष के बबना युद्ध करने को किता िै और यहद िम अपनेमन को ऐसी ल्स्थतत में ले जा सकें, तो हिंसा

156 अजुनव किता िै:

असक्तः सक्तवद् गच्छन् ्तनस्सङ्गो मुकुतबन्धनः ।

समः ित्ती च शमले च स वै मुक्तो मिीपते े॥

- मिाभारत, 12, 18, 31

157 1,46 पेडववन आनल्वड कृत अंग्रेजी अनुवाद ।

158 31,31; 1,27;1,37;1.45

159 18,7,8

160 2,7

असम्भव िो जाती िै। जो अन्याय िै, उसके ववरुद्ध िमें लडना िी चाहिए। परन्तु यहद िम घृणा को अपनेऊपर िावी िो जाने दें, तो िमारी पराजय सुतनल्श्चत िै। परम िाल्न्त या भगवान् ्में लीनता की दिा में लोगों को मार पाना असम्भव िै। युद्ध को एक तनदिनव के रूप में शलया गया िै। िो सकता िै कक कभी िमें वववि िोकर कष्टदायक काय वकरना पडे;े परन्तुवि ऐसे ढंग से ककया जाना चाहिए कक उससे एक पृथक् 'अि' की भावना पनपनेन पाए। कृष्ण अजुनव को बताता िै कक मनुष्य अपनेकतव्वयों का पालन करते िुए भी पूणतवा को प्राप्त कर सकता िै। यहद कम वको तनष्ठा के साथ और सच्चे हृदय से, उसके फल की इच्छा रखे बबना ककया जाए तो वि पूणतवा की ओर ले जाता िै। िमारे कम विमारे स्वभाव के पररणाम िोने ेचाहिए। अजुनव िै तो क्षल्त्नय जातत का गृिस्थ, परन्तु वि बातें संन्यासी की-सी करता िै; इसशलए निीं,ं कक वि बबलकुल वैराग्य और मानवता के प्रतत प्ेरेम की ल्स्थतत तक ऊपर उठ गया िै, अवपतु इसशलए कक वि एक शमथ्या करुणा के विीभूत िो गया िै। प्रत्येक व्यल्क्त को उस स्थान से ऊपर की ओर उठना िोगा, जिां कक वि खडा िै। गीता में लोक-संग्रि अथावत् ्संसार की एकता पर जो बल हदया गया िै, उनकी मांग िै कक िम अपनेजीवन की सारी पद्धतत को बदलें। िम दयालु, भले आदमी िैं, जो एक कुत्ते को भी सता जाते देखकर ववचशलत और कु्रुद्ध िो उठेंगे। िम ककसी भी रोतेिुए बच्चे या छेडी जाती िुई स्त्री की रक्षा के शलए दौडकर पिुंचेंगे। कफर भी िम बिुत बडे ेतैमानेपर लाखों ल्स्त्रयों और बच्चों के प्रतत अन्याय करते रिते िैं और अपने- आप को इस ववश्वास द्वारा सन्तोष दे लेते िैं कक िम अपने पररवार या नगर या समय के प्रतत अपना कत्तव्वय तनवाि रिे िैं। गीता में िमसे मानवीय भ्रातृत्ूव पर देनेके शलए किा गया िै। िंकराचाय वने इस बात की ओर संकेत ककया िै कक िंं भी युद्ध करनेका आदेि हदया गया िै, वि ंवि आदेिात्मा िै (ववधध) निीं िै, अवपतुउस समय ववद्यमान प्रथा का िी सूचक िै।'[161] गीता ऐसे ववत- पुल के काल की रचना िै, ल्जस प्रकार के कालों में से मानवता समयम पर गुज़रती रिती िै, ल्जनमें बौद्धधक, नैततक, सामाल्जक और राजनीततक, संधान एक-दूसूरे के साथ संघष वकर रिे िोते िैं; और जब इनमें उधचत रूप से इमेजन निीं िोता, तब प्रचण्ड उत्पात िोते िैं। स्वत:प्रमाण अच्छाई के ववधान, और उसमें बाधा डालनेवाली रूहढ़यों में चल रिे संघष वमें कभी-कभी अच्छाई िे ववधान को एक मनोवैज्ञातनक तथ्य और एक ऐततिाशसक प्रकक्रया बननेका अवसर देनेके शलए बल का प्रयोग करना आवश्यक िोता िै। िमें इस संसार में, जैसा कक यि िै, रिते िुए कम वकरना िोता िै और साथ िी इसे सुधारने ेके शलए भी भरसक प्रयत्न करना िोता िै। जीवन िमारा अधधक-से-अधधक जो कुछ ववगाड सकता िै, वि भी जब सामने िो, या जब िम सब प्रकार की िातन, िोक और अपमान में डूबे िुए िों, तब भी िमें ग्लातन से मशलन निीं िोना चाहिए। पहद िम गीता की तनष्कामता और समपणव की भावना के अनुसार काय वकरें और अपने िबुओंतक से प्ेरेम करें, तो िम संसार को युद्धों से मुल्क्त हदलानेमें सिायता करेंगे।162

---

161 तस्माद् युध्यस्वेत्यनुवादमानंनववध्धः, न ह्यत्त युद्धकतव्वयता ववधीयते।े गीता पर िंकराचाय वकी टीका, 2, 18

162 इस वैहदक प्राथनवा से तुलना कील्जए : "यिां ंपर जो कुछ भी घोर िै, कू्रूर िै और पापमय िै, वि सद िान्त िो जाए। सब वस्तुएं िमारे शलए कल्याणकारी और िाल्न्तपूण विो जाएं।"
पहदि घोरं, यहदि कू्रूर यहदि पापम्,्
तच्छान्तं,ं तल्च्छवं, सवमेवव िमस्तु नः ।

यहद िम कम वके फल में अनासल्क्त और परमात्मा के प्रतत समपणव की भावना ववकशसत कर लें, तब िम कम वकरते रि सकतेिैं। जो व्यल्क्त इस भावना से काय वकरता िै, वि तनत्य-संन्यासी िै।163' जब जो कुछ उसे प्राप्त िोता िै, वि उसे ग्रिण कर लेता िै और जब आवश्यकता िोती िै, तब वि बबना दु:ख से उसे त्याग भी देता िै।

यहद कम वकी पद्धतत के प्रतत ववरोध िै, तो वि स्वयं कम वके प्रतत ववरोध निीं िै, अवपतु ुकम वद्वारा मुल्क्त पाने के शसद्धान्त के प्रतत ववरोध िै। यहद अज्ञान या अववद्या मूल बुराई िै, तब ज्ञान िी उसका सबसे बहढ़या इलाज िै। ज्ञान की प्राल्प्त ऐसी वस्तु निीं िै, जो काल में उपलदध िो सकती िो। ज्ञान सदा ववुिद्ध और पूण वि और वि ककसी कम वका फल निीं। एक सनातन उपलल्दध, ल्जसमें कोई पररवतनव निीं ंिोता, ककसी क्षखणक कम वका पररणाम निीं िो सकती। परन्तु कम वज्ञान के शलए मनुष्य को तैयार करता िै। 'सनत्सुजातीय' पर टीका करते िुए िंकराचाय वने किा िै: "मुल्क्त ज्ञान द्वारा प्राप्त िोती िै; परन्तुज्ञान हृदय को पववत्र ककए बबना उत्पन्न निीं ंिो सकता। अतः हृदय की िुद्धधध के शलए मनुष्य को श्रुततयों और स्मृततयों द्वारा ववहित वाणी, मन और िरीर के सब कम वकरने ेचाहिए और उन्िें परमात्मा को समवपतव कर देना चाहिए।"164 इस प्रकार की भावना से ककया गया कम वयज्ञ या बशलदान बन जाता िै। यज्ञ का अथ वि- परमात्मा के तनशमत्त पववत्र बनाना। यि वंचन या आत्मबशलदान निीं िै, अवपतु स्वतःस्फूत वआत्मदान िै; एक ऐसी मित्तर चेतना के प्रतत आत्मसमपणव, ल्जसकी सीमा िम स्वयं िैं। इस प्रकार के आत्मसमपणव द्वारा मन मशलनताओं से िुद्ध िो जाता िै और वि भगवान् ्की िल्क्त और ज्ञान में भागीदार बन जाता िै। यज्ञ या बशलदान की भावना से ककया गया कम व बन्धन का कारण निीं ंरिता।

भगवद्गीता िमारे सम्मुख एक ऐसा धम वप्रस्तुत करती िै, ल्जसके द्वारा कम वके तनयम से, कम वऔर उसके फल की स्वाभाववक व्यवस्था से, ऊपर उठा जा सकता िै। लोकोत्तर प्रयोजन की ओर से प्राकृततक व्यवस्था में कोई मनमाने जातक्षप का तत्व ववद्यमान निीं िै। गीतां का गुरु वास्तववकता के जगत् ्को पिचानता िै, ल्जसमें कम वका तनयम लागू निीं ंिोता और यहद िम अपना सम्बन्ध उस जगत् ्के साथ जोड लें, तो िम अपने गम्भीरतम अल्स्तत्व में स्वतन्त्र िो जाएंगे। कम वकी श्रृंखला को यिीं और अभी, अनुभवजन्य संसार के प्रवाि में रितेिुए तोडा जा सकता िै। तनष्कामता और परमात्मा में श्रद्धा को पुष्ट करके िम कम वके स्वामी बन जाते िैं।

जो ज्ञानी ऋवष परम ब्रह्म में लीन िोकर जीवन व्यतीत करता िै, उसके शलए यि किा जाता िै कक उसे कुछ करने को िेषे निीं िै, तस्य काय वन ववद्यते ।165 सत्य के द्रष्टा को कुछ भी करनेया पाने की मित्त्वाकांक्षा

163 5, 3; याज्ञवल्क्य स्मृतत से भी तुलना कील्जए, जिांसंन्यासी की दिा का वणनव करने के बाद यि किा गया िै कक वि गृिस्थ 'भी, जो ज्ञान का उपासक िै और सत्यभाषी िै, (संन्यास ग्रिण ककए बबना भी) मुल्क्त प्राप्त करता िै। 3, 204-5

164 ज्ञानेनैव मोक्षः शसद्धयतत, ककन्तु तदेव ज्ञानं ंसत्त्विुद्धधं ंबबना नोत्पद्यते... तस्मात् ्सत्त्विुद्धयथ वसवेश्वरम् ्उद्हदश्य सवाखवण वाङ्मनः कायलक्षणातन श्रौतस्माताातन कमाखवण समाचरेत्।्

165 3,17

षि निीं रिती। जब सब इच्छाएं नष्ट िो जाती िैं, तब काय वकर पाना सम्भव निीं िै। उत्तरगीता में इस आपवत्त (ऐतराज़) को इस प्रकार प्रस्तुत ककया गया िै : "जो योगी ज्ञान का अमृतृ पीकर शसद्ध िो गया िै, उसके शलए कोई कत्तव्वय िेष निींरिता; यहद कत्तव्वय िेष रिता िै, तो वि सत्य का वास्तववक ज्ञानी निीं।"[166] सारा ज्ञान, सारा प्रयत्न परम ज्ञान को, उस अल्न्तम सरलता को प्राप्त करने का साधन िै। प्रत्येक कम वया उपलल्दध इस अल्स्तत्वमान् िोने के कम वकी अपेक्षा कम िै। सारा कम वसदोष िै।167

किराचाय वने इस बात को स्वीकार ककया िै कक ज्ञान की प्राल्प्त के बाद भी मृतृयुपयन्वत काय वकरते रिने में कोई ऐतराज़ की बात निीं।'[168] इस प्रकार के व्यल्क्त को केवल सैद्धाल्न्तक दृल्ष्ट से सब कतव्वयों से ऊपर किा जाता िै।169 इसका अथ विै कक शसद्धान्ततः आध्याल्त्मक स्वतन्त्रता और व्याविाररक काय वके बीच कोई ववरोध निीं। यद्यवप अगर ठीक-ठीक किा जाए, तो ज्ञानी ऋवष को करनेके शलए कुछ बाकी निींबचता, ठीक वैसे िी, जैसे परमात्मा को करनेके शलए कुछ बाकी निीं िै, कफर भी ज्ञानी ऋवष और परमात्मा, दोनों िी संसार के तनविाव और प्रगतत, लोकसंग्रि, के शलए काय वकरते िैं। िम यि भी कि सकतेिैं कक काय वकरने वाला परमात्मा िै, क्योंकक व्यल्क्त तो अपनी सब इच्छाओं से अपने-आप को खाली कर चुका िै।'[170] वि कुछ निीं करता, न ककंधचत् करोतत । क्योंकक उसका कोई बाह्य प्रयोजन निीं िोता, इसशलए वि ककसी वस्तु पर दावा निीं करता और अपने-आप को स्वतःप्रवृवृत्त के सम्मुख समवपतव कर देता िै। परमात्मा उसके द्वारा काय वकरता िै और यद्यवप इस प्रकार के व्यल्क्त के शलए कोई भी पाप कर पाना असम्भव िै, कफर भी उसके बारे में पाप और पुण्य का प्रश्न िी निीं उठता।'[171] आत्म की िाल्न्त में ल्स्थर िोकर वि सब कमों का करने वाला, कृत्स्नकमकृवत्, बन जाता िै। उसे ज्ञात रिता िै कक वि परमात्मा के काय वका केवल साधन-मान िै, तनशमत्तमात्रम172 । जब अजुनव का लम्बा ववषाद फलीभूत िोता िै, तब उसे पता चलता िै कक परमात्मा की इच्छा में िी उसकी िाल्न्त तनहित िै।'[173] परमात्मा के तनयन्त्रण के अधीन रिकर प्रकृतत अपना काम करती रिती िै। व्यल्क्त की बुद्धध, मन और इल्न्द्रयां मिान् सावभवौम प्रयोजन के शलए और उसी के प्रकाि में काय वकरती िैं। जय या पराजय उसे ववचशलत निीं करती,

---

166 ज्ञानामृतेृन तृपृतस्य कृतकृत्यस्य योधगनः ।न चाल्स्त ककंल्चचत् कतव्वयमल्स्त चेन्न स तत्ववववत् ॥ 1, 23

167 न्यायसून, 1, 1, 18

168 ब्रह्मसूत्र पर िांकरभाष्य, 3, 3, 32; भगवद्गीता पर िंकराचाय वकी टीका, 2, 11; 3, 8 और 20। ल्जन लोगों को यि भय लगा रिता िै कक उनका ध्यान भगवान् के धचन्तन से ववचशलत िोकर इधर-उधर न चला जाए, वे स्वभावतः बाह्य कमों को करने से हिचकते िैं।

169 अलङ्कारो िमस्माकं यद्ब्रह्मात्मावगतौसत्या सवककवतव्वयतािातनः । ब्रह्मसूलू पर िांकरभाष्य, 1, 1,4

170 जैशमनीय उपतनषद् : तू (परमात्मा) उसका करनेवाला िै: त्वं वै तस्य कताशवस। "िमारे अन्दर ईसा का मन िै।" (कोररल्न्थयतयन्स 2, 16); "अब म ैंजीववत निीं िै, परन्तु मेरे रूप में ईसा जी रिा िै।" (गैलैशियन्स 2, 20)। टॉलर: "अपने कायों द्वारा वे कफर निीं जा सकते यहद ककसी व्यल्क्त को परमात्मा के पास आना िो, तो उसे अपने-आप को सब कमों से ररक्त करना िोगा। अकेले परमात्मा को कम वकरने देना िोगा।" ॉलोइंग ऑ॒ क्राइस्ट, 16, 17, सेण्ट टॉमस ऐक्वाइनास: "ल्जस मनुष्य का नेतृतृव पववत्न आत्मा कर रिी िै, उसके काय वउसके अपने न िोकर पववत्न आत्मा के काय विैं।"-सम्मा धथयोलोल्जया, 2, 1, 93-6 और 1 ।

171 सेण्ट जॉन के इन िददों सेतुलना कील्जए: "जो भी कोई परमात्मा से उत्पन्न िुआ िै, वि पाप निीं करता।"

172 11,33

173 18,73

क्योंकक वि सावभवौम आत्मा की इच्छा से िी िोती िै। जो भी कुछ घहटत िोता िै, उसे व्यल्क्त राग या द्वेष के बबना स्वीकार कर लेता िै। वि द्वैतों से ऊपर उठ चुका िोता िै द्वन्द्वातीत) । वि उस कतव्वय को.ल्जससे उसकी आिा की जाती िै कत्तव्वय, कम,व व्यथा के बबना स्वतंत्रता तथा स्वतःस्फतत के साथ करता िै।

सांसाररक मनुष्य संसार की ववववध गततववधधयों में खोया रिता िै। वि अपने-आप को पररवतनिील (क्षर) संसार में छोड देता िै। तनश्चलतावादी सामा पीछे िटता िुआ परम ब्रह्म (अक्षर) की तनःदिदता में पिुंच जाता िै। परन्तु गीता का आदि वमनुष्य इन दोनों चरम सीमाओं से आगे पिुंचता िै और पुरुषोत्तम की भांतत काम करता िै, जो इस संसार में फंसे बबना इसकी सब सम्भावनाओं में मेल बबठाता िै। वि कमों का करनेवाला िै और कफर भी करने ेवाला निीं, कतारवम् ्अकतारवम्।् भगवान् ्अश्रान्त और सकक्रय काय वकरने ेवाले का आदि वि, जो अपने कम वद्वारा अपनी आत्मा की अखण्डता को खो निीं ंबैठता। मुक्त आत्मा कृष्ण और जनक की भांतत पिश्चत रूप से स्वतन्त्र िै।"[174] उनक अपने कत्तव्वयों का पालन करता था और संसार की घटनाओं से क्षुदध निीं ं िोता था।175 मुक्त आत्माएं उन लोगों के पथ-प्रदिनव के शलए काय वकरती िैं, जो ववचारिील लोगों द्वारा स्थावपत ककए गए प्रमापों का अनुगमन करते िैं। वे इस संसार में रिती िैं, ककन्तुअपररधचतों की तरि। वे िरीर में रिते िुए

---

174 ईिोपतनषद् िमसे किती िै कक िम सारे संसार को भगवान् ्के तनवास-स्थान के रूप में देखें और कम वकरतेरिें, क्योंकक इस प्रकार के कम विमें बन्धन में निीं डालते न कम वशलप्यते ेनरे। तुलना कील्जए : यः कक्रयावान् ्स पल्ण्डतः। मिाभारत, वनपव,व 312, 108। आनन्दधगरर ने कठोपतनषद् पर िंकराचाय वके भाष्य पर हटप्पणी करतेिुए किा िै, 2, 19:

सवदवा मुक्तः कुवतवो नाल्स्त कतृतवा।

ववेकी अलेपवादमाधश्रत्य श्रीकृष्णजनको यथा ॥

'अध्यात्म रामायण' में राम लक्ष्मण से किता िै: "जो व्यल्क्त इस संसार की धारा में धगर पडा िै। यि अदूवूषत रिता िै, भले िी बाह्य रूप से वि सब प्रकार के कम वकरता भी रिे।"

प्रवािपतततः काय ांकुवन्वनवप न शलप्यते।

बािो सवलव कतृत्ववमावन्नवप राघव ॥

175 "सचमुच मेरी वि सम्पवत्त असीम िै, ल्जसमें मेरा कुछ भी निीं िै। यहद शमधथला जलकर राख िो जाए, तो भी मेरा कुछ भी निीं जलेगा।"

अनन्तंवत् ्मे ववत्तं ंयस्य मे नाल्स्त ककंचन।

शमधथलायांप्रदीप्तायां ंन मे ककंधचत् ्प्रदाह्यते े॥

-मिाभारत, िाल्न्तपव,व 7, 1

िंकराचाय वका कथन िै कक बडे-बडे ेसन्त िाल्न्त में जीते िैं। वसन्त ऋतु की भांतत वे संसार को कल्याण प्रदान करतिैं। अपने-आप संसार के वविाल समुद्र को पार कर चुकने के कारण वे अन्य लोगों को उसे पार करने में समथ वबनाते िैं और ऐसा करने में उनका कोई प्रयोजन निीं िोता।

िान्ता मिान्तो तनवसल्न्त सन्ताः वसन्तवल्लोकहितंचरन्तः।

तीणाःव स्वयं ंभीमभवाणवंजनानितुनान्यानवप तारयन्तः ॥

सब कहठनाइयों को सिती ि ैं।176 और कफर भी वे ि ेरीर के शलए निंींजीतीं। उनका अल्स्तत्व पृथ्वी पर ि ोता ि ै, परन्तु उनकी नागररकता स्वग वकी ि ी ि ोती ि ै। "ल्जस प्रकार अपल्ण्डत व्यल्क्त अपनेकाय वके प्रतत अनुराग ि ोने ेके कारण कम वकरता ि ै, उसी प्रकार पल्ण्डत व्यल्क्त को भी केवल लोक-संग्रि करने ेकी इच्छा से आसल्क्त के बबना कम वकरना चाहिए। "[177]

जिां ंबौद्ध आदि वधचन्तन के जीवन को ऊंचा बताता ि ै, विांगीता उन सब आत्माओंको अपनी ओर आकृष्ट करती ि ै, ल्जनमें कम वऔर अशभयान की लालसा ि ै। कम वआत्मपूणतवा के शलए ककया जाता ि ै। ि में अपने उच्चतम और अन्ततमव अल्स्तत्व के सत्य को खोज तनकालना ि ोगा और उसके अनुसार जीना ि ोगा और अन्य ककसी बाह्य प्रमाप का अनुगमन निंींकरना ि ोगा। ि मारा स्वधम,व बाह्य जीवन, और ि मारा स्वभाव, आन्तररक अल्स्तत्व, एक-दूसूरे के अनुकूल ि ोना चाहिए। केवल तभी कम वस्वतन्त्र, सरल और स्वतःप्रवृतूत ि ो सकेगा। परमात्मा के संसार में ि म परमात्मा की इच्छा के अनुकूल केवल तभी जी सकतिें, जब कक ि म अद्ववतीयता की बिमूल्य अपाधथव ज्योतत को जगाए रखें। अपने-आप को भगवान् ्के ि ाथों में छोडकर अपने-आप को उसके उपयोग के शलए पूण वसाधन बनाकर ि म उच्चतम आध्याल्त्मक ज्ञान प्राप्त कर लेते ि ैं।

कमयवोग गीता के अनुसार जीवन के लक्ष्य तक पिुंचने की एक वैकल्ल्पक पद्धतत ि ै और इसका अन्त ज्ञान में ि ोता ि ै।178 इस अथ वमें ि ंकर का यि मत ठीक ि ै कक कम वऔर भल्क्त आध्याल्त्मक स्वतंत्रता के साधन िैं। परन्तुआध्याल्त्मक स्वतन्तता सकक्रयता के साथ असंगत निंीं ंि ै। कत्तव्वय के रूप में काय वसमाप्त ि ो जाता ि ै, परन्तु सारी गततववधध समाप्त निंीं ंि ो जाती। मुक्त व्यल्क्तयों की गततववधध स्वतन्त और स्वतःस्फूत विोती ि ै और परवितात्मक निंीं ि ोती । भले उन्िेंज्ञान प्राप्त ि ो चुका ि ै, कफर भी वे संसार के कल्याण के शलए, काय वकरते िैं।179 काय वसाधन के रूप में निंीं ककया जाता, अवपतु वि एक लक्षण बन जाता ि ै। जब ि म संन्यास आश्रम ग्रिण कर लेते ि ैं, तब भी अन्य आश्रमों के कतव्वय तो छूट जाते ि ैं, परन्तु संन्यास आश्रम के कत्तव्वय निंीं ंछूटते े। सामान्य गुण (साधारण घमी)-ल्जनका पालन करना सबके शलए आवश्यक ि ै, जैसे दया का आचरण- अपनाए ि ी जाते ि ैं। इस प्रकार कम वऔर मुल्क्त एक-दूसूरे से असंगत निंींिैं।180

---

176 भागवत से तुलना कील्जए: 'भले आदमी संसार के दुःखों के शलए कष्ट सिते िैं। 'प्रायो लोकतापेन तप्यन्ते ेसाधवो जनाः। वे अपने-आप को जलाते ि ैं, ल्जससे वे संसार को प्रकाशित कर सकें।

177 3, 25

178 4, 33

179 भगवद्गीता पर ि ंकराचाय वको टीका, 3, 20

180 मण्डन शमश्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रह्मशसद्धध' में कम वऔर ज्ञान के सम्बन्ध के ववषय में सात ववशभन्न मतों का उल्लेख ककया ि ै: (1) वेद के कमकवाण्ड में बताई गई ववधधयांमनुष्यों को उनको स्वाभाववक गततववधधयों से ववमुख करके धचन्तनात्मक गततववधध की ओर ले जाती ि ै, जो आत्मज्ञान के शलए आवश्यक बताई गई ि ै; (2) ये ववधधयां उपभोग की प्रकक्रया द्वारा इच्छाओं ंका नाि करने के शलए बनाई गई ि ैं और इस प्रकार ये धचन्तन के शलए वि माग वतैयार करती ि ैं, जो आत्मज्ञान की ओर ले जाता ि ै; (3) कम वका पालन करना तीन ऋणों (ऋणलय) से उऋण ि ोने के शलए आवश्यक ि ै, जो आत्मज्ञान के शलए पिली आवश्यक ि त वि ै; (4) ववहित ववधधयों का एक दूसूरा प्रयोजन (संयोगपृथृकत्व) ि ै कक वे उनके द्वारा प्रत्याशित इच्छाओं ंको पूरा करती ि ैं और मनुष्य को आत्मज्ञान के शलए तैयार करती ि ैं; (5) सम्पूण वकम वका उद्देश्य मनुष्यों

गीता ने उन अनेक सम्प्रदायों और संहिताओं को अपना शलया ि◌ै, जो उससे पिले ि◌ी एक-दूसूरे से ि◌ोड कर रिी थीं, और उनको एक ऐसे धम वके पिलुओंके रूप में रूपान्तररत कर हदया ि◌ै, जो किीं ◌ंअधधक आन्तररक, स्वतन्त्र, सूक्ष्म और गम्भीर ि◌ै। यहद लोकवप्रय देवताओं की पूजा की जानी ि◌ै, तो यि भी साथ ि◌ी समझ लेना ि◌ोगा कक वे केवल एक ि◌ी भगवान् ◌्के वववववध रूप-माल ि◌ै। यहद बशलयां दी जानी ि◌ैं, तो वे आल्त्मक ि◌ोनी चाहिए, भौततक पदाथों की निीं। आत्मसंयम का जीवन या अनासक्त कम वयज्ञ ि◌ै। वेद उपयोगी ि◌ै, परन्तु गीता के उपदिे के ववस्तृतृ जलप्लावन की तुलना में वि एक पोखर के समान ि◌ै। गीता ब्रह्म और आत्मा के उस शसद्धान्त का उपदिे देती ि◌ै, ल्जसे उपतनषदों के अनुयायी खोजते ि◌ैं और ल्जसका वणनव करते ि◌ैं। धचत्तवृवृत्त को केल्न्द्रत करने ◌ेका योग उपयोगी ि◌ै, परन्तु भगवान् ◌्योगेश्वर ि◌ै। सांख्य का द्वैतवाद अद्वैतवादके रूप में अपना शलया गया ि◌ै, क्योंकक पुरुष और प्रकृतत सवोच्च स्वामी पुरुषोत्तम के ि◌ी दो स्वभाव ि◌ैं। विी एक ि◌ै, जो दया प्रदान करता ि◌ै। विी भल्क्त का सच्चा ववषय ि◌ै। उसी के शलए सब काम ककया जाना चाहिए। उद्धार करने ◌ेवाला ज्ञान उसी का ज्ञान ि◌ै। धम वके परम्परागत तनयमों का पालन ककया जाना चाहिए, क्योंकक उन्िोंनेउसे स्थावपत ककया ि◌ै और विी नैततक व्यवस्था को बनाए रखता ि◌ै। तनयम अपने-आप में कोई साध्य निीं ◌ंि◌ै, क्योंकक अल्न्तम लक्ष्य तो भगवान् ◌् के साथ ऐक्य स्थावपत करना ि◌ै। गीता का गुरु उस समय प्रचशलत ववशभन्न सम्प्रदायों में मेल स्थावपत करता ि◌ै और ि◌मारे सम्मुख एक ऐसी सवागां-सम्पूण विाल्न्त-योजना प्रस्तुत करता ि◌ै, जो स्थानीय और अस्थायी निीं ◌ंि◌ै, अवपतु सब कालों और सब मनुष्यों के शलए ि◌ै। वि बाह्य ववधधयों या कट्टर शसद्धान्तात्मक धारणाओं पर ज़ोर निीं ◌ंदेता, अवपतु मानव-स्वभाव और अल्स्तत्व के मूलभूत शसद्धान्तों और मिान् ◌्तथ्यों पर बल देता ि◌ै।

13. वास्तविक लक्ष्य [181]

गीता उस आल्त्मक जीवन की एकता पर बल देती ि◌ै, ल्जसे दितवनक ज्ञान, भल्क्तपूण वप्रेम या पररश्रमपूण वकम वके रूप में निींबांटा जा सकता। कम,व ज्ञान और भल्क्त एक-दूसूरे के पूरक ि◌ैं, तब भी जब कक ि◌म लक्ष्य की खोज कर रिे ि◌ोतेिैं और लक्ष्य को प्राप्त कर लेनेके बाद भी । यद्यवप ि◌म एक ि◌ी पद्धतत पर ि◌ोइल रिे

को ि◌ुद्ध करना और उन्िेंआत्मज्ञान के शलए तैयैार करना ि◌ै; (6) आत्मज्ञान को एक ि◌ोधक सियक तत्व के रूप में समझा जाना चाहिए, जो कमककवांड में ववहित ववशभन्न गततववधधयों की आवश्यकताओंको पूरा करनेमें सियक ि◌ै; (7) कम वऔर ज्ञान एक-दूसूरे के ववरोधी ि◌ैं।

मण्डन शमश्र का झुकाव चौथे और पांचवें दृल्ष्टकोणों को अपनाने की ओर ि◌ै। ववधधयों को पूरा करना सनातन स्वतःप्रकाशित आत्मा की ज्योतत को अल्न्तम अशभव्यल्क्त को लाने में, उपतनषदों के मिावाक्यों से तनकलने वाले ि◌ुदद ज्ञान की ववषय-वस्तु के धचन्तन में अत्यन्त मध्यवान सियक ि◌ै । जिां ◌ं संन्यासी लोग ववुिुद्ध धचन्तनात्मक पद्धतत द्वारा स्मात ववववधधयों को पूरा करते ि◌ुए आत्मज्ञान प्राप्त करते ि◌ैं, विां गृिस्थ लोग ववधधयों इत्याहद को पूरा करनेके द्वारा इस लक्ष्य तक पिुंचते ि◌ैं।

181 पूणतवा का लक्ष्य सवोच्च को (3, 19) , मुल्क्त को (3, 31; 4, 15) ि◌ाश्वत ल्स्थतत को (18, 56), उस माग वको ल्जससे ◌ेकोई वापस निीं लौटता (5, 17) पूणतवा को (12, 10) परम ि◌ाल्न्त को (4, 39) परमात्मा में प्रविे को (4,9,10 और 24), परमात्मा के साथ संयोग को (6, 28) ब्रह्म में ववश्राम को (2, 72) ब्रह्मभाव की प्राल्प्त को (14, 26) और ब्र रूपान्तरण को (5, 24) बताया गया ि◌ै।

िैं, कफर भी ल्जस वस्तु की िम खोज कर रिे िोते िैं, वि एक िी िै। िम पवतव के शिखर पर भले िी अलग-अलग मागों से चढ़े, परन्तु धारक की में हदखाई पडने ेवाला दृश्य सबके शलए एक जैसा िोगा। ज्ञान की एक सिरीर में कल्पना की गई िै, ल्जसका िरीर हृदय प्ेरेम िै। योग, ल्जसकी ववशभन्न अवस्थाएं ज्ञान और ध्यान, प्ेरेम और सेवा िैं अन्धकार से प्रकाि की ओर और मृतूयु से अमरता की ओर ले जाने वाला प्राचीन माग वि।

लोकातीतता का लक्ष्य ब्रह्मलोक तक पिुंचने ेके रूप में या ब्रह्मभाव या ब्राह्मी ल्स्थतत को प्राप्त करने के रूप में प्रकट ककया गया िै। इसका एक पक्ष िै संसार से पृथक् िो जाना (कैवल्य) । गीता में इन सभी दृल्ष्टकोणों का उल्लेख िै। अनेक स्थानों पर ऐसा सुझाव हदया गया िै कक मुल्क्त की दिा में द्वैत लुप्त िो जाता िै और मुक्त आत्मा सनातन आत्मा के साथ शमलकर एक िो जाती िै। यि ऐसी दिा िै, जो सब गुणों और वविेषेताओं से परे िै, दु:खरहित िै, स्वतन्त्र और िाल्न्तमय िै। यहद िरीर िमारे साथ धचपटा रिेगा, तो प्रकृतत तब तक काय वकरती रिेगी, जब तक कक िरीर उतारी िुई केंचुली की भांतत अलग निीं कर हदया जाता। जीवन्मुक्त या स्वतन्त्र िुई आत्मा िरीर में रिते िुए भी बाह्य संसार की घटनाओं के प्रतत कक्रया तो करती िै, परन्तुवि उनमें उलझती निीं। इस दृल्ष्टकोण के अनुसार, आत्मा और िरीर दो पृथक् वस्तुएं िैं, ल्जनका द्वैत शमट निींसकता और िम ऐसे ककसी कम वके ववषय में सोच भी निीं ंसकते, जो मुक्त आत्मा द्वारा ककया गया िो।

गीता में मुख्य रूप से इस प्रकार के दृल्ष्टकोण पर जोर निीं हदया गया। गीता की दृल्ष्ट में आध्याल्त्मक स्वतन्त्रता की दिा िमारी सम्पूण वप्रकृतत को अमर ववधान और परमात्मा की िल्क्त में रूपान्तररत कर देनेमें तनहित िै। परमात्मा के साथ समानता (साधम्य)व पर ज़ोर हदया गया िै, एकरूपता या तोदात्म्य (सायुज्य) पर निीं। मुक्त आत्मा हदव्य ज्ञान से स्फूतत वप्राप्त करती िै और हदव्य संकल्प से उसे गतत शमलती िै। वि ब्रह्मभाव की ल्स्थतत प्राप्त कर लेती िै। उसकी िुद्ध प्रकृतत ब्रह्मतत्व में घुल-शमल जाती िै। जो भी कोई इस लोकातीत दिा को प्राप्त कर लेता िै, वि योगी, शसद्धपुरुष, ल्जतात्मा, युक्तचेता, एक अनुिाशसत और लयबद्ध प्राणी बन जाता िै, ल्जसके शलए सनातन सदा वतमवान रिता िै। वि ववभक्त तनष्ठाओं और कमों से मुक्त िो जाता िै। उसके िरीर, मन और आत्मा, फ्रायड के िददों में चेतन, पूवचेवतन और अचेतन, तनदोष रूप से साथ शमलकर काय व करते िैं और एक ऐसी लय को प्राप्त कर लेते िैं, जो आनन्द की भावसमाधध में, ज्ञान के आलोक में और ऊजाव की प्रबलता में अशभव्यक्त िोती िै। मुल्क्त अमर आत्मा का मत्य वमानवीय जीवन से पृथक्करण निीं,ं अवपतु सम्पूण व मनुष्य का रूपान्तरण िै। यि मानवीय जीवन के तनाव को नष्ट करके प्राप्त निींकी जाती, अवपतु उसे रूपान्तररत करके प्राप्त की जाती िै। उसकी सम्पूण वप्रकृतत सावभवौम के हदनव के प्रतत ववनत िो जाती िै और ववधचत्ल आभा से भर उठती िै और आध्याल्त्मक प्रकाि से दमकने लगती िै। उसके िरीर, प्राण और मन लीन निीं ंिो जाते, अवपतु वे िुदुध िो जाते िैं और हदव्य प्रकाि के साधन और सांचेबन जाते िैं और वि स्वयंअपनी सवश्रेेवष्ठ कृतत बन जाता िै। उसका व्यल्क्तत्व अपनी पूणतवा तक, अपनी अधधकतम अशभव्यल्क्त तक ऊपर उठ जाता िै; और िुदुध और मुक्त, प्रफुल्ल और भारमुक्त िो जाता िै। उसकी सब गततववधधयांसंसार को संगहठत रखनेके शलए िोती िैं, धचकीषुलवोकसंग्रिम्।ं'[182] मुक्त आत्माएं सारे संसार के उद्धार का भार अपनेऊपर ले लेती िैं। आत्मा की गततकता का और इसके सदा नये-नये ववरोधों का अन्तंसंसार का अन्त िोने ेपर िी िो सकता िै।
182

3,25

द्वन्द्वात्मक ववकास तब तक निीं ंरुक सकता, जब तक कक सारा संसार अज्ञान और बुराई से मुक्त न िो जाए। सांख्य- मत के अनुसार वे लोग भी, जो कक उच्चतम ज्ञान और मुल्क्त के अधधकारी िैं, दूसूरों का कल्याण करने के ववचार से इस संसार का पररत्याग निीं ंकरते। अपने-आप को प्रकृतत के िरीर में लीन करके और उसके उपािरों का उपयोग करते िुए वे प्रकृततलीन आत्माएं संसार के हित का साधन करती िैं। संसार को अपने आदि वकी ओर आगे बढ़ना िै, और जो लोग अज्ञान और मूढ़ता में खोए िुए िैं, उनका उद्धार मुक्त आत्माओं के प्रयत्न और दृष्टान्त, ज्ञान और बल द्वारा िोना िै।183 ये चुने िुए लोग मानव जातत के स्वाभाववक नेता िैं। िमारे आध्याल्त्मक अल्स्तत्व के कालीन आधार में लंगर जमाकर मुक्त आत्मा (सनातन व्यल्क्त) जीव-लोक के शलए कम वकरता िै।184 िरीर, प्राण और मन की व्यल्ष्ट को धारण करते िुए भी वि आत्मा की सावभवौमता को बनाए रखता िै। वि जो भी कम वकरता िै, उससे उसका भगवान् ्के साथ तनरन्तर संयोग अववचशलत रिता िै।185 जब ववश्व की यि प्रकक्रया अपनी पूणतवा तक पिुंच जाती िै, जब सारे संसार का उद्धार िो चुकता िै, तब क्या िोता िै?

इस ववषय में कुछ कि पाना िमारे शलए कहठन िै। िो सकता िै कक तब भगवान्,् जो असीम सम्भावना िैं, अपनी

अशभव्यल्क्त के शलए ककसी अन्य सम्भावना को िुरू कर दे।
गीता इस बात को स्वीकार करती िै कक वास्तववकता तो परब्रह्म िै, परन्तु ववश्व के दृल्ष्टकोण से वि सवोच्च ईश्वर िै। सवोच्च ईश्वर िी एकमात्र वि रूप िै, ल्जसमें मनुष्य का ववचार, क्योंकक वि सीशमत िै, सवोच्च वास्तववकता की कल्पना कर सकता िै। यद्यवप इन दोनों में परस्पर क्या सम्बन्ध िै, यि ताकककवक दृल्ष्टकोण से समझ पाना िमारे शलए सम्भव निीं ंिै, परन्तु जब िम वास्तववकता का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते िैं, तब यि समझ में आ जाता िै। इसी प्रकार मुल्क्त की अल्न्तम दिा के सम्बन्ध में बताए गए दो दृल्ष्टकोण एक िी दिा के अन्तःस्फुरणात्मक और बौद्धधक, दो रूप िैं। मुक्त आत्माओं को पृथक् व्यल्क्तत्व की कोई आवश्यकता निीं िोती, लेककन कफर भी वे अपने-अपने को सीशमत करके इसे धारण करती िैं। इस ववषय में दोनों मत एक िैं कक जब तक मुक्त आत्माएं संसार में जीती रिती िैं, वे ंककसी-न-ककसी प्रकार का कम वकरती रिती िैं। वे आल्त्मक स्वतन्त्रता के साथ और एक आन्तररक आनन्द और िाल्न्त के साथ काय वकरती िैं ल्जस आनन्द और िाल्न्त का स्रोत या उसका बना रिना ककसी बाह्य वस्तु पर तनभरव निीं िै।

गीता में ब्रह्मलोक या परमात्मा के संसार को अपने-आप में िाश्वत निीं ंबताया गया, अवपतु वि प्रकटन (अशभव्यल्क्त) की दूरूतम सीमा िै। आनन्द िमारे ववकास की सीमा िै और िम ववज्ञान के स्तर से ऊपर उठकर उस तक पिुंचते िैं। इसका सम्बन्ध ब्रह्माण्डीय अशभव्यल्क्त से िै। परम तत्व आनन्दमय आत्मा निीं ंिै, न ईश्वरीय बना िुआ आत्मा िी िै।186' वविुद्ध आत्मा पंचकोिों से शभन्न िै।187 जब ब्रह्माण्ड का प्रयोजन पूण विो

183 4,34 15,7 6,31

184 यि आनन्दमय आत्मा भी सवोच्च आत्मा निीं ंिै, क्योंकक यि भी पररल्स्थततयों के वविभूत िै और यि प्रकृतत का िी

185

186

सुथरा िुआ रूप िै। यि एक पररणाम िै और अच्छे कमों के सब पररणामों का सार िै। - वववेकचूडामखण, 212

जाता िै, जब परमात्मा का राज्य स्थावपत िो जाता िै, जब पृथ्वी पर भी भगवान् का राज्य वैसा िी िोता िै, जैसा कक वि स्वग वमें िै, जब सब व्यल्क्त आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते िैं और उस स्तर से ऊपर उठ जाते िैं, ल्जसमें कक जन्म और मरण िोते िैं, तब यि ब्रह्माण्डीय प्रकक्रया उस रूप में पिुंचा दी जाती िै, जो सब अशभव्यल्क्तयों से परे िै।

अध्याय 1

अजुनव की दुववधा और ववषाद

िास्तविक प्रश्न

धृतराष्ट्र उिाच

धमक्षेरे कुरुक्षेले समिेता युयुत्सिः ।

मामकाः पाण्डिाश्चै ककमकुितग सजांय ॥1॥

धृतराष्ट्र ने किा :

(1) िे संजय, जब मेरे पुत्ल और पाण्डु के पुल धम वके क्षेत्र कुरुक्षेल में युद्ध करने की इच्छा से एकल िुए, तब उन्िोंने क्या ककया ?

187 पचचकिोववलक्षणः। - वववेक चूड ामणि, 214

धमक्षेगरे ः: धम वके क्षेत्र में। क्या उधचत ि ै या धम वि, यि तनणयव करने का गुण मनुष्य में ि ी वविेष रूप से पाया जाता ि।ै भूख, नींद, भय और यौन इच्छा तो मनुष्यों और पिुओ ंमें समान रूप से पाई जाती ि ैं; उधचत और अनुधचत के ज्ञान के कारण ि ी मनुष्य पिुओंसे पृथक् समझा जा सकता ि ै।'[188]

यि संसार धमक्षेवत्र ि ै, नैततक संघष वके शलए समर-भूशम। तनणायवक तत्व मनुष्यों के हृदयों में ववद्यमान ि,ै जिां कक ये युद्ध प्रततहदन और प्रततघडी चल रि े ि ैं। पृथ्वी से स्वग वतक और दुुःख से आत्मा तक धम वके माग व द्वारा ि ी उठा जा सकता ि ै। अपनिेारीररक अल्स्तत्व की दृल्ष्ट से भी ि म धम वका आचरण करते ि ुए सुरक्षा की ल्स्थतत तक पिुंच सकति ैं, जिां ंपिुंचकर प्रत्येक कहठनाई का अन्त आनन्द में ि ोता ि ै। यि संसार धमक्षेवत्र ि ै, सन्तों के पनपनेकी भूशम, यिांआत्मा की पववन ज्वाला कभी बुझने निींपाई ि ै। इसे कमभूवशम भी कि ा जाता ि ै। ि म इसमें अपना काय वकरते ि ैं और आत्मा के तनमाणव के प्रयोजन को पूरा करते ि ैं।

गीता का उद्देश्य ककसी शसद्धान्त की शिक्षा देना उतना निीं ंि ै ल्जतना कक धम वके आचरण की प्ेरेरणा देना। जो वस्तु जीवन में पृथक् निीं की जा सकती, उसे ि म शसद्धान्त में भी पृथक् निींकर सकते। नागररक और सामाल्जक जीवन के कतव्वयों में धम वका, उसके कायों और सुअवसरों समेत, ववधान ककया गया ि ै। जो भी वस्तु भौततक समृदूधध और आल्त्मक स्वतन्त्रता को बढ़ाती ि ै, वि धम वि।ै'[189] गीता की शिक्षा वि रिस्यवाद निीं ंि ै, ल्जसका सम्बन्ध मनुष्य के केवल आन्तररक अल्स्तत्व से ि ोता ि ै। जीवन के कत्तव्वयों और सम्बन्धों को शमथ्या मानकर उन्ि ेंत्याग देने के बजाय यि उन्ि ेंआल्त्मक स्वतन्त्रता की प्राल्प्त के शलए सुअवसर के रूप में स्वीकार करती ि ै। जीवन ि में इसशलए शमला ि ै कक ि म इसे पूणतवया रूपान्तररत कर सकें।

रणभूशम को धमक्षेवल या धम वकी भूशम इसशलए कि ा गया ि ै, क्योंकक ईश्वर, जो धम वका रक्षक ि ै, इसमें सकक्रय रूप से उपल्स्थत ि ै।

कुरुक्षेत्रे ः: कुरुओंके क्षेल में। कुरुक्षेत्न कुरुओंकी भूशम ि ै। कुरु उस काल का एक प्रमुख गोल था।190

---

188 ओिारतनद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् ्पिुशभनरवाणाम्।्
धमो हि तेषामधधको वविेषो धमेण िीनाः पिुशभः समानाः ॥
- हितोपदेि

189 प्राखणनां ंसाक्षादभ्युदयतनःश्रेयसितुयःव स धमःव ।

190 यि ि ल्स्तनापुर, आजकल की हदल्ली के पास एक ववशाल मैदान ि ै। जब कुरुओंके अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने अपना शसंिासन अपने सबसे बडे ेपुत्ल दुयोधन को न देकर युधधल्ष्ठर को, ल्जसे धमरवाज, पुण्य का अवतार भी कि ा जाता ि ै, देने का तनश्चय ककया, तब दुयोधन ने कौिल और छल से राजशसंिासन ि धथया शलया और युधधल्ष्ठर तथा उसके चार भाइयों को समाप्त करने का प्रयत्न ककया। यादवजातत के नेता कृष्ण ने कौरवों और पाण्डवों में, जो ररश्ते ेमें भाई थे, समझौता कराने की कोशिि की। जब सब प्रयत्न ववफल रि े, तब कौरवों और पाण्डवों में भ्रातघाती युद्ध अतनवाय वि ो गया। कृष्ण ने प्रस्ताव रखा कक वि और उनकी सेना दोनों अलग-अलग पक्षों में रि ेंगे। ककस पक्ष में कृष्ण रि ें और ककसमें उनकी सेना, यि चुनाव उन्िोंने दोनों पक्षों पर छोड हदया। दुयोधन नेकृष्ण को सेना को चुना और कृष्ण स्वयं ंपाण्डवों के पक्ष में ि ो गए और अजुनव के सारथी बने। मिाभारत, उद्योग पव,व अध्याय 6, श्लोक 147। ओल्ड टैस्टामेंट में भी कि ा गया ि ै, "कुछ लोग रथों पर भरोसा

'धमक्षेवत्रे ◌ेकुरुक्षेत्रे'◌े ि◌ददों से मृत्यु द्वारा जीवन का तनयम ध्वतनत ि◌ोता ि◌ै। भयंकर भगवान् ◌्उस रूप का एक पक्ष ि◌ै, जो अजुनव को युद्धक्षेल में हदखाई पडता ि◌ै। जीवन एक सेग्राम ि◌ै, आत्मा का बुराई के ववरुद्ध युद्ध । सृजन की प्रकक्रया दो परस्पर ववरोधी तत्वों में, जो एक-दूसूरे के ववरुद्ध खडे ि◌ोतेिं, तनरन्तर तनाव की उन दोनों के पारस्पररक ववरोध से ववकास आगे बढ़ता ि◌ै और सृलूष्ट के प्रयोजन में प्रगतत ि◌ोती ि◌ै। इस संसार में अपूणतवा, बुराई और अवववेक के तत्व ि◌ैं और ि◌में कम वद्वारा, धम वद्वारा इस संसार को बदलना ि◌ै। इन तत्वों को, जी अभी तकवबुद्धध के शलए अपारदिकव ि◌ैं, ववचार के शलए पारदिकव बनाना ि◌ै। युद्ध एक प्रततीधात्मक तनणयव ि◌ै और साथ ि◌ी साथ एक अनुिासन का काय वभी। कुरुक्षेत्र को तपःक्षेत्र, तप का या अनुिासन का क्षेत्र भी किा जाता ि◌ै।'[191] युद्ध मनुष्य-जातत के शलए, दण्ड भी ि◌ै और साथ ि◌ी साथ उसे स्वच्छ करने का साधन भी। परमात्मा तनणायवक ि◌ोने ◌ेके साथ-साथ उद्धारक भी ि◌ै। वि संिार करता ि◌ै और सृलूष्ट करता ि◌ै। वि शिव और ववष्णु ि◌ै।

मामका: मेरे लोग[192] । वि ममकार अथात् पररणाम ि◌ै, जो सारी बुराई की जड ि◌ै।

यिां ◌ंकौरवों के ममकार या स्वाथ-वभावना को स्पष्ट ककया गया ि◌ै, ल्जसके कारण सत्ता और प्रभुत्व के प्रतत लोभ बढ़ता ि◌ै।

संजय : संजय अन्धे राजा धृतराष्र का सारथी ि◌ै और वि राजा को युद्ध की घटनाएं सुनाता ि◌ै।

दो सेनाए

सजांय उिच

दृष्ट्वा तु पाण्डिानीकां व्यूढां दुयुोधनस्तदा ।

आचायमुगपुसगांम्य राजा ि◌चनमब्रीत् ◌्॥2॥

संजय ने किा :

(2) तब राजा दुयुोधन पाण्डवों की सेना को व्यूि-रचना में खडे ◌ेदेखकर अपनेआचाय वके पास पिुंचा और बोला:

रखतेिंऔरकुछघोडोंपर; परन्तु ि◌े स्वामी, ि◌मारे ईश्वर ि◌मतुझ पर भरोसा रखेंगे। पाण्डव औरकौरव दो मिन गततयों ऊध्वमुवखी और अधोमुखी, दैवी और आसुरी, धम,व जो ि◌मारे आल्त्मक ववकास में ि◌मारी सियता करता ि◌ै और अधम,व जो ि◌में माया में उलझाकर नीचे ◌ेऔर नीचे ◌ेघसीटता जाता ि◌ै। के बीच ववरोध के प्रतीक ि◌ै। यि निीं कक दोनों में परस्पर मेल न ि◌ो सकता ि◌ो, क्योंकक वस्तुतः दोनों का उद्गम स्थान एक ि◌ी ि◌ै। पाण्डवों और कौरव ररश्तेमें भाई थे और एक ि◌ी पूवजवों के वंिज थे।

191 देखखए मनु, 2, 19 और 20

192 ममेतत कायन्तीतत मामकाः अववद्यापुरुषाः । - अशभनवगुप्त ।

आचाय:ग गुरु, जो िास्त्रों का अथ वजानता ि‍ै, उसे दुसुरों को शसखाता ि‍ै और उस शिक्षा पर स्वयंआचरण करता ि‍ै।

द्रोणाचाय वने कौरवों और पाण्डवों, दोनों पक्षों के राजकुमारों को ि‍ी युद्ध ववद्या शसखाई थी।

पश्यैता ंपाण्डुपुत्लाणामाचाय गमितीं चमूम्।्
व्यूढा ंद्रुपुदपुरेणे ति शशष्येण धीमता ॥3।।

(3) आचाय,व पांडु के पुत्लों की इस वविाल सेना को देखखए, ल्जसकी व्यूि- रचना आपके बुद्धधमान शिष्य धृष्टद्युम्न (द्रुपुद के पुत्र) ने की ि‍ै।'193

अल शूरा मिष्िासा भीमाजुनगसमा युधध।
युयुधानो विराटश्च द्रुपुदश्च मिारथः ॥4।।

(4) यिां ंपर बडे–बडे ंधनुधारवी योद्धा खडे ि‍ैं, जो युद्ध में भीम और अजुनव के समानयुयुधिान, ववराट् और मिारथी द्रुपुद ।194

धृष्टकेतुश्चेककतानः काशशराजश्च िीयिगान्।्
पुरुस्जत्कुस्न्तभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गिः ॥5।।

(5) धृष्टकेतु, चेककतान और वीर काशिराज, इनके साथ िी पुरुल्जत्,् कुल्न्तभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ िैदैय ि‍ैं। 195

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च िीयिगान्।्
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सि गएि मिारथाः ॥6।।

(6) पराक्रमी युधामन्यु और वीर उत्तमौजा, सुभद्रा का पुन, द्रौपदी के पुल, ये सबके सब मिारथी ि‍ैं। सौभद्र

---

193 धृष्टद्युम्न पांचाल के राजा द्रुपुद का पुत्र ि‍ै।

194 भीम युधधल्ष्ठर का प्रधान सेनापतत ि‍ै, यद्यवप किने के शलए यि पद धृष्टद्युम्न को दे हदया गया ि‍ै। अजुनव कृष्ण का शमल और पाण्डवों का मिान् ्योद्धा ि‍ै।

युयुधान कृष्ण का सारथी ि‍ै, ल्जसेसात्यकक भी किा जाता ि‍ै। ववराट् वि राजा ि‍ै, ल्जसके राज्य में पाण्डव लोग कुछ समय तक गुप्त रूप से रिे थे।

195 धृष्टकेतु चेहदयों का राजा ि‍ै।

चेककतान पाण्डवों की सेना का प्रशसद्ध योद्धा ि‍ै।

पुरुल्जत् ्और कुल्न्तभोज दो भाई ि‍ैं। कभी-कभी पुरुल्जत् ्और कुल्न्तभोज को एक भी माना जाता ि‍ै।

िैदय शिवव जातत का राजा ि‍ै।

अजुनव और सुभद्रा के पुत्न अशभमन्यु का नाम ि ै।

अस्माकं तु विशशष्टा ये तास्न्नबोध द्विजोत्तम ।

नायका मम सैन्ै यस्य सज्ञांथ गतान्ब्रिीशम ते ॥7।।

(7) िे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, अब िमारी सेना में जो प्रमुख नायक िैं, उनको भी जान लील्जए। आपकी सूचना के शलए म ैंउनके नाम बताता ि ंू ।

द्विजोत्तम : ब्राह्मणों में श्रेष्ठ । द्ववज वि ि ै, ल्जसने यज्ञोपवीत धारण ककया िो। द्ववज का िददाथ वि- ल्जसका दो बार जन्म िुआ ि ै। शिक्षा का लक्ष्य ि ै व्यल्क्त को आल्त्मक जीवन में दीक्षक्षत कर देना। िम प्रकृतत के जगत् ्में जन्म लेते िैं। िमारा दूसूरा जन्म आत्मा के जगत् ्में िोता ि ै। तद् । द्ववतीयं जन्म, माता सावव्त्नी, वपता तु आचायःव । व्यल्क्त प्रकृतत के शििु के रूप में उत्पन्न िोता ि ै और बढ़ता िुआ आल्त्मक मनुष्यत्व तक पिुंचता ि ै और आलोक का शििु ुबन जाता ि ै।

भिान्भीष्मश्च कणशच कृपश्च सशमततजांयः ।

अशत्िथामा विकणशच सौमदवत्तस्तथिै च ॥8।।

(8) आप, भीष्म और कण वऔर युद्ध में ववजयी िोनेवाला कृप, अश्वत्थामा, ववकण वऔर सोमदत्त का पुत्र। 196

अन्येचबििःशूरा मदथेत्यक्तजीविताः।

नानाशस्त्रप्रिरणाः सिे युद्धविशारदाः ॥9।।

(9) आप भी अनेक योद्धा िैं, ल्जन्िोंनेमेरे शलए अपनेप्राणों को संकट में डार हदया ि ै। वे तरि-तरि के स्त्रिों से सल्ज्जत ि ैं और सब के सब युद्ध में। प्रवीण िैं।

अपयाप्ततांतदस्माकं बल ंभीष्माशभरक्षक्षतम्।्

पयाप्ततां स्त्दिमेतेषांबल ंभीमाशभरक्षक्षतम् ्॥10।।

(10) मिारी यि सेना, ल्जसकी रक्षा भीष्म कर रिे िैं, अपार ि ै, जबकक पाण्डवों की सेना, ल्जसकी रक्षा भीम

---

196 भीष्म वृद्ध राजवष विैं, ल्जसनेधृतराष्र और पाण्डु का पालन-पोषण ककया था।

कण वअजुनव का सौतेला भाई ि ै।

कृप द्रोणाचाय वका साला ि ै।

अश्वत्थामा द्रोण का पुत्र ि ै।

ववकण वधृतराष्र के सौ पुत्तों में सेतीसरा ि ै।

सौमदत्त बिीकों के राजा सोमदत्त का पुत्र ि ै।

कर रिा िै, बिुत सीशमत िै।

अपयाप्तम् ्: अपयाप्वत, जो कोी निीं।– श्रीधर।

अयनेषु च सिेषु यथाभागमिस्स्थता:।
भीष्ममेिाशभरक्षन्तु भिन्त: सि गएि हि ॥ 11॥

(11) इसशलए आप सब लोग अपने-अपनेस्थानों पर रितिुए सब मोचों पर दृढ़ता से जमकर सब ओर से भीष्म की िी रक्षा करें।

खिध्वतन

तस्य सजांनयन्षि गकुरुिृद्धः वपतामिः ।
शसिांनादां विनधोच्चैः शङ्ख दध्मौ प्रतापिान ॥ 12॥

(12) उन्हे आनल्न्दत करने ेके शलए वयोवृद्ध कुरु, प्रतापी वपतामि, ने शसंि की भांतत ज़ोर की गजनवा की और अपना िंख बजाया।

उसकी तथा अन्य लोगों की दृल्ष्ट में कत्तव्वय का पालन व्यल्क्तगत ववश्वास की अपेक्षा किींअधधक मित्वपूण वथा। सामाल्जक व्यवस्था सामान्यतया सत्ता (प्राधधकार) के प्रतत आज्ञापालन पर तनभरव रिती िै। क्या सुकरात ने कक्रटो से निीं किा था कक वि ऐथन्स के उन कानूनों को निीं तोडेगो, ल्जन्िोंनेउसका पालन-पोषण ककया िै, उसकी रक्षा की िै और सदा उसका ध्यान रखा िै?

शसिां की भातांत जोर से गजनगा की : भीष्म ने दृढ़ता के साथ आत्मववश्वास प्रकट ककया।

तत: शङ्खाश्च भेयश्गच पणिानकगोमुखा: ।
सिसैिाभ्यिन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभित् ्॥13॥

(13) उसके बाद िंखे, भेररयां, ढोल, नगाडे ेऔर शसंगी बाजेएकाएक बज उठे और उनके कारण बडे ेज़ोर का िोर िोने ेलगा।

तत: श्वेतैिगयैयुक्गते मितत स्यन्दने स्स्थतौ ।
माधि: पाण्डिश्चैि हदव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतु: ॥14॥

(14) तब अपनेववशाल रथ में, ल्जसमें श्वेत घोडे ेजुते िुए थे, बैठे िुए कृष्ण और अजुनव ने अपनेहदव्य िंख बजाए।

सारे हिन्दू ़और बौद्ध साहित्य में रथ मानशसक और िारीररक विान का प्रतीक िै। घोडे ेइल्न्द्रयाँि रासें उन इल्न्द्रयों का तनयन्त्रण िैं, परन्तु सारथी, पथ- प्रदिकव, भावना या वास्तववक आत्मा िै। सारथी कृष्ण िमारे अन्दर ववद्यमान आत्मा िै ।197

पाञ्चजन्य हृषीकेशो दिदत्त ांधनञ्जयः ।

पौण्डू ांदध्मौ मिाशङ्ख भीमकमा गृिकोदरः॥15॥

(15) कृष्ण ने अपना पांचजन्य और अजुनव ने अपना देवदत्त िंखं बजाया और भयंकर काय वकरनेवाले और बिुत खानेवाले भीम ने अपना मिान ्िंखं पौण्र बजाया ।

इससे युद्ध की तैयारी सूधचत िोती िै।

अनन्तविजयांराजा कुन्तीपुरो युधधस्ष्ठरः।

नकुलः सिदिेश्च सुघोषमणणपुष्पकौ ॥16।।

(16) कुन्ती के पुत्र राजा युधधल्ष्ठर198 ने अपना अनन्तववजय िंखं बजाया और नकुल तथा सिदेव ने अपने सुघोष और मखणपुष्पक नाम के िंखं बजाए ।

काश्यश्च परमेष्िासिः शशखण्डी च मिारथः ।

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यककश्चापरास्जतः ॥ 17।।

(17) और मिान ्धनुधारवी कािीराज ने, मिारथी शिखण्डी ने, धृष्टद्युम्न और ववराट ने और अजेय सात्यकक ने।

द्रुपुदो द्रौपदेयाश्च सिशगः पृधृथिीपते।

सौभद्रश्च मिाबािुः शङ्खान्दध्मुः पृथृक्पृथृक् ॥ 18।।

(18) िे पृथ्वी के स्वामी, द्रुपुद ने और द्रौपदी के पुत्रों ने और मिाबािु अशभमन्यु ने सब ओर अपने-अपने िंखं बजाए ।

स घोषो धातरगाष्ट्राणां हृदयातन व्यदारयत्।्

नभश्च पृधृथिी ांचिै तुमुलो ब्यनुनादयन् ्॥19।।

---

197 तुलनाकील्जए कठोपतनषद 3, 3:साथ िी देखखए प्लेटो, लौज, 898 सी, शमशलन्दपञ्ि 26-8

198 युधधल्ष्ठर पाण्डु के पांचं पुत्रों में सबसे बडा िै। नकुल पाण्डु के पुत्रों में चौथा िै और सिदेव उन सबसे छोटा िै।

(19) वि तुमुल िदद पृथ्वी और आकाि को गुंजाता िुआ धृतराष्ट्र के पुत्नों के हृदयों को ववदीण वकरने लेगा।

अजुनव द्वारा दोनों सेनाओं का अवलोकन

अथ व्यिस्स्थतान्दृष्ट्वा धातरगाष्ट्रान्कवपध्जिः ।

प्रिृत्ते शस्त्रसपांातेधनुरुषम्य पाण्डिः ॥20॥

(20) तब अजुनव ने, ल्जसकी ध्वजा पर िनुमान की मूतत वअंककत थी, व्यूि- रचना में खडे िुए धृतराष्ट्र के पुत्तों को देखा और जब िस्त्रास्त्र लगभग चलनेिुरू िो गए, तब उसनेअपना धनुष उठाया।

प्रिृत्ते शस्त्रसपांाते : जब िस्त्र चलनिेुरू िो गए। यि संकट का काल अजुनव को गिरी धचन्ता में डाल देता िै। विरोधी दल युद्धसज्जा में खडे िैं। िंख बज रिे िैं और प्रत्याशित युद्ध की उत्तेजना उन सब पर छाई िुई िै। तब एकाएक आत्मववश्लेषण के क्षण में अजुनव यि अनुभव करता िै कक इस संघष वका अथ वयि िै कक जीवन की सारी योजना को, जातत और पररवार के, कानून और व्यवस्था के, दिभल्क्त और गुरुओंके प्रतत आदर के उन मिान् आदिों को, ल्जनका वि तनष्ठापूवकव पालन करता रिा था, त्याग देना िोगा।

हृषीकेशां तदा िाक्यशमदमिा मिीपते।

सेनयोरुभयोमधाये रथ ांस्थापय मेऽच्युत॥21॥

(21) िे पृथ्वी के स्वामी, तब उसनेहृषीकेि (कृष्ण) से ये िदद कि : िे अच्युत (कृष्ण) मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खडा करो।

अच्युतः अववचल; यि भी कृष्ण का नाम िै।[199]

यािदेतान्निरीक्षेऽिं योद्धकामानिस्स्थतान् ।

कैमयगा सि योद्धव्यमस्स्मन् रणसमुधुमे ॥22॥

(22) ल्जससे म ैंइन लोगों को देख सकूँ, जो युद्ध के शलए उत्सुक खडे िैं और ल्जनके साथ मुझे ेइस युद्ध में लडना िै।

199 कृष्णकेशलए प्रयोग में आने वाले अन्य नाम ये िैं : मधुसूदन (मधु राक्षस को मारने वाला), अररसूदन (िुओं को मारने वाला), गोववन्द (ग्वाला या ज्ञान देनेवाला), वासुदेव (वसुदेव का पुत्न), यादव (यदु का वंिज), केिव (सुन्दर बाल वाला), माधव (लक्ष्मी का पतत), हृषीकेि (इल्न्द्रयों का स्वामी हृषीक + ईि), जनादवन (मनुष्यों को स्वतन्त्र कराने वाला)। अजुनव के शलए प्रयोग में लाए गए अन्य नाम ये िैं : भारत (भरत का वंिज), धनंजय (धन को जीतनेवाला), गुडाकेि (ल्जसके बाल गेंद की तरि बंधे िुए िैं), पाथ व(पृथा का पुत्न), परन्तप (िुओं को सताने वाला)।

योत्स्यमानानिक्षेऽर्ाि य एतेऽत्ल समागताः ।

धातरगाप्रस्य दुबुद्गधेयुद्धे वप्रयधचकीषिगः ॥23॥

(23) म ैंउन सबको देखना चिाता िंूं, जो यिां ंलडनेके शलए उद्यत िोकर इकट्ठे िुए िैं और जो दुष्ुट बुद्धध वाले दुयोधन का युद्ध में भला करनेकी इच्छा से आए िैं।

युद्ध की सारी तैयाररयां पूरी िो चुकी िैं। उसी प्रात:काल युधधल्ष्ठर ने भीष्म द्वारा की गई दुभेद्य व्यि्ू-

रचना को देखा था। भय से कांपते िुए उसनेअजुनव से किा था : "इस सेना के मुकाबले में िम कैसे जीत सकतिैं ?"[200] अजुनव ने एक प्राचीन श्लोक का उद्धरण देकर अपनेभाई को उत्साहित ककया था : "ववजय की इच्छा रखने वाले लोग िल्क्त और बल से उतना निीं जीतते, ल्जतना सत्य, करुणा, दया और पुण्य से। जिां कृष्ण िैं, विां ववजय सुतनल्श्चत िै। "ववजय उसके गुणों में से एक िै और उसी प्रकार ववनय भी।"[201] कृष्ण अजुनव को अपने-आप को िुद्ध करने और सफलता के शलए दुगाव से प्राथनवा करने के अलिा देता िै। अजुनव अपनेरथ से उतर पडता िै और देवी की सातत एक मन्त्र पढ़ता िै। इस भल्क्त से प्रसन्न िोकर देवी अजुनव को वर देती िै "िे पाण्डव, तू बिुत जल्दी अपने ित्रुओंको जीत लेगा। स्वयंभगवान नारायण तेरी सिायता करने के शलए ववद्यमान िैं।" और कफर भी अकुंर ने एक कमिवील मनुष्य की भांतत अपने इस काय वकी उलझनों पर ववचार निींककया। अपनेगुरु की उपल्स्थतत, भगवान् की चेतना उसे यि समझनेमें सिायता देती िै कक ल्जन िितुओंसे उसे लडना िै, वे उसके शलए वप्रय और पूज्य िैं। उसे न्याय की रक्षा और अवैध हिंसा के दमन के शलए सामाल्जक बन्धनों को तोडना िोगा।

पृथ्वी पर भगवान् के राज्य की स्थापना भगवान् और मनुष्य के मध्य सियोग से िोनेवाला काय विै। सृल्ष्ट के काय वमें मनुष्य भी समान भाग लेनेवाला िै।

एिमुक्तो िषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोमधये स्थापतयत्िा रथोत्तमम् ॥24॥

(24) िे भारत (धृतराष्ट्र), गुडाकेि (अजुनव) के ऐसा किनेपर हृषीकेि (कृष्ण) ने उस श्रेष्ठ रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खडा कर हदया।

भीष्मद्रोणप्रमुखुतः सिेषा ंच मिीक्षक्षताम्।

उिाच पाथ गपश्यैतान्समिेतान्कुरूतनतत ॥25॥

200 धनचजयकथंक्यिमस्माशभयोद्ध मिावे। - मिाभारत, भीष्मपवव ,21,31

201 युध्यध्वमनिङ्कारा यतोधमस्वततो जयः... यतः कृष्णस्ततो जयः विी , 21, 11-12

(25) उसनेभीष्म, द्रोण और सब राजाओंके सम्मुख खडे िोकर किा : ि पाथ व(अजुनव), इन सब इकट्ठे खडे ◌ु ए कुरुओंको देखो।

तलापश्यत् ◌्स्स्थतान्पाथ:ग वपतृनृय वपतामिान् ◌्।
आचायान्गमातुलान्भ्रातृन्पुत्लान्पौलान्सीस्तथा ॥26॥

(26) विांअजुनव ने देखा कक उसके वपता, दादा, गुरु, मामा, भाई पुल और पौल तथा शमत्र भी खडे िुए थे।

श्शुरान्सुहृिश्चै सेनयोरुभयोरवप ।
तान्समीक्ष्यस कौन्तेयः सिान्गिन्धूनिस्स्थतान् ◌्॥ 27॥

(27) और उन दोनो सेनाओं में श्वसुर और शमल भी खडे ◌े थे। जब कुन्ती के पुन अजुनव ने इन सब इष्ट-बन्धुओं को इस प्रकार खडे ◌े देखा तो,

कृपया परयाविष्टो विषीदस्न्नदमब्रिीत्। ◌्
दृष्टम स्जिनांकृष्ण युयुत्सु ◌ंसमुपुस्स्थतम् ◌्॥28॥

(28) उसका हृदय दया से भर आया और उसने उदास िोकर किा :

स्जिनम् ◌्: उसके अपनेलोग, सम्बन्धी । अजुनव को कष्ट और धचन्ता ित्या के ववचार से उतनी निीं िुई, ल्जतनी अपने सम्बल्न्धयों की ित्या के ववचार से। साथ िी देखखए, अध्याय 1, श्लोक 31, 37 और 45। सामान्यतया युद्धों के प्रतत िमारा दृल्ष्टकोण याल्न्त्रक-सा रिता िै और िम युद्ध से सम्बल्न्धत आंकडों में उलझ जाते िैं। परन्तु थोडी-सी कल्पना से िम इस बात को अनुभव कर सकते िैं कक ककस प्रकार िमारे ितु भी मानव प्राणी िैं। वे भी वपता और वपतामि िैं। उनके भी अपने वैयल्क्तक जीवन िैं। उनकी भी अपनी इच्छाएं और आकांक्षाएं िैं। आगे चलकर अजुनव पूछता िै कक क्या इतना संिार कर देनेके बाद प्राप्त िुई ववजय ककसी काम की िोगी भी या निीं। दे. अ. 1, श्लोक. 36।

अजुनव का ववषाद

ि कृष्ण, अपने लोगों को अपने सामने युद्ध के शलए अधीर खडे ◌े देखकर,

सीदस्न्त मम गाराणण मुखु ◌ंच पररशुष्यतत ।
िेपथुश्च शरीरे मे रोमिषशगच जायते ॥29॥

(29) मेरे अंग ढीले पड रिे िैं। मेरा मुंि सूख रिा िै और रोंगटे खडे िो रिे िैं।

गाडांीिसिसांतिस्तात्त्क्चिै पररदह्यते।

न च शक्नोम्यिस्थातु ांरमती च मे मनः ॥ 30॥

(30) गाण्डीव धनुष मेरे िाथ से कफसला जा रिा िै और मेरी सारी त्वचा में जलन िो रिी िै। मुझसे खडा निीं रिा जाता और मेरा मन चकरा-सा रिा िै।

अजुनव के िददों से िमारे मन में एक ऐसे व्यल्क्त के अकेलेपन का ववर आता िै, जो सन्दिे, ववनिा के भय और खोखलेपन (तनरथकवता) से पीडडत िै, ल्जससे स्वग वऔर पृथ्वी की समृद्धध और मानवीय प्रेम का सुख तछना ज रिा िै। यि असह्य ववषाद सामान्यतया उन सब लोगों को अनुभव िोता िै अंवास्तववकता का (ब्रह्म) दिनव करने के अशभलाषी िोते िैं।

तनशमत्तातन च पश्याशम विपरीतातन केशि ।

न च श्रेयोऽनुपुश्याशम ित्िा स्जिनमािो ॥31॥

(31) और िे किेव, मुझे अपिकुन हदखाई पड रिे िैं। इस युद्ध में अपनेसम्बल्न्धयों को मारनेसे मुझेकोई भलाई िोती हदखाई निीं पडती।

अपिकुनों की ओर अजुनव का ध्यान जाना उसकी मानशसक दुबुलवता और अल्स्थरता का सूचक िै।

नकाक्षेविजयांकृष्ण न च राज्यां सुखुातन च।

ककां नो राज्येन गोविन्द ककां भोगैजीवितेन िा ॥32॥

(32) िे कृष्ण, मुझे ववजय निींचाहिए और न राज्य चाहिए और न सुख िी चाहिए। िमें राज्य से, सुख-भोग से, यिां तक कक जीववत रिकर भी क्या करना िै?

गिरे िोक के क्षणों में िमारी प्रववृत्त त्याग की पद्धतत को अपनाने की ओर िोने लगती िै।

इस श्लोक में संसार के त्याग की ओर अजुनव का झुकाव सूधचत िोता िै : संन्याससाधनसूचनम् । - मधुसूदन ।

येषामथे काशसतां नो राज्यांभोगाः सुखुातन च ।

त इमेऽस्स्थता युद्धे प्राणास्त्यक्त्िा धनातन च ॥ 33॥

(33) ल्जनके शलए िम राज्य, भोग और सुख चािते थे, वे लोग तो अपनेप्राणों और धन का मोि त्यागकर यिां युद्ध में आ खडे िुए िैं।

आचायाःग वपतरः पुत्लास्तथैि च वपतामिाः ।
मातुलाः श्िशुराः पौलाः श्यालाः सम्बस्न्धनस्थता ॥ 34।।

(34) गुरु, वपता, पुत्न और दादा, मामा, श्वसुर, पौल और साले तथा अन्य सम्बन्धी (यिां ंखडे िैं)।

एतान्न िन्तुशमच्छाशम घानतोऽवप मधुसूदून ।
अवप तैलोक्यराजस्य िेतोः ककां नु मिीकृते॥35।।

(35) तीनों लोकों के राज्य के शलए भी, िे कृष्ण, म ैंइर्न्े मारने को तैयार र्नीं िंूं। कफर इस पृथ्ूवी के राज्य के शलए तो किना िी क्या! भले िी ये लोग मुझेक्यों न मार डालें।

तीनों लोकों से अशभप्राय पृथ्ूवी, स्वग वऔर अन्तररक्ष की वैहदक धारणा से िैं।

तनित्य धातरगाष्राब्नः काप्रीततः स्याज्जनादगन ।
पापमेिाश्रयेदस्मान् िृत्वैतानाततातयनः ॥36।।

(36) िे कृष्ण, धृतराष्र के इन पुत्लों को मारनेसे िमें क्या सुख प्राप्त िो सकता िै? इन दुष्ुट लोगों को मारने े
से मिें केवल पाप िी लगेगा।

इस रक्तपातपूण वबशलदान से िमें क्या लाभ िोगा? ल्जन लोगों को िम इतना प्यार करते िैं, उनके िवों

पर से गुज़रकर िम ककस लक्ष्य तक पिुंचने की आिा कर सकतेिैं?

अजुनव सामाल्जक रूहढ़यों और परम्परागत नैततकता को देखकर चल रिा िै, अपने व्यल्क्तगत सत्य के अनुभव को देखकर र्नीं। उसे इस बाह्य नैततकता के प्रतीकों को मार डालना िोगा और अपनी आन्तररक िल्क्त का ववकास करना िोगा। उसके ल्जन पिले गुरुओं ंने उसे जीवन का माग वहदखाया था, उर्न्े मार डालना िोगा। उसके बाद िी वि आत्मज्ञान प्राप्त कर सकेगा। अजुनव अब भी ज्ञानसम्पन्न स्वाथ वकी भाषा में बोल रिा िै।

भले िी िितु आक्रान्ता िों, िमें उर्न्े र्नींमारना चाहिए। न पापे प्रतत पापः स्यात् ः: एक पाप का बदला लेनेके शलए दूसूरा पाप मत करो। "दूसूरों के क्रोध को बबना क्रोध ककए जीतो; बुरे काम करने वालो को साधुता से जीतो: कंजूस दान देकर जीतो और असत्य को सत्य से जीतो।"[202]

---

202 अक्रोधेनजयेत्क्रोध,असाधुसाधुनाजयेत्।ः जयेत्कदय वदानेन, जयेत्सत्येन चानृतृम् ः॥ - मिाभारत, उद्योगपवव ,38, 73, 74 देखखए धम्मपद, 223

तस्मान्निािागियां िन्तु ांधातरगाष्रान् ्स्बिान्धिान् ्।

स्जिनांहि कथ ांित्ाि सुणुखनः स्याम माधि ॥37॥

(37) इसशलए अपने सम्बन्धी इन धृतराष्र के पुत्लों को मारना िमारे शलए लूअ निीं ंि। ि माधव (कृष्ण), अपने इष्ट-बन्धुओंको मारकर िम ककस प्रकार सुखी िो सकते िैं?

यद्यप्येते न पश्यस्न्त लोभोपितचेतसः ।

कुलक्षयकृतांदोष शमरद्रिो च पातकम् ्॥38॥

(38) भले िी मन में लोभ भरा िोने के कारण ये सब पररवार के ववनिा की बुराई और शमलों के प्रतत द्रिो करने के पाप को देख निीं ंपा रि;

कथ ांन ज्ञेयमस्माशभः पापादस्मास्न्निततुगम् ्।

कुलक्षयकृत ांदोष ांप्रपश्यद्शभजनगादगन ॥39॥

(39) परन्तु िमें तो कुल के ववनिा के कारण िोने वाला दोष भली भांतत हदखाई पड रि ि। इसशलए ि जनादवन (कृष्ण), िमें इस पाप से दूरू रिनेकी समझ िोनी चाहिए।

वेलोभ से अन्धे िो गए िैं और उनका ज्ञान नष्ट िो गया ि। परन्तु िमें तो दोष हदखाई पड रि ि। यहद मि यि मान भी लें कक वे स्वाथभवावना से और लोभ से दोषी िैं, तो भी उर्न्िें मारना ठीक निीं; ं और यि और भी बडा दोष िोगा, क्योंकक जो लोग अपनेलोभ के कारण अन्धे िैं, उर्न्िें उस पाप का ज्ञान निीं, ल्जसे वे कर रि ि। परन्तु िमारी तो आंखें खुली िैं और िमें दीख रि ि कक ित्या करना पाप ि।

कुलक्षये प्रणश्यस्न्त कुलधमाःग सनातनाः ।

धमे नष्टे कुले कृत्रमधमोऽशभभित्युत ॥40॥

(40) कुल का ववनिा िो जाने पर पुराने चले आ रि कुल के धम वअथातव ववधान नष्ट िो जाते िैं और इन धमो के नष्ट िो जानेपर सारे पररवार में अधम वफैल जाता ि।

युद्ध िमें िमारे प्राकृततक घरेलूपररवेि से अलग कर देते िैं और सामाल्जक परम्पराओंसे, जो कक लोगों के पररपक्व संकल्प और अनुभव का सार ि, िमें उखाडकर दूरू फेंक देते िैं।

अधमाशगभभिात्कृष्ण प्रदुष्यस्न्त कुलस्स्त्रयः ।

स्त्रीषु दुष्टासु िाष्णेय जायते िणसगकांरः ॥41॥

(41) और जब अधम वफैल जाता ि ै, तब ि े वाष्र्णेय (कृष्ण), पररवारों की ल्स्त्रयां भ्रष्ट िो जाती िैं। और जब ल्स्त्रयां ंभ्रष्ट िो जाती ि ैं, तब वणसंवकर अथातव ववशभन्न जाततयों का शमश्रण िो जाता िै।

सामान्यतया 'वण'व िदद का अथ वजातत ककया जाता ि ै, िालाकक वतमवान जातत-व्यवस्था ककसी प्रकार

गीता के आदि वसे मेल निींखाती।

सकांरो नरकायि कुलघ्नानांकुलस्य च।

पतस्न्त वपतरो ह्येषांलुप्तुवपण्डोदककक्रया42।।

(42) और यि वणसंवकर सारे पररवार को और उस पररवार को नष्ट करने वाले लोगों को नरक में पिुंचा देता ैं, क्योंकक उनके वपंजरों अथावत् ्पूवजवों की आत्माएं अन्न और जल से वंधचत िोकर धगर पडती िैं।

यिां ंइस ववश्वास की ओर संकेत ि ै कक मृत पूवजवों को अपने कल्याण के शलए अन्न और जल की बशल की

आवश्यकता िोती िै।

दोषैरेतैः कुलघ्नानांिसगकांरकारकैः ।

उत्सायन्ते ेजाततधमाःग कुलधमाशच शाश्वता्43।।

(43) कुल का ववनाि करने ेवाले लोगों के इन दुष्कमों के कारण, ल्जनसे वणसंवकर अथवा्त्जाततयों का शमश्रण उत्पन्न िोता ि ै, सदा से चले आ जाततधम वऔर कुलधम वनष्ट िो जाते िैं।

जब िम सदा से चली आ रिी परम्पराओं में तनहित आदिों को तछन्न-शमत कर देते ि ैं, जब िम

सामाल्जक सन्तुलन को बबगाड देते िैं, तब िम संसार केवल अव्यवस्था फैला रि े िोते िैं।

उत्सन्नकुलधमाणगा ांमनुष्याणां जनादगन ।

नरकेऽतनयतं िासो भितीत्यनुशुश्रुम ॥44।।

(44) िे जिनादवन (कृष्ण), िम यि सुनते ेआए िैं कक ल्जन लोगों के पाररवाररक धम वनष्ट िो जाते िैं, उन्िें अवश्य िी नरक में रिना पडता िै।

अिो बत मित्पाप ंकतु गव्यिशसता ियम्।्

यद्राज्यसुखलोभेन िन्तु ांस्जिनमुघुताः ॥45।।

(45) अ रे, िम तो यि बडा भारी पाप करने ेलगे िैं, जो राज्य का आनन्द पाने के लोभ से अपनेइष्ट-बन्धुओंको मारनेके शलए तैयार िो गए िैं।

यहद मामप्रतीकारमशस्त्र ांशस्त्रपाणयः ।

धातरगाष्ट्रा रणे िन्युस्तन्मे क्षेमतरां भित् ्॥46।।

(46) यदद धृतराष्ट्र के पुत्र िस्त्र िाथ में लेकर मुझे ेमार डालें और म ैंबबना िस्त्र उठाए, बबना उनका मुकाबला ककए युद्ध में मारा जाऊं, तो वि मेरे शलए किींअधधक भला िोगा।

क्षेमतरम् ्की जगि किीं–किीं एक और पाठ 'वप्रयतरम्'् भी िै।

अजुनव के िदद तीव्र व्यथा और पे्रम में कि गए िैं। उनका मन दो संसारों के सीमान्त पर ववद्यमान िै। वि कुछ करनेके शलए संघष वकर रिा िै, जैसा कक मनुष्य आहदकाल से िी संघष वकरता रिा िै और कफर भी वि कुछ तनणयव कर पानेमें असमथ वि, क्योंकक उसमें न तो अपने-आप को, न अपनेसाधथयों को और न उस ववश्व की वास्तववक प्रकृतत को िी समझ पाने की िल्क्त िै, ल्जसमें कक उसे ला खडा ककया गया िै। वि युद्ध के कारण िोने े वाले िारीररक कष्ट और भौततक असुववधाओंपर जोर दे रिा िै। जीवन का मुख्य उद्देश्य भौततक आनन्द की खोज निींि। यहद िम केवल वृद्धावस्था, अपंगता और मृत्युकी घटनाओं द्वारा िी जीवन के अन्त तक पिुंच जाएं, तो िम अवश्य सुरजीवन को गंवा रिे िोंगे। ककसी आदि वके शलए, पे्रम और न्याय के शलए, िमे अत्याचार का ववरोध करना िोगा और कष्ट तथा मृत्यु का सामना करना िोगा। युद्ध के ठीक ककनारे पर पिुंचकर अजुनव हिम्मत िार जाता िै और िासाररकता के ववचारों के कारण युद्ध से ववरत िो जाना चािता िै। उसे अभी यि समझना बाकी िै कक पल्त्नयां और सन्तानें, गुरु और सम्बन्धी केवल उनके अपनेतनशमत्तवप्रय निीं ंिोते, अवपतु आत्मा के तनशमत्त वप्रय िोते िैं। अभी अजुनव को उस गुरु की वाणी सुननी िेषे िै, जो यि उपदिे देता िै कक उसे ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए, ल्जसमें उसके कमों का मूल कामना में या इच्छा में निीं ंिोगा और यि कक तनष्काम कम-वअशभलाषिीन काय वनाम की भी कोई वस्तु िुोती िैं।

एिमुकुत्ाजुिनगः सख्ांये रथोस्पथ उपाविशत् ्।

विसृजूय सशरां चाप ांशोकसवांग्निमानसः ॥47।।

(47) यि किकर अजुनव रणभूशम में अपना धनुष-बाण छोडकर िोक hat R व्याकुल-धचत्त िोकर अपनेरथ में बैठ गया।

अजुनव की यि परेिानी एक अनवरत आवती दुदुविा का एक नाटकीकरण िै। उच्चतर जीवन की दिेली पर खडा िुआ मनुष्य इस संसार की तडक-भडक से तनराि िो जाता िै; कफर भी मोि उससे धचपटे रिते िैं और वि उन्िें पालता रिता िै। वि अपनी हदव्य वंि-परम्परा को भूल जाता िै और अपने व्यल्क्तत्व में आसक्त िो जाता िै और संसार की परस्पर संघषिवील िल्क्तयों से उद्ववग्न िोने ेलगता िै। आत्म-जगत् ्में जागने और उसके द्वारा लादे गए दातयत्वों को स्वीकार करने ेसे पिले उसे स्वाथ वऔर मूढ़ता (लोभ और मोि) रूपी िलुओंसे लडना िोगा

और अपने आत्मकेल्न्द्रत अिंकार के अन्धकारपूण वअज्ञान पर ववजय पानी िोगी। आल्त्मक स्वभाव से दूरू जा पडे े मनुष्य को कफर उस तक वापस पिुंचाना िोगा। यिां ंपर ल्जस वस्तुका धचलण ककया गया ि, वि ि मानवीय आत्मा का ववकास । इसके शलए दि और काल की कोई सीमा निीं। यि युद्ध मनुष्य की आत्मा में प्रततक्षण िोता रिता ि।

इतत श्रीमद्भगिद्गीतासूपतनषत्सु ुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्ने श्रीकृष्णाजुनगसांिादेऽजुनगविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः।

यि ि श्रीमद्भगवद्गीता उपतनषद् में, जो कक ब्रह्मववद्या, योगिास्त्त श्रीकृष्ण-अजुनव-संवाद ि, अजुनव का ववषादयोग नामक पिला अध्याय ।"[203]

ब्रह्मविद्या : ब्रह्म का ववज्ञान । वास्तववकता क्या ि? क्या यि घटनाओंअनवरत क्रम िी सब-कुछ ि या इनके अलावा कुछ और भी वस्तु ि, ल्जस कभी अवक्रमण निीं िोता ? वि क्या ि, जो अपने-आप को इन ववववध रूपें प्रकट करने में समथ वै? अनन्त सम्भावनाओं वाली इस समृद्ूध लीला को कोर चलाता ि या पे्ररेरत करता ि? क्या उनका कोई लक्ष्य, कोई अथ वै ? वास्तववकत की प्रकृतत को समझने में िमारी सियता करना ब्रह्मववद्या का उद्देश्य ि। ताककवक गवेषणा आल्त्मक ज्ञान की प्राल्प्त में सियक ि। िंकराचाय वने अपनी पुस्तक 'अपरोक्षानुभूतत' में किा ि कक ज्ञान की उपलल्दध ववचार के शसवाय अन्य ककसी साधन से निींि सकती, जैसे संसार की वस्तुएं प्रकाि के बबना हदखाई निींपड सकती।204

योगशास्त्र : योग का िास्त्र। बिुत-से लोग िैं, जो समझते िैं कक दिनव की जीवन से कोई संगतत निीं ंि। किा जाता ि कक दिनव का सम्बन्ध वास्तववकता के पररवतनव-रहित ववश्व से ि और जीवन का गततववधध के अतनत्य ववश्व से। यि दृल्ष्टकोण इस तथ्य के कारण सत्य समझा जानेलगा कक पल्श्चम में दितवनक धचन्तन उन नगर-राज्यों में सबसे पिले िुरू िुआ था, ल्जनमें लोगों के दो वग वथे; एक तो धनी और ठाली-कुलीन लोग, जो दितवनक धचन्तन के ववलास को भोगतेथे ेऔर दूसूरे, बिुत बडी संख्या में दास लोग, जो लशलत और व्याविाररक कलाओंकी साधना से वंधचत थे। माक्स वकी यि आलोचना, कक दितवनक लोग संसार की व्याख्या करते िैं, जब कक वास्तववक काय वइस संसार को बदलता ि, गीता के रचतयता पर लागूनिींिोती; क्योंकक उसने न केवल संसार की एक दितवनक व्याख्या, ब्रह्मववद्या, प्रस्तुत की ि, अवपतु उस व्याविाररक कायक्रवम, योगिास्त्र भी, प्रस्तुत ककया ि। िमारा संसार एक अद्भुत दृश्य निींि, कक ल्जसे देखकर मनन ककया जाए, यि तो समर-भूशम ि। केवल गीता की दृल्ष्ट में व्यल्क्त के स्वभाव में सुधार िी सामाल्जक सुधार का उपाय ि।

---

203 यिसामान्यतया पाई जानेवालीपुल्ष्पका ि, जो मूलू पाठ का अंि निीं ि। ववशभन्न प्रततयो में अध्यायों के िीषकवों में थोडे-बिुत अन्तर ि, परन्तु वे उल्लेखनीय निीं ि।

204 नोत्पद्यतेववना ज्ञानंववचारेणाऽन्यसाधनैः ।

यथा पदाथभवानं हि प्रकािेन बबना क्वधचत् ॥

कृष्णाजुनग-सिांद : कृष्ण और अजुनव के मध्य वातालवाप। गीता के रचतयता ने मनुष्य के अन्दर परमात्मा की अनुभूत ववद्यमानता को नाटकीय अशभव्यल्क्त प्रदान की िै।

जब अजुनव को अपनेउधचत कत्तव्वय से ववरत िोने का प्रलोभन िोता िै, तब उसके अन्दर ववद्यमान िदद (ब्रह्म), उसकी प्रामाखणक स्फुरणा उसके शलए आहदष्ट पथ स्पष्ट कर देती िै, जब कक वि अपनेतनम्नतर आत्म की सूक्ष्म कानाफूशसयों को त्याग देनेमें समथ वो जाता िै। उसकी आत्मा का आन्तररकतम बीजांसिम्पूण व ववश्व का भी हदव्य केन्द्र िै। अजुनव का गंभीरतम आत्म कृष्ण िै।205' मनुष्य और परमात्मा को मध्यस्थ के रूप में ककसी तीसरे पक्ष की आवश्यकता उससे अधधक निीं िै, ल्जतनी कक दो प्रेशमयों को िोती िै। परमात्मा के उतना तनकट और कोई निीं ििै, ल्जतनेकक िम स्वयंिं और उसे पाने के शलए िमारे पास केवल प्रेमोद्दीप्त हृदय, एक ववशुद्ध संकल्प िोना िी काफी िै। अजुनव अपनेपरमात्मा के सम्मुख अनावृत् और ककसी भी मध्यस्थ के बबना अकेला खडा िोता िै। परमात्मा और मनुष्य के मध्य एक अववरत सम्बन्ध रिता िै और उनका संवाद तब तक चलता रिता िै, जब तक कक उद्देश्य की पूण वसमस्वरता स्थावपत निींिो जाती।

यि दैवीय मूल तत्व िमसे दूरू निींिै, अवपतु बबलकुल तनकट िै। परमात्मा कोई दूरूस्थ दिकव या समस्या का दूरूस्थ तनणायवक निीं िै, अवपतुएक शमत, सखा िै, जो सदा, वविारिय्यासनभोजनेषु, िमारे साथ रिता िै (11, 42)। ऋग्वेद में दो पक्षक्षयों का उल्लेख ककया गया िै, ल्जनके पंख सुन्दर िै स्वभावतः शमल िैं और जो एक िी वृकूष पर साथ-साथ रितेिैं।'[206]

विषाद : उदासी। अध्याय का अन्त तनरािा और दुःख में िोता िै और िमें भी 'योग' कि गया िै, क्योंकक आत्मा का यि अन्धकार भी आध्याल्त्मक जीक की ओर प्रगतत के शलए एक आवश्यक सोपान िै। िममें से अधधकांलिोग परम प्रश्नों का सामना ककए बबना िी सारा जीवन बबता देते िैं। कभी ववरले संकट के क्षण में िी, जब िमारी मित्वाकांक्षाएं ढेर िुई िमारे पैरों के पास पडी िोती िै। जब िमें पश्चात्ताप तथा व्यथा के साथ अनुभव िोता िै कक िमने अपनेजीवन की क्या दुदुविा कर डाली िै, िम धचल्ला उठते िैं: "िम यिां ककसशलए िैं?" "इस सबका क्या अथ िै? और िमें यिां से किांजाना िै?" "मेरे परमात्मा, मेरे परमात्मा, तूने मुझे क्यों त्याग हदया िै?" द्रौपदी धचल्ला उठती िै : "न पतत मेरे िैं, न पुल, न सम्बन्धी, न भाई, न वपता मेरे िैं और िे कृष्ण, तुम भी मेरे निीं िो।"[207]

---

205 टॉलरसे तुलना कील्जए,"इस प्रचुरता में आत्मा में परमात्मा के साथ एक समानता और अवणनवीय तनकटता आ जाती िै।... आत्मा की इस गम्भीरतम, आन्तररकतम और गुप्ततम गिराई में परमात्मा सारतः, वस्तुतः और तत्वतः ववद्यमान रिता िै।"

206 साथ िी तुलना कील्जए : "िे सवज्ञव परमात्मा, तूसदा िमारे तनकट ववद्यमान िै; अन्दर या बािर जो भी कोई पाप िो, उसे तू देख लेता िै।"
सवज्ञवत्वंसदा तनत्यं सल्न्नधौ बतसेव च नः।

अन्तबहविश्च यल्त्कल्चचत्पापंतत्पश्यशस स्वयम् ॥

207 नैव मे पतयः सल्न्त, न पुत्ला न च बान्धवाः।
न भ्रातरो, न च वपता, नैव त्वंमधुसूदन ॥

अजुनव एक मिान् ्आल्त्मक तनाव में से गुज़र रि िै। जब वि अपने-आप को सामाल्जक दातयत्वों से पृथक् कर लेता िै और पूछता िै कक उसे समाज द्वारा उससे प्रत्याशित कत्तव्वयों को क्यों पूरा करना चाहिए, तो वि अपने े सामाल्जकीकृत आत्म को पीछे कर देता िै और अपने-आप को व्यल्ष्ट, एकाकी और सबसे पृथक् रूप में पूरी तरि अनुभव करता िै। वि संसार के सम्मुख भयावनी अवस्था में पटक हदए गए एक अजनबी व्यल्क्त के समान खडा िोता िै। यि नई स्वतन्त्रता, धचन्ता, एकाकीपन, सन्दिे और असुरक्षा की गम्भीर अनुभूतत उत्पन्न कर देती िै। यहद उसे सफलतापूवकव काम करना िो, तो उसे इन अनुभूततयों पर ववजय पानी िी िोगी।

अध्याय 2
सांख्य-शसद्धान्त और योग का अभ्यास

कृष्ण द्वारा अजुनव की भत्सनवा और वीर बनने के शलए प्रोत्सािन
सजांय उिाच

त ांतथा कृपयाविष्टमश्रुपूणाकुगलेक्षणम् ्।
विषीदन्तशमदां िाक्यमिुाच मधुसूदूनः ॥1॥

संजय ने किा :

इस प्रकार दया से भरे िुए और आंसुओंसे डबडबाई आंखों वाले अजुनव से, ल्जसका मन दुुःख से भरा
(1) िुआ था, कृष्ण ने किा :

अजुनव की दया का दैवीय करुणा से कोई मेल निीं ंिै। यि तो एक प्रकार को स्वाथववृवृत्त िै, ल्जसके कारण वि ऐसा काय वकरने ेसे हिचकता िै, ल्जसमें उसे अपने िी लोगों को चोट पिुंचानी िोगी। अजुनव एक आत्मदया की भावुकतापूण वमनोवृवृत्त के कारण इस काय वसे पीछे िटना चािता िै और उसका गुरु कृष्ण उसको फटकारता िै। कौरव लोग उसके अपने सम्बन्धी िैं, यि बात तो उसे पिले भी मालूम थी।

श्रीभगिानुिाच
कुतस्त्िा कश्मलशमदां विषमे समुपुस्स्थतम् ्।
अनायजुगषुटमस्यिमांकीततकगरमजुनग ॥22॥

भगवान् ्कृष्ण ने किा :

िे अजुनव, तुझे ेयि आत्मा का कलंक (यि उदासी) इस ववषम समय में किां ंसे आ लगा। यि वस्तु श्रेेष्ठ
(2) मन वाले लोगों के शलए बबलकुल अनजानी िै (आय वलोग इसे पसन्द निीं करते), यि स्वग वले जानेवाली निीं ंिै और (पृथूवी पर) यि अपयि देनेवाली िै।

अनायजुगष्टम् ्: आययों के अयोग्य। कुछ लोगों का किना िै कक आय वलोग के िैं, जो आन्तररक संस्कार और सामाल्जक व्यविार को, ल्जसमें कक उत्सिा और सौजन्य, कुलीनता और सरल व्यविार पर ज़ोर हदया गया िै, अंगीकार करते िैं।

अजुनव को संयि से छुटकारा हदलानेके प्रयन में कृष्ण आत्मा की अनश्वरता के शसद्धान्त का उल्लेख करता िै और अजुनव की प्रततष्ठा और सैररक परम्पराओं की भावनाओं को जगाता िै। उसके सम्मुख भगवान् ्के प्रयोजन को प्रस्तुत करता िै और इस बात का संकेत करता िै कक संसार में कम वककस प्रकार ककया जाना चाहिए।

क्लैबै्यां मा स्म गमः पाथ गनैतत्त्य्युिपपद्यते ।
क्षुद्रां हृदयदौबल्गयां त्यक्त्िोवत्तष्ठ परन्तप ॥3॥

(3) िे पाथ व(अजुनव), ऐसे नामदव मत बनो, क्योंकक यि तुम्िें िोभा निीं ंदेता। इस मन की तुच्छ दुबुलवता को

त्याग दो और ि परन्तप (ितुओंको सताने वाले अजुनव), उठकर खडे िो जाओ।

अजुनव के सन्दिें का समाधान निीं िोता

अजुनग उिाच

कथ ांभीष्ममिां सख्ांये द्रोण च मधुसूदन ।

इषुशभः प्रतत योत्स्याशम पूजाविररसूदन ॥4।।

अजुनव ने किा :

(4) ि मधुसूदन (कृष्ण), म ैंयुद्ध में भीष्म और द्रोण पर ककस तरि बाण चला पाऊंगा ? ि िलुओंको मारने वाले कृष्ण, वे तो मेरे शलए पूजनीय िैं।

गुरुनित्ा हि मिानुभािान् ्श्रेयो भोक्त ांभैक्ष्यमपिी लोके।

ति्ाथिकगामास्ांतु गुरुतनिै भुजीय भोगानुधधरप्रहदग्धान् ्॥5।।

(5) पूजनीय गुरुओं ंको मारनेकी अपेक्षा तो इस संसार में भीख मांगकर जीना किींअधधक भला िै। यद्यवप उन्िें केवल अपनेलाभ का िी ध्यान िै, कफर भी वे मेरे गुरु िैं और उन्िें मारकर म ैंकेवल उन सांसाररक सुखों का उपभोग कर पाऊंगा जो उनके रक्त से सने िुए िोंगे।

रुधचरप्रहदग्धान् ्: खून से सनिुए। यहद िम इततिास के प्रत्येक रक्तरंल्जत पृष्ठ के पीडडतों की दिा को हृदयंगम कर लें, यहद िम नाररयों के कष्टों, शििुओं के चीत्कारों और ववपवत्त, अत्याचार तथा ववववध रूपों में अन्याय के वृत्तान्तों को सुनें तो कोई भी ऐसा व्यल्क्त, ल्जसमें ज़रा भी मानवीय अनुभूतत िै, इस प्रकार की रक्तरंल्जत ववजयों में आनन्द अनुभव निीं करेगा।

न चैतद्वियःकतरन्नो गरीयो यद्िा जयेम यहद िा नो जयेयुः ।

यानेि ित्िा न स्जजीविषाम- स्तेऽस्स्थताः प्रमुखु धतरगाप्राः ॥6।।

(6) मिें तो यि भी मालूम निीं ंिै कक िमारे शलए क्या भला िै; िम उन्िें जीत लें, या वे िमें जीत लें। धृतराष्र के ल्जन पुत्रों को मारनेके बाद िमें जीनेकी कोई इच्छा निीं िै, वे िी िमारे सम्मुख युद्ध में आकर खडे िुए िैं।

कापण्गयदोषोपितस्िभािः पृचछ्ाशम त्िाधिमसगमूढ़चेताः ।

यच्रेयः स्यास्न्नस्श्चतां ब्रूहि तन्मे, शशष्यस्तेऽिं शाधध मा ांत्िा ांप्रपन्नम् ्॥7।।

(7) मेरा सम्पूण वअपनापन (भावुकतापूण)व दया की दुबुलवता से ग्रस्त िो उठा िै। अपने कत्तव्वय के ववषय में मेरा धचत्त मूढ़ िो गया िै। इसशलए म ैंतुमसे पूछता िंूं। मुझेतनल्श्चत रूप से यि बताओ कक मेरे शलए क्या भला िै। म ैंतुम्िारा शिष्य िंूं।208 म ैंतुम्िारी िरण में आया िंूं; मुझे ेउपदेि दो।

तनस्श्चतम् ्**:** तनल्श्चत रूप से। अजुनव केवल तनरािा, धचन्ता या संयोगा ३ प्रेररत निीं िै, अवपतु वि तनश्चय के शलए तीव्र इच्छा से भी प्रेररत िै।

अपनी अवववेकिीलता को अनुभव करना व्यल्क्त के वववेक के ववक की ओर आगे बढ़ना िै। अपूणतवा की सजग अनुभूतत इस बात की द्योतक कक आत्मा सचेत िै और जब तक वि सचेत िै, वि सुधर सकती िै, जैसे कक जीववत िरीर ककसी जगि चोट खा जानेया कट जाने पर कफर स्वस्थ िो सक िै। मानव-प्राणी पश्चाताप के संकटकाल में से गुज़रकर उच्चतर दिा की ओ बढ़ता िै।

ल्जज्ञासुओंका यि सामान्य अनुभव िै कक वे जब प्रकाि की दिेली पर खडे िोतेिैं, तब भी वे संियों और कहठनाइयों से ग्रस्त रितेिैं। जब प्रकाि ककस आत्मा में चमकना िुरू िोता िै, तो वि उसके प्रततरोध के शलए अन्धकार को भी बढ़ावा देता िै। अजुनव के सामने बाह्य और आन्तररक कहठनाइयां, उदािरण के शलए सम्बल्न्धयों और शमलों का प्रततरोध, संिय और भय, वासनाएं और इच्छाएं ववद्यमान िैं। इन सबको वेदी पर बशल कर देना िोगा और ज्ञान की आग में भस्म कर देना िोगा। अन्धकार के साथ संघष वतब तक चलता रिेगा, जब तक व्यल्क्त का सम्पूण वअपनापन प्रकाि से न भर उठे।

दीनता के बोझ से दबा िुआ, क्या सिी िै और क्या गलत, इस ववषय में दुववधा में पडा िुआ अजुनव अपने गुरु से, अपने अन्दर ववद्यमान भगवान् ्से प्रकाि और पथ-प्रदिनव प्राप्त करना चािता िै। जब ककसी का संसार नष्ट िो रिा िो, तब वि केवल अन्तमुखव िोकर भगवान् ्की असीम दया के उपिार के रूप में ज्ञान की खोज कर सकता िै।

अजुनव ककसी अधधववद्या की मांग निींकरता, क्योंकक वि ज्ञान का अन्वेषक निीं िै। वि तो एक कमिवीर मनुष्य िै; इसशलए वि कम वका ववधान जानना चािता िै। वि अपना कत्तव्वय जानना चािता िै। वि जानना चािता िै कक उसे इस कहठनाई के अवसर पर क्या करना िै। "स्वामी, तुम मुझसे क्या करनेकी अपेक्षा करते िो?"

---

208 मिानुभावान् ्गुरुताध्ययनतप-आचाराहदतनबन्धनः प्रभावो येषां तान् ्हि मिानुभावान् ्इत्येक वा पदम् ्। हिम जाड्यम् ्अहृपन्तीतत हिमि आहदत्योऽल्ग्नवाव, तस्येवानुभावः सामथ्य वयेषांतान्।् - मधुसूदन । यि वपछली एक कल्पनाबिुल व्याख्या िै।

अजुनव की भांतत साधक को अपनी दुबुलवता और अज्ञान को अनुभव करना िोगा और कफर भी उसे परमात्मा की इच्छा के अनुसार 'काय वकरने, और वि इच्छा क्या िै, इसे खोज तनकालनेके शलए कहटबद्ध िोना िोगा।

न हि प्रपश्याशम ममापनुयाद् यच्छोकमुचुछोषणशमस्न्द्रयाणाम्।ॎ

भूमािसपलमृद्ध ांओप्य राज्यांसुराणामवप चाधधपत्यम् ॎ॥8।।

(8) चिो मुझेसारी पृथ्वी का धनसम्पन्न एवं प्रततद्वन्द्विीन राज्य और देवताओं का स्वाशमत्व भी क्यों न

शमल जाए, परन्तु मुझे ेऐसी कोई वस्तु हदखाई निींपडती, जो मेरे इस िोक को दूरू कर सके, जो मेरी इल्न्द्रयों को सुखाए डाल रिा िै। अजुनव के मन के इस संघष वकी धचककत्सा की जानी चाहिए। उसे एक नई, सम्पूण व और सवागीण चेतना प्राप्त करनी िोगी।

सजांय उिच

एिमुकुत्िा हृषीकेश गुडाकेशः परांतप ।

न योत्स्य इतत गोविन्दमुकुत्िा तूष्णीांबभिूि ॥9।।

संजय ने किा :

इस प्रकार पराक्रमी गुडाकेि (अजुनव) ने हृषीकेि (कृष्ण) से ऐसा किने के बाद गोववन्द (कृष्ण) से ऐसा

(9) किा कक म ैंयुद्ध निीं ंकरूंगा और चुप िो गया।

न योत्स्ये : म ैंयुद्ध निींकरूंगा।' ऐसा प्रतीत िोता िै कक अजुनव ने गुरु की सलाि की प्रतीक्षा ककये बबना इस ववषय में अपना मन बना शलया िै। वि गुरु से उपदेि देनेके शलए तो किता िै, परन्तु उसका मन उपदेि को ग्रिण करने के शलए खुला िुआ निीं ंिै। इस कारण गुरु का काय वऔर भी कहठन िो जाता िै।

गोविन्द : इस िदद द्वारा गुरु की सवज्ञवता सूधचत की गई िै।'[209]

तूष्णी ांबभूि : चुप िो गया। सत्य का स्वर केवल िान्त िोने पर िी सुन जा सकता िै।

तमुिाच हृषीकेशः प्रिसस्न्नि भारत ।

सेनयोरुभयोमधाये विषीदन्तशमदां िचः ॥10।।

---

209 यावेदलक्षणांवाणीींववन्दतीततव्युत्पत्त्या सववेदोपादानत्वेन सवज्ञवम्।ॎ

(10) हे भारत (धृतराष्ट्र), इस प्रकार दोनों सेनाओं के मध्य में ववषादग्रस्त िोकर बैठे िुए उस अजुनव से
हृषीकेि (कृष्ण) ने िंसते-से िुए किा- ववषाद के उस क्षण में अजुनव के डूबते िुए हृदय ने कृष्ण की हदव्यवाणी
सुनी। िंसी इस बात की द्योतक िै कक उसनेअजुनव के बुद्धधवाद के प्रतत प्रयत्न को, या ल्जसे आजकल सतृष्ूण
धचन्तन किा जाता िै, उसे भांप शलया था। रक्षक भगवान ्का, ल्जसे कष्ट पाती िुई मानवता के समस्त पापों और
दुुःखों का ज्ञान िै, रुख प्रेममय दया और उत्सुकतापूण वववेक का िै।

आत्मा और िरीर के भेद का तनरूपण : िमें उसके शलए िोक निीं ंकरना चाहिए, जो अनश्वर िै

श्री भगिानुिाच
अशोच्यानन्िशोचस्त्िां प्रज्ञािादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासुंश्च नानुशोचस्न्त पस्ण्डताः ॥11॥

श्री भगवान ्ने किा :

(11) तू उनके शलए तो िोक कर रिा िै, ल्जनके शलए तुझे िोक निींकरना चाहिए और कफर भी तू ज्ञान की
बातें करता िै। ज्ञानी लोग मृतों के शलए या जीववतों के शलए िोक निीं ंककया करते।
कश्मीर के संस्करण में यि शमलता िै : "तू बुद्धधमान व्यल्क्त की तरि बात निींकर रिा" :

"प्राज्ञवन्नाशभभाषसे" ।'[210]

यिां ंगुरु 11 से लेकर 38 तक के श्लोकों में संक्षेप में सांख्यदिनव के ज्ञान की व्याख्या करता िै। यि
सांख्य कवपल का सांख्यदिनव निीं िै, अवपतु उपतनषदों का सांख्यदिनव िै।

न त्िेिािं जातु नास ंन त्िं नेमे जनाधधपाः ।
न चैि न भविष्यामः सिे ियमतः परम् ॥12॥

(12) ऐसा कोई समय निीं था, जब म ैंनिीं था या तू निीं ंथा या ये सब राजा निींथे और न कभी कोई ऐसा
समय आएगा, जब कक िम सब इसके बाद निींरिेंगे।

---

210 तुलना कील्जए, प्लौहटनस : "ित्याएं, अपने सब स्वरूपों में मृत्यु, ििरों पर कदज़ा करना और उन्िें नष्ट कर देना - यि
सब रंगमंच पर िोने वाला प्रदिनव िी समझा जाना चाहिए। इतने सारे दृश्यों का पररवतनव, एक नाटक का आतंक और
चीत्कार, क्योंकक यिां भी जीवन के पररवतततव िोते िुए भाग्य में िोक और ववषाद करनेवाला वास्तववक मनुष्य, उसकी
आन्तररक आत्मा निीं ंिै, अवपतु केवल मनुष्य की छाया िै, बािरी मनुष्य जो संसार के रंगमंच पर अपना अशभनय रिा िै।
ऐनीड्स 3, 2, 15। अंग्रेज़ी अनुवाद ।

किंराचाय वइस अनेकता के उल्लेख को केवल रूढ़ मानते ि◌ैं। उनकी युल्क्त ि◌ै कक बिुवचन का प्रयोग केवल ि◌रीरों के शलए ककया गया ि◌ै, जो कक अलग- अलग ि◌ैं, एक ववश्वजनीन आत्मा के शलए निीं।'[211]

रामानुज कृष्ण, अजुनव और राजाओं में ककए गए भेद पर ज़ोर देता ि◌ै और उसे अल्न्तम मानता ि◌ै और उसका ववचार ि◌ै कक प्रत्येक व्यल्क्तगत आत्मा अनश्वर ि◌ै और समस्त ववश्व के साथ समयुगीन ि◌ै।

यिां ◌ंपर परमंआत्मा की ि◌ाश्वतता की ओर संकेत निीं, अवपतु ◌ुअनुभवजन्य अिम् ◌्की पूवसवत्ता और उत्तरसत्ता की ओर संकेत ि◌ै। अिम् ◌्की अनेकता अनुभवशसद्ध ववश्व का एकत्व ि◌ै। प्रत्येक व्यल्क्त प्रारल्म्भक अनल्स्तत्व से वास्तववक के रूप में पूण वअल्स्तत्व की ओर, असत् ◌्से सत् ◌्की ओर आरोिण कर रिा ि◌ै। जिां सांख्य-प्रणाली में आत्माओं की अनेकता स्थावपत की गई ि◌ै, विां गीता इस अनेकता का मेल एकता से बबठा देती ि◌ै। क्षेतज्ञ एक ि◌ै, ल्जसमें ि◌म जीते ि◌ैं, चलते-कफरते ि◌ैं और ल्जसमें ि◌मारा अल्स्तत्व ि◌ै। ब्रह्म सब वस्तुओंका आधार ि◌ै और वि अपने-आप में कोई वस्तु ◌ुनिीं ◌ंि◌ै। ब्रह्म काल में निीं ◌ंरिता, अवपतु काल ब्रह्म में रिता ि◌ै। इस अथ वमें भी जीवों का न कोई आहद ि◌ै, न अन्त । आत्माएं ब्रह्म की भांतत ि◌ैं, क्योंकक कारण और काय वमूलतः एक ि◌ैं,

जैसा कक "म ◌ैंब्रह्म ि◌ूँ", "वि तू ि◌ै" इत्याहद उल्क्तयों से सूधचत ि◌ोता ि◌ै। सूसो से तुलना कील्जए : "सब प्राणी हदव्य मूल तत्व में अपनेआदि वकी भांतत ि◌ाश्वत काल से ववद्यमान चले आ रिे ि◌ैं। सब वस्तुएं, जिां तक वे अपने हदव्य आदि वके अनुकूल-अनुरूप ि◌ैं, उनकी सृल्ष्ट ि◌ोने से पिले भी परमात्मा के साथ एकरूपता में ववद्यमान थीं।" व्यल्क्तक ईश्वर, हदव्य स्रष्टा, अनुभवजन्य ववश्व का समकालीन ि◌ै। वि अनुभवगम्य अल्स्तत्वों का पूणरूवप ि◌ै। "जीवों का स्वामी गभ वके अन्दर ववचरण करता ि◌ै। जन्म बबना शलये भी वि अनेक रूपों में जन्म लेता ि◌ै।"[212]

किंराचाय वका कथन ि◌ै कक "वस्तुतः केवल परमात्मा ि◌ी ि◌ै, जो पुनजन्वम लेता ि◌ै। "[213] इसकी पास्कल के इस वक्तव्य से तुलना कील्जए कक इस संसार का अन्त ि◌ोने तक ईसा कष्ट सिता रिेगा। मानवता पर जो आघात ककए जाते ि◌ैं, उन्िें वि अपने ऊपर ले लेता ि◌ै। शसरजी गई वस्तुओं की दिाओं को वि सिन करता ि◌ै। मुक्त आत्माएं जब तक काल ि◌ै, तब तक कष्ट उठाती ि◌ैं और काल की समाल्प्त ि◌ोनेपर ि◌ाल्न्त में प्रवेि करती ि◌ैं, िालांकक वे हदव्य जीवन में इस समय भी भाग लेती ि◌ैं। अन्तर इतना ि◌ै कक व्यल्क्तक भगवान् ◌्ने स्वेच्छा से अपने-आप को सीशमत ककया ि◌ुआ ि◌ै, जब कक ि◌म ववविता के कारण सीशमत ि◌ैं। यहद वि भगवान् ◌्प्रकृतत के इस नाटक का स्वामी ि◌ै, तो ि◌म इसके नाटक के अधीन पान ि◌ैं। अज्ञान व्यल्क्तगत आत्मा पर प्रभाव डालता ि◌ै, परन्तु ववश्वजनीन आत्मा पर निीं। जब तक ववश्व की प्रकक्रया समाप्त न ि◌ो, तब तक व्यल्क्तयों की अनेकता और उनके पृथक् पृथक् गुण ववद्यमान रिते ि◌ैं। यि बिुववधता सृल्ष्ट से पृथक् निींकी जा सकती। मुक्त आत्माएं

---

211 देिभेदानुवृत्त्या बिुवचनम्नात्मभेदाशभप्रायेण ।

212 प्रजापततश्चरतत गने अन्तर् ◌्अजायमानो बिुधा ववजायते।◌े वाजसनेतयसंहिता 31, 19; साथ ि◌ी देखखए, 4 32

213 सत्यं ◌ंनेश्वरादन्यत् ◌्संसारी (ब्रह्मसून पर ि◌ांकर भाष्य 1, 1, 5)।

सत्य को जानती ि◌ै और उसी में जीवन बबताती ि◌ै, जब कक अमुक्त आत्माएं कम वके बन्धन में फंसी ि◌ुई एक जन्म के बाद दूसूरा जन्म लेती जाती ि◌ै।

देहिनोऽस्स्मन्यथा दि कौमारं यिौनां जरा।

तथा दिान्तरप्रास्प्तषीरस्तल न मुहुयतत ॥13।।

(13) जैसे इस ि◌रीर में आत्मा बचपन से यौवन और वाधक्वय में से गुज़रता ि◌ै उसी प्रकार की वस्तुइसका दूसूरा ि◌रीर धारण कर लेना ि◌ै। धीर व्यल्क्त इससे घबराता निीं।

तुलना कील्जए, ववष्णुस्मृतृत : 20, 491

मानव-प्राणी जन्म और मरण की एक श्रृंखला में से गुजरकर अपने-आप की अमरता के योग्य बना लेता ि◌ै। ि◌रीर में ि◌ोने ◌ेवाले पररवतनवों का अथ वआत्मा में पररवतनव निीं। इसके द्वारा धारण ककए गए ि◌रीरों में से कोई भी तनत्य निीं ◌ंि◌ै।

मारास्पशास्गतु कौन्तेय शीतोष्णसुखुदु:ुखदाः ।

आगमापातयनोऽतनत्यास्तास्ांस्ततततक्षस्् भारत ॥14।।

(14) ि◌े कुन्ती के पुल (अजुनव), वस्तुओंके साथ सम्पकव के कारण ठण्ड और गमी, सुख और दु:ुख उत्पन्न ि◌ोते ि◌ै। वे आते ि◌ैं और चले जाते ि◌ैं; सदा के शलए निीं ◌ंरिते। ि◌े भारत (अजुनव), उनको सिन करना सीख ।

ये ववरोधी वस्तुएं सीशमत और सामतयक कारणों पर तनभरव ि◌ैं, जब कक ब्रह्म का आनन्द सावभवौम, स्वतः ववद्यमान, और ववशिष्ट कारणों एवं वस्तुओंसे तनरपेक्ष ि◌ै। यि अववभाज्य सत्ता उस अिकारात्मक अल्स्तत्व के सुख और दु:ुख की घट-बढ़ का समथनव करती ि◌ै, जो इस बिुववध ववश्व के सम्पकव में आता ि◌ै। सुख और दु:ुख की ये मनोवृवृत्तयांस्वभाव की ि◌ल्क्त द्वारा तनधारवरत ि◌ोती ि◌ैं। ऐसा कोई बन्धन निीं ◌ंि◌ै कक सफलता पर प्रसन्न और ववफलता पर दु:ुखी ि◌ुआ ि◌ी जाए। ि◌म इन दोनों में पूणतवया उदासीन रि सकतिे। यि अिम् ◌्की चेतना ि◌ै, जो आनन्द मनाती ि◌ै और कष्ट पाती ि◌ै और यि तब तक ऐसा करती रिेगी, जब तक कक यि जीवन और ि◌रीर के उपयोग द्वारा बंधी ि◌ुई ि◌ै और अपनेज्ञान और कम वके शलए उन पर तनभरव ि◌ै। परन्तुजब मन स्वतन्त्र और उदासीन ि◌ो जाता ि◌ै और एक रिस्यपूण विाल्न्त में मग्न ि◌ो जाता ि◌ै, जब इसकी चेतना प्रबुद्ध ि◌ो जाती ि◌ै, तब जो भी कुछ घहटत ि◌ोता ि◌ै, उसे यि प्रसन्नता से स्वीकार कर लेता ि◌ै, क्योंकक यि जानता ि◌ै कक ये सब सम्पकव तो आने–◌ेजाने वाले ि◌ैं। ये उनके अपनेअंग निीं ◌ंि◌ैं, भले ि◌ी ये उसके साथ घहटत ि◌ोतिे।214'

---

214 तुलनाकील्जएइ,शमटेन : "इल्न्द्रयों की इच्छाएंमिें जिां-तिां भटकाती कफरती ि◌ैं, परन्तुजब उनका समय बीत जाता ि◌ै, तब उनसे ि◌में अन्तरात्मा की ग्लातन और आत्मा के ववक्षोभ के शसव क्या शमलता ि◌ै?"

य ंहि न व्यथयन्त्येते पुरुष ंपुरुषषभग ।
समदु:खसुखुंधीरां सोऽमृतृत्यि कल्पते॥ 15॥

(15) मनुष्यों में श्रेष्ठ (अजुनव), ल्जस मनुष्य को ये दु:खी निीं करते, जो दु:स और सुख में समान रिता ि, ज्ञानी ि, वि अपने-आप को अपन जीवन के शलए उपयुक्त बनाता ि।

अमर जीवन मृतूयु के बचे ेरिने से शभन्न वस्तु ि, जो प्रत्येक प्राणधारी को हदया गया ि। यि जीवन और मरण से ऊपर उठ जाना ि। िोक और दु:ख के अधीन रिना, भौततक घटनाओं से ववक्षुदध िो उठना और उनके कारण अपने तनल्श्चत कत्तव्वय के पथ से, 'तनयतंकम वसे, ववचशलत िो जाना इस बात को प्रकट करता ि कक िम अब भी अववद्या या अज्ञान के शिकार ि।

नासतो अविद्यतेभिाो नाभिाो अविद्यते सतः ।
उभयोरवप दृष्टोऽन्तस्त्नियोस्तत्त्दिशशशगभः ॥16॥

(16) ल्जसका अल्स्तत्व निीं, उसका अल्स्तत्व िो निीं सकता; और ल्जसका अल्स्तत्व ि, उसका अल्स्तत्व शमट निींसकता। इन दो बातों के ववषय में सत्य के देखने वालों ने यि ठीक-ठीक तनष्कष वतनकाल शलया ि।

सदाख्यांब्रह्म : िंकराचाय वने वास्तववक (सत्) की पररभाषा करते िुए किा ि कक यि वि वस्तु ि, ल्जसके सम्बन्ध में िमारी चेतना कभी ववफल निीं िोती; और अवास्तववक (असत्) वि वस्तु ि, ल्जसके सम्बन्ध में मिारी चेतना ववफल रिती ि।'[215] पदाथों के सम्बन्ध में िमारी चेतना बदलती रिती ि, परन्तु अल्स्तत्व के सम्बन्ध में निींबदलती। अवास्तववक ने, जो कक इस संसार का एक क्षखणक प्रदिनव-माल ि, अपररवतनविील वास्तववकता को ढका िुआ ि, जो तनत्य प्रकट रिने वाली ि।

रामानुज के मतानुसार िरीर ि और वास्तववक आत्मा ि।

मध्व ने इस श्लोक के प्रथम चतुथिां की व्याख्या में किा ि कक यि द्वैत का प्रततपादक ि; अववद्यते

अभावः । अव्यक्त प्रकृतत का ववनिा निीं ििो सकता। सत् वैसे िी अववनश्वर ि।

अविनाशश तु तद्धिद्धि येन सिशगमदां ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कस्श्चत्कतुमगिगतत ॥17॥

215 यद्ववषयाबुद्धिनवव्यशभचरततततत्सत्, यद्ववषया व्यशभचरतत तदसत् ।

(17) इस बात को समझ लो कक ल्जससे यि सब व्याप्त िै, वि अववनश्वर िै। इस अपररवतनवीय अल्स्तत्व का ववनाि कोई भी निीं ंकर सकता।

ततम् ः छाया िुआ, व्याप्त। साथ िी देखखए 8, 22, 46; 9, 4; 11, 38 और मिाभारत 12, 240, 201

किंराचाय वने 'व्याप्तम्' ् िदद का प्रयोग ककया िै।

ईश्वर, सवोच्च भगवान्, ् भी अपना ववनाि निीं ंकर सकता।'[216] यि सत्य स्वतः शसद्ध िै। यि बात ककसी को भी अज्ञात निीं ंिै।217 धमग्रवन्थ परमात्मा पर ववजातीय गुणों के धोपे जानेया अध्यारोपण को िटाने ंमें सियता देते िैं, बबलकुल अज्ञात वस्तु को प्रकट करने ंमें निीं।

आत्मतत्व से रामानुज का अशभप्राय संख्या-सम्बन्धी अनेकता के बीच गुणात्मक एकता और समानता से िै।

अन्तिन्त इमे दिा तनत्यस्योक्ताः शरीररणः ।
अनाशशनोऽप्रमेयस्य तस्माधुध्यस्‍ भारत ॥18।।

(18) किा गया िै कक िाश्वत आत्मा के, जो अववनािी और अज्ञेय िै, ये िरीर तो नष्ट िोनेवाले िैं। इसशलए िे अजुनव, तू युद्ध कर।

यिां ंिरीरी िदद व्यल्क्त के सच्चेआत्म की ओर संकेत करता िै, जैसा कक िारीररक मीमांसा218 वाक्यांमें ककया गया िै, जो व्यल्क्त के आत्म की प्रकृतत के सम्बन्ध में एक अनुसन्धान िै। यि अज्ञेय िै, क्योंकक इसे ज्ञान के सामान्य साधनों से जाना निीं ंजा सकता।

य एनां िवेत्त िन्तारां यश्चैनां मन्यते िितम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायांस्न्ति न िन्यते ॥19॥।

(19) जो यि सोचता िै कक वि मारता िै, और जो यि सोचता िै कक वि मारा जाना िै, वे दोनों िी सत्य को निीं ंजानते। यि आत्मा न तो मारता िै और न मारा जाता िै।

यिां ंलेखक आत्म और अनात्म में, सांख्य के पुरुष और प्रकृतत में भेद कर रिा िै।'[219]

---

[216] न कल्श्चदात्मानंववनितयितुक्नोतीश्वरोवप। - िंकराचाय।व

[217] न ह्यात्मा नाम कस्यधचदप्रशसद्धो भवतत। गीता पर िंकराचाय वकी टीका 2, 18

[218] बृिदारण्यक उपतनषद् से तुलना कील्जए: यत् ्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सवान्वतरः। 3, 4, 1

[219] इमसनव के ब्रह्म से तुलना कील्जए:

न जायते शियतिा कदाधच- नायांभूतिूा भविता िा न भूयू: ।
अजो तनत्य: शाश्ितोऽयां पुराणो न िन्यतिेन्यमाने शरीरे ॥20॥

(20) वि कभी जन्म निीं ालेता और न कभी वि मरता िी िै। एक बार अल्स्तत्व में आ जानेके बाद उसका अल्स्तत्व कफर कभी समाप्त निीं ािोगा। वि अजन्मा, िाश्वत, तनत्य और प्राचीन िै। िरीर के मारे जाने े पर भी वि निीं मरता।

देखखए कठोपतनषद्, 2, 18 । तुलना कील्जए, न वधेनास्य िन्यते । छान्दोग्य उपतनषद्, 8, 1, 5। यिां आत्मा का वणनव इस रूप में ककया गया िै कक वि 'अल्स्तत्व में आई िै।' हदव्य रूप में यि सदा रिने वाली िै और इसे अपना अल्स्तत्व परमात्मा से प्राप्त िोता िै।

किंराचाय वने इस वाक्यांकिा इस प्रकार सल्न्धववच्छेद ककया िै : भूत्वा अभववता ।

ेदाविनाशशन ांतनत्यां य एनमजमव्ययम्।्
कथ ांस पुरुष: पाथ गकां घातयतत िस्न्त् क्रम् ्॥21॥

(21) जो यि जानता िै कक यि अववनाश्य और िाश्वत िै, यि अजन्मा और अपररवतनिील िै, े पाथ व (अजुनव), इस प्रकार का मनुष्य कैसे ककसी को मार सकता िै या ककसी को मरवा सकता िै?

जब िमें मालूम िै कक आत्मा अजेय िै, तब कोई इसे कैसे मार सकता िै!

िासाशांस जीणातगन यथा वििाय नितन गृह्णातत नरोऽपराणण ।
तथा शरीराणण वििाय जीणा गन्यन्यातन सयांतत नितन दिी ॥22॥

(22) जैसे कोई व्यल्क्त फटे-पुराने ेकपडों को उतार देता िै और दूसरे नये कपडे ेपिन लेता िै, उसी प्रकार यि धारण करनेवाली आत्मा जीण-व िीण विरीरों का त्याग कर अन्य नये िरीरों को धारण कर लेती िै।

िाश्वत आत्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक निींचलती-कफरती, परन्तु िरीरधाररणी आत्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक आती-जाती िै। यि िर बार जन्म लेती िै और यि प्रकृतत की सामग्री में से अपनेअतीत के ववकास और भववष्य की आवश्यकताओं के अनुसार एक मन, जीवन और िरीर को अपनेआसपास समेट लेती िै। आल्त्मक अल्स्तत्व ववज्ञान िै, जो िरीर (अन्न), जीवन (प्राण) और मन (मनस) के शलववध रूपों को संभाले

"यहद लाल ित्यारा समझता िै कक वि मारता िै, या मारा जाने वाला यि समझता िै कक वि मारा जाता िै, तो वे सूक्ष्म बात को भली भांतत निीं जानते, म ैंबना रिता िांूं, चला जाता िांूं, और कफर वापस लौट आता िै।

रखता िै। जब सारा भौततक िरीर नष्ट िो जाता िै, तब भी आत्मा के वािन के रूप में प्राण और मन के किो बचे रिते िैं। पुनजन्वम प्रकृतत का तनयम िै। जीवन के वववववध रूपों के मध्य एक सोद्देश्य सम्बन्ध िै। कठोपतनषद् से तुलना कील्जए, 1 ,61 "अन्न की तरि मनुष्य पकता िै और अन्न की तरि वि कफर जन्म लेता िै।"

आत्मा के शलए िरीर अतनवाय वजान पडता िै। तब क्या िरीर को मारना उधचत िै? सुतनहदवष्ट सत्ता के संसार का भी एक वविेष अथ िै।

नैनांतछन्दस्न्त शस्त्राणण नैन ंदितत पिाकः ।

न चैनांक्लेदयन्त्यापो न शोषयतत मारुतः ॥23॥

(23) स्त्रि इस आत्मा को छेद निींपातेऔर न अल्ग्न इसे जला पाती िै। पानी इसे गीला निीं करता और न वायुिी इसे सुखाती िै।

अच्छेद्योऽयमदायोऽयमक्लेयोऽशोष्यएिच ।

तनत्यः सिगतः स्थाणुरुचलोऽयांसनातनः ॥24॥

(24) इसे छेदा निीं जा सकता; इसे जलाया निींजा सकता; न इसे ककया जा सकता िै और न इसे सुखाया जा सकता िै। वि तनत्य िै, यि अन्दर व्याप्त िै, अपररवतनवील िै और अचल िै। यि सदा एक रिता िै।

अव्यक्तोऽयमधचन्त्योऽयमविकायोऽयमुच्यते ।

तस्मादेिंविहदत्वैनंनानुशोधचतुमिगशस ॥25॥

(25) इसे अव्यक्त, अधचन्तनीय और अववकाय विा जाता िै। इसशलए उसके ऐसा समझतेिुए तुझे िोक निीं करना चाहिए।

यिां पर ल्जस वस्तु का वणनव िै, वि सा-सा सांख्य का पुरुष िै। उपतनषदों का ब्रह्म निीं। पुरुष रूप या ववचार की पिुंच से परे िै और ल्जन पररवतनवों का मन, प्राण और िरीर पर प्रभाव पडता िै, वे उसे स्पि विनिीं करते। यहद इस बात को परमात्मा पर भी लागू ककया जाए, जो कक एक िी सवव्वयापी िै, तो भी वि अधचन्त्य और अववकाय वआत्मा िै, ल्जसका अथ वयिांअपेक्षक्षत िै। अजुनव का िोक अस्थान में िै, क्योंकक आत्मा को न चोट पिुंचाई जा सकती िै। और न मारा जा सकता िै। रूप बदल सकते िैं, वस्तुएं आनी-जानी िैं, परन्तु उन सबके पीछे जो वस्तु ववद्यमान िै, वि सदा एक िी रिती िै।[220]

---

220 जब कक्रटो पूछता िै कक "सुकरात, िम तुम्िें ककस ढंग से दफनाएं?" तो उत्तर में सुकरात किता िै : "ल्जस ढंग से तुम चािो। परन्तु पिले तुम मुझे, जो वास्तववक म िूं उसे, पकड तो लेना। प्यारे कक्रटो, मन प्रसन्न रखना और किना कक तुम

जो निावान ि◌ै उसके शलए ि◌में ि◌ोक निीं करना चाहिए

अथ चैनांतनत्यजातांतनत्यां ि◌ा मन्यसे मृतृम् ◌्।
तथावप त्ांमिािािो निै शोधचतुमिगशस ॥26॥

(26) और यहद तू यि भी समझे ◌ेकक आत्मा तनत्य जन्म लेता ि◌ै और तनत्य मरता ि◌ै, तो भी ि◌े मिािािु (अजुनव), तुझे ि◌ोक करना उधचत निीं ◌ंि◌ै।

जातस्य हि ध्रुिो मृत्युधिु ◌ांमृतृस्य च।
तस्मादपररिायेऽथे न त्ांशोधचतुमिगशस ॥27॥

(27) क्योंकक जो जन्म लेता ि◌ै, उसकी मृतृयु सुतनल्श्चत ि◌ै; और जो मर चुका ि◌ै, उसका जन्म लेना सुतनल्श्चत ि◌ै। इसशलए ल्जससे बचा ि◌ी निीं ◌ंजा सकता, उसके शलए तुझे ि◌ोक निीं करना चाहिए।

तुलना कील्जए : "इस अल्स्तत्व के घूमते ि◌ुए संसार में कौन मरा ि◌ुआ व्यल्क्त कफर जन्म निीं ◌ंलेता ?"[221]

इस तथ्य को हृदयंगम करने से ि◌मारे अन्दर सन्तुलन और अनुपात आ जाएगा।222

केवल मेरे ि◌रीर को द्ना रि ि◌ो और तब तुम उस ि◌रीर के साथ वैसा ि◌ी करना, जैसा कक आमतौर से ककया जाता ि◌ै और ल्जसे तुम सबसे अच्छा समझिीं।"

221 पररवततततवन संसारे मृतृ: को वा न जायते ◌े। - हितोपदिे ।

222 गौतम बुद्ध ने एक माता को, ल्जसका कक इकलौता पुत्र ि◌िैव में ि◌ी मर गया था, इस प्रकार आश्वासन हदया था कक उसने उससे ि◌िर में जाने को किा और ककसी ऐसे घर से थोडी-सी सरसों लाने को किा, ल्जसमें अभी तक कोई व्यल्क्त न मरा ि◌ो। वि ि◌िर में गई और उसे पता चला कक ऐसा कोई भी पररवार निीं ◌ंथा, ल्जसमें कक मृतृयु न ि◌ो चुकी ि◌ो। तब उसे पता चला कक सब वस्तुओं का यिी तनयम ि◌ै कक वे समाप्त ि◌ो जाती ि◌ैं।

नीचे ◌ेशलखे ि◌ददों में बौद्ध शभक्षुणी 'पताचारा' अनेक ि◌ोकाकुल माताओं को सान्त्वना देती हदखाई गई ि◌ै:

ववलाप न करो, क्योंकक यिां ◌ंमनुष्य का जीवन ि◌ी इस ढंग का ि◌ै,

बबना बुलाए वि आया था, बबना पूछे वि चला गया,

अच्छा, अपने-आप से कफर पूछो, तुम्िारा पुत्र किां से आया था,

इस पृथ्वी पर रिने और इतनी थोडी देर सांस लेने के शलए?

एक रास्तेसे वि आया और दूसरे से चला गया...

यिां आया और यिां से गया तुम रोती क्यों ि◌ो?

- सांग्स ऑफ हद शसस्टस व(बिनों का गीत), श्रीमती राइस डेवेवड्स कृत अंग्रेजी अनुवाद (1909), पू. 78

मिारा जीवन लघुि और मृतूयु सुतनल्श्चत िै। िमारे मानवीय गौरव की यि मांग िै कक िम ठीक बात के शलए कष्ट और दु:ख को स्वीकार करें।

परन्तु मृतूयु की अतनवायतवा ित्याओं को, आत्मित्याओंको और युद्धों को उधचत निींठिरा सकती। केवल इसशलए कक सब भनुष्यों को अवश्य मरना िै िम जानबूझकर अन्य लोगों की मृतूयुकी कामना निीं ंकर सकते। सिी बात यि िै कक सम्पूण वजीवन का अन्त मृतूयुमें िै: सारी प्रगतत निावान् ्ि़ै और सांसाररक अथ वमें कोई भी वस्तु तनत्य निीं ंिै। परन्तु जीवन की प्रत्येक पूण वउपलल्दध में िै लक्ष्य का केवल साधनमात्र िै। ल्जस वस्तु पर पररवतनव या समय का पूरी तरि प्रभाव पडता िै, उसका कोई अपना आन्तररक मित्व निीं िै। िाश्वत योजना यि केन्द्रीय सत्य िै कक ववश्व की घटनाएं पृथूवी पर उसे पूरी तरि कायाल्वन्वत िोने ेका अवसर देती िैं या निीं।

अव्यक्तादीतन भूतूातन व्यक्तमध्यातन भारत ।
अव्यक्ततनधनान्यिे तत्नल का पररदिेना ॥28।।

(28) सब प्राखणयों का आहद या आरम्भ अप्रकट िै। उनका मध्यभाग प्रकट िै और उनका अन्त कफर अप्रकट िीं। िे अजुनव इसमें ववलाप करनेकी क्या बात िै?

आश्चयिगत्पश्यतत कस्श्चदेन- माश्चयिगद्दितत तथिै चान्य:।
आश्चयिगच्चैनैमन्य: शृणोतत श्रुत्िाप्यिेन िेद न चिै कस्श्चत् ्॥29।।

(29) कोई उसे एक अद्भुत वस्तु के रूप में देख पाता िै। कोई दूसूरा उसका वणनव एक अद्भुत वस्तु के रूप में करता िै और कोई अन्य एक अद्भुत वस्तु के रूप में उसे सुनता िै; पर सुनकर भी उसे कोई जान निीं ंपाता।

यद्यवप आत्मा के सत्य तक पिुंचने ेके शलए सब लोग स्वतन्त्र िैं, कफर भी उस तक केवल वे बिुत थोडे–

से लोग पिुंच पातिें, जो उसका मूल्य आत्म- अनुिासन, ल्स्थरता और वैराग्य के रूप में देनेको तैयार रितिें। यद्यवप सत्य तक पिुंचने का माग वसबके शलए खुला िै, कफर भी िममें से अनेक को उसे खोजनेके शलए कोई पे्ररणा िी अनुभव निीं ंिोती। ल्जनको पे्ररणा अनुभव िोती िै, उनमें से अनेक संिय और दुववधा के शिकार रितिें। ल्जन लोगों को कोई संिय निींभी िोता, उनमें से भी अनेक कहठनाइयों से डर जाते िैं। केवल िुए ववरली आत्माएं िी संकटों िो पाती िै। का सामना करने और लक्ष्य तक पिुंचने ेमें सफल

कठोपतनषद से तुलना कील्जए 2, 7। "जब व्यल्क्त उसे देख भी लेता िै, सुन भी लेता िै और उसके बारे में घोषणा भी कर देता िै, तब भी उसे कोई समझ निींपाता।" - िंकराचाय।व

दिेी तनत्यमिध्योऽयां दिे सिग्य भारत।

तस्मात्सिाणगण भूतातन न त्ांशिोधचतुमिगशस्स30।।

(30) िे भारत (अजुनव), सबके िरीर में तनवास करनेवाला (आत्मा) िाश्वत िै और वि कभी मारा निीं जा सकता। अतः तुझे ककसी प्राणी के शलए िोक निींकरना चाहिए।

मनुष्य आत्मा का, जो कक अमर िै, और िरीर का, जो कक मरणिील िै, समास िै। यहद िम यि भी मान लें कक िरीर स्वभावतः मरणिील िै, तो भी क्योंकक वि आत्मा के हितों की रक्षा का साधन िै, इसशलए उसकी भी सुरक्षा की जानी चाहिए। अपने-आप में यि कोई सन्तोषजनक युल्क्त निीं िै, इसशलए कृष्ण योद्धा के रूप में अजुनव के कत्तव्वय का उल्लेख करता िै।

कतव्वय-भावना को जगाने का प्रयास

स्धिममगवप चािेक्ष्य न विकस्म्पतुमिगशस।
धम्यद्गधध युद्ुधाच्रेयोऽन्यत्क्षतनयस्य न विद्यते ॥ 31।।

(31) इसके अततररक्त अपनेकत्तव्वय का ध्यान करते िुए भी तुझे ववचशलत निीं िोना चाहिए। क्षबत्रय के शलए धमयुवद्ध से बढ़कर और कोई कत्तव्वय निीं िै।

उसका स्वधम वअथात्व कम वका तनयम उससे युद्ध में लडने की मांग करता िै। यहद आवश्यकता िो, तो सत्य की रक्षा के शलए युद्ध करना क्षशलय का सामाल्जक कत्तव्वय िै। संन्यास उसका कत्तव्वय निीं िै। उसका कत्तव्वय िल्क्त के प्रयोग द्वारा व्यवस्था बनाए रखना िै, 'शसर घुटाकर' साधु बन जाना निीं।'[223] कृष्ण अजुनव को बतलाता िै कक योद्धाओंके शलए न्यायोधचत पुद अधधक अच्छा और कोई कत्तव्वय निीं िै। सीधा स्वग वले जाता िै। यि एक ऐसा विविेषाधधकार िै

यिच्छया चोपपन्नांस्गिद्विारमपािृतम्।
सुणुखनः क्षत्ररयाः पाथ गलभन्ते युद्धमीदृशम्32।।

(32) िे पाथ व(अजुनव), वे क्षबत्रय सुखी िैं, ल्जन्िें संयोग से इस प्रकार का युद्ध इस लडनेका अवसर प्राप्त िोता िै। यि युद्ध मानो स्वग वका खुला िुआ द्वार िै।

क्षबत्रय का सुख घरेलू आनन्द और उपभोग में निीं िै, अवपतुन्यायोधचत की रक्षा के शलए लडने में िै।224

223 मिाभारत से तुलना कील्जए: दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षत्रधमो न मुण्डनम्। - िाल्न्तपव,व 23, 46। "जो ववनिा से रक्षा करता िै, वि क्षशलय िै।" क्षताद् यो वै नायतीतत स तस्मात्क्षल्त्नयः स्मृतः । मिाभारत, 12, 29, 1381

224 तुलना कील्जए : "िे पुरुषश्रेष्ठ, केवल दो प्रकार के व्यल्क्त िी सूयूमवण्डल को भेद सकते िैं (और ब्रह्म के मण्डल तक पिुंच सकते िैं); एक तो वे संन्यासी, जो योग में लगे िुए िैं और दूसरे वे योद्धा, जो लडते-लडते युद्धक्षेन में मारे जाते िैं।"

अथ चेत्त्शिमम ांधम्य गसग्राांम ान कररष्यशस ।
ततः स्धिम गकीतत गच हित्ा पापमिाप्स्यशसु3॥।

(33) यहद तू इस धमयुवद्ध को न लडेगो, तो तू अपनेकत्तव्वय और यि से च्युत िो रि िोगा और तू पाप का भागी बनेगा ।

जब न्याय और अन्याय के बीच संघष वचल रि िो, उस समय जो व्यल्क्त शमथ्या भावुकता या दुबुलवता

या कायरता के कारण उस युद्ध से अलग रिे, वि पाप कर रि िोता िै।

अकीतत गचावप भूतातन कथतयष्यस्न्त तेऽव्ययाम् ्।
सम्भावितस्य चाकीतत गमरणादततररच्यते॥ ।34।।

(34) इसके अततररक्त मनुष्य सदा तेरे अपयि की बातें किा करेंगे; और जो आदमी सम्मातनत रि चुका िो, उसके शलए बदनामी मृतूयु से भी किीं ांबुरी िै।

भयाद्रणादुपुरत ांमस्ांयन्तेत्ा ांमिारथाः ।
येषाांच त्ांबिुमतो भूत्ा यास्यशस लाघिम् ्35।।

(35) ये बडे–बडे ेयोद्धा यि समझेंगे कक तू भय के कारण युद्ध से ववमुख िो गया िै और जो लोग तेरा बिुत आदर करते थे, े वे तुझेबिुत छोटा समझने लगेंगे।

िाच्यािादाश्ांच बिून्हिदष्यस्न्त तिाहिताः ।
तनन्दन्तस्ति सामर्थय गततो दुःखतरां नु ुककम् ्॥36।।

(36) तेरे िितु तेरे बल की तनन्दा करते िुए बिुत-सी अनकिनी बातें किेंगे। इससे बढ़कर और दुःख की क्या बात िो सकती िै!

इसका गीता की इस मूल शिक्षा के साथ वैषम्य देखखए कक मनुष्य को स्तुतत और तनन्दा के प्रतत उदासीन

रिना चाहिए।

ितिोप्राप्स्यशसस्गिस्गजत्िा भोक्ष्यसेमिीम् ्।
तस्मादुवुत्तष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृततनश्चयः ॥37।।

द्वाववमौ पुरुषव्याघ्र सूयमवण्डलभेहदनौ।
पररव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाशभमुखो ितः ॥ - मिाभारत, उद्योगपवव ,32, 65

(37) यहद तू युद्ध में मारा गया तो तू ्स्वग वपिंचेगा; यहद तू ववजयी िुआ तो तू पृथ्वी का उपभोग करेगा। इसशलए िे कुन्ती के पुल (अजुनव), तू लडने का तनश्चय करके खडा िो।

चिो िम आधधववद्यक सत्य को देखें, चिो सामाल्जक कत्तव्वय को; िमारा माग वस्पष्ट िै। ठीक भावना से अपनेकत्तव्वय का पालन करते िुए किीं ऊंचा उठ पाना सम्भव िै; और अगले श्लोक में कृष्ण उस सिी भावना का संकेत करता िै।

सुखदु:खे समे कृत्िा लामालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्ि नैिं पापमिाप्स्यशस ॥38॥

(38) सुख और दु:ख को, लाभ और िातन को, जय और पराजय को समते ेपु समझ और युद्ध के शलए तैयार िो जा; तब तुझेपाप निीं ंलगेगा।

इस पर भी, इससे पिले के श्लोकों में कृष्ण ने लज्जा का ववचार करनेप्रतत स्वग वकी प्राल्प्त पर और भौततक प्रभुत्व पर जोर हदया िै। सांसाररक बातो किने के बाद अब वि घोषणा करता िै कक इस युद्ध को समबुद्धध की भावन करना िोगा। पररवतनव की अधीरतापूण वइच्छा के सम्मुख झुके बबना, भावुकताल उतार-चढ़ावों के अधीन िुए बबना िमें अपने-आप को सौंपे गए काम को पररल्स्थततयों में रितेिुए करना िै, ल्जनमें िमें ला खडा ककया गया िै। जब िमें िाश्वत भगवान् ्में ववश्वास िो जाता िै, और िम उसकी वास्तववकता को अनुभव कर लेते िैं, तब इस संसार के कष्ट िमें ववचशलत निीं ंकरते ।225 जो व्यल्क्त अपनेजीवन के सच्चेलक्ष्य को खोज तनकालता िै और अपने-आप को पूरी तरि उसके शलए समवपतव कर देता िै, वि मिात्मा िै। भले िी उससे बाकी सब चीजें छीन ली जाएं, भले िी उसे नंगा, भूखा और अकेला सडकों पर भटकना पडे,े भले िी उसे कोई ऐसा मानव-प्राणी न हदखाई पडता िो, ल्जससे वि आंखें शमला सके और उससे सिानुभूतत पा सके, कफर भी वि मुस्कुराता िुआ अपनी रािा पर चलता जाएगा, क्योंकक उसे आन्तररक स्वाधीनता प्राप्त िो चुकी िै।

योग की अन्तदृल्वष्ट

एषा तेशभहिता साख्ांये बुद्धधिोंगे स्त्िमािांश्रृणु ु।
बुद्ध्या युक्तो यया पाथ गकमबगन्धांप्रिास्यशस ॥39॥

(39) िे पाथ व(अजुनव), यि मनैं तुझेसांख्य का ज्ञान बताया िै। अब तू योग का ज्ञान सुन। इस ज्ञान को ग्रिण करके तू कम वके बन्धनों को परे फेंक देगा।

---

225 ल्यूथर से तुलना कीजए : " और भले िी वे िमारा जीवन, वस्तुएं, प्रततष्ठा, बच्चे और स्त्री, सब- कुछ छीन लें, कफर भी उनका लाभ थोडा िी िै; ये सब वस्तुएं ववनष्ट िो जाएंगी, परन्तु परमात्मा का नगर कफर भी बना रिेगा।"

गीता में सांख्य िदद से अशभप्राय सांख्यदिनव की प्रणाली से निीं ि और न योग का िी अथ वपातंजल योग
ीं सांख्य के दितवनक सम्प्रदाय में स्पष्ट रूप से पुरुष (आत्मा) और प्रकृतत (अनात्मा) के द्वैत को स्थावपत
ककया गया ि, परन्तु गीता उसके ऊपर उठ गई ि और इसमें एक परमात्मा की वास्तववकता का प्रततपादन ककया
गया ि, जो सबका स्वामी ि। सांख्य अपररवतनिवील परमात्मा की स्फुरणा का बौद्धधक वववरण प्रस्तुत करता
ीं यि ज्ञानयोग ि। काय वका और कमयवोग ि। देखखए 3, 3। अब तक ल्जस ज्ञान का वणनव ककया गया ि, वि
केवल वातालवाप या ववद्वत्तापूण ववाद-वववाद की वस्तु निीं। उसका आन्तररक रूप से अनुभव िोना चाहिए।
गीता में सांख्य ज्ञान पर और इच्छा के पररत्याग पर जोर देता ि और योग कम वपर। जो इस बात को जानता ि कक
आत्मा और िरीर पृथक् ि, कक आत्मा अववनश्वर ि और संसार की घटनाओं से ववचशलत निीं िोता, उसे ककस
प्रकार का आचरण करना चाहिए? यिांपर गुरु कृष्ण बुद्धधयोग का, अथात्व ्बुद्धध या समझ को एकाग्र करने का,
ववकास करता ि। बुद्धध केवल धारणाओं को बनानेकी क्षमता-भर निीं ंि। इसे पिचाननेऔर वस्तुओंमें ववभेद
करने ेका काय वभी करना पडता ि। समझ या बुद्धध को इस प्रकार प्रशिक्षक्षत ककया जाना चाहिए कक उससे
अन्तदृल्वष्ट ल्स्थरता और समता (अनुकूल और प्रततकूल वस्तु में समत्व का भाव) प्राप्त िो सके। मन का सम्बन्ध
इल्न्द्रयों से िो, इसके बजाय मन को बुद्धध द्वारा माग वहदखाया जाना चाहिए, जो कक मन की अपेक्षा उच्चतर ि।
3, 42 । मन को बुद्धध के साथ जोडा जाना चाहिए (बुद्धधयुक्त) ।

यिां ंिास्त्रीय सांख्यदिनव का, जो कक गीता के समय तनमावण की दिा में था, प्रभाव स्पष्ट हदखाई पडता
ीं इसके अनुसार पुरुष तनल्ष्क्रय ि और वस्तुतः उसका बन्धन और मुल्क्त से कोई वास्ता निीं ि। बन्धन और
मोक्ष मूलतः बुद्धध के काय वि। यि बुद्धध चौबीस मूल तत्वों[226] में से एक ि। प्रकृतत में से क्रमिः भौततक तत्व की
पांच ताल्त्वक दिाओं ंका आकाि, वायु, अल्ग्न, जल, पृथ्वी का-और भौततक तत्व के पांच सूक्ष्म गुणों का िदद,
स्पि,व रूप, स्वाद, गन्ध का तथा बुद्धध या मित् ्का, जो ज्ञान और संकल्प का ववभेदक तत्व ि तथा अिंकार या
'म'ं की भावना का और अपनेदसों इल्न्द्रय-सम्बन्धी कृत्यों-पांच ज्ञानेंहद्रयों और पांच कमेल्न्द्रयों के कृत्यों- के
साथ मन का ववकास िोता ि। अ बुद्धध पुरुष प्रकृतत के भेद को हृदयंगम कर लेती ि, तब मुल्क्त प्राप्त िो जाती ि।
इस दृल्ष्टकोण को गीता के ईश्वरवाद के अनुकूल ढाल शलया गया ि। बुद्धध िरीर रूपी रथ का सारथी ि। इस रथ
को इल्न्द्रयों के घोडे ेखींच रि ि, ल्जनकी रासों में मन संभाले िुए ि। आत्मा बुद्धध से ऊपर ि, परन्तु वि केवल
तनल्ष्क्रय साक्षी मात्र ि। कठोपतनषद में बुद्धध को सारथी बताया गया ि, जो मन द्वारा इल्न्द्रयों का तनयन्त्रण
करती ि और उसे आत्मा को जानने ेमें समथ वबनाती ि।'[227] यहद वृद्धध आत्मा की चेतना से प्रकाशित िो उठे और
उसे अपने जीवन का प्ेरेरक प्रकार बना ले, तो उसका मागदविनव ववश्व के प्रयोजन के साथ समस्वर िो जाएगा।
यहद आत्मा का प्रकाि बुद्धध में समुधचत रूप से प्रततफशलत िोता िो, अथात्व ्यहद बुद्धध सब मशलन करने ेवाली
प्रववृत्तयों से स्वच्छ कर दी जाए तो वि प्रकाि ववकृत निीं िोगा और बुद्धध का आत्मा के साथ मेल रिेगा। अिंकार

226 इस बात को प्रकट करनेके शलए मध्व ने व्यास को उद्धत ककया ि। िुद्धात्मतत्वववज्ञानेसांख्यशमत्यशभधीयते।े तुलना
कील्जए:श्वेताश्वतर उपतनषद्, सांख्ययोगाधधगम्यम्।् 6, 13
227 3,3

और पृथक्त्व की भावनाएं उस समस्वरता के दिनव से समाप्त िो जाएंगी, ल्जसमें प्रत्येक वस्तु सबमें और सब वस्तुएं प्रत्येक में ववद्यमान िैं।

गीता में सांख्य और योग परस्पर बेमेल प्रणाशलयां निीं िैं। उनका उद्देश्य एक िी िै, परन्तु उनकी पद्धततयां शभन्न िैं।

नेिाशभक्रमनाशोऽस्स्त प्रत्यिायो न ववद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धमगस्य रायते मितो भयात् ्॥40॥

(40) इस माग वमें ककया गया कोई प्रयत्न कभी नष्ट निीं िोता और न कोई बाधा िी बनी रिती िै। इस धम वका थोडा-सा अंश भी बडे ेभारी भय से रक्षा करता िै।

कोई भी बढ़ाया गया कदम व्यथ वनिींजाता। प्रत्येक क्षण एक लाभ िी िै। इस संघष वमें ककया गया

प्रत्येक प्रयत्न एक बडा गुण धगना जाएगा।

व्यवसायात्मका बुद्धधरेकेि कुरुनन्दन ।

बिुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसातयनाम् ्॥41॥

(41) िे कुरुनन्दन (अजुनव), इस क्षेत्र में दृढ़ संकल्प वाली बुद्धध एक िी िोती िै, परन्तु अतनल्श्चत मनमाने लोगों के ववचार अनेक हदिाओं में बबखरे िुए और अनन्त िोते िैं।

दृढ़ संकल्पिीन बुद्धध की चंचलता का दृढ़ संकल्प वाली बुद्धध की एकाग्रता और एक-उद्देश्यता के साथ वैषम्य हदखाया गया िै। मानव-जीवन ककसी एक श्रेष्ठ उद्देश्य में अपनेआप को लगाकर पूणतवा प्राप्त कर सकता िै, अनन्त सम्भावनाओं की असंयत खोज द्वारा निीं। एकाग्रता साधना द्वारा प्राप्त की जानी िै। धचत्त - ववक्षेप िमारी स्वाभाववक दशा िै, ल्जससे िमें मुक्त िोना िै। परन्तु यि मुल्क्त प्रकृतत के या यौन-भावनाओं के, जातत या राष्र के रिस्यवादों द्वारा प्राप्त निीं िोगी, अवपतु 'वास्तववकता' की एक सच्ची अनुभूतत द्वारा प्राप्त िोगी। इस प्रकार की अनुभूतत द्वारा प्राप्त िुई एकधचत्तता एक सवोच्च गुण िै और उसे तोड-मरोडकर कठमुल्लापन के रूप में निींबदला जा सकता।

दुतुनयादारों के शलए ज्ञान निीं

यावशममां पुस्ष्पतां वाचं प्रवदन्त्यववपस्श्चतः ।

वेदवादरताः पाथ गनान्यदस्तीतत वाहदनः ॥42॥

कामात्मानः स्र्गिपगरा जन्मकमफगलप्रदाम् ्।

कक्रयाविशेषबिुला ांभोगैश्र्िियगतत प्रतत ॥43॥

(42 - 43) वे ेअवववेकी लोग, जो वेद के िददों में आनन्द लेते िैं, ल्जनका कथन िै कक इसके शसवाय और कुछ निीं िै, ल्जनका स्वभाव लालसापूण विै और जो स्वग वजानेके इच्छुक िैं, वे इन फूलों जैसे (आकषकव) िददों को कितेिैं, ल्जनका पररणाम कमों के फल के रूप में पुनजन्वम िोता िै और वे लोग आनन्द और िल्क्त की प्राल्प्त के शलए अनेक वविेषे प्रकार की ववधधया बतातेिैं।

गुरु सच्चे कम वऔर कमकवाण्डीय पववनता में अन्तर बताता िै। वैहदक यज्ञों का उद्देश्य भौततक लाभों की प्राल्प्त िै। परन्तु ुगीता िमें स्वाथ वकी सब लालसाओं का त्याग करने को किती िै और सम्पूण वजीवन को एक बशलदान (यज्ञ) बनाकर, जो कक सच्ची भल्क्त के शलए समवपतव िो, कम वकरनेके शलए किती िै।

व)् मुण्डकोपतनषद् से तुलना कील्जए, 1, 2, करते िैं कक केवल यज्ञ 10। "वे मूख,व जो यि ववभ (इष्टापूतम् करने ेसे पुण्य शमलता िै और अन्य ककसी प्रकार पुण्य निींशमलता, स्वग वमें आनन्द का उपभोग करनेके बाद कफर इस मत्य-वजगत में वापस आ जाते िैं ।" साथ िी देखखए ईिपतनषद, 9,12, कठोपतनषद 2, 5। वैहदक आय व जीवन को अधीरतापूवकव स्वीकार करने मे दृल्ष्ट से िोनदार बच्चों के समान थे। वे ेउस मानवता के यौवन के प्रततततनध ल्जसका कक जीवन उस समय तक ताज़ा और मधुर था और धचन्ताजनक ववकल निींिुआ था। उनमें पररपक्वता का सन्तुशलत ज्ञान भी था। परन्तु लेकर ने अपना ध्यान केवल वेदों के कमकवाण्ड तक िी सीशमत रखा ि,ै जो कक वेद की सारी शिक्षा निीं ंिै। जिांवेद िमें कमफवल की इच्छा के साथ, चिो वि अस्पाथ वस्वग विो और चिो उसका फल एकं नये सिरीर जीवन में शमलना िो, कम वकरते का उपदेि देता िै, यिां बुद्धधयोंग िमें मुल्क्त की ओर ले जाता िै।

भोगैश्र्ियप्रगसक्ताना ांतयापहृतचेतसाम् ्।

व्यिसायात्मका बुद्धधः समाधौ न विधीयते ॥44॥

(44) जो लोग आनन्द और िल्क्त प्राप्त करने ेमें लगे रितेिैं और ल्जनके मन (वेद के) इन िददों द्वारा प्रेररत रितेिैं, उनकी भले और बुरे का वववेक करनेवाली बुद्धध आत्मा में (या एकाग्रता में) भलीभांतत ल्स्थर निीं ंिोती।

उनका मन परमात्मा में एकाग्र निीं िोगा।'[228] बुद्धध, ल्जसे भलीभांतत प्रशिक्षण हदया जाना चाहिए,

अपनेसामान्य कत्तव्वय से ववचशलत िो जाती िै।

---

228 श्रीधरसेतुलनाकील्जए समाधधल्श्चतैकाययम्,् परमेश्वराशभमुखुत्वम् ्इतत यावत्;् तल्स्मन् ्तनश्चयाल्त्मका बुद्धधस्तु न ववधीयते।

रैगुैणुयविषया िदा तनस्रैगुैणुयो भिाजुनग ।
तनद्धगन्तोतनत्यसत्त्स्थिोतनयोगक्षेम आत्मिान् ्45।।

(45) वेदों का ववषय तीन गुणों की कक्रया से सम्बल्न्धत िै। परन्तु िे अजुनव, तू इस बत्रगुणात्मक प्रकृतत से स्वतंत्र िो जा। तू सब द्वन्द्वों से (परस्पर ववरोधी युग्मों से) मुक्त िो जा और दृढ़तापूवकव सत्त्वभाव में ल्स्थत िो जा। अजुनव और रक्षण की धचन्ता छोड दे और आत्मा को प्राप्त कर।

तनत्यसत्त्ि: अजुनव से किा गया िै कक वि गुणों से ऊपर उठ जाए और सत्व में ल्स्थर िो जाए। अजुनव से सत्व-गुण के परे पिुंचने ेको निींअवपतुिाश्वत सत्य तक पिुंचने ेको किा गया िै। परन्तु िंकराचाय वरामानुज ने यिां ंइसका अथ वसत्व-गुण हदया िै। सांसाररक जीवन के तनवाव के शलए आवश्यक कमकवाण्डीय ववधधयां इन गुणों का पररणाम िैं। पूणतवा का पुरस्कार प्राप्त करने ेके शलए िमें अपना ध्यान परम वास्तववकता की सगाना िोगा। परन्तु मुक्त व्यल्क्त का आचरण बाह्य रूप से वैसा िी िोगा, संत कक उस व्यल्क्त का िोता िै, जो सत्व-गुण की
दिा में ल्स्थत िै। उससे कम वतत और अनासक्त िोंगे। वि कमफवल की इच्छा के बबना कम वकरता िै। वेद कमकवाण्ड के अनुयायी ऐसा निीं ंकरते।
योगक्षेम का अथ विै-नई वस्तुओंकी प्राल्प्त और प्राप्त िो चुकी वस्तुओं की रक्षा।229

आत्मिान् ्: आत्मा वाला, सदा सचेत ।230 आपस्तम्ब का कथन िै कक आत्मा को प्राप्त करने ेसे अधधक ऊंची वस्तुऔर कोई निींि।231 उस आत्मा को जानना, ल्जसका न आहद िै, न ववनाि; उस आत्मा को, जो अमर िै और ल्जसे िम निींजानते, जानना मनुष्य का सच्चा लक्ष्य िै। यहद िम इस पक्ष को दबा देते िैं, तो िम उपतनषद् के िददों में आत्मा के घातक िैं।232

यािानथ गउदपाने सितग: सप्ांलुतुोदके।
तािान्सिैषुिेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ 46।।

(46) जब सब ओर जल िी जल की बाढ़ आई िो, उस समय एक पोखर का ल्जतना उपयोग िोता िै, उतना िी उपयोग ज्ञानी ब्राह्मण के शलए सब वेदों का िै।

---

229 अनुपात्तस्य उपादानंयोग:उपात्तस्यरक्षण क्षेमः ।

230 अप्रमतश्च भव। - िंकराचाय व।

231 आत्मलाभान्न परं ववद्यते े। - धमसूवतूर 1, 7, 2

232 आत्मिनो जना:।

तुलना कील्जए : "जैसे ल्जस व्यल्क्त को नदी का पानी प्राप्त िोता िै कुएं को कोई मित्व निीं ंदेता, उसी प्रकार ज्ञानी लोग कमकवाण्ड की ववधचचे ेमित्व निीं ंदेते।"[233] ल्जनकी चेतना प्रबुद्ध िो चुकी िो, उनके शलए करेंग ववधधयों का मित्व बिुत कम िै।

पररणाम की धचन्ता ककए बबना कम वकरना

कमणगयेिाधधकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कमफगलिेतुभूमगा गते सङ्गोऽस्त्वकमणगम्॥47॥

(47) तुझे ेकेवल कम वकरने ेका अधधकार िै; उनके फल पर तेरा अधधका बबलकुल निीं ंिै। तेरा उद्देश्य कम व का फल कभी न िो और न अन (कमों का त्याग) के प्रतत तेरा अनुराग िो।

इस प्रशसद्ध श्लोक में अनासल्क्त का मूल शसद्धान्त ववद्यमान िै। जब िम अपना काम करते िैं, िल चलाते िैं या धचत्रांकन करते िैं, गाते िैं या धचन्तन करते िैं, तब यहद िम यि या आय या अन्य ककसी इस तरि के बाह्य लाभ का ध्यान रखें, तो िम अनासल्क्त से ववचशलत िो जाएंगे। सत्संकल्प भगवान् ्के प्रयोजन को स्वेच्छापूवकव पूण वकरने ेके अलावा अन्य ककसी वस्तु का मित्व निीं िै। सफलता या ववफलता व्यल्क्त पर तनभरव निीं ंिै अवपतु और भी अनेक कारणों पर तनभरव िै। धगयोडावनो ब्रूनो का कथन िै: "म ैंजूझा िंू ्, यिी बिुत िै; ववजय भाग्य के िाथों में िै।"

योगस्थः कुरु कमाणगण सङ्गंत्यक्त्िा धनञ्जय ।

शसद्ध्यशसद्ध्योः समो भूत्िा समत्वंयोग उच्यते ॥48॥

(48) िे धन को जीतने वाले (अजुनव), तू योग में ल्स्थत िोकर, सब प्रकार की आसल्क्त को त्यागकर, सफलता और ववफलता में मन को समान रखते िुए अपना काम करता जा; क्योंकक मन की समता िी योग किलाती िै।

योगस्थ : अपनी आन्तररक िाल्न्त में ल्स्थर ।

समत्वम् ्: आन्तररक सन्तुलन । यि अपनेआप को वि में करना िै। यि क्रोध, अिंकुषोभ, अशभमान

और मित्वाकांक्षा को जीतना िै।

िमें पररणामों के प्रतत उदासीन रिते िुए पूरी िाल्न्त से काम करना चाहिए। जो व्यल्क्त ककसी आन्तररक ववधान के कारण कम वकरता िै, वि उसकी अपेक्षा ऊंचे स्तर पर िै, ल्जसके कम वअपनी सनकों या विमों के अनुसार ककए जाते िैं।

---

[233] नते . (ज्ञातननःकमवप्रिंसल्न्तकूपनद्यांवपवल्न्नव। मिाभारतिाल्न्तपवव , 240, 10

जो लोग कम वके फलों की इच्छा से कम वकरते िैं, वे पूवजवों या वपतरों के लोक में जाते िैं और जो ज्ञान की खोज करते िैं, वे देवताओं के लोक में जाते िैं।'[234]

दूरेण ह्यिरां कम गबुद्धधयोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमस्न्च्छि कृपणाः फलिेतिः ॥49॥

(49) केवल कम वबुद्धध के अनुिासन (बुद्धध योग) से बित घहटया िै। िे धन को जीतने वाले (अजुनव), तू
बुद्धध में िरण ले। जो लोग (अपने कम वके) फल की इच्छा करते िैं, वे दयनीय िैं।

बुद्धधयोग। साथ िी देखखए 18, 57।

बुद्धधयुक्तो जिातिी उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्ि योगः कमसुग ुकौशलम् ॥50॥

(50) ल्जस व्यल्क्त ने अपनी बुद्धध को (ब्रह्म के साथ) जोड हदया िै, (या जो अपनी बुद्धध में भलीभांतत ल्स्थत
गया िै) वि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कमों को यिीं ंछोड जाता िै। इसशलए तू ूयोग में जुट जा। योग
सब कामों को कुिलता से करनेका नाम िै।

वि नैततक स्तर से भी, ल्जसमें अच्छे और बुरे का भेद रिता िै, ऊपर उठ जाता िै। वि स्वाथ-वभावना से रहित िोता िै और इसशलए वि बुराई निींकर सकता। िंकराचाय वके मतानुसार, योग उस व्यल्क्त द्वारा, जो भगवान् ्में अपनेमन को लगाकर अपनेउधचत कत्तव्वयों का पालन कर रिा िो, सफलता ववफलता में मन को समान बनाए रखने का नाम िै।'[235]

कमजग ांबुद्धधयुक्ता हि फल ांत्यक्त्िा मनीवषणः ।
जन्मबन्धवितनमुक्गताः पदां गच्छन्त्यनामयम् ्॥51॥

(51) वेज्ञानी लोग, ल्जन्िोंने अपनी बुद्धध को (ब्रह्म से) शमलाकर एक कर हदया िै, और कमों से प्राप्त िोने
वाले फलों का त्याग कर हदया िै, जन्म के बन्धन से मुक्त िोकर दुःखिीन दिा को प्राप्त िोतेिैं।

---

234 िंकराचाय वसे तुलना कील्जए: द्ववप्रकार च ववत्तं ंमानुष दैव च, तल मानुष ववत्तं ंकमरूवपंवपतृलोकप्राल्प्तसाधनम्, ् ववद्याच दैवं ंववत्तं ंदेवलोकप्राल्प्तसाधनम्। ् 2,1

235 स्वधमाख्वयेषु कमसुव वतमवानस्य या शसद्धयशसद्धयोः समत्वबुद्धधरीश्वरावपतवचेतस्तया। श्रीधर से तुलना कील्जए: कमजंव फलं त्यक्त्वा केवलमीश्वराराधनाथमेवव कम वकुवाणवा मनीवषणो ज्ञातननो भूत्वा जन्मरूपेण बन्धेन ववतनमुक्वताः ॥

जीववत रिते िुए भी वे जन्म के बन्धन से मुक्त िो जाते िैं और ववष्णु के उच्चतम पद को प्राप्त िोतेिैं, ल्जसे मोक्ष या मुल्क्त किा जाता िै और जो सब प्रकार की बुराइयों से रहित िै।236

यदा तेमोिकशललं बुद्धधव्यततगततररष्यतत ।

तदा गन्ताशस तनवेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥52॥

(52) जब तेरी बुद्धध मोि की मशलनता को पार कर जाएगी, तब तू उस सबके प्रतत उदासीन िो जाएगा, जो कुछ तूने सुना िै, या जो कुछ सुनने को अभी िेष िै।

ल्जस व्यल्क्त को अन्तदृल्वष्ट प्राप्त िो चुकी िै, उसके शलए िास्त्र अनावश्यक िैं। देखखए 2, 46; 4, 44। ल्जसे भगवान् का ज्ञान प्राप्त िो जाता िै, वि वेदों और उपतनषदों के क्षेत्र से परे पिुंच जाता िै। िददब्रह्मातततवततेव े।

श्रुततविप्रततपन्ना ते यदा स्थास्यतत तनश्चला ।

समाधिाचला बुद्धधस्तदा योगमिाप्स्यशस ॥53॥

(53) जब तेरी बुद्धध, जो वेदों द्वारा ववक्षक्षप्त िो गई िै, अववचल िो जाएगी और आत्मा (समाधध) में ल्स्थर िो जाएगी, तब तुझे अन्तदृल्वष्ट (योग) प्राप्त िो जाएगी।

अततविप्रततपन्ना : वैहदक ग्रन्थों के कारण कककतव्वयववमूढ़ िुई। क्योंकक ववचार और आचार के ववशभन्न सम्प्रदाय अपनेसमथनव के शलए वेदों का िवाला देते िैं, इसशलए वे व्यल्क्त को कककतव्वयववमूढ़ कर देते िैं।

समाधध चेतना का अभाव निीं िै, अवपतु यि उच्चतम प्रकार की चेतना िै।'[237] समाधध में मन ल्जस वस्तु के साथ शमल रिा िोता िै, वि वस्तु हदव्य आत्मा िै। के बुद्धधयोग वि पद्धतत िै, ल्जसके द्वारा िम वैहदक कमकवाण्ड से ऊपर उठ जाते िैं के फल की इच्छा न रखते िुए काम करना चाहिए, परन्तु िाल्न्त के साथ, जो ककसी भी कम वकी अपेक्षा अधधक आवश्यक िै। प्रश्न यि निीं किक िम क्या करें, अवपतु यि िै कक िम कैसे करें: ककस भावना से िम कम वकरें।

पूण वप्रज्ञावान् की वविेषेताएं

अजुनग उिाच

जीवन्त एव जन्मबन्धववतनमुक्वताः सन्तः पदं परमे ववष्णोः मोक्षाख्यं गच्छन्त्यनाम सवोपद्रवरहितम्। - िंकराचाय।व

236

237 यि विी वस्तु िै, ल्जससे प्लेटो का तात्पय विै, जब कक वि आत्मा को 'अपने-आप को समेटनेऔर अपने िी अन्दर केल्न्द्रत करने के शलए किता िै। फ़ेरेडो, 83 ए।

स्स्थतप्रज्ञस्य का भाषा समाधधस्थस्य केशि ।

स्स्थतधीः ककां प्रभाषेत ककमासीत व्रजेत ककम् ्॥54॥

(54) ेकेवव (कृष्ण), ल्जस व्यल्क्त की बुद्धध ल्स्थर िो गई िै और ल्जसका अल्स्तत्व आत्मा में ल्स्थर िो गया िै, वि ककस प्रकार का िोता िै? इस प्रकार के ल्स्थर बुद्धध वाले व्यल्क्त को ककस ढंग से बोलना चाहिए, ककस ढंग से उसे बैठना चाहिए और ककस ढंग से उसे चलना चाहिए?

हिन्दुओं की जीवन-व्यवस्था में अल्न्तम सोपान संन्यास का िै, ल्जसमें कक सब कमकवाण्ड छूट जाता िै और सामाल्जक उत्तरदातयत्व त्याग हदए जाते िैं। पिला सोपान ववद्याथी-शिष्य जीवन का िै (ब्रह्मचय)व; दूसरा गृिस्थ का और तीसरा वानप्रस्थ का और चौथा, अल्न्तम सोपान पूण वपरररत्याग (संन्यास) का िै। जो लोग गृिस्थ-जीवन को त्याग देते िैं और गृिीन जीवन को अपना लेते िैं, वे संन्यासी िैं। वैसे तो मनुष्य इस दिा में ककसी भी समय प्रवेि कर िै, परन्तु सामान्यतया यि अवस्था अन्य तीनों सोपानों में से गुजरने के आती िै। संन्यासी संसार के शलए बबलकुल मर जाते िैं, और जब वे अ छोडकर पररव्राजक या गृिीन भटकने वाले बन जाते िैं, की ववधधयां भी पूरी की जाती िैं। तब ये ववकशसत आत्माएं अपनेउदािरण उस समाज पर प्रभाव डालती िैं, ल्जसकी कक अब वे अंग निीं िोतीं। वे स की अन्तरात्मा बन जाती िैं। उनकी वाणी स्वतन्त िोती िै और उनकी ि अरुद्ध िोती िै। यद्यवप उनका मूल हिन्दू धाशमकव संगठन में िोता िै, कफर भी बढ़कर उससे ऊपर उठ जाते िैं और अपने मन की स्वतन्त्रता और दृल्ष्टक की सावभवौमता के कारण वे दूवूषत करनेवाली िल्क्त और अधधकारवाहदयों के जनद्वेषी समझौतों के शलए एक चुनौती िोते िैं। उनका अधधसामाल्जक जीवर परम मूल्यों की वैधता का साक्षी िोता िै, ल्जनसे कक अन्य सामाल्जक मूल्यों का जन्म िोता िै। वे िी ऋवष िोतेिैं और अजुनव यि जानना चािता िै कक इस प्रकार की ववकशसत आत्माओं की पिचान क्या िै; उनके दीख पडने वाले लक्षण कौन-से िैं।

श्री भगिानुिाच

प्रजिातत यदा कामान्सिान्गपाथ गमनोगतान्।्

आत्मन्यिात्मना तुष्टः स्स्थतप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 55॥

श्री भगवान ने किा :

(55) जब मनुष्य अपनेमन की सब इच्छाओं को त्याग देता िै और जब उसकी आत्मा अपने अन्दर िी सन्तुष्ट रिती िै, तब िे पाथ व(अजुनव), वि ल्स्थत- प्रज्ञ (ल्जसकी बुद्धध ल्स्थर िो गई िै) किलाता िै।

नकारात्मक रूप से यि दिा स्वाथपूवण वइच्छाओंसे मुक्त िो जानेकी दिा िै और सकारात्मक रूप से यि भगवान् में एकाग्रता की दिा िै।

दुःखेष्िनुद्विग्नमनाः सुखेषु ुविगतस्पृिः ।

िितरागभयक्रोधः स्स्थतधीमुतुनरुच्यते ॥ 56॥

(56) ल्जसका मन दुःखों में बेचैन निीं ंिोता और ल्जसे सुखों में अधीरतापूण वलालसा निीं रिती, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त िो गया िै, वि ल्स्थत-बुद्धध मुतन किलाता िै।

यि िै आत्म-स्वाशमत्व, ल्जसमें इच्छाओंऔर वासनाओंको जीतने पर ज़ोर हदया गया िै।"[238]

यः सिलगानशभनेस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।्

नाशभनन्दतत न द्ेस्ष्ट तस्य प्रज्ञा प्रततस्ष्ठता ॥ 57॥

(57) ल्जसे ककसी भी वस्तु के प्रतत बि निीं, जो प्राप्त िोने ेवाले िुभ और अिुभ को पाकर न प्रसन्न िोता िै और न अप्रसन्न िोता िै, उसकी बुद्धध (ज्ञान में) दृढ़ता से ल्स्थत िो गई िै।

फूल खखलते िैं और कफर वे मुरझातेिैं। इनमें से पिले की स्तुतत करने और दूसूरे की तनन्दा करने की कोई आवश्यकता निीं। जो कुछ भी िमारे सम्मुख आए, उसे िमें आवेि, दुःख या ववद्रोि के बबना ग्रिण करना चाहिए।

यदा सिंरते चायंकूमोऽङ्गानीनी सिशगः।

इस्न्द्रयाणीस्न्द्रयाथेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रततस्ष्ठता । 58॥

(58) जो व्यल्क्त इल्न्द्रयों के ववषयों में अपनी इल्न्द्रयों को सब ओर से वैसे िीखींच लेता िै, जैसे कछुआ अपने अंगों को (अपनेखोल के अन्दर) खींच लेता िै, उसकी बुद्धध (ज्ञान में) दृढ़ता से ल्स्थत िो जाती िै।

विषया वितनितन्गते ेतनराािरस्य देहिनः ।

रसिणं ंरसोऽप्यस्य परां दृष्ट्िा तनितततेग ॥59॥

(59) इल्न्द्रयों के ववषय उस िरीरधाररणी आत्मा से ववमुख िो जाते िैं, जो उनका आनन्द लेनेसे दूरू रिती िै। परन्तु उनके प्रतत रस (लालसा) कफर भी बना रिता िै। जब भगवान् ्का दिनव िो जाता िै, तब वि रस भी जाता रिता िै।

---

238 ल्यूक्नेशियस से तुलना कील्जए: "धम वइस बात में निीं िै कक वस्त्रों से ढके पत्थर की ओर अववराम मुंिकिरके रिा जाए, न इसमें कक सब मल्न्दरों की वेहदयों के पास जाया जाए, न इसमें कक पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग प्रणाम ककया जाए: न इसमें कक देवताओं ंके तनवास के सम्मुख िाथ ऊपर उठाए जाएं; न इसमें कक मल्न्दरों में पिुओं का रक्त बिाया जाए; न इसमें कक पिथों पर िपथें खाई जाएं: अवपतु इसमें िै कक सबको िाल्न्तमयी आत्मा के साथ देखा जाए।" -डड रेरम नाट्युरा ।

यिां ंपर लेखक बाह्य संयम और आन्तररक त्याग में अन्तर स्पष्ट कर बाद भी उनके कक (62 िै। िो सकता िै कक िम वस्तुओंको त्याग दें; परन्तु उसके इच्छा बनी रि। जब भगवान् ्का दिनव िोता िै, तब यि इच्छा भी समाप्त जाती िै।'[239] संयम िरीर और मन दोनों पर िोना चाहिए। िरीर के अत्याचार के मुक्त िो जाना िी पयाप्वत निीं; िमें इच्छाओंके अत्याचारों से भी मुक्त िोना िोगा।

यततो ह्यवप कौन्तेय पुरुषस्य विपस्श्चतः।
इस्न्द्रयाणणण प्रमाथीतन िरस्न्त प्रसभ ंमनः ॥60॥

(60) िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), भले िी मनुष्य वववेकिील िो और वि सदा (पूणतवा के शलए) प्रयत्न करता रि, कफर भी उसकी प्रबल इल्न्द्रयांउसके मन को बलपूवकव ववचशलत कर िी देती िैं।

तातन सिाणगण सयांम्य युक्त आसीत मत्परः ।
शिैहि यस्येस्न्द्रयाणणण तस्य प्रज्ञा प्रततस्ष्ठता ॥61॥

(61) उन सब (इल्न्द्रयों) को वि में करके, उसे मुझमें ध्यान लगा, योग में ल्स्थर रिना चाहिए; क्योंकक ल्जसकी इल्न्द्रयांवि में िैं, उसकी बुद्धध दृढ़तापूवकव ल्स्थत रिती िै।

मत्परः : एक अन्य पाठ िै 'तत्परः'।

आत्म-अनुिासन बुद्धध का ववषय निीं ंिै, यि तो संकल्प और भावनाओं का ववषय िै। सवोच्च का दिनव िोने ेपर आत्म-अनुिासन सरल िो जाता िै। देखखए 12, 51 मूलत: योग ईश्वरवादी था। साथ िी तुलना कील्जए, योगसूल, 1, 24 । क्लेिकमववपाकािौरपरामृष्टः पुरुषविेषे ईश्वरः ।

ध्यायतो विषयान्पुसांः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सजांायते कामः कामात्क्रोधोऽशभजायते ॥62॥

((62) जब कोई मनुष्य अपने मन में इल्न्द्रयों के ववषयों का ध्यान करने ेलगता 6. तो उसके मन में उनके प्रतत अनुराग पैदा िो जाता िै। अनुराग से इच्छा उत्पन्न िोती िै और इच्छा से क्रोध उत्पन्न िोता िै।

काम: इच्छा। इच्छाएं उतनी िी अदम्य शसद्ध िो सकती िैं, ल्जतनी कक बडी से बढी िल्क्तिाली बाह्य ल्क्तयां। वे िमें ऊपर उठाकर यिस्वी बना सकती िैं या कफर कलेक के गत वमें भी धकेल सकती िैं।

---

239 काशलदास से तुलनाकील्जए:"ल्जनके धचत्त ववकार का कारण ववद्यमान िोने पर भी ववचशलत निीं िोते, वे िी सच्चे वीर िैं।" ववकारिेतौ सतत ववककक्रयन्ते ेयेषांन चेतांशस त एव धीराः। -कुमारसम्भव, 1, 59

क्रोधाद्भितत सम्मोिः सम्मोिात्स्मृतृतविरमः ।
स्मृतृतरशांाबुद्ुधधनाशो बुद्धधनाशात्प्रणश्यतत ॥63॥

(63) क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न िोती िै। मूढ़ता से स्मृतृत नष्ट िो जाती िै। स्मृतृत के नष्ट िोने से बुद्धध का नाि िोता िै; और बुद्धध के नाि से व्यल्क्त िी नष्ट िो जाता िै।

बुद्धधनाश : बुद्धध का नष्ट िो जाना। यि अच्छे और बुरे के बीच भेद कर पाने की असमथतवा िै।

जब आत्मा वासना के विीभूत िो जाती िै, तब उसकी स्मृतृत लुप्त िो जाती िै उसकी बुद्धध मशलन िो जाती िै और मनुष्य नष्ट िो जाता िै। ल्जस वस्तुकी आवश्यकता िै, वि संसार से बलपूवकव पृथक् िो जाना या ऐल्न्द्रय जीवन का ववनाि निीं, अवपतु अन्तमुखवीन प्रत्यावतनव िै। इल्न्द्रयों से घृणा करना उतना िी गलत िै, ल्जतना उनसे प्रेम करना । इल्न्द्रयों के घोडों को रथ में से खोलकर अलग निीं ंकर देना िै, अवपतु मन की रासों द्वारा उन्िें वि में रखना िै।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु ुविषयातनस्न्द्रयैश्चरन् ्।
आत्मिश्यैविधेगयात्मा प्रसादमधधगच्छतत ॥64॥

(64) परन्तु अनुिाशसत मन वाला मनुष्य, जो अपनी इल्न्द्रयों को वि में रखे िुए, राग और द्वेष (लगाव और ववरल्क्त) से मुक्त रिकर इल्न्द्रयों के ववषयों में ववचरण करता िै, वि आत्मा की पववलता को प्राप्त कर लेता िै ।

देखखए 5, 81 ल्स्थत-प्रज्ञ का कोई स्वाथपूवण वप्रयोजन या व्यल्क्तगत आकांक्षा निीं ंिोती। वि बाह्य वस्तुओंके स्पिों से क्षुदध निींिोता। जो भी कुछ घहटत िोता िै, उसे वि बबना आसल्क्त या ववरल्क्त के स्वीकार कर लेता िै। ककसी वस्तु की स्पृिा निीं ंकरता। वि ककसी के प्रतत ईष्यावलु निीं ंिोता। उसकी कोई लालसा निीं िोती और न कोई मांग िी िोती िै।'[240]

प्रसादे सिदुग्ुःखानाांाततिनरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धधः पयिगततष्ठते ॥ 65॥

---

[240] नीचे हदए गए ऋवषयों के वणनव से तुलना कील्जए:

ऊध्वरेतास्तपस्युग्रो तनयतिाी च संयमी।

िापानुग्रियोः िक्तः सत्यसन्धो भवेदृवषः ॥

तपोतन तपाप्मानः यथातथ्याशभधातयनः ।

वेदवेदाङ्गतत्वज्ञा ऋषयः पररकीतततव

(65) और उस आत्मा की िुद्धता में उसके सब दुःखों की समाल्प्त िो जाती िै। इस प्रकार के विुद्ध आत्मा वाले व्यल्क्त की बुद्धध िीघ्र िी (आत्मा की िाल्न्त में) ल्स्थत िो जाती िै।

नास्स्त बुद्धधरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भािना ।
न चाभािायतः शास्न्तरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥66॥

(66) असंयत व्यल्क्त में बुद्धध निीं िोती। असंयत व्यल्क्त में एकाग्रता की िल्क्त भी निीं िोती। ल्जसमें एकाग्रता निीं िै, उसे िाल्न्त प्राप्त निीं िोती; और ल्जसे िाल्न्त निीं िै, उसे सुख किां से शमल सकता िै!

इस्न्द्रयाणां हि चरतांयन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य िरतत प्रज्ञां िायुिाशमिाम्भशस ॥67॥

(67) जब मन भटकती िुई इल्न्द्रयों के पीछे भागता िै, तब वि मनुष्य की समझ को िर लेता िै, जैसे वायु जल में नाव को बिा ले जाती िै।

तस्माद्यस्य मिाबािो तनगृिीतातन सिशगः ।
इस्न्द्रयाणणस्न्द्रयाथेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रततस्ष्ठता ॥68॥

(68) इसशलए िे मिाबािु (अजुनव), ल्जसकी इल्न्द्रयां उनके ववषयों से सब प्रकार से दूर खींच ली गई िैं, उसी की बुद्धध दृढ़ता से ल्स्थर िै।

या तनशा सिभूतानांतस्यांजागतत गसयांमी ।
यस्यां जाग्रतत भूतातन सा तनशा पश्यतो मुनेः ॥69॥

(69) सब प्राखणयों के शलए जो रात िोती िै, उसमें संयमी जागता रिता िै और सब प्राखणयों के शलए जो जागने का समय िै, वि देखने वाले मुतन के शलए (या क्रान्तदिी मुतन के शलए) रात िोती िै।

जब सब प्राणी इल्न्द्रयों के ववषयों की तडक-भडक से आकवषतव िोते िैं, तब मुतन वास्तववकता को समझने के शलए प्रयत्निील रिता िै। वि वास्तववकता की प्रकृतत के प्रतत जागरणिील रिता िै, ल्जसके प्रतत अज्ञ लोग सुप्त या तनरपेक्ष रिते िैं। ववरोधों का जीवन, जो अज्ञातनयों के शलए हदन या सकक्रयता की दिा िै, ज्ञानी के शलए राल्त्र या आत्मा के अन्धकार की अवस्था िै। गेटे से तुलना कील्जए : "भ्राल्न्त का सत्य के साथ विी सम्बन्ध िै, जो तनद्रा का जागरण के साथ।"

आपूयमगाणमचलप्रततष्ठां समुद्रुमापः प्रविशस्न्त यत् ्।
तत्कामा य ंप्रविशस्न्त सि स शास्न्तमाप्नोतत न कामकामी ७०।।

(70) ल्जसकी इच्छाएं उसके अन्दर ऐसे समा जाती िैं, जैसे जल समुद्र में समा जाता िै जो समुद्र सदा भरता रिने ेपर भी कभी मयादवा को निीं ंलांघता- वि िाल्न्त को प्राप्त करता िै; और जो इच्छाओंके पीछे भागता िै, उसे िाल्न्त प्राप्त निीं ंिोती।

िविाय कामान् ्यः सिान्गपुमाश्ांचरतत तनःस्पृिः ।
तनममगो तनरिङ्कारः स शास्न्तमधधगच्छतत ॥71।।

(71) जो मनुष्य सब इच्छाओं को त्याग देता िै और लालसा से िून्य िोकर काय वकरता िै, ल्जसे ककसी वस्तु के साथ ममत्व निीं ंिोता और ल्जसमें अिंकार की भावना निींिोती, उसे िाल्न्त प्राप्त िोती िै।

उपतनषद की इस सुववहदत उल्क्त से तुलना कील्जए : "मानवीय मन दो प्रकार का िोता िैिुद्ध और अिुद्ध / जो मन अपनी इच्छाओं को पूरा करने ेमें लगा रिता िै, वि अिुद्ध िोता िै: जो मन इच्छाओं की आसल्क्त से रहित िोता िै, वि िुद्ध िोता िै।"[241]

चरतत : काय वकरता िै। वि मुक्त रूप से और तत्परतापूवकव, बबना माचे. तोले अपने-आप को ककसी ऐसी वस्तु के शलए खपा देनेको तैयार रिता िै, ल्जसे वि अन्तःस्फुरणात्मक रूप से मिान् ्और श्रेष्ठ समझता िै।

शास्न्तम् ्: िाल्न्त; पाधथव अल्स्तत्व के सब कष्टों की समाल्प्त ।242

एषा ब्राह्मी स्स्थततः पाथ गनैनांप्राप्य विमुह्यतत ।
स्स्थत्ास्यामन्तकालेऽवप ब्रह्मतनिाणगमृच्छतत ॥72।।

(72) िे पाथ व(अजुनव), यि हदव्य दिा (ब्राह्मी ल्स्थतत) िै। जो इसे एक बार प्राप्त कर लेता िै वि (कफर) कभी मोि में निींपडता। इसमें ल्स्थत रिकर मनुष्य अन्त में (मृत्यु के समय) परमात्मा के परम आनन्द (ब्रह्म- तनवाणव) को प्राप्त कर सकता िै।

ब्राह्मी स्स्थततः िाश्वत जीवन।

तनिाणम्, ् मोक्षम्। ् िंकराचाय।व

---

241 मनो हि वैववधं प्रोक्तं िुद्धं चािुद्धमेव च।
अिुद्ध कामसंकंल्प िुद्ध कामवववल्जतवम् ्।

242 सवसंवसारदुःखोपरामत्वलक्षणम्, ् तनवाणवाख्यम्।क्रिराचाय।व

तनगतंव वानं गमनं यल्स्मन् ्प्राप्ये ब्रह्मखण तल्न्नवाणवम्।् - नीलकण्ठ ।

िदद क**तनम्रप्रयोग**बौद्धदिनव में पूणतवा की दिा को सूधचत करने ेके शलए ककया गया ि।ै धम्मपद में कि ा ि ै: स्वास्थ्य सबसे बडा लाभ ि;ै सन्तोष सबसे बडा धन ि;ै श्रद्धा सबसे बडा शमल ि ै और तनवावण सबसे बडा सुख ि।ै'[243]

इन सन्तों में नीत्रों के अततमानव और अलैग्जैण्डर के देवत्वधाररयों के जैसे गुण पाए जाते ि।ैं आनन्द, िाल्न्त, आन्तररक बल और मुल्क्त की चेतना, सिास और - बराच की ऊजाव, और परमात्मा में एक यथावत् ्जीवन उनकी वविेषताएं ि।ैं वे उपकीय ववचार से वधमवान बबन्दु ुके प्रतीक ि।ैं वे अपने अल्स्तत्व, चररत्न और बेतना से िी यि घोषणा करते िैं कक मानवता अपने-आप अपनाई िुई मयादवा ओ ि ऊपर उठ सकती ि ै और ववकास का ज्वार एक नये उच्च स्तर की ओर आगे रि ा ि।ै वे िमारे सम्मुख आदि वप्रस्तुत करते िैं और िमसे आिा करते िैं कक िम अपने वतमवान स्वाथ वऔर भ्रष्टता से ऊपर उठे।

ज्ञान मुल्क्त का सबसे बडा साधन ि,ै परन्तु यि ज्ञान भगवान् ्की भल्क्त और तनष्काम कम वसे बबलकुल पृथृक् निीं ि।ै मुतन जब जीववत िोता ि,ै तब भी वि ब्रह्म में ववश्राम करता ि ै और संसार की अिल्न्त से छुटकारा पा जाता ि।ै ल्स्थत-प्रज्ञ मुतन तनष्काम सेवा का जीवन व्यतीत करता ि।ै

इतत.. साख्ं्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

यि ि ै 'साख्ं्य योग' नामक दूसूरा अध्याय ।

---

243 204।साथिीदेखखएमिाभारत,14,543 :

ववषायसवसंवकंल्पान् ्बुद्धया िारीरमानसान्।्

स वैतनवाणमवाप्नोतत तनररन्धन इवानलः ॥

प्लेटोसेतुलना कील्जए : "यहद आत्मा एक िुद्धता की दिा में प्रस्थान करती ि ै और अपने साथ उस ककसी अिुद्धता को निींलेजाती जो,उसके साथ जीवनकाल में धचपटी रिी थी और ल्जसमें उसनेकभी स्वेच्छा से भाग निीं ंशलया था, अवपतु सदाबचनेका यत्नककया था वि,अपनेआप कोअपनेआप में समेटकर और िरीर से इस पृथृक िोने को अपना उद्देश्य औरइच्छाबनाकरतबइसप्रकारतैयारिोकरआत्माहदव्य अमर और ज्ञानी के उस अदृश्य लोक की ओर प्रस्थान करती ि।ै "फ़ैडोअनुभ ाग 68

आदिवमनुष्यज्ञानी,ल्स्थतप्रज्ञ,योगारूढ़,गुणातीतया,भक्तके वणनवों में सारवस्तु सबमें एक जैसी ि।ै देखखए 6, 4-32; 10,9-10;12, 13-20; 13,7-11; 14, 21-35; 16, 1-3; 18, 50-60

अध्याय 3

कमयवोग या काय वकी पद्धतत

कफर काम ककया िी ककसशलए जाए

अजुनग उिाच

ज्यायसी चेत्कमणगस्ते मता बुद्धधजनगादगन ।

तस्त्कां कमणगण पोरे मा ांतनयोजयशस केशि ॥1॥

अजुनव ने किा :

ि(1)जनादवन (कृष्ण), यहद तू ूसमझता ि ै कक बुद्धध (का माग)व कम व(के माग)व से अधधक अच्छी ि,ै तो ि े किेव (कृष्ण), तू मुझे ेइस भयंकर कम वको करने ेके शलए क्यों कि रिा ि?ै
अजुनव गलती से इस उपदिे का अथ वयि समझता ि ै कक फल की इच्छा से ककया गया काम अनासक्त और तनष्काम कम वसे कम अच्छा ि ै और वि यि समझता ि ै कक कृष्ण का ववचार यि ि ै कक कमरवहित ज्ञान कम वसे अधधक अच्छा ि ै और तब पूछता ि ै कक यहद तुम यि समझते िो कक ज्ञान कम वकी अपेक्षा श्रेष्ठ ि,ै तब तुम मुझसे इस भयंकर काय वको करने ेको क्यों कि रिे िो। यहद ज्ञान प्राप्त करने की सांख्य-पद्धतत अधधक उत्कृष्ट ि,ै तब कम वबबलकुल असंगत बन जाता ि।ै

व्याशमश्रेणि िावक्येन बुद्धध ंमोियसी मे।
तदेकां वद तनस्श्चत्य येन श्रेयोऽिमाप्नुयाम् ्॥2॥

(2) इस शमली-जुली-सी प्रतीत िोनेवाली उल्क्त द्वारा तू मेरी बुद्धध को भ्रशमत-सी कर रिा ि।ै (मुझे) े तनश्चय से

एक बात बता, ल्जसके द्वारा म ैंअधधकतम कल्याण प्राप्त कर सकूँ।

इ : यि शमला-जुलापन या घपला केवल प्रतीत िी िोता ि।ै गुरु का इरादा अजुनव को घपले में डालना निीं ं ि,ै परन्तुअजुनव के मन में घपला िो जाता ि।ै'[244]

जीवन कम वि; पररणामों के प्रतत तनस्पृिता आवश्यक ि ै

श्रीभगिानुिाच

लोकेऽस्स्मस्न्दविधा तनष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेनसाख्ंयानाांकमयगोगेनयोधगनाम्॥॥
३

श्री भगवान् ्ने किा :

ि(3)अनघ (तनदोष), इस संसार में बिुत पिले मनैं ेदो प्रकार की जीवन- प्रणाशलयों का उपदिे हदया था।
धचन्तनिील व्यल्क्तयों के शलए ज्ञानमाग वका और कमिवील व्यल्क्तयों के शलए कममवाग वका।
यिां ंगुरु आधुतनक मनोवैज्ञातनकों की भांतत साधकों के दो मुख्य प्रकारों में अन्तर बताता ि।ै एक तो अन्तमुखव (इण्रोवटव), ल्जनकी स्वाभाववक प्रवृवृत्त आत्मा के आन्तररक जीवन को खोजनेकी ओर िोती ि ै और

244 परमकारुखणकस्य तवमोिकत्वंनास्त्येव, तथावप भ्रान्त्या ममैवै भातीतीव िददेनोक्तम्। ्- श्रीधर

दूसूरे बहिमुखव, ल्जनका स्वाभाववक झुकाव बाह्य संसार में काय वकरनेकी ओर िोता िै। इनसे शमलते- जुलते मिारे यिांज्ञानयोगी िैं, ल्जनका आन्तररक अल्स्तत्व गम्भीर आध्याल्त्मक धचन्तन की उडानों की ओर झुका ुआ िै और दूसूरे कमयवोगी, जो ऐसे ऊजस्ववी व्यल्क्तत्व िैं, ल्जन्िें किम वसे प्रेम िै। परन्तु यि अन्तर आत्यल्न्तक निीं िै, क्योंकक सब मनुष्य कुछ कम या अधधक माला में अन्तमुखव और बहिमुखव दोनों िी िोतेिैं।

गीता की दृल्ष्ट में कम वका माग वभी मुल्क्त के शलए उतना िी समथ वसाधन िै ल्जतना कक ज्ञान का माग;व और ये दोनों माग वदो अलग-अलग श्रेखणयों के व्यल्क्तयों के शलए िैं। वे ऐकाल्न्तक निीं, अवपतु परस्परपूरक िैं। माग वसारा एक िी िै, ल्जसमें अलग-अलग प्रावस्थाएं (हदिाएं या दौर) सल्म्मशलत िैं।

तुलना कील्जए : "जीवन के ये दो प्रकार िैं, जो दोनों िी वेदों द्वारा समधथतव िै एक िै प्रववृत्तमूलक माग व और दूसूरा तनववृत्तमूलक माग व।"[245] जीवन की देन दोनों पद्धततयों का मूल्य समान िै। गुरु इस बात को स्पष्ट करता िै कक ज्ञान या बुद्धध का कम वसे कोई ववरोध निीं िै । िंकराचाय वने इस बात को स्वीकार ककया िै कक कम व ज्ञान के साथ रि सकता िै । कम वको ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में निीं अपनाया जाता, अवपतु साधारण लोगों के सामने उदािरण प्रस्तुत करने के रूप में अपनाया जाता िै। ज्ञानी व्यल्क्त के कम वमें, जैसे कक गीता के उपदेि करनेवाले कृष्ण के कम वमें, आत्म भावना और कमफवल की इच्छा का अभाव रिता िै।246

न कमणगामनारम्भान्नैष्कम्य गपुरुषोऽश्नुते।
न च सन्ंयसनादेि शसद्धध ंसमधधगच्छतत ॥4॥

(4) कम वन करने से िी कोई व्यल्क्त कम वसे मुल्क्त निीं पा सकता। और न केवल (कम वके) संन्यास से िी उसे पूणतवा (शसद्धध) प्राप्त िो सकती िै।

नैष्कम्य ववि दिा िै, ल्जसमें मनुष्य पर कम वका कोई प्रभाव निीं िोता। प्राकृततक तनयम यि िै कक िम अपनेकम वके फलों द्वारा बन्धन में पडते िैं। प्रत्येक कक्रया की एक स्वाभाववक प्रततकक्रया िोती िै और वि बन्धन का कारण बन जाती िै, ल्जससे आत्मा इस नाम-रूपमय जगत् में फंस जाता िै और यि प्रततकक्रया संसार से ऊपर उठनेके द्वारा आत्मा के भगवान् के साथ संयोग में बाधक बन जाती िै। ल्जस चीज़ की आवश्यकता बताई गई िै, वि कमों का त्याग निीं, अवपतु स्वाथ-वलालसा का त्याग िै।

---

245 द्वाववगावथपन्थानौ यल्स्म वेदाः प्रततल्ष्ठताः ।
प्रववृत्तलक्षणो धमः व, तनववृत्तश्च ववभावषतः ॥
- मिाभारत, िाल्न्तपव,व 240, 60

246 अशभनवगुप्त नेयि श्लोक उद्धृत ककया िै :
न कक्रयारहितंज्ञानंन ज्ञानरहिता कक्रया।
ज्ञानकक्रयाववतनष्पन्नः आचायः व पुिपिा ॥
- भगवद्गीता पर िंकराचाय वकी टीका, 2, 11

न हि कस्श्चत्क्षणमवप जातु ततष्ठत्यकमकृगत्।्

कायतेगह्यिशः कम गसिःग प्रकृततजैगुैणैगैः ॥5॥

कोई भी व्यल्क्त क्षण-भर के शलए भी कम वककए बबना र्निीं ंरि सकता। प्रकृतत से उत्पन्न गुणों के कारण प्रत्येक व्यल्क्त को वववि िोकर कम वकरना िी पडता िै।

जब तक िम िरीर धारण ककए िुए जीवन बबताते िैं, तब तक िम कम वसे बच र्निीं ंसकते। कम वके बबना जीवन हटक िी र्निीं ंसकता ।'[247] आनन्दधगरर ने इस बात को स्पष्ट ककया िै कक जो व्यल्क्त आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता िै, वि गुणों द्वारा चलायमान र्निीं ंिोता; परन्तु ल्जस व्यल्क्त ने अपनिेरीर को और इल्न्द्रयों को वि में र्निीं ंककया िै, वि गुणों के कारण कम वकरनेके शलए वववि िोता िै।

इसमें यि अथ वतनहित िै कक इस दृल्ष्टकोण को अस्वीकार कर हदया गया िै कक मुक्त आत्मा कम वकरना बन्द कर देती िै, क्योंकक सम्पूण वकम वपरमावस्था से नीचेधगरना िै और अज्ञान की ओर वापस लौटना िै। जब तक जीवन िै, तब तक कम वसे बचा र्निीं ंजा सकता। धचन्तन भी एक कम विै, जीवन भी एक कम विै, और ये कम व अनेक फलों का कारण बनते िैं। लालसा से मुक्त िो जाना, तनजी स्वाथ वके मोि से मुक्त िो जाना िी सच्चा अकम व िै, िारीररक रूप से गततववधध का पररत्याग अकम वर्निीं। जब यि किा जाता िै कक जो आदमी मुक्त िो जाता िै, उसके शलए कम वसमाप्त िो जाता िै, तब उसका अथ वयि िोता िै कक उसके कम वकरनेकी तनजी रूप से कोई आवश्यकता र्निीं रिती। इसका यि अथ वर्निीं कक वि कम वसे दूरू भागता िै और परमानन्दपूण वतनल्ष्क्रयता में रिण ले लेता िै। वि उसी प्रकार काय वकरता िै जैसे परमात्मा । उसे बाध्य करनेवाली कोई आवश्यकता या वववि करने ेवाला अज्ञान र्निीं ंिोता और कम वकरते िुए भी वि उसमें आसक्त र्निीं ंिोता। जब उसका अिंकार दुर िो जाता िै, तब कम वउसकी आन्तररक गम्भीरता में से तनकलता िै और वि कम वस्लोक में 3 उसके हृदय में गुप्त रूप से ल्स्थत भगवान् ्द्वारा िाशसत रिता िै। इच्छा और आसल्क्त से िून्य िोकर, सब प्राखणयों के साथ. एक िोकर वि अपने आन्तररक अल्स्तत्व की गम्भीरतम गिराइयों से काम करता िै और वि अपनेअमर, हदव्य, सवोच्च आत्मा द्वारा िाशसत रिता िै।

कमेस्न्द्रयाणण सयांम्य य आस्तेमनसा स्मरन् ्।

इस्न्द्रयास्न्मूढ्ात्मा शमर्थयाचारः स उच्यते॥6॥

---

247 तुलना कील्जए :

"आंख चिो या न चिो उसेदेखना िी पडता िै;

मि कानों को स्तदध िोने के शलए र्निीं कि सकते;े

मिारे िरीर, वे चिो जिााँ, अनुभव करते िी िैं,

मिारी इच्छा के प्रततकूल अथवा िमारी इच्छा के अनुकूल। " -वड्सवथ व

(6) जो व्यल्क्त अपनी कमेल्न्द्रयों को तो संयम में रखता ि, परन्तु अपने मन में इल्न्द्रयों के ववषयों का

स्मरण करता रिता ि, ल्जसको प्रकृतत मूढ़ िो गई ि, वि पाखण्डी (शमथ्या आचरण करने वाला) किलाता ि।

मि बिार से चािे अपनी गततववधधयों को तनयल्न्त्रत कर लें, परन्तु यहद िम उन्िें प्रेरणा देने वाली

इच्छाओं को संयम निीं कर सकते, तो िम संयम का सिी अथ वसमझ पाने में असफल रिते िैं।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा तनयम्यारभतेऽजुनग ।

कमेन्द्रियैः कमयगोगमसक्तः स विशशष्यते ॥7॥

(7) परन्तु ि अजुनव, जो व्यल्क्त मन द्वारा इल्न्द्रयों को तनयल्न्त्रत रखता ि और अनासक्त िोकर कमेल्न्द्रयों को कम वके माग वमें लगाता ि, वि अधधक उत्कृष्ट ि।

मानवीय संकल्प ववधान की कठोरता पर ववजय प्राप्त कर सकता ि। िमें सांसाररक वस्तुओंको अपनी तृलप्त के साधन के रूप में निींदेखना चाहिए। यहद िमें अपनी खोई िुई िाल्न्त को, अपनी गंवाई िुई अखण्डता को और अपनी नष्ट िुई तनदोषता को कफर प्राप्त करना िो, तो िमें सब वस्तुओं को वास्तववक ब्रह्म की अशभव्यल्क्त के रूप में िी देखना चाहिए और ऐसे पदाथों के रूप में निीं, ल्जन्िें कक पकडा जा सकता ि और ल्जन पर अधधकार ककया जा सकता ि। वस्तुओं के प्रतत अनासल्क्त की इस मनोवृवृत्त को ववकशसत करनेके शलए धचन्तन आवश्यक ि।

छठे श्लोक में श्री कृष्ण ने केवल बाह्य पररत्याग की तनन्दा की ि और इस श्लोक में आन्तररक वैराग्य की सच्ची भावना की प्रिंसा की ि।

यज्ञ का मित्व

तनयतं कुरु कम गत्िंकिम गज्यायो ह्यकमणगः ।

शरीरयातावप च ते न प्रशसद्ध्येदकमणगः ॥8॥

(8) तेरे शलए जो काय वतनयत ि, तू उसे कर; क्योंकक कम वअकम वसे अधधक अच्छा ि। बबना कम वके तो तेरा िारीररक जीवन भी बना निीं रि सकता।

यज्ञाथात्गकमणगोऽन्यन लोकोऽयां कमबगन्धनः ।

तदथ गकम गकौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥8॥

(9) यज्ञ के शलए या यज्ञ के रूप में ककए जानेवाले कायों को छोडकर यि सारा संसार कम-वबन्धन में डालने

वाला ि ै। इसशलए ि े कुन्ती-पुत्न (अजुनव), सब प्रकार की आसल्क्त से मुक्त ि ोकर यज्ञ के रूप में तू अपना काय वकर।

किराचाय वने यज्ञ को ववष्णु के समान बताया ि ै।

रामानुज ने इसकी व्याख्या ि ाल्ददक तौर पर यज्ञ या बशलदान के रूप में की ि ै।

सारे काय वयज्ञ की भावना से भगवान् ्के शलए ककए जानेचाहिए। मीमांसा की इस मांग को स्वीकार करते ि ुए, कक ि में यज्ञ के प्रयोजन के शलए कम वकरना चाहिए, गीता ि मसे किती ि ै कक ि म इस प्रकार का कम वफल की कोई भी आिा ककए बबना करें। इस प्रकार के मामलों में अतनवाय वकम वमें बन्धन की ि ल्क्त न रिेगी। स्वयं'यज्ञ' की व्याख्या एक ववस्तृततर अथ वमें की गई ि ै। ि में तनम्नतर मन का बशलदान उच्चतर मन के शलए कर देना ि ै। यिां ्वैहदक देवताओं के प्रतत धाशमकव कत्तव्वय भगवान के नाम पर सृलूष्ट की सेवा बन जाता ि ै।

सियज्ञाः प्रजाः सृष्ट्िा पुरोिाच प्रजापततः।
अनेन प्रसविष्यध्िमेष ि ोऽस्स्त्ष्टिकामधुक् ॥10॥

(10) प्राचीन समय में प्रजापतत ने यज्ञ के साथ प्राखणयों को उत्पन्न ककया िा : "इसके द्वारा तुम सन्तान उत्पन्न करो और यि यज्ञ तुम्िारी अमेर इच्छाओंको पूण वकरने वाला ि ोगा।"[248]

कामधुक इन्द्र की पौराखणक गाय ि ै, ल्जससे मनुष्य जो चािे, वि उसे शमल जाता ि ै। अपनेतनयत कत्तव्वय का पालन करनेसे मनुष्य का उद्धार ि ो सकता ि ै।

देिान्भाियतानेन ते ेदेिा भाियन्तु ि ः।
परस्परं भाियन्तः श्े्रेयः परमिाप्स्यथ ॥11॥

(11) इसके द्वारा तुम देवताओं का पोषण करो और देवता तुम्िारा पोषण करें। इस प्रकार एकदूसरे का पोषण करते ि ुए तुम सब परम कल्याण को प्राप्त करोगे। देखखए, मिाभारत, ि ाल्न्तपवव ,340,59-62। जिां ्देवताओं और मनुष्यों की परम्पराधश्रतता का वणनव इससे शमलते-जुलते रूप में ककया गया ि ै।

इष्टान्भोगास्न्ि ि ो देिा दास्यन्तेयज्ञभाविताः ।
तैदगत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते ेस्तेन एि सः ॥12॥

---

248 ऋग्वेदसेतुलनाकील्जएकेवलाघोभवतत केवलादी। 10, 117,6

(12) यज्ञ से प्रसन्न िोकर देवता तुम्िें वे सब सुख-भोग प्रदान करेंगे, ल्जन्िें तुम चािते िो। जो व्यल्क्त उनके द्वारा हदए गए इन उपिारों का उपभोग देवताओं को बबना हदए करता िै, वि तो चोर िी िै।

यज्ञशशष्टाशशनः सन्तो मुच्यन्तेसिकगकल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघंपापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ्॥13॥

(13) वेसन्त व्यल्क्त, जो यज्ञ के बाद बची िुई वस्तु (यज्ञिेष) का उपभोग करते िैं, सब पापों से मुक्त िो जाते िैं, परन्तु जो दुष्ट लोग केवल अपनेशलए भोजन पकाते िैं, वे तो समझो, पाप िी खाते िैं।

तुलना कील्जए; मनु, 3, 76, 1181

अन्नाद्भिस्न्त भूतातन पजन्गयादन्नसम्भिः ।
यज्ञाद्भितत पजन्गयो यज्ञः कमसगमुद्भिः ॥14॥

(14) अन्न से प्राणी िोतिें। वषावसे अन्न उत्पन्न िोता िै। यज्ञ से वषाविोती िै और यज्ञ कम वसे उत्पन्न िोता िै।

मनु से तुलना कील्जए 3, 76।

कम गब्रह्मोद्भिं विद्धध ब्रह्माक्षरसमुद्भिम् ्~ ।
तस्मात्सिगत ंब्रह्म तनत्य ंयज्ञेप्रततस्ष्ठतम् ्॥15॥

(15) (यज्ञ के ढंग के) कमों का मूल ब्रह्म (वेद) को समझ और ब्रह्म का जन्म अक्षर (अनश्वर) से िोता िै। इसशलए सवव्वयापी ब्रह्म सदा यज्ञ में ववद्यमान रिता िै।

कम वका मूल अनश्वर में िै। यहद भगवान् ्कम वन करे, तो यि सारा संसार नष्ट िो जाए। यि संसार एक मिान् ्यज्ञ िै। ऋग्वेद में (10, 90) शलखा िै कक एक पुरुष की यज्ञ में बशल दी गई थी और उसके अंग-प्रत्यंग सारे आकाि में बबखर गए। इस मिान् ्यज्ञ द्वारा ववश्व की व्यवस्था बनी िुई िै। कम विरीरधाररयों के शलए नैततक के साथ-साथ भौततक आवश्यकता भी िै।'[249]

ब्रह्म को प्रकृतत भी माना गया िै, जैसे अध्याय 14 के 3-4 श्लोकों में। प्रकृतत का जन्म ब्रह्म से िोता िै और संसार की सारी गततववधध का मूल यि प्रकृतत िी िै।

एि ंप्रिततगतंचक्रं नानुितयगतीि यः।

---

249 श्रीधरकाकथनैयजमानाहदव्यापाररूपं ंकम वब्रह्म वेदः; कम वतस्मात् ्प्रवृत्तम् ्।

अघायुररस्न्द्रियारामो मोघांपाथ गस जीतत16॥

(16) इस संसार में जो व्यल्क्त इस प्रकार घुमाए जा रिे इस चक्र के चलनेमें सियता निीं देता, वि दुष्ुट
स्वभाव वाला और इल्न्द्रयों के सुखों में मग्न रिने ेवाला व्यल्क्त, ि पाथ व(अजुनव), व्यथ विी जीवन बबताता
िै।

इन श्लोकों में यज्ञ की देवताओंऔर मनुष्यों में परस्पर-ववतनमय की वैहदक धारणा को सृलूष्ट में सब
प्राखणयों की परस्पराधश्रतता की एक ववस्तृतृतर धारणा के रूप में प्रस्तुत ककया गया िै। यज्ञ की भावना से ककए
गए काय वपरमात्मा को प्रसन्न करने ेवाले िोते िैं। परमात्मा सब बशलदानों का उपभोग करने ेवाला िै।250 यज्ञो वै ै
ववष्णु:[251] यज्ञ िी भगवान िै। यि जीवन का ववधान (तनयम) भी िै। व्यल्ष्ट और सृलूष्ट एक-दूसूरे पर आधश्रत िैं।
मानवीय जीवन और ववश्व-जीवन में तनरन्तर पारस्पररक ववतनमय िोता रिता िै। जो व्यल्क्त केवल अपनेशलए
काय वकरता िै, वि व्यथ वमें जीवन बबताता िै। संसार में प्रगतत मानवीय और हदव्य के बीच इस सियोग के कारण
िी रिी िै। यज्ञ केवल देवताओंके शलए, निींककया जाता, अवपतु उस भगवान् ्के शलए ककया जाता िै, ल्जसके कक
वे देवता ववशभन्न रूप िैं। चौथेअध्याय के चौबीसवें श्लोक में यि किा गया िै कक यज्ञ की कक्रयाएं और सामग्री,
देनेवाला और ग्रिण करने वाला और यज्ञ का लक्ष्य तथा उद्देश्य ब्रह्म िी िै।

आत्म में संतुष्ट रिी

यस्त्ात्मिरततरिे स्यादात्मतृपूृतश्च मानिः ।
आत्मन्यैि च सतुांष्टस्तस्य कायं ंन विद्यते े॥17॥

(17) परन्तु जो मनुष्य केवल आत्म में आनन्द अनुभव करता िै, जो आत्म से सन्तुष्ट िै और जो आत्म से
तृपूत िै, उसके शलए कोई ऐसा काय वनिीं ंिै, ल्जसे करना आवश्यक िो।
वि कत्तव्वय की भावना से मुक्त िो जाता िै। वि कत्तव्वय की भावना स या अपनेअल्स्तत्व के प्रगततिील
रूपान्तरण के शलए काय वनिीं करता, अवपतु इसशलए काय वकरता िै कक उसका पूणतवा को प्राप्त स्वभाव कम वमें
स्वत:प्रवृतूत िो जाता िै।

नैि तस्य कृतेनाथो नाकृतेनेि कश्चन ।
न चास्य सिभूगतूेषु कस्श्चदथव्गयपाश्रयः ॥18॥

250 देखखए,5, 29

251 तैवत्तरीय संहिता ,1, 7,4

(18) इसी प्रकार इस संसार में उसके शलए कोई ऐसी वस्तु निीं रिती, जो उन कमों द्वारा प्राप्त िोनी िो, जो उसनेककए िैं या उन कमों द्वारा प्राप्त िोनी िो, जो उसने निींककए िैं। वि ककसी भी प्राणी पर अपने ककसी स्वाथ वके शलए तनभरव निींरिता।

अगले श्लोक में यि बताया गया िै कक भले िी मुक्त मनुष्य के शलए कम वया अकम वद्वारा प्राप्त करने को कुछ निीं रिता और वि आत्म में ल्स्थत िोकर और उसका आनन्द लेते िुए पूणतवया सुखी रिता िै, कफर भी तनष्काम कम वनाम की एक ऐसी वस्तु िै, ल्जसे वि संसार के कल्याण के शलए करता रिता िै।

तस्मादसक्तः सतत–ंकायं ंकम गसमाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कम गपरमाप्नोतत पूरुषः ॥19॥

(19) इसशलए तू ूअनासक्त िोकर सदा करने योग्य कम वकरता रि; क्योंकक अनासक्त रिकर कम वकरता िुआ मनुष्य सवोच्च (परम) को प्राप्त करता िै।

यिां ंपर आसल्क्तरहित िोकर ककए गए काय वको यज्ञ की भावना से ककए गए काय वकी अपेक्षा ऊंचा बतलाया गया िै। यज्ञ की भावना से ककया गया काय वअपने-आप में स्वाथ वभावना से ककए गए काय वकी अपेक्षा अधधक अच्छा िोता िै। मुक्त आत्माएं भी अवसर पडने ेपर काय वकरती िैं।'[252]

जिां इस श्लोक में किा गया िै कक मनुष्य अनासक्त िोकर कम वकरता िुआ सवोच्च भगवान्, ् परम, तक पिुंचता िै, विां िंकराचाय वका मत िै कक कम वमन को िुद्ध करने में सिायक िोता िै और मन की िुद्धता के फलस्वरूप मुल्क्त िोती िै। कम विमें मन की िुद्धता की प्राल्प्त द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पूणतवा तक ले जाता िै।' दूसूरों के शलए उदिारण उपल्स्थत करो

कमणैगैिि सशांसद्धधमास्स्थता जनकादयः ।

लोकसग्रांिमीवप सपांश्यन्कतुमगिगशस ॥20॥

---

252 योगवाशिष्ठ से तुलना कील्जए: "ज्ञानी व्यल्क्त के शलए कम वकरने के द्वारा अथवा कम वन करने के द्वारा प्राप्त करने को कुछ भी निीं िै। इसशलए वि जब जैसी आवश्यकता िोती िै, वैसा कम वकरता िै।" कफर, "कोई काम ककया जाए या न ककया जाए, मेरे शलए वि एक जैसा िै। म ैंकम वन करने का आग्रि ककसशलए करू? जो कुछ मेरे सामने आता िै, म ैंतो उसे करता चलता िंूं।"

ज्ञस्य नाथःव कमत्वयागैः नाथःव कमसवमाश्रयैः।

तेन ल्स्थतंयथा यद्यत्तत्तथैव करोत्यसौ ॥ -6, 199

मम नाल्स्त कृतेनाथों नाकृतेनेि कश्चन।

यथाप्राप्तेन ततष्ठाशम िुकमखण क आग्रिः ॥ - विी, 216

(20) जनक तथा अन्य लोग कम वद्वारा िी पूणतवा तक पिुंचे थे। तुझे ेसंसार को बनाए रखनेके शलए
(लोकसंग्रि के शलए) भी कम वकरना चाहिए।
जनक शमधथला का राजा था। वि सीता का, जो राम की पत्नी थी, वपता था। जनक कतृत्वव की वैयल्क्तक
भावना को त्यागकर िासन करता था। िंकराचाय वने भी किा िै कक जनक आहद ने इसशलए कम वककए कक ल्जससे
साधारण लोग माग वसे न भटक जाएं। वे लोग यि समझकर काम करते थे कक उनकी इल्न्द्रया-भर कायों में लगी
िुई िैं, गुणा गुणेषु वतन्वते। ल्जन लोगों ने सत्य को निीं ंजाना िै, वेभी आत्मिुद्धि के शलए कम वकरते रि सकते
िैं। 2, 101

लोकसग्रांि: संसार को बनाए रखना। लोकसंग्रि का अशभप्राय संसार की एकता या समाज की परस्पर-
सम्बद्धता से िै। यहद संसार को भौततक कष्ट और नैततक अध:पतन की दिा में निीं ंधगरना िै, यहद सामान्य
जीवन को सुचारु और सगौरव िोना िै, तो सामाल्जक कम वका तनयन्त्रण धाशमकव नीतत से िोना चाहिए। धम
वका
उद्देश्य समाज का आध्याल्त्मकीकरण करना िै, पृथ्वी पर भ्रातृभाव की स्थापना करना। िमें पाधथव संस्थाओंमें
आदिों को साकार करने की इिा से प्रेरणा शमलनी चाहिए। जब भारतीय जगत् ्की जवानी समाप्त िो चली, तब
इसका झुकाव परलोक की ओर िो चला। श्रान्त वयस् ्में िम त्याग और सहिष्णुता के सन्दिों को अपना लेते िैं।
इिा और ऊजावकी वयस् ्में िम संसार में सकक्रय सेवा और सभ्यता की रक्षा करने ेपर जोर देते िैं। बोइधथयस
ने जोर देकर किा िै कक "जो अकेला स्वग वजाने को तैयार िै, वि कभी स्वग वमें निीं ंजाएगा।"[253]

यद्यदाचरतत श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाण ंकुरुते लोकस्तदनुवतते॥21॥

(21) श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो कुछ करता िै, सामान्य लोग वैसा िी करने लगते िैं। यि जैसा आदि वउपल्स्थत
करता िै, उसी का लोग अनुगमन करने लगते िैं।

सामान्य लोग श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा स्थावपत ककए गए आदिों का अनुकरण करते िैं। प्रजातन्त्र का
मिापुरुषों में अववश्वास के साथ कुछ घपला कर हदया गया िै। गीता इस बात को स्पष्ट रूप से किती िै कक
मिापुरुष िी माग वबनानेवाले िोतिैं। वे ेजो रास्ता हदखाते िैं, अन्य लोग उनका अनुगमन करते िैं। प्रकाि
सामान्यतया उन व्यल्क्तयों द्वारा िी प्राप्त िोता िै, जो समाज से आगे बढ़े िुए िोतिैं। जब उनके साथी नीचे
घाटी में सो रिे िोतिैं, उस समय वे पवतवशिखरों पर चमकते िुए प्रकाि को देख रिे िोतिैं। ईसा के िददों में, वे
मानवसमाज के 'नमक', 'खमीर' और 'प्रकाि' िैं। जब वे ेउस प्रकाि की आभा की घोषणा करते िैं तब थोडे-से
लोग उसे पिचान पातिैं और धीरे-धीरे बिुत-से लोग उनके अनुयायी बनने को तैयार िो जाते िैं।

---

253 सत्त्विुद्धधद्वारेण।साथीदेखखएगीता पर िंकराचाय वकी टीका ,3, 4

न मे पाथास्गस्त कतव्गयां तनषुलोकेषुककांचन ।
नानिाप्तमिाप्तव्यां ित गएि च कमणगण ॥22॥

(22) िे पाथ व(अजुनव), मेरे शलए तीनों लोकों में कोई भी ऐसा कम वनिीं, जो करना आवश्यक िो और न ऐसी िी कोई वस्तु िै, जो मुझेप्राप्त न िो और मुझेप्राप्त करनी िो; कफर भी म ैंकम वमें लगा िी रिता िंूं। परमात्मा का जीवन और संसार का जीवन एक-दूसूरे के ववरोधी निीं ंिै।254

यहद ह्यिां न ितेयांजातुकमण्गयतस्न्द्रतः।
मम िानुितन्गते ेमनुष्याः पाथ गसिशगः ॥23॥

(23) यहद म ैंतनरालस्य िोकर सदा कम वमें न लगा रिूं, तो िे पाथ व(अजुनव), सब लोग सब प्रकार मेरे िी माग व का अनुसरण करने ेलगे।

उत्सीदेयुररमे लोका न कुयागकम गचेदिम्।्
सकांरस्य च कता गस्यामुपिुन्याशममाः प्रजाः ॥24॥

(24) यहद म ैंकम वकरना छोड दूं, तो ये लोक (संसार) नष्ट िो जाएं और म ैंसंकर (अव्यवल्स्थत जीवन) को उत्पन्न करने वाला बनूं और इस प्रकार इन लोगों का ववनिा कर बैठूं।

परमात्मा अपनी अनवरत गततववधध द्वारा संसार को सुरक्षक्षत बनाए रखता िै और इसे वापस

अनल्स्तत्व में धगरने से रोके रखता िै।'255

सत्ताः कमण्गयविद्िािो यथा कुिस्गन्त भारत ।

---

254 मिाभारत से तुलना कील्जए, ऐश्वय वके नाम पर म ैंसारे संसार की दासता करता िंूं:

दास्यमैश्वयवादेन ज्ञातीनां तु करोम्यिम्।्

तुलना कील्जए, मिाभारत, 3, 313, 17:

तकोऽप्रततष्ठः श्रुतयो ववशभन्ना नैको मुतनयस्वय वचः प्रमाणम्।्
धमस्वय तत्त्वंतनहितं ंगुिायांमिाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

255 सेण्ट टॉमस से तुलना कील्जए: "ल्जस प्रकार ककसी वस्तु को अल्स्तत्वमान रूप में उत्पन्न करना परमात्मा की इच्छा पर तनभरव िै, उसी प्रकार यि भी उसी की इच्छा पर तनभरव िै कक उस वस्तु को बनाए रखा जाए; इसशलए यहद वि अपने कम वको उन वस्तुओं से अलग कर ले, तो सब वस्तुएं िून्य रि जाएंगी।" - सम्मा धथयोलोल्जया, 1, 9, 2 सी।

कुयाद्गविद्‌सि्ांतथासक्तस्श्चकीषुलगोकसग्रांमि्‌ ्25॥

(25) िे भारत (अजुनव), ल्जस प्रकार अववद्वान व्यल्क्त आसक्त िोकर कम वकरते िैं, उसी प्रकार ववद्वान
अनासक्त िोकर लोकसंग्रि (संसार की व्यवस्था को बनाए रखने) की इच्छा से कम वकरते िैं।

यद्यवप जो आत्मा प्रकाि में पिुंचकर केल्न्द्रत िो गई िै, उसके वास्ते अपनेशलए करने को कुछ बाकी
निीं ंिै, कफर भी वि अपने-आप को ववश्व के काय वमें उसी प्रकार लगा देती िै, जैसे भगवान्‌ ्अपने-आप को लगाए
िुए िै। उसकी गततववधध भगवान्‌ ्के प्रकाि और आनन्द मे स्फुरणा प्राप्त करती िै।

न बुद्धधभेदां जनयेदज्ञानाांकमसगङ्‌धगनाम्‌।

जोषयेत्सिकगमाणगणविद्‌न्युिक्तःसमाचरन्‌॥ ्26॥

(26) ज्ञानी व्यल्क्त को चाहिए कक वि कम वमें आसक्त अज्ञानी व्यल्क्तयों के इन को ववचशलत न करे। योग की
भावना से कम वकरने ेवाले मनुष्य को चाहिए कक वि दूसूरों को (भी) कम वमें लगाए।

न बुद्धधभेिजांनयेत्‌ ्: वि लोगों के मन को ववचशलत न करे। ककसी भी प्रकार की धाशमकव आस्था को
दबलव मत करो। कत्तव्वय, बशलदान और पे्रम के एक सब धमाूँ के आधार प्रतीत िोतिैं। िो सकता िै कक धम वके
तनम्नतर रूपों मलैं कहठनाई से पिचाने जाएं और वे कुछ ऐसे प्रतीकों के आसपास केल्न्द्रत िो जो उन शसद्धान्तों
के सिायक िैं, ल्जनका कक वे समथनव करते िैं। ये प्रतीक इन लोगों के शलए बिुत मित्वपूण विोतिैं, जो उनमें
ववश्वास रखते िैं। वे प्रतीक केवल तब असह्य िो उठते िैं, जब कक उन्िें उन लोगों पर थोपा जानेलगे, जो उन्िें
स्वीकार निींकर सकतेऔर तब, जब कक उन्िें मानवीय ववचार का परम और अल्न्तम रूप बताया जानेलगे।
धमववज्ञानी शसद्धान्त का परमत्व का रूप धाशमकव सत्य के रिस्यपूण वरूप के साथ ववसंगत (जो साथ न रि सके)
िै। श्रद्धा ववश्वास की अपेक्षा अधधक व्यापक िै। कफर, यहद िमें यि पता िो कक कौन-सी वस्तु अधधक अच्छी िै
और कफर भी िम उसे न अपनाएं, तो िम एक गलत काम कर रिे िोंगे।

जब अशिक्षक्षत लोग प्रकृतत की िल्क्तयों के सामने ववनत िोतिैं, तब िम जानते िैं कक वे गलत वस्तुओं
के सामने झुक रिे िैं और वे परमात्मा की वविालतर एकता को देख पाने में असमथ विैं। कफर भी वे एक ऐसी वस्तु
के सम्मुख झुक रिे िोतिैं, जो उनका अपना क्षुद्र आत्म निीं ंिै। अपररष्कृत दृल्ष्टकोणों में भी कुछ ऐसी वस्तु
ववद्यमान िै, ल्जसके द्वारा उन लोगों को सिी जीवन बबताने में सिायता शमलती िै, जो सिी जीवन बबताना
चािते िैं। ऐततिाशसक सम्बन्धों से युक्त परम्परागत ववधधयां अनकेि ववश्वासों की वािक िैं भले िी उन्िें
भलीभांतत समझा न जा सके। श्रद्धा का कोई स्रोत धाशमकव िै या निीं, इस बात का तनधारवण मन की कोहट
(ककस्म) से िोता िै, उस वस्तु से निीं, ं ल्जस पर कक श्रद्धा की जा रिी िै। यि ठीक िै कक िर ककसी को उच्चतम
स्तर तक पिुंचना चाहिए, परन्तु इस लक्ष्य तक धीरे-धीरे, सीढ़ी के बाद सीढ़ी चढ़ते िुए िी पिुंचा जा सकता िै,
एकाएक छलांग लगाकर निीं। इसके अलावा धम वके सम्बन्ध में िमारे दृल्ष्टकोण स्वयंमिारे द्वारा चुने ेगए निीं

ीतेि; उनका और सामान्य पररवेि िमें उनके ववषय में ततरस्कार के साथ चचाविनीं ंकरनी चाहिए। िमें सादे धमों क अनुयातययों को आदर की दृल्ष्ट से देखना चाहिए और अववचारपूवकव उर्न्िेंवविुद्ध नीं ंकर देना चाहिए, क्योंकक सादे धमों का व्याविाररक मूल्य िै और उनमें आध्याल्त्मक प्ेरेरणा िै। आधुतनक मानवविास्त्री ऐसी सलाि देते िैं कक िमें आहदम जाततयों का उद्धार करने ेकी अधीरता में उर्न्िेंउनके तनदोष आनन्दों, उनके गीतों और नृत्यों, उनके सिभोजों और उत्सवों से वंधचत नीं ंकर देना चाहिए। िम उनके बारे में चािे कुछ भी क्यों न करना चािते िों, परन्तु वि सब िमें प्ेरेम और आदर के साथ करना चाहिए। िमें उनके सीशमत ज्ञान को ववस्तृततर दृल्ष्ट की ओर ले जानेवाली सीहढ़यों के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए।

इस दृल्ष्टकोण को अपनाते िुए, कक िमें तब तक बासी पानी फेंक नीं देना चाहिए, जब तक कक िमें ताजा पानी न शमल जाए, हिन्दू ूसवदेवव मल्न्दर ने ववशभन्न समूिों द्वारा पूजेजानेवाले देवी-देवताओं को अपने यिां ंस्थान हदया िै। इनमें आकाि और समुद्र के, नहदयों और कुंजों के, सुदूर अतीत के पौराखणक पात्र और गांवों के रक्षक देववयांऔर देवता सभी िैं। अपने युगव्यापी यात्राकाल में कुछ भी न गंवा बैठने और बबना ककसी भी ववश्वास का त्याग ककए प्रत्येक सच्चेववश्वास को समस्वर बना देने की उत्कण्ठा में यि हिन्दू ूसवदेववववाद एक सुववलाल समन्वय बन गया िै, ल्जसके अन्दर ववववध तत्व और प्ेरेरक िल्क्तयां शमधश्रत िो गई िैं। यि कोई आश्चय वकी बात नीं ंिै कक धम वअन्धकारपूण वऔर आहदमकालीन अन्धववश्वासों से भरा िुआ िै।

आत्मा कताव नीं िै

प्रकृतेः कक्रयमाणातन गुणैः कमाणगण सिशगः ।
अिङ्कारविमूढात्मा कतािमशमतत मन्यते॥27॥

27) वस्तुतः जब कक सब प्रकार के काय वप्रकृतत के गणों द्वारा ककये जा रिे िैं, मनुष्य ल्जसकी आत्मा अिंकार की भावना से मूढ़ बन गई िै, यि समझता िै कक 'कताव म ैंिूँ।

प्रकृतेः : सांख्य में वखणतव प्रधान।'[256] यि माया की िल्क्त िै257 या सवोच्च भगवान् ्की िल्क्त िै।258

भ्रान्त आत्म प्रकृतत के कायों का अपने ऊपर आरोप कर लेता िै।"[259]

256 प्रकृततः प्रधानंसत्त्वरजस्तमसां ंगुणानां ंसाम्यावस्था। िंकराचाय।व

257 प्रधानिददेन मायािल्क्तरुच्यते।े - आनन्दधगरर ॥

258 प्रकृतेः परमेश्वयाःव सत्त्वरजस्तमोगुणाल्त्मकायाः देवात्मिल्क्तंस्वगुणैतनंगूढाशमतत शु्रुतत-प्रशसद्धायाः िक्तेगुणैवः कायकवारणसंघातात्मकैः। -नीलकण्ठ । प्रकृततमायवा सत्त्वरजस्तमोगुणमयी शमथ्याज्ञानाल्त्मका परमेश्वरी िल्क्तः । - मधुसूदन ।

259 अनात्मन्यात्माशभमानी । - मधुसूदन ।

मिारे चेतन अल्स्तत्व के ववशभन्न स्तर िैं और जो आत्म अिंकार बन जाता िै, वि कमों के कतृत्वव का आरोप अपने ऊपर कर लेता िै और वि यि भूल जाता िै कक कायों का तनधारवण तो प्रकृतत करती िै। गीता के मतानुसार, जब अिंकारपूण वआत्म पूरी तरि प्रकृतत के वि में रिता िै, तब वि स्वतन्त्र रूप से काय वनिीं करता। रीर, प्राण और मन का सम्बन्ध पररवेि के पिलू से िै।

तत्त्ववित्तु ुमिाबािो गुणुकमवगिभागयोः ।
गुणाु गुणेषु ितन्गत इतत मत्िा न सज्जते ॥28॥

(28) परन्तु जो व्यल्क्त (आत्मा के) इन दो भेदों के, प्रकृतत के गुणों और कायों से उनकी शभन्नता के, सच्चे स्वरूप को जानता िै और इस बात को समझता िै कक केवल गुण िी गुणों पर कक्रया कर रिे िैं, िे मिाबािु (अजुनव), वि उन कमों में आसक्त निीं िोता।

प्रकृतत और उसके गुण मानवीय स्वतन्त्रता की सीमाओं, जैसे आनुवंशिकता की िल्क्त और पररवेि का दबाव इत्याहद के प्रततततनधध िैं। अनुभूततमूलक आत्म कमों की उपज िै, ठीक वैसे िी जैसे कक ब्रह्माण्ड की सारी प्रकक्रया कारणों की कक्रया का पररणाम िै।

प्रकृतेगुणगसमूांढाः सज्जन्ते गुणुकमसुग ु।
तानकृत्रविदो मन्दान्कृत्मविन्न विचालयेत् ु॥ 29॥

(29) जो लोग प्रकृतत के गुणों के कारण भ्राल्न्त में पड जाते िैं, वे िी उन गएणे द्वारा उत्पन्न िुए कमों में आसक्त िोतिं। पर जो व्यल्क्त सम्पूण वबात को जानता िै, उसे उन अज्ञातनयों के मन को ववचशलत निीं करना चाहिए जो कक केवल एक अंि को जानते िैं।

मिं उन लोगों को ववचशलत निीं करना चाहिए, जो प्रकृतत की प्ेरेरणाओं के विवती िोकर काय वकरते िैं। उन्िें प्रकृतत के विीभूत अिंकार के साथ आत्मा की शमथ्या एकत्व की भावना से िनैः िनैः मुल्क्त हदलाई जानी चाहिए। वास्तववक आत्मा हदव्य, तनत्य, स्वतन्त्र और आत्मचेतन िै। शमथ्या आत्म वि अिंकार िै, जो प्रकृतत का एक ऐसा अंि िै, ल्जसमें प्रकृतत के काय वप्रततबबल्म्बत िोते िैं। यिांसांख्य के ववश्लेषण के आधार पर सच्चे आत्म को तनल्ष्क्रय बताया गया िै, जब कक प्रकृतत सकक्रय िै। और जब पुरुष अपने-आपको प्रकृतत की गततववधध के साथ एकरूप मान लेता िै, तब सकक्रय व्यल्क्तत्व की भावना उत्पन्न िो जाती िै। गीता सांख्य के इस दृल्ष्टकोण का समथनव निींकरती कक पूण वतनल्ष्क्रयता द्वारा पुरुष प्रकृतत से दूर िट सकता िै। ज्ञान का अथ वअकम वनिीं िै, अवपतु इसका अथ वइस प्रकार का कम विै, जो ऐसे ढंग से ककया गया िो, जो मुल्क्त की प्राल्प्त में बाधा न डाले। यहद मि इस बात को समझ लें कक आत्मा या सच्चा आत्म अनासक्त, िान्त और तनष्पक्ष साक्षी-भर िै, तब चािे िम अपूणतवा और कष्ट के ववरुद्ध भयंकर युद्ध में भाग लेते रिें और संसार की एकता के शलए काय वकरते रिें, तब भी कोई कम विमें बन्धन में निीं डाल सकता।

मतय सिाणगण कमाणगण सन्यांस्याध्यात्मचेतसा ।

तनराशीतनमगमगो भूतिा युध्यस् विगतज्रिः ॥30॥

(30) अनुजेसब कमों को मुझमें त्यागकर और अपनी चेतना को आत्मा में ल्स्थर करके इच्छा और अिकार से नूिय िोकर तू ूतनरुद्वेग िोकर युद्ध कर।

भगवान् ्के प्रतत, जो सारे ब्रह्माण्ड के अल्स्तत्व और गततववधध का अधीश्वर िै, आत्मसमपणव करके िमें कम वमें जुट जाना चाहिए। 'तेरी इच्छा पूण विो', सब कायों में िमारी यि मनोववृत्त िोनी चाहिए। िमें सब काय वइस भावना से करनेचाहिए कक िम भगवान् ्के सेवक िैं।'[260] देखखए, 18, 59-60 और 66।

ये मे मतशमदां तनत्यमनुततष्ठस्न्त मारिाः ।

श्रद्धािन्तोऽनसूयून्तो मुचुयन्ते तेऽवप कमशगभः ॥31॥

(31) जो लोग श्रद्धा से युक्त िोकर और असूया से रहित िोकर मेरे इस उपदेि का तनरन्तर पालन करते िैं, वेकमों (के बन्धन) से मुक्त िो जाते िैं।

ये त्ोतिदभ्यसूयून्तो नानुततष्ठस्न्त मे मतम्।्

सिज्ञगनविमूढास्तांतास्न्द्धिध नष्टानचेतसः ॥32॥

(32) परन्तु जो असूया से भरे िोने ्के कारण मेरे इस उपदेि का ततरस्कार करते िैं और इसका पालन निीं ं करते, समझ लो कक वे सम्पूण वज्ञान के प्रतत अन्धे िैं, बेवकूफ िैं और वे नष्ट िोकर रिेंगे।

प्रकृतत और कत्तव्वय

सदृशां चेष्टते स्स्याः प्रकृतेज्ञानगािनवप ।

प्रकृतत यास्न्त भूतूातन तनग्रिः ककां कररष्यतत ॥33॥

(33) ज्ञानी मनुष्य भी अपनी प्रकृतत (स्वभाव) के अनुसार आचरण करते िैं। सब प्राणी अपनी प्रकृतत के अनुसार काम करते िैं। तनग्रि (दमन या रोकथाम) क्या कर सकता िै?

---

260 अि कतेश्वराय भृतूयवत् ्करोमोत्यनन्यबुद्ध्या । - िंकराचाय व।

ईश्वरप्ेररतिो करोमीत्यनन्यबुद्ध्या । - नीलकण्ठ ।

मतय सवाखवण कमाखवण निां कतेतत संन्यस्य स्वतन्त्रः परमेश्वर एव सवकवताव निां कल्श्नहदतत तनल्श्चत्य । - अशभनवगुप्त ।

प्रकृतत (स्वभाव) वि मानशसक उपकरण ि ै, ल्जसके साथ मनुष्य जन्म लेता ि ै। यि पूवजवन्म के कमों का पररणाम ि ोती ि ै।261 यि अपना काय वकरके रिेगी। ि ंकराचाय वका ववचार ि ै कक परमात्मा भी इसकी कक्रया को निीं रोक सकता। स्वयं भगवान् ्का यि आदेि ि ै कक अतीत के कमों को अपना स्वाभाववक पररणाम उत्पन्न करना ि ी चाहिए।262

तनग्रि या संयम का कोई लाभ निीं ि ो सकता, क्योंकक कम वअतनवाय वरुप से प्रकृतत की कक्रयाओं से उत्पन्न ि ोते ि ैं और आत्मा तो केवल एक तटस्थ साक्षी. भर ि ै।

इस श्लोक से ऐसा ध्वतनत ि ोता ि ै कक प्रकृतत आत्मा के ऊपर सविवल्क्तमान सत्ता ि ै और ि मसे कि ा गया ै कक ि म अपनी प्रकृतत के अनुसार, अपने अल्स्तत्व के ववधान के अनुसार काय वकरें। इसका अथ वयि निीं ि ै कक मि अपने प्रत्येक मनोवेग के अनुसार आचरण करने लगे। यि तो इस बात का आदेि ि ै कक ि म अपनेसच्चे अल्स्तत्व को खोज तनकालें और उसे अशभव्यक्त करें। यहद ि म चािें, तो भी ि म इसे दबाकर निीं रख सकते। उल्लंधधत प्रकृतत अपना बदला अवश्य लेगी।

इस्न्द्रयस्येस्न्द्रयस्याथे रागद्वेषौ व्यिस्स्थतौ ।

तयोन गिशमागच्छेत्तौ यस्य पररपस्न्थनौ ॥34॥

(34) (प्रत्येक) इल्न्द्रय के शलए (उस) इल्न्द्रय के ववषयों (के सम्बन्ध) में राग-द्वेष तनयत िैं। मनुष्य को इन दोनों के काबू में निीं आना चाहिए, क्योंकक वे उसके ित्रु िैं।

मनुष्य को अपनी बुद्धध या समझ के अनुसार काम करना चाहिए। यहद ि म अपनेमनोवेगों के शिकार बन जाते ि ैं, तो ि मारा जीवन वैसा ि ी तनरुद्देश्य और बुद्धिीन बन जाता ि ै, जैसे कक पिुओं का ि ोता ि ै। यहद मि ि स्तक्षेप न करें तो राग और द्वेष ि ी ि मारे कमों का तनधारवण करते रिेंगे। जब तक ि म कुछ कायों को इसशलए करते रिेंगे, कक ि म उन्िें पसन्द करते ि ैं और कुछ अन्य कायों को इसशलए निीं करेंगे, कक ि म उन्िें पसन्द निीं करते तो ि म अपनेकमों से बंधे रिेंगे; परन्तु यहद ि म इन मनोवेगों को जीत लें और कत्तव्वय की भावना से काय वकरें, तो ि म प्रकृतत की क्रीडा के शिकार निींिोंगे। मनुष्य की स्वतन्त्रता का उपयोग प्रकृतत की आवश्यकताओं द्वारा सीशमत अवश्य ि ै, ककन्तु बबलकुल समाप्त निींकर हदया गया।

श्रेयान्स्धिमो विगुणुः परधमात्गस्नुिस्ष्ठतात्।

स्धिमे तनधनां श्रेयः परधमो भियािः ॥35॥

---

261 प्रकृततनामक्पूवकृवतधमाधवमाहवदसंस्कारो वतमवानजन्मादावशभव्यक्तः । - कििराचाय व।

262 अिमवप पूवकवमवपक्षयैव तान प्रवतयवाशमतत भावः । -नीलकण्ठ ।

(सुप्रु)गुण वरूप से पालन ककया जा रि भी अपना धम वपूण वरूप से पालन ककए जा रिे दुसुरे के धम वसे अधधक अच्छा िै। अपने धम वका पालन करते िुए) मृत्यूभी िो जाए, तो भी वि किीं ंभला िै, क्योंकक दुसुरे का धम वबुित ख़तरनाक िोता िै।

अपना काम करनेमें किीं अधधक आनन्द िै, चािे वि बुित बहढ़या ढंग से अभी ककया जा रि िो, जब कक दूसूरे के कत्तव्वय को बुित अच्छी तरि तनबािने भी उतना आनन्द निीं िै। प्रत्येक व्यल्क्त को अपनी मन:शारीररक रचना को सिाने ेका यन करना चाहिए और उसके अनुसार िी काय वकरना चाहिए। िो सकता िै कक मिमें से सबको अववद्या की प्रणाशलयों की आधारशिलाएं रखनेको अपना उच्च ववचारों को धचरस्थायी िददों में प्रस्तुत करने का काय वन शमला िो। िम सबको एक-सी प्रततभाएं निींशमलीं। परन्तु मित्वपूण वबात यि निीं कक मिमें पांच प्रकार की प्रततभाएं िैं या केवल एक प्रकार की, अवपतु ुमित्वपूण वबात यि िै कक जो काम िमें सौंपा गया िै, उसे िम ककतनी तनष्ठा के साथ करते िैं। िमें अपना सौंपा गया काम, चािे वि छोटा िो या बडा, पुरुषाथपूववकव करना चाहिए। अच्छाई ककस्म की पूणतवा की द्योतक िै। व्यल्क्त का कत्तव्वय ककतना िी अरुधचकर क्यों न िो, परन्तुमनुष्य को मरण-पयन्वत उस के प्रतत तनष्ठावान् ्रिना चाहिए ।

त्रिु ुकाम और क्रोध िैं

अजुनग उिाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयांपाप ांचरतत पूरुषः।

अतनच्छन्नवप िाष्र्णेय बलाहदि तनयोल्जतः॥36॥

अजुनव ने किा :

परन्तु िे वाष्र्णेय (कृष्ण), वि क्या वस्तु िै, ल्जससे प्रेेररत िोकर मनुष्य न चािता िुआ भी पाप करता िै, जैसे कोई उससे बलपूवकव पाप करवा रि िो ? (36)

अतनच्छन्नवप : अपनी इच्छा के प्रततकूल भी। अजुनव को यिी अनुभव िोता िै कक मनुष्य अपनी इच्छा के ववपरीत भी काय वकरनेके शलए वववि िोता िै। परन्तु वस्तुतः ऐसा निीं िै। मनुष्य मौन रूप से अपनी सिमतत दे देतिा जैसा कक अगले श्लोक में गुरु द्वारा ककए गए 'काम' या 'लालसा' िदद के प्रयोग से सधचत िै। िंकराचाय व का कथन िै : ल्जसे िम प्रकृतत अथात्व ्मनुष्य का स्वभाव किते िैं, वि मनुष्य को अपनेमाग वपर राग और द्वेष के द्वारा िी खींच ले जाती िै।'[263]

श्री भगिानुिाच

263 याहिपुरुषस्यप्रकृततःसारागद्वेषपुरःसरैव स्वकाये पुरुष प्रवतयवतत। गीता पर िंकराचाय वकी टीका ,3, 34

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भिः।
मिाशनो मिापाप्मा विद्ध्येनशमि िैररणम् ्।37॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(37) यि वस्तु काम और क्रोध िैं, जो रजोगुण से उत्पन्न िुए िैं। ये सब-कुछ तनगल जानेवाले िैं, और अत्यन्त पापपूण विैं। इस संसार में इन्िीं को िंतु समझो।

धूमेनातनयते िह्नियथगादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनािृतो गभस्गतथा तेनेदमािृतम्॥्38॥

(38) जैसे आग धुएं से ढक जाती िै, या दपणव धूल से ढक जाता िै, या भ्रूण गभ वद्वारा सब ओर से तघरा रिता िै, उसी प्रकार यि उस (रजोगुण) से ढका रिता िै।

इदम् ्: यि यि ज्ञान । - िंकराचाय।व

प्रत्येक वस्तु ्ुरजोगुण से आवृतृत िै।

आिृतं ांज्ञानमेतेन ज्ञातननो तनत्यिैररणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥39॥

(39) िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), इच्छा की इस तृपूत न िोने वाली आग से, जो कक ज्ञानी मनुष्य की धचरितु िै, ज्ञान आवृतूत रिता िै।

तुलना कील्जए : "इच्छा इल्च्छत वस्तुओं के उपभोग से कभी तृपूत निींिोती, अवपतु वि उसी तरि अधधक और अधधक बढ़ती जाती िै, जैसे ईंधन िालने से आग बढ़ती जाती िै।"[264]

---

264 न जातु कामः कामानमुपभोगेन िाम्यतत ।

विवषा कृष्णवमेव भूय एवाशभवधतेव ॥ मनु, 2, 94

ल्स्पनोज़ा से तुलना कील्जए : "क्योंकक वे वस्तुएं, ल्जन्िें मनुष्य, यहद उनके कायों से अनुमान ककया जाए तो, सबसे अच्छा समझते िैं, धन, यि और ऐल्न्द्रय उपभोग िैं। इनमें से अल्न्तम वस्तुसे तो जी भर जाता िै और उसके शलए बाद में पछतावा िोता िै, परन्तु अन्य दो वस्तुओंके ववषय में तो कभी तृलूप्त िोती िी निीं। ल्जतना अधधक िम पाते िैं, उतना िी अधधक िम और चािने लगते िैं; जब कक यि की लालसा िमें इस बात के शलए बाधधत करती िै कक िम अपने जीवन को अन्य लोगों की सम्पततयों के अनुकूल व्यवल्स्थत करें। परन्तु यहद ककसी वस्तु से अनुराग न िो, तो उसके सम्बन्ध में कोई झगडा न िोगा; यहद वि नष्ट िो जाए, तो कोई ववषाद अनुभव न िोगा और यहद वि वस्तुककसी अन्य के पास िो, तो कोई ईष्याव न

इस्न्द्रयाणण मनो बुद्धधरस्याधधष्ठानमुच्यते ।
एतैविमगोियत्येष ज्ञानमािृत्य देहिनम् ् ॥40॥

(40) इल्न्द्रयां, मन और बुद्धध इसका रिने का स्थान किी जाती िैं। इनके द्वारा ज्ञान को आवृत् करके यि रीरधारी (आत्मा) को पथभ्रान्त कर देता िै।

तस्मात्त्शिमस्न्द्रयाण्यादौ तनयम्य भरतषभग ।
पाप्मानां प्रजहि ह्येनां ज्ञानविज्ञाननाशनम् ् ॥41॥

(41) इसशलए भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), तू िुरू से िी इल्न्द्रयों को अपने तनयन्त्रण में रख और ज्ञान और वववेक के इस पापी ववनािक को मार डाल ।

यिां ंज्ञान और ववज्ञान िददों का अशभप्राय वेदान्त के ज्ञान और सांख्य (13) ववस्तृत् ज्ञान से िै। किंराचाय वने ज्ञान की व्याख्या करते िुए इसे 'िास्त्रों और गुरुओं ंसे प्राप्त आत्मा तथा अन्य वस्तुओं का ज्ञान' और ववज्ञान को 'इस प्रकार सीखी िुई वस्तुओं का व्यल्क्तगत अनुभव' बताया िै।

रामानुज की दृल्ष्ट में ज्ञान का सम्बन्ध आत्म-स्वरूप या आत्मा की प्रकृतत से द्वारा िै और ववज्ञान का सम्बन्ध आत्मवववेक या आत्मा के ववभेदात्मक ज्ञान से िै। यिां पर हदए गए अनुवाद में ज्ञान को आध्याल्त्मक ज्ञान और ववज्ञान को ताकककवक ज्ञान माना गया िै। श्रीधर ने इन दोनों व्याख्याओंका समथनव ककया िै।'[265]

इस्न्द्रयाणण पराण्यािुररस्न्द्रयेभ्यः पर मनः ।
मनसस्तुपरा बुद्धधयोिं बुद्धेः परतस्तुसः ॥42॥

िोगी। संक्षेपमेंमन,में कोईववक्षोभ न िोगा।येसब बातें उन वस्तुओं केप्रतत अनुरागसे उत्पन्निोती िैंजो नश्वरिै। परन्तु एक िाश्वत और असीम वस्तु के प्रतत अनुराग मन को पूरी तरि आनन्द से भर देता िै और उसमें ववषाद का शमश्रण बबलकुल निीं िोता। इसीशलए यिी वस्तु ऐसी िै, ल्जसकी िमें बुित इच्छा िोनी चाहिए और अपनी पूरी िल्क्त से खोज़ करनी चाहिए।" -डड इण्टेलेक्टस एमेण्डिैन्स । आधारभूत सामाल्जक अपराध ककसी भी रूप में वग-ववविेषाधधकार, जातीय भेदभाव और राष्रीय अिंकार की भावना को अपना लेना िै, क्योंकक इससेअन्य लोगों को कष्ट िोता िै। वड्सववथ वके इन िददों का कोई जवाब निीं िै:

"िमें अपने आनन्द या अपने अिंकार को कभी निीं शमलाना चाहिए, उस क्षुद्र से क्षुद्र वस्तुके दुःख के साथ, जो कक अनुभव करती िै।"

- िाटव-लीप वैल।

[265] ज्ञानमात्मववषये, ववज्ञानंिास्त्रीय... यद् वा ज्ञान िास्त्राचायोपदिेज, ववज्ञानं ंतनदध्यासनजम् ्। अमरकोि से तुलना कील्जए: मोक्षे ेधी: ज्ञानमन्यत्न, ववज्ञानं ंशिल्पिास्त्रयोः ।

(42)जाता ि◌ै कक इल्न्द्रयां बडी ि◌ैं; मन इल्न्द्रयों से भी बडा ि◌ै; बुद्धध मन से भी बडी ि◌ै; परन्तु बुद्धध से भी बडा वि ि◌ै।

कठोपतनषद् : 3, 10; साथ ि◌ी देखखए 6, 7। चेतना को एक-एक सीढ़ी करके ऊपर उठाया जाना चाहिए। ज्यों-ज्यों ि◌म ऊपर उठते जाते ि◌ैं, त्यों-त्यों ि◌म अधधक स्वतन्त्र ि◌ोते जाते ि◌ैं। यहद ि◌म इल्न्द्रयों के प्रभाव में रिकर काम करते ि◌ैं, तो ि◌म कम स्वतन्त्र ि◌ोते ि◌ैं। जब ि◌म मन के आदिेों का पालन करते ि◌ैं, तब ि◌म अपेक्षाकृत अधधक स्वतन्त्र ि◌ोते ि◌ैं, पर जब मन बुद्धध के साथ संयुक्त ि◌ो जाता ि◌ै, तब ि◌म और भी अधधक स्वतन्त्र ि◌ोतेिैं; जब मिारे काय वपरे से आने ◌ेवाले प्रकाि, आत्मा से आच्छाहदत बुद्धध द्वारा तनधारवरत ि◌ोतेिैं, तब ि◌में उच्चतम कोहट की स्वतन्त्रता प्राप्त ि◌ोती ि◌ै।

इस श्लोक में चेतना के स्तरों का सोपानक्रम हदया गया ि◌ै।

एिंबुद्धेः परां बुद्ध्िा सिस्ांतभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शलु ◌ुमिाबािो कामरूपां दुरासदम् ◌्॥43॥

(43) ि◌े मिाबाि (अजुनव), इस प्रकार जो बुद्धध से भी परे ि◌ै, उसे जानकर और (तनमतर) आत्मा को आत्मा द्वारा ल्स्थर करके तू इस कामरूपी ित्रु को मार डाल, ल्जस तक कक पिुंचना बिुत कहठन ि◌ै।

काम : इच्छा।'[266] चंचल विकार को तनत्य आध्याल्त्मक आत्म के प्रकाि = द्वारा तनयल्न्तत कर। ल्जस व्यल्क्त को ज्ञान ि◌ो जाता ि◌ै, वि सच्चेअथों में स्वाधीन - ि◌ो जाता ि◌ै और वि अपनेआन्तररक प्रकाि के शसवाय ककसी अन्य िल्क्त से मागदविनव के शलए तनिंकिता।

इस अध्याय में फल की स्वाथपूवण वलालसा से रहित ि◌ोकर संसार के कल्याण के प्रयोजन से, यि समझते िुए, कक ये काय वप्रकृतत के गुणों या स्वयंपरमात्मा द्वारा ककए जा रिे ि◌ैं, कम वकरते रिने ◌ेकी आवश्यकता का प्रततपादन ककया गया = ि◌ै। यामुनाचाय वका दृल्ष्टकोण यिी ि◌ै।267

इतत ... कमयगोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ।
यि ि◌ै 'कमयगोग' नामक तीसरा अध्याय ।

अध्याय 4

---

266 तुलना कील्जए: काममय एवायंपुरुषः ।

267 असक्स्या लोकरक्षायैगुणेष्वारोप्य कतुतवाम्।◌्
ईश्वरे वा न्यस्योक्ता तृतीये कमकवायतवा ॥

ज्ञानमाग व

ज्ञानयोग की परम्परा

श्रीभगिानुिाच

इम ां विस्िते योग ां प्रोक्तिानिमव्ययम्।्

विस्िान्मिने प्रि मनुररक्ष्िाकिेऽब्रीत् ्॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(1) इस अनश्वर योग में मनैं ेवववस्वान् ्को बताया था। वववस्वान् ्ने इसे मनु को बताया और मनु ने इक्ष्वाकु को बता हदया।'[268]

एिां परम्पराप्राप्तशमम ां राजषयगो विदु; ।

स कालेनेि मिता योगो नष्टः परन्तप ॥2॥

(2) इस प्रकार इस परम्परागत योग को राजवषयवों ने एक-दूसूरे से सीखा। अन्त में ि े ितुओं को सतानेवाले (अजुनव), बिुत काल बीत जाने पर वि योग लुप्त िो गया।

राजषयग : राज-ऋवष । राम, कृष्ण और बुद्ध सब राजा थे,े ल्जन्िोंने उच्चतम ज्ञान की शिक्षा दी।

कालेन मिता : समय का बडा व्यवधान पड जानेपर। यि उपदेि बिुत काल बीत जाने के कारण लुप्त िो गया िै। मानव-जातत के कल्याण के बिुत करता को िैं। अब कृष्णा अपनेशिष्य में कफर श्रद्धा जगानेऔर उसके अज्ञान को आलोककत करने ेके शलए उसे यि योग बताता िै।

कोई भी परम्परा उस समय प्रामाखणक िोती िै, जब कक यि उस वास्तववकता के प्रतत, ल्जसका कक वि प्रततततनधधत्व करती िै, पयाप्वत प्रततभावन जगानेमें िमथ विोती िै। जब िमारे मन उससे पुलककत और स्पल्न्दत िोतें, तब वि सबल िोती िै। जब वि इस उद्देश्य को पूरा करनेमें असमथ विो जाती िै, तब उसमें कफर नयी जान फूंकनेके शलए नये गुरु जन्म लेते िैं।

स एिायां मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

---

268 मिाभारत से तुलना कील्जए: िाल्न्तपवव 348,51-52

त्रेतेयुगादौ च ततो वववस्वान् ्मनवे ददौ ।

मनुश्च लोकभृत्यूथ वसुतायेक्ष्वाकवे ददौ ॥

इक्ष्वाकुणा च कधथतो व्याप्य लोकानवल्स्थतः ॥

भक्तोऽशस मे सखा चेतत रिस्यांह्येतदुतुतमम् ॥3॥

वि) प्राचीन योग मनैं ेतुझेआज बताया िै, क्योंकक तू मेरा भक्त िै और सखा िै; और यि योग सबसे े श्रेष्ठ िै।

योगः पुरातनः : प्राचीन योग। गुरु बताता िै कक वि ककसी नये शसद्धान्त की स्थापना निीं कर रिा, अवपतु केवल एक पुरानी परम्परा की, एक सनातन यथाथतवा की पुनस्थापवना-भर कर रिा िै, जो गुरुओं ्द्वारा शिष्यों को दी जाती रिी िै। यि उपदिे बिुत पिले ववस्मृत िो चुके ज्ञान का पुननवीकरण, पुनरनुसन्धान, पुनस्थापवना िै। सभी मिान् ्उपदेिकों ने, जैसे गौतम बुद्ध और मिावीर, िंकराचाय वऔर रामानुज ने, यिी किने में सन्तोष अनुभव ककया िै कक वे ेपुराने ेगुरुओंकी शिक्षाओं को िी कफर नये शसरे से बता रिे िैं। शमशलन्दपि किता िै कक बुद्ध ने उस प्राचीन माग वको िी कफर खोला िै, जो बीच में लुप्त िो गया था।'[269] जब बुद्ध शभक्षुक के वेि में िाथि में शभक्षा-पान शलये शभक्षा मांगता िुआ अपने वपता की राजधानी में वापस लौटता िै, तो उसका वपता पूछता िै: "यि सब क्यों ?" और उत्तर शमलता िै : "वपताजी, यि मेरी जातत की प्रथा िै।" राजा आश्चय वसे पूछता िै: "कौन-सी जातत ?" और बुद्ध उत्तर देता िै :

"बुद्ध जो िो चुके िैं और जो िोंगे;
म ैंउन्ीं में से िंूं और जो उन्िोंने ककया, विी म ैंकरता िंूं,
और यि जो अब िो रिा िै पिले भी िुआ था,
कक इस द्वार पर एक कवचधारी राजा,
अपनेपुत्न से शमले; राजकुमार से, जो तपस्वी के वेि में िो।"

मिान् ्उपदेिक मौशलकता का दावा निीं करते, अवपतु जोर देकर यि किते िैं कक वे उसी प्राचीन सत्य का प्रततपादन कर रिे िैं, जो वि अल्न्तम प्रमाय िै, ल्जसके द्वारा सब शिक्षाओंका मूल्य आंका जाता िै; जो सब धमों और दिकवो का सनातन स्रोत िै; जो िाश्वत दिनव या सनातन धम वि; ल्जसे ऑगस्टाइन इन िददों में प्रकट करता िै : "यि वि ज्ञान िै, जो कभी बनाया निीं ंगया था; पर जो इस समय उसी रूप में ववद्यमान िै, जैसा कक वि सदा से ववद्यमान रिा िै और इसी रूप में वि सदा ववद्यमान रिेगा।"[270]

भक्तोऽशस मे सखा चेतत : तू मेरा भक्त और मेरा शमत्र िै। प्रकिाना कभी बन्द निीं ंरिती। जब तक मानवीय हृदय में भल्क्त और शमलता के गुण ववद्यमान िैं, तब तक परमात्मा अपनेरिस्य उसमें प्रकट करता रिेगा। हदव्य आत्मसंचारण उन सब स्थानों पर सम्भव िै, जिां ंभी ईमानदारी और आवश्यकता की अनुभूतत िो। धाशमकव प्रकिाना कोई अतीत की घटना निीं िै। यि एक ऐसी वस्तु िै, जो इस समय भी जारी िै। यि सब प्राखणयों

269 217औरउससे आगेकेपृष्ठ।

270 कन्फैन्स, 9, 10

के शलए सम्भव िै और केवल कुछ थोडे-े से लोगों का िी वविेषाधधकार निीं। ईसा ने पाइलेट से किा था : "जो भी कोई सच्चा िै, वि मेरी आवाज़ को सुनता िै।"

अजुनग उिाच

अपरां भितो जन्म परां जन्म वििस्ितः ।

कथमेतद्विजानीयाां त्िमादौ प्रोक्तिातनतत ॥4॥

अजुनव ने किा :

(4) तेरा जन्म बाद में िुआ और वववस्वान् का जन्म पिले िुआ था। तब म ैंकैसे समझ कक तूने िुरू में यि योग उसको बताया था?

बुद्ध का दावा था कक वि बीते िुए युगों में असंख्य बोधधसत्त्वों का गुरु रि िुका था। सद्धमपुवण्डरीक ,15,

11 ईसा ने किा था : "जब अब्राम िुआ था, उससे पिले से म ैंिूूँ।"-जॉन, 8, 58

अवतारों का शसद्धान्त

श्रीभगिानुिाच

बूतन मे व्यतीतातन जन्मातन ति चाजुनग।

तान्यिां िेद सिाणगण न त्िांित्थ परन्तप॥5॥

श्री भगवान् ने किा :

(5) िे अजुनव, मेरे और तेरे भी बिुत-से जन्म पिले िो चुके िैं। िे िातुओं को सताने वाले (अजुनव), म ैंउन सबको जानता िूूँ, पर तू निीं जानता।

अजोऽवप सन्नव्ययात्माभूतानामीश्िरोऽवप सन् ।

प्रकृतत स्िामधधष्ठाय सांभिाम्यात्ममायया ॥6॥

(6) यद्यवप म ैंअजन्मा िूूँ और मेरी आत्मा अनश्वर िै, यद्यवप म ैंसब प्राखणयों का स्वामी िूूँ, कफर भी म ैं अपनी प्रकृतत में ल्स्थर िोकर अपनी माया द्वारा (अनुभवगम्य) अल्स्तत्व धारण करता िूूँ।

मानव-प्राखणयों का दिे-धारण स्वैल्च्छक निीं। अज्ञान के कारण अपनी प्रकृतत से प्रेररत िोकर वे बारम्बार जन्म लेते िैं। भगवान् प्रकृतत का तनयन्त्रण करता िै और अपनी स्वतन्त्र इच्छा द्वारा िरीर धारण

करता ि ै। प्राखणयों के सामान्य जन्म का तनधारवण प्रकृतत की ि ि ल्क्तयों द्वारा ि ि ोता ि ि ै, अविं ्प्रकृतेविवात्, ्'[271] जब कक परमात्मा स्वयंअपनी ि ि ल्क्त द्वारा जन्म लेता ि ि ै, आत्ममायया ।

प्रकृततम् ्अधधष्ठाय : मेरी अपनी प्रकृतत में ल्स्थर ि ि ोकर। वि अपनी प्रकृतत का एक ऐसे ढंग से प्रयोग करता ि ि ै, जो कम वकी पराधीनता से स्वतन्त्र ि ि ै।272 यिां ्ऐसी कोई ध्वतन निीं ्ि ि ै कक उस एक का अल्स्तत्वमान् ्ि िनो केवल प्रतीतत-भर ि ि ै। यिां ्उसका अशभप्राय वास्तववक रूप से ि ि ी ि ि ै। यि माया द्वारा वस्तुतः अल्स्तत्वमान् ्ि िनो ि ि ै 'असम्भव को वास्तववक बना देनेकी क्षमता।

ि िंकराचाय वकी यि व्याख्या कक "म ैंअपनी ि ि ल्क्त द्वारा जन्म लेता ि ि ुआ और ि ि रीर धारण करता ि ि ुआ प्रतीत ि ि ोता ि ि ंू, परन्तु अन्य लोगों की भांतत वस्तुर जन्म निीं लेता,"[273] सन्तोषजनक निीं। योगमाया से संकेत परमात्मा की स्वतन्त्रा इच्छा, उसकी स्वेच्छा, उसकी अगम्य ि ि ल्क्त की ओर ि ि ै। पूणतवा द्वारा अपूणतवा का, गौरव द्वारा क्षुदुरता का, ि ि ल्क्त द्वारा दुबुलवता का धारण ककया जाना ववश्व का रिस्य ि ि ै। ताककवक दृल्ष्टकोण से यि माया ि ि ै।

यदा यदा हि धमस्गय ग्लातनभिगतत भारत।

अभ्युत्थानमधमस्गय तदात्मानांसृजाम्यिम् ्॥7॥

(7) जब भी कभी धम वका ह्रास ि ि ोता ि ि ै और अधम वकी वृद्धध ि ि ोती ि ि ै, ि ि े भारत (अजुनव), तभी म ैं(अवतार रूप में) जन्म लेता ि ि ंू।

"जब भी धम वक्षीण ि ि ोने ेलगता ि ि ै और अधम वकी वृद्धध ि ि ोती ि ि ै, तब सविवल्क्तमान् ्ि ि रर जन्म धारण करता ि ि ै।" जब भी जीवन में कोई गम्भीर तनाव आ जाता ि ि ै, जब एक प्रकार का सवव्वयापी भौततकवाद मानवीय आत्माओं के हृदयों पर आक्रमण करने लगता ि ि ै, तब समतुलन को बनाए रखने के शलए प्रत्युत्तर देने वाली ज्ञान और धम वकी अशभव्यल्क्त आवश्यक ि ि ोती ि ि ै। भगवान् ्यद्यवप अजन्मा और अमर ि ि ै, कफर भी वि अज्ञान और स्वाथ वकी ि ि ल्क्तयों को परास्त करने ेके शलए मानवीय ि ि रीर में प्रकट ि ि ोता ि ि ै।274

अवतार का अथ वि ै उतरना, वि जो नीचे उतरा ि ि ै। हदव्य भगवान् ्संसार को एक ऊंचे स्तर तक उठाने के शलए पाधथव स्तर पर उत्तर आता ि ि ै। जब मनुष्य ऊंचा उठता ि ि ै, तब परमात्मा नीचेउतर आता ि ि ै। अवतार का उद्देश्य एक नये संसार का, एक नये धम वका उद्घाटन करना ि ि ै।275 अपनेउपदेि और उदािरण द्वारा वि यि

---

271 9,8

272 कमपवारतन्त्र्यरहित । - श्रीधर ।

273 सम्भवाशम दिवातनव, जात इव आत्ममायया आत्मनो मायया, न परमाथतवो लोकवत्।्

274 यदा यदि धमस्वय क्षयो वृद्धधश्च पाप्मनः ।

तदा तु 'भगवानीनी आत्मानंसृजृते ि ि ररः ॥- भागवत, 9, 24, 56

275 तुलना कील्जए, ववष्णुपुराण :

यलावतीण वकृष्णाख्यं परं ब्रह्म नराकृततः।

प्रदशितव करता िै कक ककस प्रकार मनुष्य अपने-आप को जीवन के उच्चतर स्तर तक उठा सकता िै। धम व(सिी) और अधम व(गलत) के बीच का इस तनणावयक प्रश्न िै। परमात्मा धम वके पक्ष में काय वकरता िै। प्ेरेम और दया अशभततोगत्वा द्वेष और क्रूरता की अपेक्षा अधधक िल्क्तिाली िैं। धम वअधम वको जीत लेगा और सत्य की असत्य पर ववजय िोगी। मृतूयु, रोग और पाप के पीछे काम कर रिी िल्क्तयांउस वास्तववकता द्वारा परास्त कर दी जाएंगी, जो सत्,् धचत् ्और आनन्द िै।

धम वका िाल्ददक अथ विै-वस्तु या प्राणी की ववशिष्टता (भूतवैशिष्ट्य) । प्राणी का मूल स्वभाव िी उसके व्यविार के रूप का तनधारवण करता िै। जब तक िमारा आचरण िमारी मूल प्रकृतत के अनुकूल िै, तब तक िम सिी ढंग से काय वकर रिे िैं। अपनी प्रकृतत के साथ अनुकूल न िोना अधम विै। यहद ववश्व की समस्वरता सब प्राखणयों के उनकी अपनी-अपनी प्रकृतत के अनुकूल िोने ेसे उत्पन्न िोती िै, तो ववश्व की ववसंवाहदता उन प्राखणयों के अपनी प्रकृतत के प्रततकूल िोने से उत्पन्न िोती िै। जब िम अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करते िैं और ववसमतुलना उत्पन्न कर देते िैं, तो परमात्मा अलग खडा देखता निीं ंरिता। ऐसा निीं िै कक वि इस संसार में केवल चाबी भर देता िो और उसके बाद इसे सिी पटरी पर चलाकर कफर इसे अपने-आप लुढ़कता जाने देता िो। उसका प्ेरेममय िाथ सारे समय इसे सिी हदिा में चलाता रिता िै।

धम वकी धारणा ऋत के ववचार का िी ववकास िै, जो ऋग्वेद में सांसाररक और नैततक व्यवस्था का द्योतकिै। ऋत, जो संसार को ताककवक दृल्ष्ट से मित्व और नैततक दृल्ष्ट से ऊंचा स्थान प्रदान करता िै, वरुण द्वारा रक्षक्षत िै। गीता का परमात्मा धम वका रक्षक िै, िाश्वत धमगवोप्ता (11, 18) अच्छाई और बराई से परे ववद्यमान ऐसा परमात्मा निीं, जो बिुत दूरू िो और ल्जसे अधम वके साथ चल रिे मनुष्य के संघषों की परवाि न िो।

पररल्लाणाय साधूनाांविनाशाय च दुषुकृताम् ्।
धमसगस्ांथापनाथायग सम्भिाशम युगे युगे ॥8॥

(8) सज्जनों की रक्षा के शलए और दुष्ुटों के ववनाि के शलए और धम वकी स्थापना के शलए म ैंसमय-समय पर जन्म धारण करता रिता िंूू।

संसार को धम वके माग वपर चलाते रिने ेका काम ववष्णु के रूप में परमाका का िै. जो संसार का रक्षक िै।

जब पाप बढ़ जाता िै, तब कफर धम वकी स्थापना और परर करनेके शलए वि जन्म लेता िै।

जन्म कम गच मे हदव्यमेिां यो िेवत्त तत्त्तिः ।
त्यक्त्िा देिां पुनजन्गम नैतत मामेतत सोऽजुनग॥9॥

(9) जो व्यल्क्त मेरे हदव्य जन्म और कायों को इस प्रकार सत्य रूप में जान लेता िै, वि िरीर को त्यागनेके बाद कफर जन्म निीं ंलेता, अवपतु अजुनव, वि मेरे पास चला आता िै।

कृष्ण का अवतार या हदव्य भगवान् ्का मानवीय संसार में अवतरण प्राणी की उस दिा को प्रकट करता ि, ल्जस तक मानवीय आत्माओं को ऊपर उठाना चाहिए। अजन्मा के जन्म का अथ वि - मनुष्य की आत्मा में ववद्यमान रिस्य का उद्घाटन।

अवतार इस ब्रह्माण्ड की प्रकक्रया में अनेक कायों को पूरा करता ि। इस धारणा से यि अथ वतनकलता ि कक आध्याल्त्मक जीवन और सांसाररक जीवन में परस्पर कोई ववरोध निीं। यहद संसार अपूण वि और इसका िासिन िारीररक वासनाओंऔर ितैान द्वारा ककया जा रिा ि, तो यि िमारा कत्तव्य ि कक िम आत्मा के शलए इसका उद्धार करें। अवतार िमारे सम्मुख आध्याल्त्मक जीवन का उदािरण प्रस्तुत करके िमें वि माग वहदखाता ि, ल्जस पर चलकर मनुष्य अल्स्तत्व के पािववक स्वरूप से उठकर आध्याल्त्मक स्वरूप तक पिुंच सकता ि। हदव्य प्रकृतत अवतार में अपनेनग्न सौन्दय वमें हदखाई निींपडती, अवपतु मनुष्यता के उपकरणों द्वारा उसका ध्यान ककया जाता ि। भगवान् ्का मित्व इन मिान् ्व्यल्क्तयों के रूप में और इन्िींके द्वारा िम तक पिुंचाया जाता ि। उनके जीवन िमारे सम्मुख मानवीय जीवन के उन मूल घटक तत्वों नाटकीय रूप में प्रस्तुत करते िैं, जो उसके अपनी भववतव्यता की पूणतवा तक आरोिण के शलए आवश्यक िैं। भागवत में किा ि: "सवव्यापी भगवान् ् केवल दानवीय िल्क्तयों का ववनाि करने ्के शलए िी निीं,् अवपतु मत्य वमनुष्यों को शिक्षा देनेके शलए भी प्रकट िोता ि, अन्यथा आनन्दमय भगवान् ्सीता के ववषय में धचन्ता आहद का अनुभव ककस प्रकार कर सकता ि?"[276] वि भूख और प्यास, िोक और कष्ट, एकान्त पररत्यक्तता का अनुभव करता ि। वि इन सब पर ववजय प्राप्त करता ि और िमसे किता ि कक िम भी उसके उदािरण से सािस और धैय वप्राप्त करें। वि न केवल िमें उस सच्चे शसद्धान्त की शिक्षा देता ि, ल्जसके द्वारा िम अपनेपुचक ऐहिक स्वाथ वके प्रतत मर-से जाते िैं और कालातीत आत्मा के साथ संयुक्त आत्माओं से यि किकर, कक वे उस पर ववश्वास करें और उससे प्रेम करें, उन्िें परब्रह्म के ज्ञान तक ले जानेका वचन देता ि। ऐततिाशसक तथ्य उस तककया का तनदिनव-भर ि, जो मनुष्य के हृदय में सदा चलती रिती ि। अवतार वि बनने में सिायता देता ि, जो बन पाना िमारे शलए सम्भव ि। हिन्दू ूऔर ववचारधाराओं में ककसी एक ऐततिाशसक तथ्य के प्रतत दासता का भाव निीं। िम सबके सब हदव्य स्तर तक उठ सकतेिैं और अवतार िमें इस आन्तररक उपलल्दध को प्राप्त करनेमें सिायता देते िैं। गौतम बुद्ध से तुलना कील्जए : "तब भगवान् ्बोले और उन्िोंनेकिा : 'वसत्थो, इस बात को समझ लो कक समय-समय पर ऐसा तथागत संसार में जन्म लेता ि, जो पूरी तरि ज्ञान से प्रकाशित िोता ि। वि पववत्र और योग्य िोता ि। उसमें ज्ञान और अच्छाई प्रचुर माला में भरी िोती ि। वि लोकों के ज्ञान के कारण प्रसन्न रिता ि। पथभ्रष्ट मयों के शलए वि अद्ववतीय मागदविकव िोता ि। वि देवताओं और मनुष्यों का गुरु िोता ि। वि भगवान् ्बुद्ध ि। वि सत्य दिदों और सत्य की भावना की घोषणा करता ि, जो आहद, मध्य और अन्त, सबमें सुन्दर िोती ि। वि एक पववत्त

---

276 मत्यारवाल्स्त्व मत्यशिक्षण रक्षोवधायैव न केवलंववभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतातन व्यसनानीश्वरस्य ॥ -5, 19,5

और पूण वउच्चतर जीवन का ज्ञान लोगों को कराता िै। "[277] मियान बौद्ध-सम्प्रदाय के अनुसार गौतम बुद्ध से पिले भी बिुत-से बुद्ध िो चुके िैं और गौतम के बाद एक और बुद्ध मैलेय के रूप में िोगा। स्वयंगौतम के अनेक जन्म िुए थे, े ल्जनमें उसने वे गुण संधचत ककए ल्जनसे वि सत्य को खोज पाने में समथ िुआ। अन्य लोगों के शलए भी ऐसा की कर पाना सम्भव िै। िम देखतेिैं कक बौद्धधम वमें दीक्षा लेने वाले लोग बुद्धक ज्ञान प्राप्त करने ेकी पिथ लेते िैं। ये सम्प्रदाय ककसी एक ववशिष्ट समय में िी दां ककसी एक िी अनन्य प्रकिाना में ववश्वास निीं ं रखते ।

ीतिरागभयक्रोधा मन्मया मामुपुाधश्रताः।
ीबिो ज्ञानतपसा पता मद्भिामागताः ॥10॥

(10) राग, भय और क्रोध से मुक्त िोकर, मुझमें लीन िोकर और मेरी िरण में आकर ज्ञान की तपस्या द्वारा पववत्र िुए बिुत-से लोगों ने मेरी िी ल्स्थतत को प्राप्त कर शलया। (अथात्) िंूं, वेिी वे ेबन गए िैं।

मद्भिाम् **ः:** उस आधधदैववक अल्स्तत्व को, जो कक मेरा िै। अवतार का उद्देश्य केवल ववश्व-व्यवस्था को बनाए रखना िी निीं ंिै, अवपतु मानव-प्राखणयों को उनकी अपनी प्रकृतत में पूण वबनने में उनकी सिायता करना भी िै। मुक्त आत्मा पृथ्ूवी पर असीम की एक जीती-जागती प्रततमा बन जाती िै। परमात्मा के मानव- रूप में अवतरण का एक प्रयोजन यि भी िै कक मनुष्य ऊपर उठकर परमात्मा तक पिुंच सके। धम वका उद्देश्य मनुष्य की यि पूणतवा िै और अवतार सामान्यतया इस बात की घोषणा करता िै कक वि स्वयंिी सत्य, माग वऔर जीवन िै।

ये यथा मा ंप्रपद्यन्ते तास्ांतथैि भजाम्यिम्।्
मम िानुितन्गते ेमनुष्याः पाथ गसिशगः ॥11॥

(11) जो लोग ल्जस प्रकार मेरे पास आते िैं, म ैंउन्िें उसी प्रकार अपनाता िंूं। िे अजुनव, मनुष्य सब ओर मेरे माग वका अनुगमन करते िैं।

मम ि**त्मागः** मेरा माग;व मेरी पूजा का माग।व'[278]

सिशगः : सब ओर; एक और पाठ िै, सवप्रवकारैः : सब प्रकार से।

---

277 तेबबज्ज सुतुत।तुलना कील्जएरोमन्स : "यहद िम उसकी जैसी मृतूयुद्वारा ऊंचे उठकर उसके रूप तक पिुंच जाएं, तो िम उसी के जैसे पुनरुत्थान द्वारा उठकर उस तक पिुंच जाएंगे। िमें यि िद्वान रिेगा कक ल्जस प्रकार िम कर रिे िैं, उसी प्रकार मिारी पुरातन आत्मा उसके साथ पापपूण विरीर का दमन करनेके शलए क्रास पर चढ़ाई गई थी।" 6, 6, मॉकफट का अंग्रेजी अनुवाद ।

278 मम भजनमागम्व।् - श्रीधर।

इस श्लोक में गीता के धम वकी ववस्तृत उदारता स्पष्ट हदखाई पडती िै। परमात्मा प्रत्येक साधक से कृपापूवकव शमलता िै और प्रत्येक को उसकी िाहदवक इच्छा के अनुसार फल प्रदान करता िै। वि ककसी की भी आिा को तोडता निीं, अवपतु सब आिाओं को उनकी अपनी-अपनी प्रकृतत के अनुसार बढ़ने में सिायता देता िै। जो लोग वैहदक देवताओं की यज्ञ द्वारा पूजा करते िैं और उनके बदले कुछ फल की आिा रखते िैं. उन्िें भी परमात्मा की दया से वि सब प्राप्त िो जाता िै, ल्जसे पाने के शलए वे प्रयत्निील िोते िैं। ल्जन लोगों को सत्य का दिनव प्राप्त िो जाता िै, वे उसे प्रतीकों द्वारा उन साधारण लोगों तक पिुंचा देते िैं जो उसे उसकी नग्न तीव्रता में देख निीं सकते। अरूप तक पिुंचने के शलए नाम और रूप का उपयोग ककया जाता िै। उपासना को ककसी भी अपने मनोनुकूल रूप'[279] में अपनाया जा सकता िै। हिन्दू ववचारकों को मागों की उस ववववधता का ज्ञान िै, ल्जस पर चलकर िम भगवान् तक पिुंच सकतिैं, जो सब हितों की सम्भाव्यता िै। उन्िें मालूम िै कक युल्क्तसंगत तकव के ककसी भी प्रयत्न द्वारा िमारे सम्मुख परम वास्तववकता का सच्चा धचत्र खडा कर पाना असम्भव िै। परमाथ वकी दृल्ष्ट से ककसी भी प्रकट रूप को परम सत्य निीं माना जा सकता, जब कक व्यविार की दृल्ष्ट से प्रत्येक रूप में कुछ-न-कुछ प्रामाखणकता ववद्यमान िै। ल्जन रूपों की िम पूजा करते िैं, वे िमारे गम्भीरतम आत्मा के प्रतत सचेत िोनेमें िमारी सिायता करने के उपकरण िैं। जब तक पूजा का लक्ष्य आत्मा के ध्यान को दृढ़ता से जकडे रिता िै, तब तक वि िमारे मन और हृदय में प्रवेि करता रिता िै और उन्िें गढ़ता रिता िै। रूप का मित्व उस कोहट द्वारा आंका जाना चाहिए, ल्जस कोहट में वि अल्न्तम (परम) साथकवता को अशभव्यक्त करता िै।

गीता धम वके ककसी इस या उस रूप की चचाव निीं करती, अवपतुउस मनोभाव के ववषय में किती िै, जो सब रूपों में अशभव्यक्त िोता िै और वि िै- परमात्मा को पाने और उसके साथ िमारे अपनेसम्बन्ध को समझने की इच्छा ।280

सब लोग उसी परमात्मा की पूजा करते िैं। धारणा और प्रणाली के अन्तर स्थानीय प्रभाव और सामाल्जक अनुकूलनों द्वारा तनधारवरत िोते िैं। सब प्रकट रूप उसी एक भगवान् के िैं। "ववष्णु शिव िै और शिव ववष्णु िै; और जो समझता िै कक वे अलग-अलग िैं, वि नरक में जाता िै।"[281] "ल्जसे ववष्णु समझा जाता िै, वि रुद्र िै और जो रुद्र िै, विी ब्रह्मा िै। रुद्र, ववष्णु और ब्रह्मा, इन तीन देवताओं के रूप में एक िी िल्क्त काम कर

---

279 वयाशभमतध्यान ।

280 तुलना कील्जए : "उसके शलए सारी पूजा पववत्त थी, क्योंकक उसका ववश्वास था कक तनचले से तनचले रूपों में, अज्ञानी से अज्ञानी और मूखू वसे मूख वपुजाररयों में भी हदव्य भगवान् की सच्ची खोज करने का तत्व था; और इन लोगों में और बडे-से-बडे ज्ञानदार कमकवाल्ण्डयों या उच्चतम दितवनक सुतनल्श्चतताओं के बीच इतना थोडा अन्तर िै कक िम ववश्वास कर सकते िैं कक स्वग वमें रिने वाले सन्त उस अन्तर को देखकर मुस्कुराते-भर िोंगे।" ऐशलज़ाबेथ वाटरिाउस, थोट्स ऑफ ए टशियरी :

ऐवेलीन अण्डरहिल द्वारा शलखखत 'वशिपव' (1937) में पृष्ठ । पर उद्धत ।

281 िररूपी मिादेवो शलङ्गरूपी जनादवनः ।

ईषदप्यन्तरं नाल्स्त मेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥ - बृिन्नारदीय।

साथ िी मैलायणो उपतनषद् सेतुलना कील्जए: स वा एष एकल्स्त्रधाभूतः। साथ िी देखखए अथववेद: एक िी ज्योतत अपने-आप को ववववध रूपों में प्रकट करती िै, एक ज्योततबिुवधाववभातत । 13, 3, 17

रिी िै। "[282] उदयनाचाय वने शलखा िै: "िैवै लोग ल्जसकी शिव मानकर पूजा करते िैं, वेदान्ती ल्जसे ब्रह्म माननतें, बौद्ध ल्जसे बुद्ध माननतें, प्रमाणों के ज्ञान में पटुनैयातयक ल्जसे कताव माननतें, जैन धम वके अनुयायी ल्जसे अिवत् ्मानते िैं, कमकवाण्डी मीमांसक ल्जसे कम वमाननतें, वि तीनों लोकों का स्वामी िरर तुर्म्ें मनोवांतछत फल दे।"[283] यहद वि आज के युग में शलख रिा िोता, तो वि इतना और जोड देता कक "ल्जसको कम वके प्रतत तनष्ठा रखनेवाले ईसाई ईसा मानते िैं और मुसलमान अल्लिा माननतें।"[284]* परमात्मा उन सबको फल देने वाला िै, जो अध्यवसाय पूवकव उसकी खोज करते िैं, कफर चािे वे परमात्मा को ककसी भी रूप में क्यों न माननतें। आध्याल्त्मक रूप से अपररपक्व लोग अपने देवताओं से शभन्न देवताओं को मानने ेके शलए तैयार निीं ंिोते। अपने ववश्वास के प्रतत उनका प्रेम उर्न्ें परमात्मा की वविालतर एकता के प्रतत अन्धा बना देता िै। यि धाशमकव ववचारों के क्षेत्र में अिंवाद का पररणाम िै। इसके ववपरीत गीता इस बात की पुल्ष्ट करती िै कक के ववश्वास और व्यविार अनेक प्रावधातनक उपलल्दध, ल्जसके शलए ये सब साधनमाल िैं, एक िी िै।

इस बात की एक प्रबल चेतना, कक उसने सत्य को, सम्पूण वसत्य को, और देसी वस्तु को, जो सत्य के शसवाय कुछ निीिं, पा शलया िै, जब उन लोगों की दिा के प्रतत, जो बाह्य अन्धकार में िैं, लोकोत्तर धचन्ता के साथ शमल जाती िै, सब वि मन की एक ऐसी दिा को उत्पन्न कर देती िै, जो साधक की मनोदिा से बिुत दूरू निीं ंिोती।

काङ्क्षन्तः कमणगा ंशसद्धध ंयजन्त इि देिताः ।

क्षक्षप्रां हि मानुषे लोके शसद्धधभिगतत कमजगा ॥12॥

(12) जो लोग अपने कमों का फल यिीं ंपृथ्वी पर चािते िैं, वे देवताओं को (एक परमात्मा के िी ववशभन्न रूपों

---

282 यो वै ववष्णुः स वै ैरुद्रो यो रुद्रः स वपतामिः ।

एकमूततस्त्रयो देवा रुद्रववष्णुवपतामिाः ॥

283 यैंवाःसमुपुासतेशिवइत्तेत ब्रह्मेततवेदाल्न्तनः ;

बौद्धाः बुद्ध इतत प्रमाणपटवः कतेतत नैय्यातयकाः ।

अिवल्न्नत्यथ जैनिासनरताः कमेतत मीमांसंका,

सोऽयं ंवो ववदधातु वाल्चछत्तफलं ंतैलोक्यनाथो िररः ॥

284 ऊस्त्वाः क्रीस्तुररतत कक्रयापररताः अल्लेतत मिम्मदाः । अबुलफ़ज़ल ने अकबर के दीने-इलािी की 'भावना को इन िददों में प्रस्तुत ककया िै: "िे परमात्मा, म ैंप्रत्येक मल्न्दर में उन लोगों को देखता िंूं, जो तुझेढूंढ़ते िैं और मनैं ल्जतनी भी भाषाएं बोली जाती सुनी िैं, उन सबमें लोग तेरी स्तुतत करते िैं। बिुदेववाद और इस्लाम तुझेखोजतें। प्रत्येक धम वकिता िै कक 'तू एक िै और अद्ववतीय िै'; मल्स्जद में लोग तेरे प्रेम के कारण नमाज़ पढ़ते िैं और ईसाई धगरजाघरों में घंहटयां ंबजातें। म ैं कभी ईसाईमत में जाता िंूं और कभी मल्स्जद में, परन्तु वि तू िी िै, ल्जसकी खोज म ैंमल्न्दर-मल्न्दर में करता कफरता िंूं। तेरे कृपापात्र लोग ववश्वास-भेद या कट्टरता से कोई वास्ता निीं ंरखते, क्योंकक इनमें से एक भी तेरे सत्य के पदे के पीछे निीं आता। ववश्वास-भेद शभन्न ववश्वास वाले के शलए िै और कट्टर जाववत के शलए िै। परन्तु गुलाब की पंखुडडयों का पराग तो इन बेचने वाले के हृदय की वस्तु िै।" - दलाखमैन, आईने-अकबरी, पृ.ृ 30 (भूशमका)

को) बशलयां देते िैं, क्योंकक मनुष्यों के इस संसार में कमों का फल बिुत िीघ्र शमलता िै।

परमात्मा के काम का तनष्काम स्वरूप

चातुिण्गय गमया सृष्ट्टां गुणुकमवगिभागशः।

तस्य कररमवप मा ांविय्कतारगमव्ययम् ्॥13॥

(13) मैंने गुण और कम वके हिसाब से चार वगों की सृलूष्ट की थी। यद्यवप म ैंइसका सृजन करनेवाला िांूं, कफर भी तू यि जान रख कक न कोई कम वकरता िांूं और न मुझमें कोई पररवतनव िोना िै।

चातुिण्गयम्ग ्: चार भागों में बंटी व्यवस्था। यिां ज़ोर गुण और कम वपर हदया गया िै, जातत (जन्म) पर निीं। िम ककस वण वके िैं, यि बात कक या जन्म पर तनभरव निीं िै। स्वभाव और व्यवसाय द्वारा तनधारवरत वण व जश्न और आनुवंशिकता द्वारा तनधारवरत जातत निीं। मिाभारत के अनुसार गिु में सारा संसार एक िी वण वका था। परन्तु बाद में ववशिष्ट कतव्वयों के कारण यि चार वगों में ववभक्त िो गया।285' सवणों और अन्त्यजों में भी भेदभाव बनावटी और अनाध्यात्मक िै। एक प्राचीन श्लोक में यि बात किी गई िै कक ब्राह्मण और अन्त्यज तो सगे भाई िैं।286 मिाभारत में युधधल्ष्ठर किता िै कक जाततयो के शमश्रण के कारण लोगों की जातत का पता करना बिुत कहठन िै। लोग सब प्रकार की ल्स्त्रयों से सन्तान उत्पन्न करते िैं, इसशलए ऋवषयों के अनुसार केवल आचरण िी जातत का तनधारवण करने वाला तत्व िै287। चातुवण्वय-वव्यवस्था मानवीय ववकास के शलए बनाई गई िै। जातत-व्यवस्था कोई परम वस्तु निीं िै। इततिास की प्रकक्रया में इसका स्वरूप बदलता रिा िै। आज इसे इसकी अपेक्षा कुछ अधधक निींसमझा जा सकता कक यि इस बात के शलए आग्रि िै कक सामाल्जक उद्देश्य को पूरा करने के शलए अमुक काय वअमुक प्रकार ककए जानेचाहिए। कृत्यों के आधार पर बनेवग वकभी भी पुराने निीं पडेंगे और जिां तक ववविों का सवाल िै, वे उन लोगों के बीच िोतेरिेंगे, जो सांस्कृततक ववकास की कुछ कम या अधधक एक िी कोहट में िैं। भारत की वतमवान अस्वस्थ दिा, ल्जसमें अनेक जाततयां तथा उपजाततयाँ, गीता द्वारा उपहदष्ट एकता की ववरोधी िै। यि एकता समाज की परमाणुवाली धारणा के प्रततकूल एक सावयव धारणा का समथनव करती िै।

---

285 एकवणशवमदं पूव ववश्वमासीयुधधल्ष्ठर।
कमकवक्रयावविेषेण चातुवण्वय प्रततल्ष्ठतम् ्॥

286 अन्त्यजो ववप्रजाततश्च एक एव सिोदराः।
एकयोतनप्रसूतश्च एकिाखेन जायते े॥

287 संकरात्सववणानवां दुष्पुरीक्ष्येतत मे मततः।
सवे सवाव स्वपत्यातन जनयल्न्त सदा नराः ।

तस्मात् ्िीलं प्रधानेष्ट ववदुयु तत्त्वदशिनवः ॥

अकतारगम् ् **:** न करने वाला। क्योंकक भगवान् ्अनासक्त िै, इसशलए उसे अकताव किा गया िै। कमों का उसके अपल्स्वतनवील अल्स्तत्व पर कोई प्रभाव निीं ंपडता, िालांकक वि अदृश्य रूप से सब कमों की पृष्ठभूशम में ववद्यमान िै।

अनासक्त कमबवन्धन का कारण निीं ंबनता

न मा ंकमाणगण शलम्पस्न्त न मे कमफगले स्पृिा ।
इतत मा ंयोऽशभजानातत कमशगभन गस बध्यते ॥14॥

(14) कम वमुझेदूवूषत निीं ंकरते । न ककसी कमफवल के प्रतत मेरी इच्छा िै। जो मुझेइस रूप में जानता िै, वि कमों के बन्धन में निीं बंधता ।

एि ंज्ञात्िा कृत ंकम गपूिरवप मुमुक्षुशभः ।
कुरु कमैि तस्मात्त्िं पूिःै पूितगरां कृतम् ्॥15॥

(15) पुराने समय के लोगों ने, जो मोक्ष पाने के अशभलाषी थे, यि जानते िुए भी कम वककया था। इसशलए जैसे प्राचीन काल में पुराने लोगों ने ककया था, उसी प्रकार तू भी काय वकर।

अज्ञानी लोग आत्मशुद्धि के शलए कम वकरते िैं और ज्ञानी लोग लोकसंग्रि के शलए कम वकरते िैं।

ल्जस प्रकार पुराने लोगों ने परम्परा के द्वारा तनहदवष्ट कम वको ककया था, उसी प्रकार अजुनव से भी योद्धा के रूप में उसका कत्तव्वय पूरा करने के शलए किा गया िै। तुलना कील्जए : "िे संसार के स्वामी, सवोच्च आत्मा, मंगलकारी परमात्मा, म ैंकेवल तुम्िारे आदेि से प्राखणयों के हित के शलए और तुम्िारा वप्रय करनेके शलए इस जीवन-याला को चलाऊंगा।"[288]

कम वऔर अकम व

ककं कम गककमकमेतत कियोऽप्यन मोहिताः ।
तत्तेकमप्रगिक्ष्याशमयज्ज्ञात्िामौक्ष्यसेऽशुभात ॥16॥

(16) क्या कम विै और क्या अकम विै, इस ववषय में तो बडे–बडे ज्ञानी भी चकरा गए िैं। म ैंतुझे बताऊंगा कक कम वक्या िै। उसे जानकर तू ूसब दोषों से मुक्त िो जाएगा।

---

288 लोकेिचैतन्यमयाधधदेवमाङ्गल्यववष्णो भवदाज्ञयैवै।
हिताय लोकस्य तव वप्रयाथ वसंसारयात्नामनुवततवयष्ये ॥

कमणगो ह्यवप बोद्धव्यांबोद्धव्यां च विकमणगः।
अकमणगश्च बोद्धव्यां गिना कमणगो गततः ॥17॥

(17) मनुष्य को यि समझना चाहिए कक कम वक्या िै। इसी प्रकार उसे यि देख समझना चाहिए कक गलत कम वक्या िै; और उसे यि भी समझना िोगा कक अकम वक्या िै। कम वकी गतत को समझना बिुत कहठन िै।
सिी माग वकौन-सा िै, यि साधारणतया स्पष्ट निीं ंिोता। िमारे समय के ववचार, परम्पराओं की रूहढ़यां और अन्तरात्मा की आवाज आपस में शमल जाती िैं और िमें भ्रान्त कर देती िैं। इस सबके बीच में ज्ञानी मनुष्य अपररवतनविील व्यकक सत्यों के अनुसार अपनेउच्चतम वववेक की अन्तदृल्वष्ट द्वारा माग वखोजता िै।

कमणगयकम गयः पश्येदकमणगण च कम गयः।
स बुद्धधमान्मनुष्येषु स युकुतः कृत्नकमकृगत् ॥18॥

(18) जो मनुष्य कम वमें अकम वको देखता िै और अकम वमें कम वको देखता िै, वि मनुष्यों में ज्ञानी मनुष्य िै। वि योगी िै और उसनेअपनेसब कमों को कर शलया िै।

जब तक िम अनासक्त भावना से कम वकरते िैं, िमारा मानशसक सन्तुलन ववचशलत निींिोता। िम उन कमों से दूरू रिते िैं, जो इच्छा से उत्पन्न िोते िैं और िम भगवान् ्के साथ एकात्म िोकर अपना कत्तव्वय करते जाते िैं। इस प्रकार सच्ची अकक्रयता अपनी आन्तररक िाल्न्त को बनाए रखना और आसल्क्त से मुक्त रिना िै। अकम वका अथ विै -कम वके पररणामस्वरूप िोनेवाले बन्धन का अभाव; क्योंकक वि कम वआसल्क्त के बबना ककया जाता िै। जो व्यल्क्त अनासक्त िोकर कम वकरता िै, वि बन्धन में निीं पडता। जब िम िान्त बैठे िोतिें और कोई बािरी कम वनिीं ंकरते, तब भी िम कम वकर रिे िोतिें। अष्टावक्रगीता से तुलना कील्जए : "मूख वलोग दुराग्रि और अज्ञान के कारण जो कम वसे ववमुख िोते िैं, उनका वि ववमुख िोना भी कम विी िै। ज्ञानी लोगों का, कम व (अथात् ्उनका तनष्काम कम)व िी फल प्रदान करता िै, जो तनवृवृत्त से प्राप्त िोता िै।"[289]

िंकराचाय वने इसकी व्याख्या करते िुए किा िै कक आत्मा में कोई कक्रया निींिोती। परन्तु िरीर में तनल्ष्क्रयता कभी निीं ंरिती, तब भी निीं, ं जब कक िरीर देखनेमें तनल्ष्क्रय मालूम िोता िै।

रामानुज का मत िै कक अकम वआत्मज्ञान िै। ज्ञानी मनुष्य वि िै, जो सच्चे कम वमें िी ज्ञान को देखता िै। उसके शलए ज्ञान और कम वदोनों साथ रितिें।

---

289 तनवृवृत्तरवपमूढ्स्यप्रवृवृत्तरुपजायते। ो
प्रवृवृत्तरवप धीरस्य तनवृवृत्तफभाधगनी ॥ -18,61

मध्व के मतानुसार अकम वआत्मा की तनल्ष्क्रयता और ववष्णुकी सकक्रयता। इसशलए ज्ञानी मनुष्य वि

ै, जो भगवान् ्की सकक्रयता को देखता िै, चिो भल्क्त सकक्रय िो या न िो।

यस्य सिे समारम्भाः कामसकांल्पिस्जतगाः ।

ज्ञानास्ग्नदग्धकमाणग ांतमािुः पस्ण्डतां बुधााः ॥19॥

(19) ल्जसके सब काय वइच्छा के संकल्प से स्वतन्त िैं, ल्जसके कम वज्ञान की अल्ग्न में जल गए िैं, उसे ज्ञानी लोग पल्ण्डत कितेिैं।

ऐसे कम वकरने ेवाले का दृल्ष्टकोण ज्ञान से उत्पन्न स्वाथ-वलालसा से मुक्त िावभवौम दृल्ष्टकोण िोता िै।

यद्यवप वि काय वकरता िै, कफर भी वि वस्तुतः कुछ निींकर रिा िोता।

त्यक्त्िा कमफगलासङ्ग तनत्यतृप्तो तनराश्रयः ।

कमण्गयशभप्रितृ्तोऽवप नैि ककस्ञ्चत्करोतत सः ॥20॥

(20) कम वके फल के प्रतत आसल्क्त को त्यागकर, सदा तृप्त रिकर, बबना ककसी पर आधश्रत िुए वि भले िी सदा काय वमें लगा रिे, कफर भी वि कुछ निीं ंकर रिा िोता।

अष्टावक्रगीता से तुलना कील्जए : "जो अल्स्तत्व और अनल्स्तत्व दोनों से रहित िै, जो ज्ञानी िै, सन्तुष्ट ै और इच्छाओं से मुक्त िै, वि भले िी संसार की दृल्ष्ट में काय वकर रिा िो, परन्तु वस्तुतः वि कुछ निीं ंकर रिा िोता।"[290]

"जो मनुष्य वेदों द्वारा बताए गए सब धाशमकव अनुष्ठानों को उनके प्रतत कोई आसल्क्त न रखते िुए परमात्मा को समवपतव कर देता िै, वि अकम वकी शसद्धध को प्राप्त कर लेता िै। उसका प्राप्तव्य फल केवल िमको कम वकी आकवषतव करना िै।"[291]

तनराशीयतगधचत्तात्मा त्यक्तसिपगररग्रिः ।

शरीरां केिल ांकम गकुिन्गनाप्नोतत ककस्ल्बिषम् ्॥

(21) कोई इच्छा न रखते िुए, अपने धचत्त और आत्मा को वि में रखते सब प्रकार की सम्पदाओंको त्यागकर जो केवल िरीर द्वारा कम वकरता िै, उसे कोई दोष निीं ंलगता।

---

290 18, 19। साथ िी देखखए 20-6

291 वेदोक्तमेव कुवाणवो तनस्सङ्गोऽवपतवमीश्वरे ।

नैष्कम्यशवसद्धधं ंलभते ेरोचनाथावफलशुरुततः ॥

किंराचाय वऔर मधुसूदन के मतानुसार, 'ारीरं कम'व वि कम वि, जो िरीर को बनाए रखनेके शलए

अपेक्षक्षत ि। वेदान्तदेशिका के मतानुसार यि केवल िरीर द्वारा ककया गया कम'व ि।

पुण्य या पाप का सम्बन्ध बाह्य काय वसे निीिं। जब कोई मनुष्य अपनी वासनाओंऔर आत्म-इच्छा से
मुक्त िो जाता ि तब वि भगवान् की इच्छा को प्रततबबल्म्बत करनेवाला दपणव बन जाता ि। मानवीय आत्मा
दैवीय िल्क्त का िुद्ध माध्यम बन जाती िैं।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्न्द्वातीतो विमत्सरः।
समः शसद्धावशसद्धौ च कृत्वावप न तनबध्यते॥22॥

(22) जो मनुष्य यों िी संयोगवि प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट रिता ि, जो (सुख और दुःख के) द्वन्द्वों से परे पिुंच
चुका ि, जो ईष्याव से मुक्त ि, जो शसद्धध और अशसद्धध (सफलता और ववफलता) में समान रिता ि, वि
कम वकरता िुआ भी उसके बन्धन में निीं पडता।

कम वअपने-आप में बांधनेवाली वस्तु निीं ि। यहद यि बांधता िो, तो िम परमात्मा और संसार के एक

बडे द्वैत में फंस जाते िैं और संसार एक ब्रह्माण्डीय भूल बन जाता ि। यि ब्रह्माण्ड भगवान् का िी एक प्रकट-
रूप ि और बांधनेवाली वस्तु कम वनिीं, अवपतु कम वके प्रतत स्वाथ वकी मनोवृवृत्त ि, जो अज्ञान से उत्पन िोती ि
और ल्जसके कारण िम यि समझनेलगते िैं कक िम इतने सारे अलग-अलग व्यल्क्त िैं, ल्जनकी अपनी ववशिष्ट
रुधचयांऔर अरुधचयाँ िैं।

अब गुरु यि बताना चािता ि कक कताव, कम वऔर कक्रया, ये सब एक िी भातावान् के ववशभन्न प्रकट-रूप िैं
और भगवान् को यज्ञ के रूप में समवपतव ककया तया कम वबन्धनकारी निीं िोता।

यज्ञ और उसका प्रतीकात्मक मूल्य

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कम गसमग्रं प्रविलीयते ॥23॥

(23) ल्जस मनुष्य की आसल्क्तयां समाप्त िो चुकी िैं, जो मुक्त िो चुका ि, ल्जसका मन दृढ़तापूवकव ज्ञान में
ल्स्थत िो गया ि, जो कम वको यज्ञ समझकर करता ि, उसका कम वपूणतवया ववलीन िो जाता ि।

ब्रह्मापणग ंब्रह्मिविब्रह्मगमानौब्रह्मणा िुतम्।
ब्रह्मैि तेन गन्तव्यंब्रह्मकमसगमाधधना ॥24॥

(24) उसके शलए अपणव करने का काय वभी परमात्मा ि, अवपतव की जानेवाली वस्तु भी परमात्मा ि; परमात्मा

द्वारा वि परमात्मा की अल्ग्न में अवपतव की जाती ि◌ै। जो मनुष्य अपनेकायों में परमात्मा का अनुभव करता ि◌ै, वि परमात्मा को ि◌ी प्राप्त करता ि◌ै।

यिां ◌ंवैहदक यज्ञ का ववस्तृतृतर आध्याल्त्मक रूप में तनरूपण ककया गया ि◌ै। यद्यवप यज्ञ करनेवाला कम वअवश्य करता ि◌ै, कफर भी वि उसके द्वारा बंधता निीं ि◌ै'[292], क्योंकक उसके पाधथव जीवन में एक ि◌ाश्वतता की भावना व्याप्त रिती ि◌ै।293

दैवमेवापरे यज्ञं योधगनः पयुपगासते।
ब्रह्माग्निापरे यज्ञांयज्ञनैोपजुसुितत ॥ 25॥

(25) कुछ योगी देवताओं के शलए यज्ञ करते ि◌ैं, जब कक अन्य योगी ब्रह्म की अल्ग्न में यज्ञ द्वारा स्वयंयज्ञ को ि◌ी अवपतव कर देते ि◌ैं।

किंराचाय वने इस श्लोक के उत्तराद्धव में यज्ञ की व्याख्या आत्मा के रूप में की। "अन्य लोग अपने-

आपको आत्मा के रूप में ब्रह्म की अल्ग्न में अवपतव कर देते ि◌ैं।294

जो भगवान् ◌्की ववववध रूपों में कल्पना करते ि◌ैं, वे उनसे कम वकी पववत्र ववधधयों को पूण वकरके अनुकूल फल पाना चािते ि◌ैं, जब कक अन्य लोग स्वयंभगवान् ◌्को ि◌ी अपने सब कम वसमवपतव कर देते ि◌ैं।

श्रोतादीनीस्न्द्रयाण्यन्ये सयांमास्ग्नषु जुसुितत ।
शब्दादीविषयानन्य इस्न्द्रयास्ग्नषु जुसुितत ॥26॥

---

292 श्रीधर से तुलना कील्जए ऱदेव परमेश्वराराधनलक्षणं कम वज्ञानेितुत्वेन बन्धकत्वाभावादकमैव ।

293 तुलना कील्जए, मल्न्तक उत् ◌्तैर। कफट्ज़ ज़ेरल्ड कृत अंग्रेजी अनुवाद ।

294 "तुम सब ि◌ुए ि◌ो और तुमनेदेखा ि◌ै, ककया ि◌ै और सोचा ि◌ै,
तुमने निीं,◌ं लेककन मनैं देखा ि◌ै और म ◌ैंि◌ुआ ि◌ं◌ूू और मनैं ककया ि◌ै...
तीथ-वयात्री, तीथ वयात्रा और माग,व
म ◌ैंस्वयं ◌ंि◌ी था, जो अपनी ओर जा रिा था; और तुम्िारा
आगमन मेरे अपने द्वार पर मेरा ि◌ी आगमन था...
आओ, तुम भटके ि◌ुए कणों, अपने केन्द्र की ओर खखंचं आओ....
ओ ककरणो, जो सुदूरू अन्धकार में भटकती रिी ि◌ो, लौट आओ और वापस अपने सूय वमें ववलीन ि◌ो जाओ।"
- आनन्द के. कुमारस्वामी की पुस्तक, हिन्दूइज़्म एण्ड बुद्धधज्म (1943), पृ.◌ृ 42
नीलकण्ठ का कथन ि◌ै: "सोपाधधकं जीव तनरुपाधधकात्मरूपेण जुह्वतत ।"

(26) कुछ लोग श्रवण इत्याहद इल्न्द्रयों की, संयम की अल्ग्न में आिुतत दे देते िैं। अन्य लोग िदद इत्याहद इल्न्द्रयों के ववषयों की आिुतत इल्न्द्रयों की आग में देते िैं।
यज्ञ के द्वारा, ल्जसकी व्याख्या यिां मानशसक संयम और अनुिासन के रूप में की गई िै, िम यि यल करते िैं कक ज्ञान िमारे सम्पूण वअल्स्तत्व में रम जाए।295 िमारा समूचा अल्स्तत्व समवपतव और पररवततव िो जाता िै। इल्न्द्रयों के ववषयों के समुधचत उपभोग की तुलना एक यज्ञ से की गई िै, ल्जसमें इल्न्द्रयों ।। आत्मसंयम के प्रत्येक रूप को, ल्जसमें िम अिंकारपूण वआनन्द को उच्चतर * ववषय तो िवव (आिुतत दी जाने वाली सामग्री) िैं और इल्न्द्रयां यज्ञ की अतन आन्च के शलए त्याग देते िैं, ल्जसमें िम तनम्नतर मनोवेगों को छोड देते िैं, यज्ञ किा गया िै।

सिाणगीस्न्द्रयकमाणगण प्राणकमाणगण चापरे।
आत्मसयांमयोगासी जुितत ज्ञानदीवपते ॥27॥

(27) कफर कुछ लोग अपनेइल्न्द्रयों के सब कमों को और प्राणिल्क्त के सब कमूँ को आत्मसंयम-रूपी योग की अल्ग्न में समवपतव कर देते िैं, जो (अल्ग्न) ज्ञान द्वारा जलाई जाती िै।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्िाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः सशांशतव्रताः ॥ 28॥

(28) इसी प्रकार कुछ लोग अपनी भौततक सम्पवत्त को या अपनी तपस्या को या अपनेयोगाभ्यास को यज्ञ के रूप में समवपतव कर देते िैं, जब कक कुछ अन्य लोग, ल्जन्िोंने मन को वि में कर शलया िै और कठोर व्रत धारण ककए िैं, अपनेअध्ययन और ज्ञान को यज्ञ के शलए अवपतव कर देते िैं।

अपाने जुसिुतत प्राण ंप्राणेऽपानां तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥29॥

(29) कुछ और भी लोग िैं, जो प्राणायाम में लगे रिते िैं; वे प्राण (बािर तनकलनेवाले श्वास) और अपान (अन्दर आने वाले श्वास) के माग वको रोककर अपान में प्राण की और प्राण में अपान की आिुतत देते िैं।

अपरे तनयतािाराः प्राणान्प्राषेणु ुजुहिुतत।
सिेऽप्येतेयज्ञविदो यज्ञक्षवपतकल्मषाः ॥30॥

---

295 मधुसूदन से तुलना कील्जएधारणाध्यानंसमाधधररततसंयमिददेनोच्यले तथाचिा भगवान् पतचजशलः, तयमेकल संयमः इतत । तल त्पुण्डरीकादौ मनसल्श्चरकालस्थापने धारणा; एवं एकस्य घृतस्य धचत्तस्य भगवदाकारवृवृत्तप्रवािोऽन्तरान्याकारप्रत्ययव्यवहितो ध्यानमः सवथवा ववजातीयप्रत्ययान्तररतः सजातीयप्रत्ययप्रवािः समाधधः ।

(30) कुछ और भी लोग िैं, जो अपने आिार को तनयशमत करके अपने प्राणरूपी-श्वासों में आिुतत देते िैं। ये सबके सब यज्ञ के ज्ञाता िै (ये जानते 5/6 कक यज्ञ क्या िै) और यज्ञ द्वारा उनके पाप नष्ट िो जाते िैं। संयम सब यज्ञों का सार िै, अत: यज्ञ अध्यात्म-ववकास के साधन मानेसकतेिैं।

यज्ञशशष्टामृतभुजो यास्न्त ब्रह्म सनातनम्।्

नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य: कुरुसत्तम ॥ 31॥

(31) जो लोग यज्ञ के बाद बचे िुए पववत्र अन्न (यज्ञ-शेष) को खातेिैं, वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते िैं। िे कुरुओं ंमें श्रेष्ठ (अजुनव), जो व्यस्क्त यज्ञ निींकरता, उसके शलए यि संसार िी निीं ंिै, कफर परलोक का किना िी क्या!

संसार का तनयम यज्ञ िै और जो इसका उल्लंघन करता िै, वि न तो यिांपूणतवा प्राप्त कर सकता िै और

न परलोक में।

एवंबिुववधा यज्ञा ववतता ब्रह्मणो मुखे।

कमजगान्स्द्धि तान्सवानेवंज्ञात्वा ववमोक्ष्यसे ॥32॥

(32) इस प्रकार ब्रह्म के मुख में अनेक प्रकार के यज्ञ फैले पडे िैं (अथात्व ्परम ब्रह्म तक पिुंचने ेके साधन िै) । तू उन सबको कम वसे उत्पन्न िुआ समझ और यि जान लेने के बाद तू मुक्त िो जाएगा।

ज्ञान और कम व

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञ:परांतप।

सवं ंकमाणखखल ंपाथ ज्ञाने पररसमाप्यते ॥33॥

(33) िे शत्रुओंको सताने वाले (अजुनव), भौततक पदाथों द्वारा ककए जानेवाले यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ अधधक अच्छा िै, क्योंकक तनरपवाद रूप से सब कम वज्ञान में जाकर समाप्त िो जाते िैं।

लक्ष्य जीवन देनेवाला ज्ञान िै, जो िमें कम वकी स्वतन्त्रता प्रदान करता िै और कम वके बन्धन से मुस्क्त

हदलाता िै।

तद्विद्धि प्रणणपातेन पररप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यस्न्त ते ज्ञानंज्ञातननस्तत्त्वदशशनग: ॥34॥

भगवद्गीता 156 उस ज्ञान को सववनय, आदर द्वारा, प्रश्नोत्तर द्वारा और सेवा द्वारा प्राप्त) करो। तत्त्वदिी ज्ञानी लोग

उस ज्ञान का उपदेि करेंगे।

(34)

ज्ञानी लोग िमें सत्य का उपदेि तभी करेंगे, जब कक िम उनके पास सेवा की भावना और आदरपूवकव तुर्म् ल्जज्ञासा के साथ जाएं। जब तक िम अपने अन्दर धथत परमात्मा को अनुभव न कर लें, तब तक िमें उन लोगों की सलाि के अनुसार काय वकरना चाहिए, ल्जन्र्िोंनेपरमात्मा का अनुभव प्राप्त कर शलया िै। अब िम केवल िास्त्रों में किी गई या गुरु द्वारा बताई गई बातों को बबना ववचार हिरा, केवल ववश्वास द्वारा मानतेचले जाएं, तो उतने से काम निीं ंचलेगा। तकव को भी सन्तुष्ट ककया जाना चाहिए। "ल्जस व्यल्क्त को स्वयंव्यल्क्तगत रूप िे ज्ञान निींिुआ िै, बल्ल्क ल्जसनेकेवल बिुत-सी बातों को सुन-भर शलया िै, वि िास्त्रों के अथ वको ठीक उसी प्रकार निीं ंसमझ सकता, जैसे चमचेको दाल के स्वाद का पता निीं ंचलता।"[296] िमें गुरु के प्रतत श्रद्धा की स्वतन्त्र परख और पूछताछ के अधधकतम अतनयल्न्त्रत अधधकार के साथ सल्म्मश्रण करना चाहिए। ककसी बाह्य प्राधधकार के प्रतत अन्ध-आज्ञापालक का खण्डन ककया गया िै। आजकल बिुत-से गुरु िैं, जो अपने अनुयातययों से किते िैं कक वे उनके वचनों का बबना ववचारे पालन करें। उनका यि ववश्वास प्रतीत िोता िै कक आत्मा के जीवन के शलए बुद्धध की मृतुयु आवश्यक ित वै। बिुत-से अन्धववश्वासी और सरलधचत्त वाले व्यल्क्त उनकी ओर आकवषतव िोतेिैं, परन्तु उनकी आध्याल्त्मक िल्क्तयों के कारण उतना निीं,ं ल्जतना कक उनके एजेण्टों के प्रचार द्वारा और नवीनता, कुतूिल और उत्तेजना के प्रतत मानवीय दुबुलवता के कारण। यि हिन्दुओंकी उस परम्परा के प्रततकूल िै,

ल्जसमें ल्जज्ञासा अथात्ा ्जांच-पडताल पर, मनन या धचन्तन, या गीता के िददों में, पररप्रश्न पर जोर हदया गया िै।

परन्तु केवल बौद्धधक ज्ञान से भी काम निीं ंचलेगा। बुद्धध िमें केवल परब्रह्म की झलक, केवल आंशिक झांकी हदखा सकती िै; परन्तु यि परब्रह्म की चेतना उत्पन्न निीं ंकर सकती। िमें वैयल्क्तक सम्पकव स्थावपत करने के शलए अपने सम्पूण वआन्तररक अल्स्तत्व को खोल रखना िोगा। शिष्य को आन्तररक माग वपर चलना िोगा। सवोच्च प्रामाखणकता आन्तररक प्रकाि िै, ल्जसका इच्छा के प्रलोभन के साथ घपला निीं ंककया जाना चाहिए।'[297] सेवा और आत्मववलोप के गुणों द्वारा िम बाधा डालनेवाले संस्कार को चूर-चूर कर देते िैं और

---

296 यस्य नाल्स्त तनजा प्रज्ञा केवले तु बिुश्रुतः ।

रुस जानातत िास्त्राथ वदवी सूपरसशमव ॥ - मिाभारत, 2, 55, 1

297 प्लेटो से तुलना कील्जए : "मनुष्य को तब तक धैयपूववकव जुटे रिना चाहिए, जब तक कक उसे दो में से एक वस्तु प्राप्त न िो जाए या तो वि सब वस्तुओं के ववषय में सत्य की स्वयं ंखोज कर ले, या कफर उस सत्य को ककसी अन्य व्यल्क्त से सीख ले; यहद यि असम्भव िो, तो उसे सवोत्तम और अकाव्यतम मानवीय शसद्धान्तों को पकड लेना चाहिए और जीवन-सागर को पार करनेके शलए उन्र्िींको अपना बेडा बना लेना चाहिए।" - फ्रेडो, 85

ज्ञान के आलोक को अपनेतक पिुंचने ेदेते िैं। स्वयंउपलदध ककया गया सत्य गुरु द्वारा सुझाए गए सत्य से शभन्न िोता िै। अन्ततोगत्वा, जो कुछ िास्त्रों में प्रकट ककया गया िै (प्रखणपात-श्रवण), जो कुछ मन द्वारा ववचारा गया िै (परप्रश्न-मनन) और जो कछ सेवा और ध्यान द्वारा आत्मा से अनुभव ककया गया िै (सेवातनहदध्यासन) इन तीनों में ठीक मेल बैठना चाहिए। िमें अतीत के मिान् ्ववचारकों के साथ अपना सम्बन्ध जोडना चाहिए, उसके ववषय में तकव-ववतकव करना चाहिए और अन्तदृवल्ष्ट द्वारा उनमें जो कुछ स्थायी मूल्य की वस्तु िै, उसे हृदयंगम करना चाहिए।

इस श्लोक में यि बताया गया िै कक आध्याल्त्मक जीवन में पिले श्रद्धा आती िै, कफर ज्ञान और उसके बाद अनुभव आता िै।

ल्जन लोगों ने सत्य का अनुभव कर शलया िै, उनसे आिा की जाती िै कक वे िमें माग वहदखलाएंगे। ल्जन्िोंनेतत्त्व के दिनव कर शलए िैं, उनका अपनेअपेक्षाकृत कम भाग्यिाली बन्धुओंके प्रतत कुछ कत्तवव्य िो जाता िै और वे ेउन्िें उस ज्ञान के आलोक को प्राप्त करने ेका माग वहदखाते िैं, ल्जस तक वे स्वयंपिुंच चुके िैं।

ज्ञान की प्रिंसा

यज्ज्ञात्िा न पुनमोिमेंायास्यशस पाण्डि।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यामन्यथो मतय ॥35॥

(35) जब तू ूइस ज्ञान को प्राप्त कर लेगा, तब तू कफर कभी इस 'भ्राल्न्त में निीं ंसब सत्ताओं को पिले अपने अन्दर और कफर मेरे अन्दर ववद्यमान देखेगा।

जब भेद की भावना नष्ट िो जाती िै, तब कम वबन्धनकारी निीं ंबनते, क्योंकक अज्ञान बन्धन का मूल िै और आत्मा ज्ञान प्राप्त करनेके बाद उस अज्ञान से मुक्त िो जाता िै।

अवप चेदशस पापेभ्यः सिेभ्यः पापकृत्तमः ।

सिं ंज्ञानप्लिेनैि िृसूजनांसन्तररष्यशस ॥36॥

(36) चािे तू सब पावपयों से बढ़कर भी पापी क्यो न िो, कफर भी तूकेवल ज्ञान की नाव द्वारा सब पापों के पार पिुंच जाएगा।

यथैधाशांस सशमद्धोऽस्ग्नभस्गमसात्कुरुतेऽजुनग ।

प्लौहटनस से तुलना कील्जए: "वादवववाद द्वाराहम दिनव प्राप्तकरतेिैं। जोलोग देखना चािते िैं, उन्िें िम माग व हदखाते िैं। िमारा अध्यापन एक प्रकार का मागदविनव िै। देखना उसी का काम िोना चाहिए, ल्जसनेइस बात का वरण ककया िै।" - ऐनीड्स, 69, 4

ज्ञानास्ग्नः सिकगमाणगण भस्मसात्कुरुतेतथा37॥

(37) ि अजुनव, ल्जस प्रकार जल उठनेपर आग अपनेईंधन को राख कर देती ि ै, उसी प्रकार ज्ञान की अल्ग्न भी सब कमों को भस्मसात् ्कर देती ि ै।

न हि ज्ञानेन सदृशां पविलशमि विद्यते ।

तत्स्वियांयोगसशांसद्धः कालेनात्मतन विन्दतत ॥38॥

(38) इस पृथ्वी पर ज्ञान के सृदृ पववत वस्तु और कोई निीं ंि ै। जो व्यल्क्त योग द्वारा पूणतवा को प्राप्त ि ो जाता ि ै, वि समय आने पर स्वयं अपने अन्दर ि ी अपनेइस ज्ञान को प्राप्त कर लेता ि ै।

अन्त में आत्मसंयम से यि ज्ञान मनुष्य के मन में प्रकट ि ो जाता ि ै। ज्ञान के शलए श्रद्धा आवश्यक ि ै

श्रद्धिालांलभते ज्ञानांतत्परः सयांतेस्न्द्रयः।

ज्ञान ांलब्िा पराांशास्न्तमधचरेणाधधगच्छतत ॥39॥

(39) उस व्यल्क्त में श्रद्धा ि ै, जो इस (अथात्व ्ज्ञान) को पाने में तत्पर ि ै और ल्जसने अपनी इल्न्द्रयों को वि मुकर शलया ि ै, वि ज्ञान को प्राप्त करता ि ै और ज्ञान को प्राप्त करके वि ि ीघ्र ि ी सवोच्च ि ाल्न्त को प्राप्त करता ि ै।

श्रद्धा : ववश्वास। ज्ञान प्राप्त करने के शलए श्रद्धा आवश्यक ि ै। प्रद अन्धववश्वास निीं ि ै। यि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने ेके शलए मित्वाकांक्षा ि ै। प्र यि ज्ञान के उस अनुभवगम्य आत्म का प्रततबबम्ब ि ै, जो ि मारे अल्स्तत्व के गम्भीरतम स्तरों में तनवास करता ि ै। यहद श्रद्धा ल्स्थर ि ो, तो यि ि में ज्ञान की इ प्राल्प्त तक पिुंचा देती ि ै। ज्ञान परम ज्ञान के रूप में सन्दिें से रहित ि ोता ि ै जब कक बौद्धधक ज्ञान में, ल्जसमें ि म इल्न्द्रयों द्वारा प्रदान की गई जानकारी पर और तकव से तनकले तनष्कषों पर तनभरव रिते ि ैं, सन्दिें और अववश्वास का स्थार रिता ि ै। ज्ञान इन साधनों द्वारा प्राप्त निीं ंि ोता। ि में उसे आन्तररक रूप से अपनेजीवन में लाना ि ोता ि ै और बढ़ते ि ुए उसकी वास्तववकता तक पिुंचना ि ोता ि ै। उस तक पिुंचनेका माग वश्रद्धा और आत्मसंयम में से ि ोकर ि ै।

परांशास्न्तम् ्: सवोच्च ि ाल्न्त। नीलकण्ठ का कथन ि ै कक जब वि कम,व जो चालू ि ो गया था, अपना माग वपूरा कर चुकता ि ै, तब वि आनन्द की सववोच्च अवस्था में पिुंच जाता ि ै।[298]

---

[298] ववदेिकैवल्यम् .्प्रारदधकमसवमाप्तौसत्याम् ्।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च सशांयात्मा विनश्यतत ।

नायांलोकोऽस्स्त न परो न सुखु ांसशांयात्मनः ॥40॥

(40) परन्तु जो मनुष्य अज्ञानी ि, ल्जसमें श्रद्धा निीं ंि और जो संयिालु स्वभाव का ि, वि नष्ट िोकर रिता
िै। संयिालु स्वभाव वाले व्यल्क्त के शलए न तो यि संसार ि और न परलोक, और न उसे सुख िी प्राप्त
िो सकता ि।

मिारे पास जीवन के शलए कोई सकारात्मक आधार िोना चाहिए, एक अचल श्रद्धा, जो जीवन की

कसौटी पर खरी उतरे।

योगसन्ांयस्तकमाणग ांज्ञानसतांछन्नसशांयम् ्।

आत्मिन्तांन कमाणगण तनबधस्न्त धनजांय ॥41॥

(41) िे धनंजय (अजुनव), ल्जसने योग द्वारा सब कमों का त्याग कर हदया ि, ल्जसने ज्ञान द्वारा सब संयिों
को नष्ट कर हदया ि और ल्जसने अपनी आत्मा पर अधधकार कर शलया ि, उसको िम कम-वबन्धन में निीं
डालते।

यिां सच्चे कम,व ज्ञान और आत्म-अनुिासन के पारस्पररक सम्बन्ध को प्रकट ककया गया ि।

i : योगसन्ांयस्तकमाणम् ल्जसने कमों का त्याग हदया ि। इसका अशभप्राय उन लोगों से भी
िो सकता ि, जो परमात्मा की पूजा के साथ- साथ उसकी वविेषता के रूप में समानधचत्तता को ववकशसत कर लेते
िैं और इस बबिार सब कमों को परमात्मा के प्रतत समवपतव कर देते िैं या उन लोगों से, ल्जन्िोंने वास्तववकता
को देखने के शलए अन्तदृवल्ष्ट प्राप्त ि और जो इस प्रकार कामों से अनासक्त िो गए िैं।'[299] - मधुसूदन ।

आत्मिन्तम् ्: ल्जसका अपनी आत्मा पर अधधकार ि। जब वि दूसरों के शलए काम कर रिा िोता ि, तब
भी वि स्वयं अपना आत्म िी रिता ि। दूसरों का भाला करने की अधीर साधना में वि अपना आपा निीं खो
बैठता।

तस्मादज्ञानसभूंतांहृत्स्थांज्ञानाशसनात्मनः।

तछत्त्वनैांसशांयां योगमाततष्ठोवत्तष्ठ भारत ॥42॥

(42) इसशलए िे भारत (अजुनव), ज्ञान की तलवार से अपनेहृदय में ल्स्थत सन्देि को, जो अज्ञान के कारण

299 योगेन भगवदाराधनलक्षणसमत्वबुद्धधरूपेण संन्यस्तातन भगवतत समावपतवातन कमाखवण येन, यद्वा
समाथदविनवलक्षणेन योगेन संन्यस्तातन त्यक्तातन कमाखवण येन, तं योगसंन्यस्तकमाणवम् ्।

उत्पन्न िुआ ि,ै तछन्न-शभन्न करके योग में जुट जा और उठ खडा िो।

यिां ंअजुनव से ज्ञान और एकाग्रता की सिायता से कम वकरने को किा गया िै। उसके हृदय में संिय यि िै कक युद्ध करना अज्ञान की उपज िै या युद्ध से ववरत िो जाना। यि संिय ज्ञान द्वारा नष्ट िो जाएगा, तब उसे पता चल जाएगा कक उसके शलए क्या करना उधचत िै।

इतत ... ज्ञानयोगो नाम चतुथोऽध्यायः ।

यि िै 'हदव्य ज्ञान का योग' नामक चौथा अध्याय ।

कभी-कभी इस अध्याय का नाम 'ज्ञान-कम-वसंन्यास योग' भी किा जाता िै ल्जसका अथ वि ैज्ञान और कम वके (सच्चे) त्याग का योग।

अध्याय 5

सच्चा संन्यास (त्याग)

सांख्य और योग एक िी लक्ष्य तक पिुंचाति ैं

अजुनग उिाच

सन्ांयास ंकमणगा ंकृष्ण पुनयोग ंच शसांशस ।

यच्रेय एतयोरेकां तन्मे ब्रूहि सुतुनस्श्चतम् ्॥1॥

अजुनव ने किा :

िे कृष्ण, तू ूकमों के त्याग की प्रिंसा करता िै और कफर तनःस्वाथ वकम वकी प्रिंसा करता िै। अब मुझे े
(1)
सुतनल्श्चत रूप से बता कक इन दोनों में से कौन-सा अधधक अच्छा िै?

िंकराचाय वका कथन िै कक यिांपर यि जो प्रश्न उठाया गया िै, वि अज्ञानी मनुष्यों के शलए उठाया गया िै, क्योंकक ल्जसने आत्मा को प्राप्त कर शलया िै, उसके शलए और कुछ प्राप्तव्य निीं ंरिता, क्योंकक वि पिले िी सब- कुछ प्राप्त कर चुका िै। 3, 17 में यि किा गया िै कक उसके शलए करने ेको और कोई कत्तव्वय िेष निीं ंरिता। 3, 4 और 4, 6 जैसे स्थानों पर कम वकी पद्धतत को आत्मज्ञान प्राप्त करनेके शलए एक सिायक अंग के रूप में प्रस्तुत ककया गया िै, जब कक 6, 3 में यि किा गया िै कक जो मनुष्य सिी ज्ञान प्राप्त कर चुका िै, उसे कफर कम व करने ेकी कोई आवश्यकता निींरिती। इसके अलावा, 4, 21 में उसके शलए िरीर के तनवािमाल के शलए अपेक्षक्षत

कम वके शसवाय बाकी सब कमों का तनषेध कर हदया गया ि ै। ल्जस व्यल्क्त को आत्मा की सच्ची प्रकृतत का ज्ञान ि ै, उसे 5, 8 में सदा एकाग्रधचत्त से इस बात का ध्यान न करने के शलए कि गया ि ै कक वि 'म ैं नि ीं ि ूँ, जो इस काय वको कर रि ा ि ै। सि तो स्वप्न में भी सोच पाना सम्भव नि ीं ि ै कक ल्जस व्यल्क्त को आत्मा का ज्ञान ि ो गया ि ै, उसे कम वसे कोई वास्ता ि ो सकता कम वसच्चेज्ञान का इतना ववरोधी ि ै और पूणतवया भ्रान्त ज्ञान पर आधाररत ि ै।'[300] इस प्रकार ि ंकराचाय वका कथन ि ै कक अजनव का प्रश्न केवल उन लोगों के ववषय में ि ै, ल्जन्ि ें आत्मा का नि ीं ि ुआ ि ै। अज्ञातनयों के शलए संन्यास की अपेक्षा कम वअधधक अच्छा ि ै।

सारी गीता में लेखक का मन्तव्य यि प्रतीत ि ोता ि ै कक ल्जस कम वका त्याग ककया जाना ि ै, वि केवल स्वाथपूवण वकम वि ै, जो ि में कम वकी श्रृंखला से बचाता ि ै और सारी गततववधध त्याग-योग्य नि ीं ि ै। यि ठीक ि ै कक मिारा उद्वार केवल कमो द्वारा नि ीं ि ो सकता, परन्तु कम-वउद्धारक ज्ञान के ववरोधी नि ीं ि ैं।

श्री भगिानिुाच

सन्ांयासः कमयगोगश्च तनःश्रेयसकरािुभौ ।
तयोस्तु कमसगन्ांयासात्कमयगोगो विशशष्यते ॥2॥

श्री भगवान् ने कि ा :

(2) कमों का संन्यास और उनका तन:स्वाथ वरूप से करना, दोनों ि ी आत्मा की मुल्क्त की ओर ले जानेवाले ि ैं। परन्तु इन दोनों में कमों को त्याग देनेकी अपेक्षा कमों का तन:स्वाथ वरूप से करना अधधक अच्छा ि ै।[301]

सांख्य-पद्धतत में कमों के त्याग की आवश्यकता ि ोती ि ै और योग में सि ी भावना से कम वकरनेपर आग्रि ककया गया ि ै। मूल में पि ुंचकर वे ि ी दोनों एक ि ैं, परन्तु योगमाग विमारे सम्मुख अधधक स्वाभाववक रूप में आता ि ै। दोनों माग वएक-दूसूरे के ववरोधी नि ीं ि ैं। सांख्य में ज्ञान या अन्तदृल्वष्ट पर जोर हदया गया ि ै; योग में संकल्पात्मक प्रयत्न पर बल हदया गया ि ै। इनमें से पिली पद्धतत में ि म ववजातीय तत्त्वों को ववचार द्वारा दूरू टिाकर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करते ि ैं, दूसूरी पद्धतत में ि म उन्ि ें संकल्प द्वारा दूरू ि टा देते ि ैं।

ज्ञेयः स तनत्यसन्यासी यो न द्वेल्ष्ट न काङ्क्षतत ।
तनद्वगिन्द्वो हि मिाबािो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥3॥

(3) जो व्यल्क्त न ककसी वस्तु से घृणा करता ि ै और न ककसी वस्तुकी इच्छा करता ि ै, यि समझना चाहिए

---

300 आत्मतत्वववदःसम्यग्दिनववववरुद्धोशमथ्याज्ञानिेतुकः कमयवोगः स्वप्नेऽवप न संभावतयतुं ि क्यते ि ।
301 देखखए 3,8

कक उसमें सदा संन्यास की भावना भरी में िै; क्योंकक ि मिाबािु (अजुनव), सब द्वन्द्वों से मुक्त िोने के कारण बन्धन से सरलता से छूट जाता िै। कर

तनत्यसांन्यासी : ल्जसमें सदा संन्यास या त्याग की भावना ववद्यमान रिती िै। सच्चा कम वकरने वाला

(कमयवोगी) सच्चा त्यागी (तनत्यसंन्यासी) भी िै, क्योंकक वि काय वअनासक्त भावना से करता िै।'[302]

साख्ंययोगौ पृथृग्बालाः प्रिदन्त न पस्ण्डताः ।

एकमप्यास्स्थतः सम्यगुभुयोविन्गदतेफलम् ॥4॥

(4) संन्यास (सांख्य) और कम वकरने(योग) को पृथक् अज्ञानी लोग बतातेिैं, पल्ण्डत लोग निीं। जो व्यल्क्त इनमें से ककसी एक में भी भलीभांतत जुट जाता िै, वि दोनों का फल पा लेता िै।

इस अध्याय में योग का अथ विै-कमयवोग, और सांख्य का अथ विै-कमों के संन्यास-सहित ज्ञानमाग।व

यत्साख्ंयैः प्राप्यते स्थानांतधौगैरवप गम्यते।

एकां साख्ंयांच योग ंच यः पश्यतत स पश्यतत ॥5॥

(5) कमों का त्याग करने वाले मनुष्य ल्जस ल्स्थतत तक पिुंचतेिैं, कम वकरने वाले लोग भी उसी ल्स्थतत तक पिुंच जाते िैं। जो व्यल्क्त इस बात को देख लेता िै कक संन्यास और कम वदोनों के माग वएक िी िैं, विी (सिी) देखता िै।

अन्यत्र मिाभारत में, िाल्न्तपव व305, 19 ;316,4में शमलता िै।303 सच्चा संन्यासी वि निीं िै, जो पूणतवया तनल्ष्क्रय रिता िै, अवपतु वि िै, ल्जसका कम वअनासल्क्त की भावना से ककया जाता िै। संन्यास एक मानशसक वृवृत्त िै, कम वकी इच्छा को त्याग देना; सच्चा कम वसब इच्छाओं को त्यागकर ककया जानेवाला कम विै।

इन दोनों में कोई ववरोध निीं िै। तुलना कील्जए: "जब ज्ञानी या अब कम वकर रिे िोते िैं, तब िरीर तो (अथात् बाह्य कम)व दोनों एक िी जैसा रिता िै, परन्तु आन्तररक भावना शभन्न िोती िै।304 मिाभारत में किा गया िै कक भाणवत-धम वगुणों की दृल्ष्ट से सांख्य-धम वके बराबर िै।305

सन्ांयासस्तु मिाबािो दुःखमाप्तुमयोगतः ।

---

[302] स कमखवण प्रवृत्तोऽवप तनत्य संन्यासीतत ज्ञेयः । - मधुसूदन ।

[303] .तुलना कील्जए:

यदेव योगाः पश्यल्न्त तत्सांख्यैरैवप दृश्यते ।

एक सांख्यंच योगे च यः पश्यतत स तत्ववववत् ॥

[304] प्रिस्य मूखस्वय च काययवोगे, समत्वमध्येतत तनुन वबुद्धधः । -अववमार ,5, 5

[305] सांख्ययोगेन तुल्यो हि धम वएकान्तसेववतः । िाल्न्तपव व348,71

योगयुक्तोमुतुनब्रह्मनधचरेणाधधगच्छतत॥॥6

(6) िे मिाबािु (अजुनव), संन्यास को बबना योग के प्राप्त कर पाना कहठन िै; जो मुतन योग में (कममवाग वमें) तनष्ठापूवकव लगा िै, वि िीघ्र िी ब्रह्म को प्राप्त कर लेता िै।

योगयुक्तोविशुद्धात्माविस्जतात्मास्जतेस्न्द्रयः ।
सिभूगतूात्मभूतूात्मा कुिन्गनवप न शलप्यते॥7॥

(7) ल्जस व्यल्क्त ने कममवाग वमें प्रशिक्षण पाया िै और ल्जसकी आत्मा पववत्त िै, जो अपनी आत्मा का स्वामी िै और ल्जसने अपनी इल्न्द्रयों को जीत शलया िै, ल्जसकी आत्मा सब प्राखणयों की आत्मा बन गई िै, वि कम वकरता िुआ भी कमों में शलप्त निींिोता।

वि आन्तररक रूप से सब कमों को त्याग देता िै, बाह्य रूप से निीं। िंकराचाय वतक ने माना िै कक इस प्रकार का कम वआत्मज्ञान के साथ पूणतवया संगत िै। भले िी वि संसार की एकता के शलए काय वकरता िै, कफर भी वि कमों के बन्धन में निींफंसता ।306

नैि ककस्ञ्चत्करोमीतत युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।्
पश्यञ्शृण्िन्स्पृशस्ञ्जघ्रन्नश्नन्नाच्छन्स्िपञ्श्िसन् ्॥8॥

(8) जो मनुष्य भगवान के साथ एक िो गया िै और जो तत्त्व को जानता िै वि देखता िुआ, सुनता िुआ, छूता िुआ, सूंघता िुआ, चखता िुआ चलता िुआ, सोता िुआ और सांस लेता िुआ यि समझता िै कक "म ैं कुछ निींकर रिा।"

प्रलपस्न्िसृजन्गृिुन्स्नमषस्न्नशमषन्नवप ।
इस्न्द्रयाणीस्न्द्रयाथेषु ितन्गत इतत धारयन् ्॥9॥

(9) बोलते िुए ववसजनव करते िुए, पकडतेिुए, आंखें खोलते ेऔर बन्द करते िुए वि यि समझता िै कक केवल इल्न्द्रयांइल्न्द्रयों के ववषयों में लगी िुई िै

मिसे अपने अन्दर ववद्यमान आत्मा को अनुभव करनेके शलए किा गया िै, जो िुद्ध और मुक्त िै और प्रकृतत या वस्तुरूपात्मक संसार के उपकरणों से बबलकुल पृथक् िै। अिकार के घटक तत्त्व अस्थायी िैं, एक ऐसा प्रवाि, जो क्षण-क्षण में बदलता िै। आत्मता का शमथ्या रूप भरनेवाले इन पदाथों में कोई अपररवतनवील केन्द्र या अमर नाशभक निींिै।

306 स...लोकसंग्रियकमवकुवन्वनवपनशलप्यते, े कमशवभवध्वयते े।

ब्रह्मण्याधाय कमाणगणसङ्गांत्यक्त्त्िा करोतत यः ।

शलप्यते न स पापेन पद्मपरशमिाम्भसा ॥10॥

(10) जो व्यल्क्त आसल्क्त को त्यागकर अपने कमों को ब्रह्म को समवपतव करके कम वकरता िै, उसे पाप उसी प्रकार स्पि वनिींकरता, जैसे कमल का पत्ता पानी से (अछूता िी रिता िै)।

गीता िमसे कमों का त्याग करने ेको निींकिती, अवपतु ुउर्न्िं भगवान् ्के प्रतत, जो कक एकमात्र अमरता ि, समवपतव करके उर्न्िं करते रिने को किती िै। जब िम सीशमत अिंकार के प्रतत अपनेराग को और उसकी रुधचयों और अरुधचयों को त्याग देते िैं और अपनेकमों को िाश्वत ब्रह्म के प्रतत समवपतव कर देते िैं, तब िमें सच्चा संन्यास प्राप्त िो जाता िै, जो संसार में स्वच्छन्द गततववधध के साथ संगत िै। इस प्रकार का संन्यासी अपनेक्षखणक सीशमत आत्म के शलए काय वनिीं ंकरता, अवपतु ुउस आत्मा के शलए काय वकरता िै, जो िम सबमें ववद्यमान िै।[307]

ब्रह्मण्याधाय कमाखवण । रामानुज ब्रह्म को प्रकृतत का पयावय मानता िै।

कायेन मनसा बुद्ध्या किलैरैरस्न्द्रयैरवप।

योधगनः कम गकुिस्गन्त सङ्गांत्यक्त्त्िात्मिशुद्धये ॥ 11॥

(11) योगी लोग (कमयवोगी) आसल्क्त को त्यागकर आत्मा की िुदुधध के शलए केवल िरीर, मन, बुद्धध या केवल इल्न्द्रयों द्वारा काय वकरते िैं।

युक्तः कमफगल ांत्यक्त्त्िा शास्न्तमाप्नोतत नैस्ष्ठकीम् ्।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो तनबध्यते॥12॥

(12) योग में लगी िुई (या श्रद्धालु) आत्मा कम वके फलों में आसल्क्त को त्यागकर दृढ़ आधार वाली िाल्न्त प्राप्त को करती िै, परन्तु ल्जनकी आत्मा ब्रह्म के साथ एक निींिुई िै, वे इच्छा द्वारा प्ेररत रिते िैं और (कम वके) फल में उनकी आसल्क्त रिती िै और (इसशलए) वे बन्धन में पडे ेरितें।

---

307 इमसनव से तुलना कील्जए :

"ओ धैयिवाली तारो, मुझे ेभी अपना स्वभाव शसखा दो,

तुम जो प्रत्येक रातत में इस प्राचीन आकाि में चढ़ते िो।

और आकाि पर न कोई छाया छोडते िो, न कोई तनिान,

न आयु का कोई धचह्न और न मृत्यु का कोई भय।"

युक्ताः : अथावत् ्कम वके ववधान में लगे िुए।

शास्न्तम् ्: जब परमात्मा की िाल्न्त िमारे ऊपर उतर आती िै, जब ब्रह्मज्ञान िमारे अल्स्तत्व को उस प्रकाि से भर देता िै, जो बोध प्रदान करता िै और िमें रूपान्तररत कर देता िै और पिले जो कुछ अन्धकारमय और अस्पष्ट था, उस सबको स्पष्ट कर देता िै।

प्रबुद्ध आत्मा

सिकगमाणगण मनसा सन्ांयस्यास्ते सुखु ांिशाी ।
निद्वारे पुरे दिी नै िकुन्गन कारयन् ्॥13॥

(13) रीरधारी (आत्मा), ल्जसने मन द्वारा (आन्तररक रूप से) सब कमों का त्याग करके अपनी प्रकृतत को वि में कर शलया िै, न कोई कम वकरता िुआ औ न कोई कम वकरवाता िुआ नौ द्वारों वाले नगर में सुख से तनवास करता िै।

कठोपतनषद् से तुलना कील्जए, 5 11

नौ द्वार ये िैं: दो आंखें, दो कान, दो नथुने, मंुिऔर मलमूल-ववसजनव तथा प्रजनन की दो इल्न्द्रयां।

देखखए श्वेताश्वतर उपतनषद्, 3, 18।

न कतृत्वि ांन कमाणगण लोकस्य सृजतत
प्रभु: । न कमफगलसयीोग स्वभिास्तु
प्रितते ॥14॥

(14) सवोच्च प्रभु आत्मा न तो लोगों को कताव बनाती िै, न वि कम वकरती िै; न वि कमों का उनके फलों के साथ संयोग िी करती िै। यि तो इन वस्तुओं का स्वभाव िी िै, जो इस सबमें प्रवृत्त िोता िै।

प्रभुज्ञाता की सवोच्च आत्मा, वास्तववक आत्मा िै, जो सब अल्स्तत्व वाली वस्तुओंके साथ एकाकार िै।

नादत्ते कस्यधचत्पाप ांन चवै सुकृतांविभु:।
अज्ञानेनावृतांज्ञान ांतेन मुह्यस्न्त जन्तिः ॥15॥

(15) सवव्वयापी आत्मा न तो ककसी का पाप ग्रिण करती िै और न ककसी का पुण्य। ज्ञान अज्ञान द्वारा सब ओर से ढका िुआ िै, इसी कारण प्राणी ककंकतव्वयववमूढ़ िो जाते िैं।

विभुः : सवव्वयापी । प्रत्येक आत्मा एक पृथक् िाश्वत और अपररवतनविील इकाई निीं ंिै। 'ववभुः' का संकेत या तो ज्ञानी मनुष्य की आत्मा की ओर या परम आत्मा की ओर िै, जो अद्वैत वेदान्त में एकरूप िी िै।

अज्ञानेन : अज्ञान द्वारा । अज्ञान के कारण िी िमें यि वव् ्ने लगता िै कक ये वववववध रूप वाली वस्तुएं अल्न्तम िैं।

ज्ञानम् ्: ज्ञान। ज्ञान िी सब पृथकताओंका एकमात्र आधार िै।"[308]

ज्ञानेन. तु तिज्ञान ांयेषाांनाशशतमात्मनः ।

तेषामाहदत्यिज्ज्ञानां प्रकाशयतत तत्परम् ्॥1॥

(16) ककन्तु ल्जन लोगों का अज्ञान ज्ञान द्वारा नष्ट िो जाता िै, उनके शलए ज्ञान सूव वकी भांतत परम आत्मा को प्रकाशित कर देता िै।

तात्परम् ्: परमाथतवत्वम् ्: परम वास्तववकता । - िंकराचाय।व अिकार से अपर ववद्यमान आत्मा पाप

या पुण्य से, सुख या दुःख से अछूती रिती िै। वि िमका साक्षी िै।

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तस्न्नष्ठास्तत्परायणाः ।

गच्छन्त्यपुनरिृवृत्त ांज्ञानतनभूतगकल्मषाः ॥7॥

(17) उसका ववचार करते िुए, अपनी सम्पूण वचेतन सत्ता को उसकी ओर प्रेररत करते िुए, उसे अपना सम्पूण व उद्देश्य बनाते िुए, उसे अपनी भल्क्त का एकमाल लक्ष्य बनातेिुए वे उस दिा तक पिुंच जाते िैं, जिां से वापस निीं ंलौटना िोता; और उनके पाप ज्ञान द्वारा धुलकर सा् िो जाते िैं।

कमों द्वारा तनधारवरत शमथ्या अिकार लुप्त िो जाता िै और जीव परम आत्मा के साथ अपनी एकरूपता को अनुभव कर लेता िै, और उसी केन्द्र से काय वकरने लगता िै।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि िस्स्ततन ।

शुतन चैि श्पाके च पस्ण्डताः समदशशनगः ॥18॥

(18) पल्ण्डत लोग सुशिक्षक्षत और ववनयील ब्राह्मण को, गाय को, िाथी को या कुत्ते या चाण्डाल तक को

308 अक्षानेनावरणववक्षेपिल्क्तमता मायाख्येनानृतेने तमसा ज्ञाने जीवेश्वरजगद्भवभ्रमाधधष्ठानभूतू वतनत्यंस्वप्रकाि सल्च्चदानन्दरूपम् ्अद्ववतीय परमाथसवत्यम् ्। - मधुसूदन ।

समान दृल्ष्ट से देखतिं।

विद्याविनयसम्पन्ने ेः अधधक अध्ययन से अधधक ववनय आती िै। ज्यों- ज्यों िमारा ज्ञान बढ़ता िै, त्यों-त्यों िम चारों ओर से आवृत्त करनेवाले अन्धकार को अधधक और अधधक अनुभव करने लगते िैं। जब िम दीपक जलाने िैं, तभी िमें पता चलता िै कक सब ओर ककतना अंधेरा िै। जो कुछ िम जानते िैं वि उसकी तुलना में लगभग कुछ भी निीं ंिै, जो िम निीं जानते ।'[309] थोडा-सा द्वार िमें कट्टर शसद्धान्तवाद की ओर ले जाता िै, थोडा-सा और ज्ञान िमें प्रश्नात्मकता की ओर, तथा थोडा-सा और अधधक ज्ञान िमें प्राथनवा की ओर ले जाता िै। इसके अततररक्त ववनय इस ज्ञान द्वारा उत्पन्न िोती िै कक िम परमात्मा के प्रेम द्वारा िूँ अल्स्तत्वमय बनिुए िैं। सब कालों के मिान् ्ववचारक परम धाशमकव व्यल्क्त थे।

विनय : नम्रता या ववनम्रता, जो संस्कार या अनिुासन का पररणाम िै। बौद्ध 'शलवपटक' का पिला खण्ड ववनय अथात्व ्अनिुासन किलाता िै। ववनय अशभमान या अिंकार का ववलोम िै। अमानवीय तत्त्वों पर तनभयवता को हृदयंगम कर लेनेसे ब्रह्माण्डीय धमतवनष्ठा उत्पन्न िोती िै। सच्चे ववद्वान् ्लोग ववनम्र िोतिं।

समदशशनगः : समान दृल्ष्ट से देखतिं। िाश्वत तत्त्व सबमें, सब पिुओंमें एक िी जैसा िै। जैसा वि मनुष्यों में, ववद्वान् ्ब्राह्मणों में िै, वैसा िी वि घखणत समझे ेजाने वाले चाण्डालों में िै। ब्रह्म की ज्योतत सब िरीरों में तनवास करती िै और उस पर उन िरीरों के अन्तर का कोई प्रभाव निीं पडता, ल्जन्िंकिक वि आलोककत करती िै।

भगवान् ्की सत्, ् धचत् ्और आनन्द की वविेषेताएं सब ववद्यमान वस्तुओंमें वतमवान िैं और अन्तर केवल उनके नामों और रूपों में अथात्व ्उनके िरीरों में िै।310 जब िम वस्तुओंको उस अल्न्तम वास्तववकता के दृल्ष्टकोण से देखतिं, जो सबमें ववद्यमान िै, तब िम 'समान दृल्ष्ट से देखने लगते िैं।"[311] आधारभूत आत्मा और प्रकृतत का िै िै, आत्मा और िरीर का निीं। के । यि कताव और वस्तु के मध्य अन्तर िै। प्रकतत वस्तु-रूपात्मकता का, ववजातीयता का, तनधारवण-योग्यता का संसार िै। उसमें िमें खतनज पदाथों, पौधों, पिुओं और मनुष्यों की पृथक्ता हदखाई पडती िै, परन्तुउन सबमें एक आन्तररक अवस्तु-रूपात्मक सत्ता ववद्यमान िै । कताव वास्तववकता (ब्रह्म), का उन सबमें तनवास िै। आधारभूत एकरूपता का यि प्रकथन अनुभवशसद्ध

---

309 मिान् ्न्यूटन के अत्यन्त सुपररधचत वाक्य से यि बात स्पष्ट िो जाती िैः "म ैंनिीं जानता कक संसार को म ैंकैसा हदखाई पडता िै परन्तु अपने-आप में तो मुझेऐसा लगता िै कक म ैंसमुद्र के ककनारे खेलतिुए एक बालक की तरि िै, जो जब-तब धचकनेपत्थरों की अपेक्षा अधधक सुन्दर हदखाई पडने वाली कौडडयों को ढूंढनेमें लग जाता िै, जब कक सत्य का वविाल सागर मेरे सामने फैला िुआ िै, ल्जसकी कक अब तक खोज िी निीं ंकी गई िै।" म ैंयिां ंिेनरी एडम्स का एक वाक्य उद्धृत कर देना चािता िंूं: "अन्ततोगत्वा मनुष्य बिुत िी कम जानता िै और िायद ककसी हदन वि अपने अज्ञान के ववषय में इतना काफी कुछ जान जाए कक वि ववनीत िो जाए और प्राथनवा करने लगे।"

310 अल्स्त भातत वप्रय रूपं ंनाम चत्यिपचचकम् ्।
आद्यं ंलयं ंब्रह्मरूपं ंजगद्रूपं ततो द्वयम् ्॥

311 चराचर जगद् ब्रह्मदृष्ट्चैव पश्यल्न्त। - नीलकण्ठ ।

ववववधता के साथ असंगत निीं। िंकराचाय वतक इस बात को स्वीकार ककया िै कक एक िी िाश्वत वास्तववकता अपने-आप को उच्चत और उच्चतर रूपों में अशभव्यल्क्त के उत्तरोत्तर सोपानों द्वारा प्रकट कर रिी िै ।"[312]
अनुभवजन्य ववववधता के कारण वि आधधदैववक वास्तववकता िमारी आंखों से ओझल न िो जानी चाहिए, जो सब प्राखणयों में समान रूप से ववद्यमान िै। यि दृल्ष्टकोण िमें अपने साथी प्राखणयों के प्रतत दया और सिानुभूतत का भाव रखने को प्रेररत करता िै। ज्ञानी लोग सब प्राखणयों में एक परमात्मा का दिनव करते िैं और अपनेअन्दर समधचत्तता के गुण का ववकास करते िैं, जो कक ब्रह्म का गुण िै।

िैइ तैस्जतगः सगो येषांसास्म्ये स्स्थतां मनः ।
तनदोष हि सम ंब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणण ते ेस्स्थताः॥19॥

(19) ल्जनका मन साम्यावस्था में ल्स्थत िो गया िै, उन्िोंने यिीं (पृथ्वी पर िी) सृल्ष्ट (संसार) को जीत शलया िै।

परमात्मा तनदोष और सबमें समान िै। इसशलए ये (व्यल्क्त) परमात्मा में ल्स्थत िैं।

देखखए छान्दोग्य उपतनषद्, 2, 23, 11

मुल्क्त की दिा एक ऐसी दिा िै, ल्जसे िम यिींपृथ्वी पर प्राप्त कर सकतेिैं।

न प्रह्मष्येस्त्प्रयां प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चास्प्रयम् ्।
स्स्थरबुद्धधरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणण स्स्थतः ॥20॥

(20) मनुष्य को चाहिए कक वि वप्रय वस्तु को पाकर आनन्द न मनाए अवप्रय वस्तु को पाकर दुःखी न िो। जो मनुष्य इस प्रकार ल्स्थर। वाला िो जाता िै और ककंकतव्वयववमूढ़ निींिोता, वि ब्रह्म को वाला ब्रह्म में ल्स्थत िो जाता िै।

ब्रह्मणण स्स्थतः : परमात्मा में ल्स्थत। वि उसे पा लेता िै, उस तक पिुुँच जाता िै, उसमें प्रववष्ट िो जाता िै और भलीभांतत उसमें ल्स्थत िो जाता िै।

बाह्यस्पशेष्िसक्तात्मा विन्दत्यात्मतन यत्सुखुम् ्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखुमक्षयमश्नुते॥21॥

(21) जब आत्मा बाह्य स्पिी (ववषयों या वस्तुओं) में आसक्त निींरिती, तब मनुष्य को वि आनन्द िोता िै,

312 एकस्यावपकूटस्थस्यधचत्ततारतम्यात् ्ज्ञानैश्वयाणवाम् ्अशभव्यल्क्तः परेण परेण भूयसी भवतत ब्रिासून का िांकरभाष्य, 1, 3, 30

जो आत्मा में ि ै। ऐसा मनुष्य, ल्जसने ेअपने-आप को परमात्मा (ब्रह्म) के योग में लगाया िुआ ि ै, अक्षय सूत्र का उपयोग करता ि ै।
जो मनुष्य अपने-आप को इल्न्द्रयों के छायाभासों से मुक्त कर चुका ि ै और जो िाश्वत ब्रह्म में जीता ि ै,

वि हदव्य सुख का उपयोग करता ि ै।'[313]

ये हि सस्ांपशजगा भोगा दु:खयोनय एि ते।
आद्यन्तिन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥22॥

(22) (पदाथों के साथ) संस्पि वसे उत्पन्न िोने वाले सुख केवल दु:खों को जन्म देनेवाले ि ैं। ि े कुन्ती के पुल (अजुनव), उनका आरम्भ िोता ि ै और अन्त 'भी िोता ि ै। ज्ञानी मनुष्य को उनमें कोई आनन्द निीं ंआता।

देखखए, 2, 14 पर हटप्पणी ।'[314]

शक्नोर्तिी यः सोढुां प्राक्शरीरविमोक्षणात् ्।
कामक्रोधोद्भिंगि ांस युक्तः स सुखी नरः ॥23॥

(23) जो मनुष्य िरीर त्यास करने ेसे पिले यिी इच्छा और कोच के आविों का प्रततरोध करने ेमें समथ वै, वि योगी ि ै, वि सुखी ि ै।

यि अनासल्क्त, ल्जससे आन्तररक िाल्न्त, स्वतन्त्रता और सुख उत्पन्न िोते● यिां ंपृथ्वी पर भी प्राप्त की जा सकती ि ै; उस समय भी, जब कक िम सिरीर जीवन बबता रि ि ों। मानव-जीवन के मध्य भी आन्तररक िाल्न्त प्राप्त का सीर सकती ि ै।

आन्तररक िाल्न्त

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तयोततरि यः।
स योगी ब्रह्मतनिाणग ांब्रह्मभूतोऽधधगच्छतत ॥24॥

---

313 ब्रदरलॉरेंससेतुलनाकील्जए:"म ैंजानता ि ं ूं कक इसका ठीक-ठीक अभ्यास करने के शलए हृदय को अन्य सब वस्तुओंसे ररक्त िोना चाहिए, क्योंकक परमात्मा केवल हृदय पर अधधकार करना चािता ि ै; और यहद वि हृदय अन्य सब वस्तुओं से ररक्त न ि ो, तो परमात्मा उस पर अधधकार निीं कर सकता; और इसीशलए यहद उस हृदय को परमात्मा के शलए ररक्त न छोड हदया जाए, तो वि उसमें वि काय वनिीं कर सकता, जो कक वि करता।" -हद प्रैल्क्टस ऑफ हद प्रजेण्ट ऑफ गॉड।

314 भागवत से तुलना कील्जए :

सुखस्यानन्तरं दु:खं दु:खस्यानन्तर सुखम्।्

चक्रवत पररवततेव सुखदु:खे तनरन्तरम् ्॥

(24) जो मनुष्य अपनेअन्दर ि◌ी सुख प्राप्त कर लेता ि◌ै, जो अपने अन्दर ि◌ी आनन्द पाता ि◌ै और इसी प्रकार जो अपने अन्दर ि◌ी ज्योतत पा लेता ि◌ै, वि योगी ब्रह्म-रूप ि◌ो जाता ि◌ै और वि भगवान् ◌्के परम आनन्द (ब्रह्म- तनवाणव) को प्राप्त करता ि◌ै।

योगी अपने अन्दर ववद्यमान ि◌ाश्वत ब्रह्म की चेतना के साथ शमलकर एक ि◌ो जाता ि◌ै। अगले श्लोक से यि ध्वतनत ि◌ोता ि◌ै कक यि तनवाणव केवल ि◌ूनूयमान ि◌ो जाना निीं; यि एक ज्ञान और अपने ऊपर अधधकार से पूण वएक सकारात्मक दिा ि◌ै।

लभन्ते ◌ेब्रह्मतनिाणगमृषृयः क्षीणकल्मषा।
तछन्नदै्वधा यतात्मानः सिभूगतूहिते रताः ॥25॥

(25) वेपववत्र मनुष्य, ल्जनके पाप नष्ट ि◌ो गए ि◌ैं और ल्जनके संिय (बैल) तछन्न-शभन्न ि◌ो गए ि◌ैं, ल्जनके मन अनुिाशसत ि◌ैं और जो सब प्राखणयों का भला करने ◌ेमें आनन्द लेते ि◌ैं, वे परमात्मा के परम आनन्द, (ब्रह्म- तनवाणव) को प्राप्त करते ि◌ैं।

सिभूगतहिते ◌ेरताः : जो आत्मा ज्ञान और ि◌ाल्न्त को प्राप्त कर लेती ि◌ै, विी प्ेरेममयी और करुणामयी आत्मा भी ि◌ोती ि◌ै। जो मनुष्य सारे अल्स्तत्व को भगवान् ◌्में देखता ि◌ै, वि पततततों तथा अपराधधयों में भी ब्रह्म को देखता ि◌ै और गम्भीर प्ेरेम और सिानुभूतत के साथ वि उनके पास जाता ि◌ै।

दूसूरों का भला करना उर्न्ें भौततक सुववधाएं प्राप्त कराना या उनके रिन- सिन के स्तर को ऊंचा उठाना निीं ◌ंि◌ै; यि दूसूरों को उनकी सच्ची प्रकृतत को पिचाननेऔर उर्न्ें सच्चा सुख प्राप्त करने ◌ेमें सिायता देना ि◌ै। उस ि◌ाश्वत ब्रह्म का, ल्जसमें िम सब तनवास करते ि◌ैं, धचन्तन अपने साथी-प्राखणयों की सेवा की भावना का उत्सिा और पुल्ष्ट प्रदान करता ि◌ै। सारे काय वभगवान् ◌्के शलए ि◌ैं, जगद्-हिताय कृष्णाय । संसार को जीतने का अथ वपरलोकपरायण ि◌ो जाना निीं ◌ंि◌ै; इसका अथ वसामाल्जक ल्जम्मेदाररयों से बचना निीं।

गीता में धम वके वैयल्क्तक और सामाल्जक, दोनों पक्षों पर जोर हदया गया ि◌ै। वैयल्क्तक रूप से िमें अपने अन्दर ब्रह्म की खोज करनी चाहिए और उसे मानव में रमने देना चाहिए; सामाल्जक दृल्ष्ट से समाज को ब्रह्म की प्रततमा के सम्मुख ववनत ककया जाना चाहिए। व्यल्क्त को अपनी स्वतन्त्रता और ववलक्षणता में पनपना चाहिए और उसे प्रत्येक व्यल्क्त के, यिां ◌ंतक कक क्षुद्रतम व्यल्क्त के गौरव को भी पिचानना चाहिए। मनुष्य को केवल आत्मा के जगत् ◌्तक ऊपर आरोिण निीं करना ि◌ै, अवपतु ◌ुजन्तु-जगत् ◌्तक नीचेभी उतरना ि◌ै।'[315]

कामक्रोधवियुक्तानाांयतीनाांयतचेतसाम् ◌्।

---

315 तुलना कील्जए:

दृल्ष्ट ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं ◌ंजगत्।◌्

अशभतो ब्रह्मतनिाणग ि तर्तेमेहदतात्मनाम् ्26॥

(26) ल्जन तपस्वी आत्माओं ने (यततयों ने) अपने-आप को अच्छा और क्रोध से मुक्त कर शलया िै, ल्जन्िोंने अपनेमन को वि में कर शलया िै और िो म्िोंने आत्मा को जान शलया िै, परमात्मा का परम आनन्द (ब्रह्मर तनवाणव) उनके तनकट िी ववद्यमान रिता िै।

वेआत्मा की चेतना में जीववत रिते िैं। यिांइस संसार में िी आनन्दमय अल्स्तत्व की सम्भावना सूधचत की गई िै।

स्पशान्गकृत्िा बहििाह्गयाश्ांचक्षुश्चैिान्तरे भ्रुिोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्िा नासाभ्यन्तरचाररणी ॥27॥
यतेल्न्द्रयमनोबुद्धधमुतगनमोक्षपरायणः ।
विगते. च्छाभयक्रोधो यः सदा मुकुत एि सः ॥28॥

(27-28) सब बाह्य ववषयों को बािर िी रोककर, दृल्ष्ट को भौंिों के बीच में ल्स्थर करके, नाशसका में चलनेवाले अन्दर जाने वाले और बािर तनकलने वाले श्वासों को समान करके, इल्न्द्रयों, मन और बुद्धध को वि में कर लेने वाला, मोक्ष पानेके शलए कहटबद्ध तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित मुतन सदा मुक्त िी रिता िै।

तुलना कील्जए : "जब मनुष्य अपनेध्यान को दोनों आंखों के बीच मध्य बबन्दु ुपर केल्न्द्रत करता िै, जब ज्योततअपने-आप फूट पडती िै।"[316] यि बुद्धध के साथ संयोग का प्रतीक िै, ल्जससे आध्याल्त्मक ज्ञान प्राप्त िोता िै।

भोक्तारां यज्ञतपसा ांसिलगोकमिेश्िरम् ्।
सुहृदां सिभूगतूाना ांज्ञात्िा मा ांशाल्न्तमृच्छतत ॥29॥

(29) िमुतन यि जानकर कक म ैंसब यज्ञों और तपो को उपभोग करने ेवाला िूं और म ैंसब लोकों का स्वामी िूं और सब प्राखणयों का शमल िूं, िाल्न्त को प्राप्त करता िै।

---

316 दसीक्रेटआॅदगोल्डनफ्लावरववल्िेम् द्वारा सम्पाहदत ।

लोकातीत परमात्मा सारी सल्ष्ट का स्वामी, सब प्राखणयों का शमल बनदा ि ै, जो उनसे ककसी भी प्रततफल की आिा ककए बबना उनका भला करता िै।317 परमात्मा केवल एक दूरूस्थ ववश्वासक निीं, अवपतु घतनष्ठ शमल और सिायक ि ै, जो यहद ि म केवल उस पर भरोसा करें, तो पाप पर ववजय पाने में िमारी सिायता करने के शलए सदा तैयार रिता ि ै। भागवत का कथन ि ै: "ल्जनका ई वप्रय ि ूं, आत्मा ि ूं, पुल ि ूं, शमल ि ूं, सम्बन्धी ि ूं इष्टदेव ि ूं।"318

इतत ... कमसगन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः।

यि ि ै 'कम गके सन्यास का योग' नामक पाचांिा अध्याय।

अध्याय 6
सच्चा योग

संन्यास और कम वएक ि ैं

श्रीभगिानिुाच

317 सवप्रवाखणनां ंप्रत्युपकारतनपेक्षतया उपकाररणाम्। ् िंकराचाय।व साथ िी देखखए गीता पर िंकराचाय।व की टीका 9.18

318 येषामिं वप्रय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुिदो दैवशमष्टम्। ् - 3, 25, 38

अनाधश्रत: कमफगल ांकाय गकम गकरोतत य: ।
स सन्ांयासी च योगी च न तनरस्ग्नन गचाकक्रय: ॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

जो मनुष्य कमफवल की इच्छा न करता िुआ उस काम को करता रिता िै, जो उसे करना चाहिए, वि
(1) संन्यासी िै, वि योगी िै; वि संन्यासी निीं िै, जो यज्ञ की अल्ग्न जलाना बन्द कर देता िै और कोई धाशमकव कक्रयाएं निीं ंकरता।

यिां ंपर गुरु इस बात पर जोर देता िै कक संन्यास या कम-वत्याग का बाह्य क्रमों से बिुत थोडा सम्बन्ध ि। यि तो एक आन्तररक वृवृत्त िै। संन्यासी बननेके शलए यज्ञ की अल्ग्न और दैतनक ववधध-ववधानों को त्यागना आवश्यक निीं। त्याग की भावना के बबना इन ववधध-ववधानों से ववरत िोना व्यथ वि।

परन्तु िंकराचाय वने 'केवलम्'् िदद का प्रयोग करके यि अथ वतनकाला िै कक "केवल विी संन्यासी निीं, जो यज्ञ की अल्ग्न निीं जलाता या धाशमकव कक्रयाओं को निीं ंकरता।" यि मूल पाठ के साथ न्याय निींजान पडता।

य ांसन्ांयासशमतत प्रािुयोग ांत ांविद्धध पाण्डि ।
न ह्यसन्ांयस्तसकांल्पो योगी भितत कश्चन ॥2॥

(2) ल्जसे वे ेलोग संन्यास किते िैं, िे पाण्डव (अजुनव), उसे तू अनुिाशसत कम व(योग) समझ, क्योंकक कोई भी व्यल्क्त अपने(स्वाथ वके) संकल को त्यागे बबना योगी निींबन सकता।

सन्ांयास : त्याग। यि फल के शलए आन्तररक इच्छा के बबना आवश्यक कमों को करते रिने ेका नाम िै।

यिी सच्चा योग िै, अपने ऊपर पक्का तनयन्त्रार और अपनेऊपर पूण वअधधकार।

इस श्लोक में किा गया िै कक अनुिाशसत कम व(योग) ठीक वैसा िी अच्छा। िै, जैसा कक कमों का त्याग (संन्यास) ।

माग वऔर लक्ष्य

आरुरुक्षोमुनेगयोग कम गकारणमुच्युयते।
योगारूढ़स्य तस्यै शम: कारणमुच्युयते ॥3॥

(3) जो मुतन योग तक पिुंचना चािता िै, उसके शलए कम वको साधन बताया गया िै; जब वि योग को प्राप्त

कर लेता िै, तब िम अथाल्ि्िाल्न्त को साधन बताया गया िै।

जब िम मोक्ष पाने के मित्त्वाकांक्षी िोतेिैं (साधनावस्था), तब आन्तररक त्याग की सिी भावना से ककया गया काय विमारे शलए सियक िोता िै। जब िम एक बार अपने ऊपर अधधकार प्राप्त कर लेते िैं (शसद्धावस्था), तब िम ककसी लक्ष्य को प्राप्त करने के शलए कम विनींकरते, अवपतु परमात्मा की चेतना में ल्स्थत िोने ेके कारण कम वकरते रिते िैं। कम वद्वारा िम आत्मतनयन्त्रण प्राप्त करने के शलए संघष वकरते िैं; जब आत्मतनयन्त्रण प्राप्त िो जाता िै, तब िमें िाल्न्त शमल जाती िै। इसका यि अशभप्राय निींिैकक तब िम सारे कमों को छोड देते िैं। 6, 1 में यि किा गया िै कक सच्चा योगी वि िै, जो कम वकरता िै, और वि निीं, जो कम वको त्याग देता िै। 'राम' का अथ वकम वसे तनवृवृत्त निीं िै। यि ज्ञान का कारण निीं िो सकता, क्योंकक शसद्ध मुतन तो पिले िी ज्ञान प्राप्त कर चुका िोता िै। 5, 12 में किा गया िै कक योगी कम वके फलों को त्याग करने ेके द्वारा पूण वप्रिान्तता को प्राप्त करता िै। वि पूण विाल्न्त के साथ कम वकरता िै। वि स्वतःस्फूत वप्राणिल्क्त से लबालब भरा िोता िै और अपनी अक्षय िल्क्त से उत्पन्न िोने वाली उदारता के साथ काय वकरता रिता िै।

यदा हि नेल्न्द्रयाथेषु ुन कमस्वनुषज्जते।
सिसगकांल्पसन्ां्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥4॥

(4) जब कोई मनुष्य इल्न्द्रयों के ववषयों में या कमों में आसक्त निीं िोता और सारे संकल्पों का त्याग कर देता िै, तब किा जाता िै कक उसने योग को प्राप्त कर शलया िै (योगारूढ़)।

ल्पसन्ां्यसिसगकांसने सब संकल्पों को त्याग हदया िै। िमें अपनी रुधचयों अरुधचयों को छोड देना िोगा, अपने-आप को भुला देना िोगा और अपने-आप बेलाग देना िोगा। सब संकल्पों के त्याग द्वारा, अिंकार के दमन द्वारा, अपनी इच्छा कई पूणतवया भगवान् ्के प्रतत समवपतव कर देनेके द्वारा साधक के मन की दिा ऐसे रूप अववकशसत िो जाती िै, जो ब्रह्म के तुल्य िोती िै। कुछ सीमा तक वि उस अववल्च्छन्न कालातीत चेतना का अंग बन जाता िै, ल्जसे जानने का वि अशभलाषी िोता िै।

मुक्त आत्मा इच्छा या आसल्क्त के बबना, उस अिंकारपूण वसंकल्प के बबना काय वकरती िै, ल्जससे इच्छाएं उत्पन्न िोती िैं।'[319] मनु का कथन िै कक सब इच्छाएं संकल्प से उत्पन्न िोती िैं। मिाभारत में किा गया िै: "ओ इच्छाओ, म ैंतुम्िारे मूल को जानता िंू। तुम्िारा जन्म संकल्प या ववचार से िोता िै। म ैंतुम्िारे ववषय म ें निीं सोचूंगा और तुम्िारा अल्स्तत्व िी समाप्त िो जाएगा।"[320]

उद्धरेदात्मनात्मानां नात्मानमिसादयेत्।्

---

319 संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसम्भवः । 2,3

320 काम, जानाशमतेमूल, संकंल्पात्वंहि जायसे ।

न त्वां संकंल्पतयष्याशम तेन मे न भववष्यशस ॥ - िाल्न्तपवव 17, 25

आत्मै ह्यात्मनो बन्धुरात्मै ररपुरात्मनः ॥5॥

मनुष्य को चाहिए कक वि अपने-आप को ऊपर उठाए, वि अपने-आप को नीचे न धगराए, क्योंकक आत्मा ि◌ी अपनी शमल ि◌ै और केवल आत्मा ि◌ी अपनी ि◌ तु ि◌ै।

धम्मपद से तुलना कील्जए : "आत्मा आत्मा का स्वामी ि◌ै।"[321] "आत्मा ि◌ी आत्मा का लक्ष्य ि◌ै। "[322]

भगवान् ◌् ि◌मारे अन्दर ि◌ै। वि ि◌मारे दैतनक जीवन की साधारण व्यहित चेतना के नीचेववद्यमान चेतना ि◌ै, परन्तु वि उसके समान निीं ि◌ै। प्र । प्रकार की दृल्ष्ट से दोनों परस्पर शभन्न ि◌ैं, ि◌ालांकक वि व्यल्क्त भगवान् ◌् को प्राप्त कर सकता ि◌ै. जो अपने जीवन को बचाने के शलए जीवन को गंवाने तक के शलए तैयार ि◌ो। ि◌म अधधकांति: अपनेअन्दर ववद्यमान आत्मा से अनजान रिते ि◌ैं, क्योंकक ि◌मारा ध्यान उन ववषयों की ओर लगा रिता ि◌ै, ल्जन्िें ि◌म पसन्द या नापसन्द करते ि◌ैं। ि◌में अपनेअन्दर ववद्यमान ब्रह्म को अनुभव करने ◌े के शलए इन ववषयों से दूर ि◌टना ि◌ोगा। यहद ि◌म अपनेसाधारण जीवन की तनरुद्देश्यता, असंगतत और बीभत्सता को अनुभव न करें, तो सच्ची आत्मा ि◌मारे साधारण जीवन की ि◌लुबन जाती ि◌ै। सावभवौम आत्मा और व्यल्क्तक आत्मा एक-दूसूरे की प्रततद्वन्द्वी निीं ◌ंि◌ै। सावभवौम आत्मा व्यल्क्तक आत्मा की शमत्र भी बन सकती ि◌ै और ि◌तुभी। यहद ि◌म अपनी क्षुद्र लालसाओं और तृषूणाओं ◌ंको वि में कर लें, यहद ि◌म अपने स्वाथपूवण वसंकल्प का प्रयोग न करें, तो ि◌म सावभवौम आत्मा के शलए माध्यम बन जाते ि◌ैं। यहद ि◌मारे मनोवेग ि◌मारे वि में ि◌ैं और यहद ि◌मारी व्यल्क्तक आत्मा अपने-आप को सावभवौम आत्मा के प्रतत समवपतव कर देती ि◌ै, तो सावभवौम आत्मा ि◌मारी मागदविकव और गुरु बन जाती ि◌ै।323 ि◌ममें से ि◌र एक को ऊंचा उठनेया नीचा धगरने की स्वतन्त्रता ि◌ै। और ि◌मारा भववष्य ि◌मारे अपनेिाथों में ि◌ै।

---

321 अत्ता हि अत्तनो नाथो। 160

322 अत्ता हि अत्तनो गतत। 380

323 बोएमी का कथन ि◌ै: "सच किा जाए तो तेरी अपनी इच्छा, श्रवण और दिनव के अततररक्त और कोई वस्तु तुझे ◌े उससे दूर निीं रखती और न तुझे ◌े इस अतील्न्द्रय ल्स्थतत तक आने से ि◌ी रोकती ि◌ै। और क्योंकक तू उसके ववरुद्ध इतना प्रयत्न करता ि◌ै, ल्जससे कक स्वयं ◌ंतेरा अवतार ि◌ुआ ि◌ै और ल्जससे तू तनकला ि◌ै, इसीशलए तू स्वयं ◌ंअपनी इच्छा से अपने-आप को परमात्मा की इच्छा से दूर रखता ि◌ै और अपने दिनव को भगवान् ◌् के दिनव से दूर रखता ि◌ै।" सेण्ट जॉन ऑफ हद क्रोस किता ि◌ै: "आत्मा अपनी ि◌ल्क्त के भरोसे रिकर ल्जतना ि◌ी अधधक शसरजी गई वस्तुओंकी ओर अपनी आदत और रुझान के कारण झुकुती चली जाती ि◌ै, उतनी ि◌ी कम इस संयोग की ओर उसकी प्रववृत्त ि◌ोती ि◌ै, क्योंकक वि अपने-आप को पूणतवया परमात्मा के ि◌ाथों में निीं ◌ंछोड देती, ल्जससे कक वि उसेअधधक ववकशसत रूप में रूपान्तररत कर सके।" जामी ने अपनी पुस्तक 'लवाइि' में शलखा ि◌ै:

मेरे हृदय को पववत्र बनाओ, मेरी आत्मा को भूलों से मुकुत करो।

मेरे भाग्य में तनत्य आंसू ◌ूऔर िौ शलख दो।

और मुझेमेरे आत्म से दूर अपनी रि पर ले चलो,

ल्जससे अपने आत्म को गंवाकर म ◌ैंतुम तक पिुंच सकूं।

- हिनफील्डकृत अंग्रेजी अनुवाद ।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैात्मना स्जतः ।

अनात्मनस्तु ुशलुत्वेु ितेतात्मैे शलुित् ्॥6॥

(6) ल्जसने ेअपनी (तनम्नतर) आत्मा को अपनी (उच्चतर) आत्मा से जीत शलया िै, उसकी आत्मा शमल िोती ै। परन्तु ल्जसने अपनी (उच्चतर) आत्मा को पा निीं शलया िै, उसकी आत्मा िी ित्रु ुके समान त्रितुापूण वव्यविार करती िै।

मिसे किा गया िै कक िम अपनी उच्चतर आत्मा द्वारा तनम्नतर आत्मा को इि में करें। यिां प्रकृतत के तनयततवाद को प्रकृतत का तनयन्त्रण करने की िल्क्त द्वारा पररशमत कर हदया गया िै। तनम्नतर आत्मा का नाि निीं ंककया जाना िै। यहद उसे वि में रखा जाए, तो उसका उपयोग सिायक के रूप में ककया जा सकता िै।

स्जतात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।

शीतोष्णसुखुदुःुखेषु तथा मानापमानयोः ॥7॥

(7) जब मनुष्य अपनी (तनम्नतर) आत्मा को जीत लेता िै और आत्म-प्रभुत्व की िाल्न्त प्राप्त कर लेता िै, तब उसकी सवोच्च आत्मा सदा समाधध में ल्स्थत रिती िै; वि सदी और गमी में, सुख और दुःख में, मान और अपमान में िान्त रिती िै।

यि उस व्यल्क्त के परम आनन्द की दिा िै, ल्जसनेसावभवौम आत्मा के साथ अपनी एकता स्थावपत कर ली िै। वि ल्जतात्मा िै, ल्जसकी कक िाल्न्त और धृतृत द्वन्द्वों के कष्टों से ववक्षुदध निीं ंिोती।

परमात्मा समाहितः : िंकराचाय वका कथन िै कक सवोच्च आत्मा अपने- आप को स्वयंअपनी िी आत्मा समझने ेलगती िै।'[324] िरीर में ववद्यमान आत्मा सामान्यतया संसार के द्वन्द्वों में, सदी और गमी में, दुःख और सुख में मग्न रिती िै; परन्तु जब यि इल्न्द्रयों को वि में कर लेती िै और संसार पर काबू पा लेती िै, तब आत्मा स्वतन्त्र िो जाती िै। सवोच्च आत्मा िरीर में ववद्यमान आत्मा से शभन्न निीं ै। जब आत्मा प्रकृतत के गुणों से बंधी रिती िै, तब वि क्षेत्र किलाती िै; जब वि उनके बन्धन से छूट जाती िै, तब विी आत्मा परमात्मा किलानेलगती िै।325' यि तनल्श्चत िी अद्वैत वेदान्त का मत िै।

जो लोग इस मत के ववरोधी िैं, वे परमात्मा िदद को 'परम्' ् और 'आला' इन दो िददों में ववभक्त कर लेते ैं और 'परम्' ् को 'समाहितः 'कक्रया का कक्रया. ववििेषण मानते िैं।

---

324 साक्षाद् आत्मभावेन वततेव ।

325 मिाभारत सेतुलना कील्जए :

आत्मा क्षेतेज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्रकृतेगुणैवः ।

तैरेव तु ववतनमुक्वतः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ - िाल्न्तपवव187, 24

रामानुज 'परम्'् को कक्रया-वविेषण मानता िै और उसके अनुसार अथ वि कक आत्मा को अतत भव्य रूप में प्राप्त ककया जाता िै।

श्रीधर का कथन िै कक इस प्रकार का व्यल्क्त अपनी आत्मा में समाधधमग्न िो जाता िै।326 आनन्दधगरर का मत िै कक इस प्रकार के व्यल्क्त की आत्मा पूरी तरि समाधध में लीन िो जाती िै।327

सम् ्आहित : समानता की ओर दृढ़तापूवकव प्ेररत। परन्तु यि व्याख्या साधारणतया की जानेवाली व्याख्या निीं िै।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विस्जतेस्न्द्रयः।
युक्त इत्युच्यते ेयोगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥8॥

(8) ल्जस योगी की आत्मा ज्ञान और ववज्ञान द्वारा तृप्त िो गई िै और जो कूटस्थ (अपररवतनविील) िै और ल्जसने ेअपनी इल्न्द्रयो को जीत शलया िै, ल्जसके शलए शमट्टी का ढेला, पत्थर या स्वण-वखण्ड एक जैसे िैं, उसे योगयुक्त किा जाता िै।

ज्ञानविज्ञान : 3, 41 की हटप्पणी देखखए।

कूटस्थ : इसका िददाथ वि ऊंचेस्थान पर बैठा िुआ, अववचल, पररवतनविीन, िढ़, ल्स्थर या प्रिान्त।

योगी को युक्त या योगमग्न तब किा जाता िै, जब वि संसार के पररवतनवों से ऊपर भगवान् ्में ध्यान लगाए िुए िो। इस प्रकार का योगी प्रतीततयों के पीछे ववद्यमान वास्तववकता (ब्रह्म) के ज्ञान और अनुभव से तृप्त िुआ रिता िै। वि संसार की वस्तुओं और घटनाओं से अक्षुदध रिता िै और इसीशलए इस पररवतनविील संसार की घटनाओं के प्रतत समधचत्त किा जाता िै।

सुहृस्न्मत्रायुदासीनमध्यस्थद्वेष्यिबन्धुषु।
साधुष्विप च पापेषु समबुद्धधविशगशष्यते ॥9॥

(9) जो व्यल्क्त शमत्रों, साधथयों और िलुओंमें, तटस्थों और तनष्पक्षों में, द्वेष रखनेवालों और सम्बल्न्धयों में, सन्तों में और पावपयों में एक-सा भाव रखता िै, उसे अधधक अच्छा माना जाता िै।

---

326 समाहित:आत्मतनष्ट:भवतत।

327 सम्–आ-हित। तुलना कील्जए : समाधध: ल्जतात्मन: तनववकवारधचत्तस्य आत्मा, धचत्तं ंपरम् ्उत्कषणव समाहित: समाधध प्राप्त: भवतत।

एक पाठ-भेद िै- 'ववशिष्यते' के स्थान पर 'ववमुच्यते'े। गीता पर िंकराचाय वकी टीका ।

इस योग को कैसे प्राप्त ककया जाए?

रीर और मन की सतत जागरूकता आवश्यक िै

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रिशस स्स्थतः ।

एकाकी यतधचत्तात्मा तनराशीरपररग्रिः ॥10॥

(10) योगी को चाहिए कक वि एकान्त में अकेला बैठकर अपने-आप को वि में रखते िुए, सब इच्छाओंसे मुक्त िोकर और ककसी भी पररग्रि (धन-सम्पवत्त या साज-सामान) की कामना न करते िुए अपनेमन को (परमात्मा में) एकाग्र करे।

यिां ंपर गुरु ने पतंजशल के योगसूल की पद्धतत पर मन को अनुिासन में रखनेकी ववधध का ववकास ककया िै। इसका मुख्य प्रयोजन िमारी चेतना को उसकी साधारण जागृतावस्था से उच्चतर स्तर तक इतना उठाते जाना िै कक वि भगवान् ्के साथ संयुक्त िो जाए। साधारणतया मानवीय मन बहिमुखव िोता िै। जीवन के याल्न्त्रक और भौततक पक्षों में तल्लीन रिनेके फलस्वरूप चेतना एक ववसन्तुशलत दिा में पिुंच जाती िै। योग चेतना के आन्तररक संसार की खोज का प्रयत्न करता िै और चेतन तथा अवचेतन को संगहठत करने में सिायता करता िै।

मिें अपनेमन को ऐल्न्द्रय इच्छाओं से िून्य कर देना चाहिए, बाह्य ववषयो से अपनेध्यान को िटा लेना चाहिए और उसे उपासना के लक्ष्य में लगा देना चाहिए।328' देखखए भगवद्गीता, 18, 72, जिां गुरु ने अजुनव से पूछा िै कक क्या उसने उसके उपदेि को एकाग्रधचत्त िोकर सुना िै; एकाग्रेण चेतसा । क्योंकक इसका उद्देश्य दृल्ष्ट की पववनता प्राप्त करना िै, इसशलए इसके तनशमत्त मन की सूक्ष्मता और ल्स्थरता की आवश्यकता िोती िै। मोिक ायाका और **तथा** ववस्तार िी िमारे अल्स्तत्व की चरमसीमा निीं ंिै। अपनेमन की सब ऊजाओं उन्िें एकाग्र करके िम सम्बन्ध के स्तर को अनुभवगम्य से वास्तववक तक, अवलोकन से दिनव तक ऊपर उठाते िैं और आत्मा को अपने सम्पूण वअल्स्तत्व पर अधधकार कर लेनेदेते िैं। बुक ऑफ प्रॉवज व(किावतों की पुस्तक) में यि किा गया िै कक "मनुष्य की आत्मा परमात्मा की मिाल िै।" मनुष्य के आन्तररकतम अल्स्तत्व में ऐसी कोई वस्तु िै, ल्जसे परमात्मा दीपशिखा के रूप में जला सकता िै।

सततम् ्: तनरन्तर । अभ्यास तनरन्तर ककया जाना चाहिए। कभी-कभी बीच-बीच में योगाभ्यास करने लगनेका कोई लाभ निीं ंिै। उच्चतर और तीव्रतर प्रकार की चेतना ववकशसत करनेके शलए एक अववराम सृजृनात्मक प्रयत्न की आवश्यकता िै।

328 यिविल्स्थततैल्जसेबापिमीनेकल्पना के चक्र को रोक देना और आत्मधचन्तन से ववरत िो जाना' किा िै।

रिशस : एकान्त में। साधक को कोई ऐसा िान्त स्थान चुनना चाहिए, जिां ंका प्राकृततक वातावरण ीान्न्तदायक िो; जैसे नदी का ककनारा या पवतव का शिखर, जो िमारे हृदय और मन को ऊंचा उठाए। इस संसार में, जो हदनोहदन अधधकाधधक कोलािलपूण विोता जा रिा िै, सभ्य मनुष्य का यि कत्तवव्य िै कक यि ववचारपूण व ीान्न्त के शलए कुछ थोडे-से क्षण तनकाले। तुलना कीन्जए: "जब तूप्राथनवा करने ेलगे, तब अपनी कोठरी में घुस जा और दरवाजा बन्द कर ले।"[329] िोने ेएकान्त स्थान में चले जाना चाहिए और बाह्य ववक्षेपकारी वस्तुओंको दूरू कर देना चाहिए। ओररगैन द्वारा शलखखत आहद-तपल्स्वयों के वणनव से तुलना कीन्जए: "वे मरुभूशम में तनवास करते थे,े जिांवायुअधधक िुद्ध थी, आकाि अधधक खुला था और परमात्मा अधधक तनकट था।"

एकाकी : अकेला। गुरु इस बात पर आग्रि करता िै कक उस िल्के-से दबाव को अनुभव करनेके शलए, उस ीान्त स्वर को सुनने ेके शलए साधक को अकेला िोना चाहिए।

यतधचत्तात्मा : आत्मविी। उसे उते्तेल्जत, परेिान या धचल्न्तत निीं ंिोना चाहिए। परमात्मा के सम्मुख ीान्त रिना सीखने का अथ विै तनयन्त्रण और अनुिासन का जीवन । िंकराचाय वऔर श्रीधर के मतानुसार यिां 'आत्मा' िदद का प्रयोग दिे या िरीर के अथ वमें ककया गया िै। अपनेदैतनक कागज-पत्नों या व्यवसाय की पत्रावशलयों को साथ लेकर उपासना की कोठरी में घुसने ेका कोई लाभ निीं ंिै। यहद िम उनके कागज-पत्तों को बािर छोड जाएं और दरवाजों और खखडककयों को बन्द कर लें, तब भी िो सकता िै कक िम अपनी धचन्ताओं और परेिातनयों के कारण अिान्त रिें। विंककसी प्रकार की अिाल्न्त या क्षोभ निीं िोना चाहिए। ववचारों द्वारा िम बुद्धध को प्रभाववत करते िैं; मौन द्वारा िम अल्स्तत्व की गिराइयों वाली तिों को स्पि वकरते िैं। यहद हृदय में परमात्मा को प्रततबबल्म्बत िोना िो, तो हृदय को स्वच्छ िोना चाहिए, क्योंकक परमात्मा का दिनव और ज्ञान केवल पववत्र हृदय द्वारा िी िोता िै। िमें गम्भीर तनस्तदधता में बैठ जाना चाहिए और प्रकाि की प्रतीक्षा करनी चाहिए। "अपने वपता (परमात्मा) के साथ, जो कक एकान्त में िै, आलाप करो।" परमात्मा की सजीव ववद्यमानता मौन में प्रत्येक आत्मा में उसकी क्षमता और आवश्यकता के अनुसार प्रकट िोती िै।330

प्लेटो का मैनो इस प्रश्न से िुरू िोता िै: "सुकरात, क्या तुम मुझेयि बता सकते िो कक क्या धम व शसखाया जाता िै?" इसके उत्तर में सुकरात किता िै कक धम वशसखाया निींजाता, अवपतु उसे 'अनुस्मरण ककया जाता िै।' अनुस्मरक करना व्यल्क्त के अपनेआत्म को एक जगि केल्न्द्रत करना और अपनी आल्याचे वापस लौट आना िै। 'अनुस्मरण' के शसद्धान्त से यि ध्वतनत िोता िै कक प्रत्येक व्यल्क्त को खोज अपनेअन्दर करनी चाहिए। वि अपना केन्द्र स्वयंिै और सत्य स्वयंउसके अन्दर ववद्यमान िै। आवश्यकता इस बात की िै कक उसमें उस सत्य को पाने का संकल्प और धैय विो। गुरु का काम शिक्षा देना निीं,ं अवपतु शिष्य को अपने-आप को

---

329 मैथ्यू 6, 6

330 वड्सववथ वके इस वक्तव्य सेतुलना कीन्जए कक "कववता का जन्म प्रिान्तता में अनुस्मरण ककए गए मनोवेगों से िोता िै।" ररल्के ने अपने लैटस वटू ए यंग पोइट' में किा िै: "मैं तुम्िें इसके शसवाय कोई और सलाि निीं दे सकता कक तुम अपने अन्दर िी वापस लौट आओ और उन गिराइयों की छानबीन करो, ल्जनसे तुम्िारा जीवन उद्भूत िुआ िै।"

वि में करने में सियायता देना ि ै। सच्चा उत्तर स्वयं प्रश्नकताव के अन्दर ि ी ववद्यमान ि ोता ि ै; केवल उससे वि उत्तर हदलवाया जाना ि ोता ि ै। प्रत्येक व्यल्क्त सत्य को जानता ि ोता ि ै और वि वस्तु-रूपात्मक जगत् ्के प्रतत अपनेलगाव के कारण उसे खो बैठता ि ै। वस्तु-रूपात्मक जगत् ्के साथ अपने- आप को एक समझने ेके कारण मि अपनी वास्तववक प्रकृतत से बिार तनकल जाते ि ैं या उसके प्रतत ववजातीय बन जाते ि ैं। बाह्य जगत् ्में खोए रिने ेके कारण ि म गम्भीरताओं से दूरू रिते ि ैं। वस्तु-रूपात्मक ि ारीररक और मानशसक जगत् ्से ऊपर उठकर मि स्वतन्त्रता के जगत् ्में पिुंच जाते ि ैं।

तनराशी : इच्छाओं से रहित । दैतनक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में धचन्ता, धन कमाने और उसके व्यय करने ेकी धचन्ता ि मारे ध्यान को ववचशलत करती ि ै और ि में आल्त्मक जीवन से दूरू ले जाती ि ै। इसशलए ि मसे कि ा गया ि ै कक ि म इच्छाओंसे और उनके कारण उत्पन्न ि ोने वाली धचन्ताओं से, लोभ और भय से दूरू रिें। साधक को चाहिए कक वि अपने-आप को इन मानशसक बेडडयों से मुक्त कर ले और धचत्त के सब ववक्षेपों और संस्कारों से अपने-आप को पृथक् कर ले। उसे सब मानशसक रुधचयों, सिक्त उद्देश्यों और पररवार तथा शमलों के प्रतत पे्रम से अपना सारा लगाव छोड देना चाहिए। उसे ककसी वस्तु की प्रत्यािा न करनी चाहिए और न ककसी वस्तु के शलए आग्रि ि ी करना चाहिए।

अपररग्रि : वस्तुओंका संग्रि करने ेकी इच्छा से मुक्त। यि इच्छारहितता एक आध्याल्त्मक दिा ि ै, भौततक दिा निीं। ि में वस्तुओंपर अधधकार करने ेकी लालसा को वि में करना चाहिए और अपने-आप को सम्बल्न्धत पदाथ वके मिो से मुक्त करना चाहिए। । यहद कोई मनुष्य अिान्त ि ो और आत्मकेल्न्द्रत ि ो, पहद वि अिंकार, आत्मसंकल्प या वस्तुओंपर अधधकार की भावना से ि ाशसत तो वि परमात्मा की आवाज को निीं सुन सकता। गीता बताती ि ै कक सच्चा आनन्द आन्तररक आनन्द ि ै। | यि ि मारा ध्यान ि मारे जीवन की उस पद्धतत की और मानवीय चेतना की उस दिा की ओर आकवषतव करती ि ै, जो जीवन के अगर पन्तजात पर तनभरव निीं ंि ै। ि रीर मर सकता ि ै और संसार नष्ट ि ो सकता परन्तु आल्त्मक जीवन धचरस्थायी ि ै। ि मारा खज़ाना संसार की नश्वर वस्तुएं निीं ि, अवपतु उस परमात्मा का ज्ञान और उसके प्रतत पे्रम ि ै, जो अनश्वर ि ै। ि में आत्मा की आनन्ददायक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के शलए वस्तुओं की दासता से बिार तनकलना ि ोगा।'[331]

शुचौ देशे प्रततष्ठाप्य स्स्थरमासनमात्मनः ।

नात्युस्च्रतत ंनाततनीचां चैलैास्जनकुशोत्तरम् ्॥11॥

---

[331] ईसानेएक धनी आदमीसे जो कि ता था कक वि सब धाशमकव आदेिों का पालन करता ि ै, कि ा था : "कफर भी एक चीज़ तुममें निीं ंि ै: जो कुछ तुम्ि ारे पास ि ै, उस सबको बेच दो और गरीबों में बांट दो और इससेतुम्ि ें स्वग वमें खजाना शमल जाएगा।" जब ईसा नेदेखा कक यि सुनकर वि धनी आदमी बिुत उदास ि ो गया, तो उसने कि ा: "ल्जनके पास धन ि ै उनके शलए परमात्मा के राज्य में प्रवेि कर पाना बिुत कहठन ि ोगा; क्योंकक ऊट के शलए सुई के छेद में से गुज़र जाना आसान ि ै, ककन्तु धनी व्यल्क्त के शलए परमात्मा के राज्य में प्रवेि कर पाना मुल्श्कल ि ै।" - सेण्ट ल्यूक, 18, 18-23

(11) ककसी स्वच्छ स्थान में ऐसी जगि अपना आसन बबछाकर, जो न बिुत ऊंची िो और न बिुत नीची िो, और उस पर कुिा घास, मृगृचम वऔर वस्त्र एक के ऊपर एक बबछाकर;

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतधचत्तेस्न्द्रयसकक्रयः ।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥12॥

(12) उस आसन पर बैठकर, अपनेमन को एकाग्र करके और धचत्त और इल्न्द्रयों को वि में करके योगी को आत्मा की िुद्धध के शलए योगाभ्यास करना चाहिए।

यिां योग का अशभप्राय ध्यानयोग िै। सत्य को हृदयंगम करने के शलए मनुष्य को व्याविाररक हितों के चंगुल से मुक्त ककया जाना चाहिए, जो (व्याविाररक हित) िमारे बाह्य और भौततक जीवन के साथ बंधे िुए िैं। इसके शलए मुख्य िैत वअनुिाशसत अनासल्क्त िै। िमें वस्तुओंको उस रूप में देखने की िल्क्त का ववकास करना चाहिए, ल्जस रूप में स्वतन्त्र अववकृत वृद्धध उन्िें देखती। इसके शलए िमें अपने-आप को माग वमें से िटा लेना िोगा। जब पाइथागोरस से प्रश्न ककया गया कक वि अपने-आप को दाितवनक क्यों कित िै तो उसनेउत्तर में आगे शलखी किानी सुनाई। उसने मानव-जीवन की तुलना ओशलल्म्पया के मिान् उत्सव के साथ की, जिां पर सारी दुतुनया रंग-बबरंगी भीड बनकर आती िै। कुछ लोग विां मेले में व्यापार करने और आनन्द लेनेआते िैं, कुछ लोग प्रततयोधगताओं में पुरस्कार जीतने की इच्छा से आते िैं और कुछ लोग कैवल दिकव िोतेिैं; और ये अल्न्तम प्रकार के लोग दाितवनक िैं। ये अपने-आप को तात्काशलक समस्याओं और व्याविाररक आवश्यकताओं की जल्दबाजी से मुक्त रखते िैं। िंकराचाय वने इस बात को स्पष्ट ककया िै कक ज्ञान के साधक के शलए आधारभूत योग्यताएं, तनत्य और अतनत्य के बीच भेद करने की क्षमता, कम वके पाधथव और हदव्य फलों का उपभोग करने से ववरल्क्त, आत्मसंयम और आल्त्मक स्वतन्त्रता के शलए तीव्र इच्छा िै।'[332] प्लेटो की दृल्ष्ट में सम्पूण वज्ञान का उद्देश्य 'शिव' (गुड) के ववचार के मनन तक अपने-आप को ऊचा उठाना िै; यि शिव या अच्छाई अल्स्तत्व और ज्ञान का समान रूप से स्रोत िै और आदि वदाितवनक वि िै, ल्जसका लक्ष्य पूण वरूप से ल्जए गए जीवन के अन्त में "सदा िाल्न्त का, अन्तमुखव प्रिान्तता का, एकान्त और असम्पृक्तता का ऐसा जीवन िोता िै, ल्जसमें भुलाए जा चुके संसार द्वारा इस संसार को भूलकर वि 'शिव' (अच्छाई) के एकान्त धचन्तन को िी अपना स्वग वसमझता िै। वि और केवल वि िी वास्तववक जीवन िै।" वे लोग धन्य िैं, ल्जनके हृदय पववत्र िैं, क्योंकक वे परमात्मा को देखेंगे। हृदय का यि पववत्रीकरण, धचत्तिुद्धध, अनुिासन की वस्तु िै। प्लौहटनस िमें बतलाता िै कक "ज्ञान ककसी प्राणी में अचंचलता की ल्स्थतत िै।"[333]

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्स्थरः।

सम्प्रेक्ष्य नाशसकाग्रं स्वं हदशश्चानिलोकयन् ॥13॥

[332] तनत्यातनत्यवस्तुवववेकइिामुत्रफलभोगववरागः िमाहदसाधनसम्पत् मुमुक्षुत्वम्।
[333] ऐनीड्स, 4, 4, 12

(13) निरीर, शसर और गदवन को सीधा और ल्स्थर रखते िुए, नासाग्र पर दृल्ष्ट जमाकर, अन्य ककसी भी हदिा में न देखते िुए (आंखों को इधर- उधर बबना भटकनेहदए);
यिां ंपर आसन का उल्लेख ककया गया िै। पतंजशल ने बताया िै कक आसन ल्स्थर और सुखद िोना चाहिए, ल्जससे मन के एकाय िोने ेमें सियता शमले। उधचत आसन से िरीर को िाल्न्त शमलती िै। यहद िरीर में परमात्मा की सजीव प्रततमा की प्रततष्ठा की जानी िै, तो िरीर को स्वच्छ रखा जाना चाहिए।

सम्प्रेक्ष्य नाशसकाग्रम् ः दृल्ष्ट को नाशसका के अग्रभाग पर ल्स्थर ककया जाना चाहिए। चंचल दृल्ष्ट एकाग्रता में सियक निीं ंिोती।

प्रशान्तात्मा विगतभीब्रह्मचाररखते स्स्थतः ।

मनः सयांम्य मस्च्चत्तो युक्त आसीत मत्परः ॥14॥

(14) प्रिान्त मन वाला और तनभयव, ब्रह्मचय व्रत का पालन करता िुआ वि अपनेमन को मेरी ओर मोडकर और केवल मुझमें ध्यान लगाकर संयत िोकर बैठ जाए।

ब्रह्मचाररव्रते स्स्थतः : ब्रह्मचय वके व्रत में दृढ़ । योग के साधक को यौन मनोवेगों पर तनयन्त्रण रखना चाहिए। हिन्दू–परम्परा िुरू से िी ब्रह्मचय वपर बिुत ज़ोर देती आई िै। प्रश्नोपतनषद् में वपप्पलाद ल्जज्ञासुओंसे एक वष वतक और ब्रह्मचय वव्रत का पालन करने ेको किता िै, ल्जसके बाद वि उन्िें उच्चतम ज्ञान में दीक्षक्षत करने े का वचन देता िै। छान्दोग्य उपतनषद् में ब्रह्मा ने इन्द्र को ब्रह्म का ज्ञान उससे एक सौ एक वष वतक ब्रह्मचय वका पालन करवाने के बाद हदया था। ब्रह्मचय वकी पररभाषा करते िुए किा गया िै कक यि मन, वाणी और कम वद्वारा सब दिाओं; सब स्थानों और सब कालों में मैथुनों का पररत्याग िै।'[334] किा जाता िै कक देवताओं ने ब्रह्मचय वऔर तप के द्वारा मृतूयु को जीत शलया था ।"[335] ज्ञानसंकशलनी तन्त्र में शिव किता िै कक सच्चा तप ब्रह्मचय वै और जो तनरन्तर इसका पालन करता िै, वि मनुष्य निीं, ं देवता िै।336 ब्रह्मचय वका अशभकर रुपल्स्वयों का-सा

---

334 याज्ञवल्क्य शलखता िै':
कमणवा मनसा वाचा सवावस्थासु सवदवा।
सवलव मैथैुनत्यागो ब्रह्मचय वप्रचक्षते
335 ब्रह्मचयेण तपसा देवा मृतूयुमुपाघ्नत । - अथववेद ।
336 न तपस्तप इत्युिुः ब्रह्मचय वतपोत्तमम् ्।
ऊध्वरेवताभवेद्यस्तुसदेवो न तु मानवः ॥
ब्रह्मचय-वपालन की कहठनाई अनेक ऋवषयों के जीवन में स्पष्ट की गई िै। सेण्ट ऑगस्टाइन प्राथनवा ककया करता था: "मुझे े ब्रह्मचय वऔर इल्न्द्रय-तनग्रि प्रदान करो, केवल अभी निीं।" - कन्फैेन्स, खण्ड 8, अध्याय 71 रोहदन ने इस सारी वस्तु को एक मूततकवलाकृतत में प्रस्तुत ककया िै, ल्जसका नाम 'िाश्वत प्रततमा' (ऐटनलव आइडल) िै। इसमें एक स्त्री घुटनों के बल बैठी ी। वि पीछे की ओर झुकी िुई िै, परन्तु उसका िरीर आगे की ओर बढ़ा िुआ िै, और उसकी बािें ढीली-ढाली झूलू री िै। वि

अववववाहित जीवन निीं,ं अवपतु इसका अशभप्राय संयम िै। हिन्दू–परम्परा में यि जोर देकर किा गया िै कक जो गृिस्थ अपने यौन जीवन को तनयल्न्त्रत रखता िै, वि उतना िी सच्चा ब्रह्मचारी िै, ल्जतना कक वि, जो यौन सम्बन्ध से सदा दूरू रिता िै। ब्रह्मचारी रिने ेका अथ वइल्न्द्रयों को तनजीव कर देना और हृदय की मांग को अस्वीकार कर देना निीं िै।337

योग के अभ्यास के शलए बताए गए गुणों की तुलना सुसमाचार (इंजील) के दररद्रता, ब्रह्मचय वऔर आज्ञापालन के उन आदिेों के साथ की जा सकती िै, ल्जनके द्वारा िम संसार, िरीर और िैतान पर ववजय प्राप्त करते िैं।

सब ववचारों को तनश्चल कर देनेकी नकारात्मक प्रकक्रया का एक सकारात्मक पक्ष भी िै, और वि िै आत्मा में एकाग्रता। योगाभ्यास में ईश्वरप्रखणधान को भी एक उपाय बताया गया िै। मन ल्स्थर िो जाता िै, परन्तु वि ररक्त निीं रिता, क्योंकक वि भगवान् ्में एकाग्र रिता िै, मल्च्चत्तः मत्परः । केवल विी लोग वास्तववक (ब्रह्म) को देख सकतेिैं, ल्जनकी दृल्ष्ट एकाग्र िो। आल्त्मक जीवन कोई प्राथनवा या याचना निीं ंिै। यि तो प्रभूत भल्क्त, मौन उपासना िै। यि आत्मा की आन्तररकतम गिराइयों तक, जो व्यल्क्तक आत्मा को सीधा ब्रह्म-तत्त्व से सम्बल्न्धत करती िै, पिुंचने ेके शलए चेतना का द्वार िै। जो इस कला को सीखतेिैं, उनके शलए ककसी बाह्य सिायता, ककसी धमशवसद्धान्त में ववश्वास या ककसी कमकवाण्ड में भाग लेनेकी आवश्यकता निीं रिती। उन्िें सृजृनात्मक दृल्ष्ट प्राप्त िो जाती िै, क्योंकक वे अनासल्क्त के साथ तल्लीनता का शमश्रण करते िैं। वे संसार में कम वकरते िैं, परन्तु उनकी वासनािूून्य आत्मा की प्रिान्तता अक्षुदध रिती िै। उनकी तुलना सरोवर के कमल से की जाती िै, जो कक तूफान में भी अकल्म्पत िी बना रिता िै।

युञ्जन्निे ंसदात्मानां योगी तनयतमानसः ।

िाल्न्तांतनिाणगपरमांमत्सस्ांथामधधगच्छतत ॥15॥

(15) इस प्रकार वि योगी, ल्जसने ेअपनेमन को वि में कर शलया िै, सदा योग में लगा रिकर िाल्न्त और उस परम तनवावण को प्राप्त करता िै, जो मेरे अन्दर ववद्यमान िै।

अपनेउरोजोंके बीच में एक पुरुष के दहढ़यल मुखुको संभाल रिी िै जो उसके आशलंगन कोचाटुकाररतापूण वलालसा से उसके सम्मुख घुटनों के बल बैठा िुआ िै। िजारों में मुल्श्कल से कोई एक आदमी ऐसा िोगा, जो अपनी प्ेरेमपाल स्त्री को पाने के शलए अपने सब आदिेों, अपनी उच्चतम दृल्ष्ट और उस प्रत्येक वस्तु को, जो उसके शलए परमात्मा का प्रतततनधधत्व करती िै, त्याग न दे। अनेक समकालीन लोगों की सम्मतत में ब्रह्मचय-वपालन एक ऐसी दिा िै, जो उतनी िी स्वाथपूवण वि, ल्जतनी कक नीरस। उनकी दृल्ष्ट में ब्रह्मचय वपर हिन्दुओंद्वारा हदया गया इतना जोर कुछ बेतुका और अततरल्जत-सा प्रतीत िो सकता िै।

337 'भायाव गच्छन् ्ब्रह्मचारी ऋतौ भवतत वै द्ववजः। - मिाभारत। साथ िी देखखए मनु।

हिन्दू–परम्परा में अिल्या, सीता, मन्दोदरी, द्रौपदी और तारा सतीत्व की आदि वमानी जाती िै, मिापततव्रता। उन्िें पंचकन्या भी किा जाता िै। टॉमस िाडीमिसे किता िै कक िम टैस को एक पववत्र स्त्री समझें। ब्रह्मचय वमन की एक दिा िै।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्स्त न चैकान्तमनश्नतः ।

न चाततस्प्निशीलस्य जाग्रतो नै चाजुनग ॥16॥

(16) वस्तुत: योग उसके शलए निीं ंिै, जो बिुत अधधक खाता िै, और न उसके शलए, जो बबलकुल िी निीं खाता। िे अजुनव, यि. उसके शलए भी निीं ंिै, जो बिुत अधधक सोता िै या बिुत अधधक जागता रिता िै।

मिें पिववक लालसाओं से मुक्त िोना िोगा; सब वस्तुओं में अतत से बचना िोगा। इसकी तुलना बौद्धों के मध्यम माग वसे और अरस्तू के सुनिले मध्यम माग वसे कील्जए।

युक्तािारविारस्य युक्तचेष्टस्य कमसुग।ु

युक्तस्प्निाबोधस्य योगो भितत दु:खिा ॥ 17॥

(17)जो व्यल्क्त पररशमत मात्रा में आिार और विार करने वाला िै अपनी चेष्टाओं को तनयम में रखा िुआ िै, ल्जसकी तनद्रा और जागरण पूण वक तनयशमत िैं, उसमें एक ऐसा अनुिासन (योग) आ जाता िै, जो सब दु:खों का नाि कर देता िै।

यिां ंल्जस बात की सलाि दी गई िै, वि कमों से पूण वतनवृवृत्त निीं ंिै। अवपतु कमों का संयम िै। जब जीव आत्मा में ल्स्थत िो जाता िै, तब वि एक क अनुभवातीत और सावभवौम चेतना में तनवास करता िै और उसी केन्द्र से काय वकरता िै।

पूण वयोगी

यदा वितनयत ंधचत्तमात्मन्यिेवातततष्ठते ।

तनःस्पृि: सिकगामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ 18॥

(18)जब धचत्त सब लालसाओं से रहित िोकर और अनुिाशसत िोकर केवल आत्मा में िी ल्स्थत िो जाता िै, तब वि समस्वरता को प्राप्त िुआ (योग में लीन) किलाता िै।

सत्य के दिनव के शलए अिंकार का पूण ववववलोप आवश्यक िै। यहद सत्य को जानना िो, तो वैयल्क्तकता का प्रत्येक धचह्न लुप्त िो जाना चाहिए। िमारे सब संस्कारों और स्वभाव की वविेषेताओं का तनमूलव िो जाना चाहिए।

इन श्लोकों में गुरु ने वि प्रकक्रया बताई िै, ल्जसके द्वारा साधक मूलभूत आत्मा का अनुभव प्राप्त कर सकता िै। बाह्य या आन्तररक संसार के साधारण अनुभव में िरीर के साथ संयुक्त आत्मा ताल्त्वक वववववध-रूपता में डूबी रिती िै और इसके कारण आवरण में ढकी रिती िै। िमें सबसे पिले आत्मा को प्रत्येक ववशिष्ट

गततववधध से िूनूय करना चाहिए, उसे प्रत्येक मूतत,व प्रत्येक ववशिष्ट कल्पना और मन की प्रत्येक पृथक् कक्रया से नूिय करना चाहिए। यि एक नकारात्मक प्रकक्रया िै। यि समझा जा सकता िै कक अपनी चेतना को प्रत्येक मूतत व से रहित करने के बाद िम एक ववुिद्ध और सरल िून्यता तक पिुंच जाते िैं। गुरु यि बतलाता िै कक यि नकारात्मक प्रकक्रया ववुिद्ध आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के शलए उस परम उल्लासमय दिनव को पानेके शलए अपनाई जाती िै। मौन को बनाया जाता िै और यि िूनूय इस देखने में नकारात्मक प्रतीत िोने ेवाले, तीव्र रूप से सप्राण रिस्यमय ध्यान द्वारा भर जाता िै. ल्जसमें आत्मा की राततयों का तनाव भी तनहित िै। यि एक ऐसा अनुभव िै, जो सारे ज्ञान से ऊपर िै क्योंकक आत्मा कोई ऐसा ववषय निीं, ल्जसे ककसी धारणा द्वारा व्यक्त ककया जा सके, या ल्जसे मन के सम्मुख ककसी ववषय-वस्तु ुके रूप में प्रस्तुत ककया जा िके। यि एक ऐसी कतात्वमकता (कतृत्वव) िै, जो ककसी प्रकार अशभव्यक्त निीं जा सकती।

यथा दीपो तनिातस्थो नेङ्गते ेसोपमा स्मृता ।
योधगनो यतधचत्तस्य युजतो योगमात्मनः ॥19॥

(19) ल्जस प्रकार वायुिीन स्थान में रखा िुआ दीपक कांपता निीं िै, वि िी उस योगी की उपमा माना गया ि, ल्जसने धचत्त को वि में कर शलया िै और जो आत्मा के साथ संयोग का (या अपने-आप को अनुिासन में रखनेका) अभ्यास कर रिा िै।

योगी का धचत्त आत्मा में लीन रिता िै। उडती झलकों या क्षखणक दिनवों का आत्मा के अन्तदविनव के साथ घपला निींककया जाना चाहिए। आत्मा का अन्तदविनव सब भ्रमों या मिों के प्रतत एकमात्त सुरक्षा िै।

यरोपरमतेधचत्त ांतनरुद्धां योगसेिया ।
यत्न चैात्मनात्मानांपश्यन्नात्मतन तुष्यतत ॥ 20॥

(20) ल्जसमें पिुंचकर एकाग्रता के अभ्यास द्वारा वि में ककया गया धचत्त िान्त िो जाता िै और ल्जसमें वि आत्मा के द्वारा आत्मा को देखता िै और आत्मा में आनन्द प्राप्त करता िै;

सुखुमात्यस्न्तकां यत्तद्दुधिधग्राह्यमतीस्न्द्रयम् ्।
वेत्ति यत्न न चैायां स्स्थतश्चलतत तत्त्तिः ॥21॥

(21) ल्जसमें वि बुद्धध द्वारा ग्रिण ककए जाने वाले और अतील्न्द्रय परम आनन्द को प्राप्त करता िै और ल्जसमें ल्स्थत िोकर वि कभी तत्व से ववचशलत निीं ंिोता;

देखखए कठोपतनषद् 3, 121 जिां ंएक ओर भगवान् ्इल्न्द्रयों द्वारा िोने ेवाले ज्ञान से परे िै, विांवि तकव द्वारा ग्राह्य भी िै; उस तकव द्वारा निीं, जो इल्न्द्रयों द्वारा दी गई जानकारी से सम्बल्न्धत िै और उनके आधार पर धारणाएं बनाता िै; अवपतु उस तकव द्वारा, जो कक अपने िी अधधकार से काय वकरता िै। जब वि ऐसा करता िै, तब उसे वस्तुओं का ज्ञान अप्रत्यक्ष रूप से, इल्न्द्रयों के माध्यम द्वारा या उन पर आधाररत सम्बन्धों के माध्यम द्वारा निीं िोता, अवपतु उनके साथ एकाकार िो जाने के द्वारा िोता िै। सारा सच्चा ज्ञान एकात्मीकरण द्वारा प्राप्त िोने वाला ज्ञान िै।'[338] भौततक सम्पकव या मानशसक प्रतीकों द्वारा ज्ञान प्राप्त िोने ेवाला िमारा ज्ञान अप्रत्यक्ष और आनुमातनक िोता िै। धम वपरमात्मा को धचन्तन द्वारा हृदयंगम करना िै।

य ंलब्ध्वा चापरं लाभं मन्यतेनाधधकं ततः।
यस्स्मस्न्स्थतो न दुःखेन गुरुणावप विचाल्यते ॥22॥

(22) ल्जसे प्राप्त करके वि समझता िै कक इससे बडा और कोई लाभ निीं ंिै और ल्जसमें ल्स्थत िोने ेपर वि बडे ेदुःख से भी ववचशलत निींिोता;

त ंविद्याद्दुःखसयोगवियोग योगसंज्ञितम्।्
स तनश्चयेन योक्तव्यो योगोऽतनविण्णचेतसा ॥23॥

(23) उसको योग नामक वस्तु समझना चाहिए, जो दुःखों के साथ संयोग से अलग िो जाना िै। इस योग का अभ्यास दृढ़ संकल्प और अनुद्ववग्न धचत्त से ककया जाना चाहिए।

10 से 22 तक के श्लोकों में मुल्क्त को दृल्ष्ट में रखते िुए मन को अपनेलक्ष्य पर तीव्रता से एकाग्र करने की शिक्षा दी गई िै। यि मुक्त आत्मा का उसकी अपनी परमता और एकान्त में ववश्राम िै। आत्मा आत्मा में िी आनन्द अनुभव करती िै। यि सांख्य पुरुष का कैवल्य िै, यद्यवप गीता में इसे परमात्मा के परमानन्द के साथ एकरूप कर हदया गया िै।

अतनविण्णचेतसा : तनवेदरहितेन चेतसा । - िंकराचाय।व िमें योग का या भावी दुःखों के ववचार से उद्भुत प्रयत्न की शिधथलता से िून्य िोकर करना चाहिए।

सकांल्पप्रभिान्कामास्ांत्यक्त्िा सिानगशेषतः ।
मनसैिेस्न्द्रयग्राम ंवितनयम्य समन्ततः ॥24॥

---

338 मधुसूदननेयिश्लोकउद्धृतककयाै:
समाधधतनधतवमलस्य चेतसो तनवेशितस्यात्मतन यत्सुखं भवेत्।्
न िक्यतेवणतवयतुं धगरा तदा स्वयं ंतदन्तःकरणेन गृह्यते े॥

(24) तनरपवाद रूप से (स्वाथपूवण)व संकल्प से उत्पन्न िुई सब इच्छाओं का पररत्याग करके और सब इल्न्द्रयों को सब ओर से मन द्वारा वि में करते िुए;

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतृतगृिीतया ।
आत्मसस्ंथां मनः कृत्िा न ककांधचदवप धचन्तयेत्् ्॥

(25) वि ल्स्थरता द्वारा तनयल्न्त्रत बुद्धध से और मन को आत्मा में ल्स्थर करके धीरे-धीरे प्रिान्तता को प्राप्त करे

और वि (अन्य) ककसी वस्तु का भी ववचार न करे।

यतो यतो तनश्चरतत मनश्चञ्चलमस्स्थरम् ्।
ततस्ततो तनयम्यैतदात्मन्येि विशां नयेत् ्॥27॥

(26) चंचल और अल्स्थर मन ल्जस-ल्जस ओर भी भागने लगे, वि उसे काबू में करे और कफर केवल आत्मा के वि में वापस ले आए।'

प्रशान्तमनसं ह्येनं योधगनं सुखमुत्तमम् ्।
उपैतत शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ्॥27॥

(27) सवोत्तम सुख उस योगी को प्राप्त िोता िै, ल्जसका मन िान्त िै, ल्जसके आवेि (रजोगुण) िान्त िो गए िैं, जो तनष्पाप िै और जो परमात्मा के साथ एक िो गया िै।

ब्रह्मभूतम् ्: परमात्मा के साथ एकाकार। िम जो कुछ देखते िैं, भृगीकीटन्याय से विी बन जाते िैं। जैसे अंजनिारी भौरे से डरकर भौरे के ववषय में इतनी तीने सोचनेलगती िै कक वि स्वयंिी भौंरा बन जाती िै, उसी प्रकार उपासक अपनी उपासना के उद्देश्य (उपास्य) के साथ एकाकार िो जाता िै।

ब्रह्मत्वंप्राप्तम् ्। श्रीधर[339]

प्रगतत िरीर, प्राण और मन को ढांचा पूण वि‍ो जाता िै, तब ज्योतत तनबाधव रूप से दमकनेर िुद्ध करने का िी नाम िै िै। जब यि लगती िै।

---

[339] नीलकण्ठकामत िैककयिसम्प्रज्ञात समाधध की िी एक दिा िै और वि योगभाष्य को उद्धृत करता िै : यस्त्वेकाने चेतशस सद्भुतुम् ्अथ वप्रद्योतयतत कमबवन्धनातन श्लथयाव तनरोधम् ्अशभमुखीकरोतत क्षक्षणोतत च क्लेिान् ्स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते।

युजन्नेि ◌ांसदात्मानां योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसस्‌ांपशमगत्यन्त ◌ांसुखुमश्नुते॥28॥

(28) इस प्रकार वि योगी, ल्जसने ◌ेसब पापों को दूरू कर हदया ि◌ै, आला सदा योग में लगाता ि◌ुआ सरलता से ब्रह्म के संस्पि वसे ि◌ोने ◌ेवाले परम सुख का अनुभव करता ि◌ै।

ब्रह्मसस्‌ांपशम् ◌्: ब्रह्म के साथ सम्पकव। इसके बाद परमात्मा केवल एक ककंवदन्ती, एक अस्पष्ट-सी मित्त्वाकांक्षा, ि◌षे निींरिता, अवपतु एक सुसाए वास्तववकता बन जाता ि◌ै, ल्जसके ि◌म वास्तववक सम्पकव में आ जाते ि◌ैं। चम वतकव का ववषय निीं, अवपतु एक अनुभवशसद्ध सत्य ि◌ै। यिां ◌ंबुद्धध की गुंजाइि ि◌ै और वि इस तथ्य की तकवसंगत व्याख्या प्रस्तुत कर सकती ि◌ै। परन्तु यहद तकव तच्च की दृढ़ नींव पर आधाररत न ि◌ो, तो वि असंगत बन जाता ि◌ै।

इसके अततररक्त धाशमकव अनुभव के ये तथ्य दि और काल की दृल्ष्ट से सावभवौम ि◌ैं। वे संसार के ववशभन्न भागों में और इततिास के ववशभन्न कालों में पाए जाते ि◌ैं और इस प्रकार मानवीय आत्मा की साग्रि एकता और मित्त्वाकांक्षा को प्रमाखणत करते ि◌ैं। हिन्दू ◌ूऔर बौद्ध मुतनयों के, सुकरात और प्लेटो के, ◌ाइलो और प्लौहटनस के और ईसाई तथा मुल्स्लम रिस्यवाहदयों के प्रबोधन एक ि◌ी पररवार के अंग ि◌ैं। ि◌ालांकक धमववज्ञातनयों ने उनके कारण बतानेके जो प्रयल ककए ि◌ैं, उनमें जाततयों और कालों की स्वभावगत वविेषेताएं प्रततबबल्म्बत ि◌ोती ि◌ै।

आगे वाले श्लोक में गुरु आदि वयोगी के लक्षणों का वणनव करता ि◌ै। उसका धचत्त उसके वि में ि◌ोता ि◌ै; वि इच्छाओं को त्याग चुका ि◌ोता ि◌ै और वि केवल आत्मा के धचन्तन में लगा रिता ि◌ै और दु:ख के स्पि वसे अलग रिता और वि परब्रह्म के साथ एक ि◌ो जाता ि◌ै।

सिभूगतूस्थमात्मानांसिभूगतूातन चात्मतन ।
ईक्षते योगयुकुतात्मा सिलग समदशनगः ॥29॥

(29) जो व्यल्क्त योग द्वारा समस्वरता को प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै, वि सब प्राखणयों में आत्मा को तनवास करते ि◌ुए और सब प्राखणयों को आत्मा में तनवास करते ि◌ुए देखता ि◌ै। वि सब जगि एक ि◌ी-सी वस्तु देखता ि◌ै।

यद्यवप आत्मा का दिनव प्राप्त करने की प्रकक्रया में ि◌में बाह्य वस्तुओंसे पीछे हट आना पडा था और आत्मा को संसार से पृथक् करना पडा था, परन्तु जब वि दिनव प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै, तब संसार कफर आत्मा में खखंचं आता ि◌ै। नैततक स्तर पर इसका अथ वयि ि◌ै कक पिले संसार से वैराग्य ि◌ोना चाहिए और जब वि वैराग्य प्राप्त ि◌ो जाए, तब कफर प्ेरेम द्वारा और संसार के शलए कष्ट-सिन और बशलदान द्वारा उस संसार की ओर लौट आना चाहिए।

एक पृथृक्, सीशमत आत्मा की भावना का उसकी आिाओं और आिंकाओं समेत तथा उसकी रुधचयों और अरुधचयों समेत ववनाि िो जाता िै।

यो मा ांपश्यतत सिरग सिं ांच मतय पश्यतत।
तस्यािां न प्रणश्याशम स च मे न प्रणश्यतत ॥30॥

(30) जो मुझेसब जगि देखता िै और जो सब वस्तुओंको मुझमें देखता िै, उससे म ैंकभी दूरू निीं ांिोता और न वि िी कभी मुझसे दूरू िोता िै।

इन सुकुमार और प्रभाविाली िददों में, कक 'न म ैंउससे दूरू िोता िांूू और न वि िी कभी मुझसे दूरू िोता िै, ल्जस पर जोर हदया गया िै, वि व्यल्क्तक रिस्यवाद िै, जो अव्यल्क्तक रिस्यवाद से बबलकुल शभन्न िै। इस श्लोक में सब वस्तुओंकी उस एक में, जो कक व्यल्क्तक परमात्मा िै, सुगम्भीर एकता की अनुभूतत को प्रकट ककया गया िै। वि ल्जतना िी अधधक अद्ववतीय िै, उतना िी सावभवौम िै। आत्मा ल्जतनी गम्भीरतर िोगी, उसका ज्ञान उतना िी ववस्तृततर िोगा। जब िम अपनेअन्दर ववद्यमान ब्रह्म के साथ एक िो जाते िैं, तब िम जीवन की समूची धारा के साथ एक िो जाते िैं।

सिभूगतूस्स्थत ांयो मा ांभजत्येकत्मिास्स्थतः ।
सिथगा ितमगानोऽवप स योगी मतय ित3त1त॥

(31) जो योगी एकत्व में ल्स्थत िोकर सब प्राखणयों में ल्स्थत मेरी उपासना करता िै, वि ककतना िी कक्रयािील क्यों न िो, कफर भी वि मुझमें िी तनवास करता िै।

उसका बाह्य जीवन चािे जैसा भी िो, परन्तु उसका आन्तररक अशसस परमात्मा में तनवास करता िै।

मनुष्य का सच्चा जीवन उसका आन्तररक जीवन िी िै।

आत्मौपम्येन सिरग सम ांपश्यतत योऽजुनग ।
सुखांिा यहद िा दुःखांस योगी परमो मतः ॥32॥

(32) िे अजुनव, जो व्यल्क्त प्रत्येक वस्तु को अपने जैसा िी समझकर समान दृल्ष्ट से देखता िै, चािे वि स्वयं सुख में िो या दुःख में िो, वि पूण वयोगी समझा जाता िै।

आत्म-औपम्य का अथ वि-अपनेसाथ अन्य सबकी समानता। जैसे वि अपना भला चािता िै, उसी तरि वि सबका भला चािता िै। वि सब वस्तुओं को परमात्मा में अंगीकार करता िै, मनुष्यों को हदव्य जीवन की ओर ले जाता िै और इस संसार में परमात्मा की िल्क्त से और उसकी देदीप्यमान चेतना में कम वकरता िै। वि ककसी प्राणी को िातन निीं ांपिुंचाता, जैसा कक िंकराचाय वके िददों में : "वि इस बात को देखता िै कक जो कुछ उसे वप्रय िै,

विी सब प्राखणयों को वप्रय ि◌ै और ल्जससे उसे कष्ट ि◌ोता ि◌ै।"[340] उससे सब प्राखणयों को कष्ट ि◌ोता ि◌ै। उसके बाद वि सुख और दु:ख से कतराता निीं। क्योंकक वि संसार में परमात्मा को देखता ि◌ै, इसशलए वि ककसी वस्तु से डरता निीं, अवपतु आल्त्मक समदशितवा से सब वस्तुओंको अंगीकार करता जाता ि◌ै।

मन को वि में करना कहठन ि◌ै, पर सम्भव ि◌ै

योऽयांयोगस्त्यिा प्रोक्तः साम्येन मधुसूदून ।
एतस्यिाांन पश्याशमचञ्चलत्तास्स्थततसांस्थराम् ◌्॥33॥

अजुनव ने किा :

(33) ि◌े मधुसूदन (कृष्ण), तूने ◌ेजो समानता (मन की समता) के स्वभाव वाला • यि योग बताया ि◌ै, उसके शलए, चंचलता के कारण, मुझेकोई ल्स्थर आधार हदखाई निीं पडता।

चञ्चल ◌ांहि मनः कृष्ण प्रमाधथ बलिदृढम ।
तस्यिाां तनग्रिां मन्ये ि◌ायोररि सुदुष्ुकरम् ◌्॥34॥

(44) ि◌े कृष्णा, मन बिुत ि◌ी चंचल ि◌ै। यि बिुत ि◌ी प्रचण्ड, बलवान् ◌्और ि◌ठी ि◌ै। मुझे ◌ेतो लगता ि◌ै कक इसको वि में करना वायु को वि में करने ◌ेकी भांतत बिुत ि◌ी कहठन ि◌ै।

श्रीभगिानुिाच
असशांयांमिाबािो मनो दुतुनग्रगिां चलम्।◌्
अभ्यासेन तुकौन्तेय ि◌ैराग्येण च गृह्यते॥ 45॥

श्री भगवान् ◌्ने किा :

ि◌े मिाबािु (अजुनव), तनस्सन्दिे मन को वि में करना बिुत कहठन ि◌ै और यि बिुत चंचल ि◌ै, कफर भी
(35) ि◌े कुन्ती के पुत्ल (अजुनव), इसे तनरन्तर अभ्यास और वैराग्य द्वारा वि में ककया जा सकता ि◌ै।
तुलना कील्जए, योगसूल, 1, 12 । अभ्यासवैराग्याभ्या तल्न्नरोधः । गुरु यिां ◌ंबतलाता ि◌ै कक चंचल मन को यि अभ्यास पडा ि◌ोता ि◌ै कक वि अपनी प्रववृत्त के अनुसार काय वकरता जाए, परन्तुउसे वैराग्य341 और अभ्यास द्वारा तनयल्न्त्रत ककया जा सकता ि◌ै।

---

[340] यथा मम सुखम् ◌्इष्ट तथा सवप्रवाखणनां सुखम् ◌्अनुकूलम्, ◌् यहद वा यच्च दुःखं मम प्रततकूलम् ◌्अतनष्टम् ◌्यथा तथा सवप्रवाखणनां दुःखम अतनष्टम्.◌्.. न कस्यधचत् ◌्प्रततकूलम् ◌्आचरतत अहिंसंक इत्यथःव ।

अजुनव इस बात को अनुभव करता ि◌ै कक मानव-स्वभाव में बिुत अधधक दुराग्रि और हिसा, उच्छृंखलता और स्वाथ-वसंकल्प ि◌ै। ि◌मारा रुझान अपनेको कठोर कर लेनेकी ओर ि◌ोता ि◌ै। ल्जस वस्तु की आवश्यकता ि◌ै, वि ि◌ै सै तथा के तपस्या।

असयांतात्मना योगो दुष्प्राय इतत मे मततः।

श्यात्मना तु ्ुयतता शक्योऽप्तुिमुपुायतः ॥6॥

(36) म ◌ैंइस बात से सिमत ि◌ं◌ूं◌ू कक उसके शलए योग को प्राप्त कर पाना बिर कहठन ि◌ै, ल्जसने अपने-आप को संयत निीं ◌ंककया ि◌ै। परन्तु संवत व्यल्क्त इसे दृढ़-संकल्प तथा समुधचत उपायों द्वारा प्राप्त कर सकता ि◌ै।

अजुनव पूछता ि◌ै कक जो आत्मा योग का प्रयल करती ि◌ै और असफल रिती ि◌ै, उसका क्या ि◌ोता ि◌ै। पराजय अस्थायी ि◌ै : जो भलीभांतत प्रारम्भ करता ि◌ै, वि लक्ष्य तक पिुंच जाता ि◌ै

अजुनग उिाच

अयततः श्रद्धयोपेतो योगाच्चशलतमानसः ।

अप्राप्य योगसशांसद्धध ◌ांकाांगतत ◌ांकृष्ण गच्छतत ॥37॥

अजुनव ने किा :

(37) ि◌े कृष्ण, जो व्यल्क्त श्रद्धावान् ्ि◌ोतिुए भी चंचल मन वाला ि◌ोने ◌ेके कारण अपने-आप को वि में निीं कर पाता और योग में शसद्धध प्राप्त निीं कर पाता, उसकी क्या दिा ि◌ोती ि◌ै?

अजुनव का प्रश्न उन लोगों के भववष्य के सम्बन्ध में ि◌ै, जो मृत्यु के समय ि◌ाश्वत अच्छाई के ववरुद्ध युद्ध निीं कर रि ि◌ोते, ि◌ालांकक वे इतने अनुिाशसत निी ि◌ोतेकक वे ि◌ाश्वत पववलता की छटा का धचन्तन कर सकें। क्या, जैसा कक इना ि◌ोगों का ववश्वास ि◌ै, उनके शलए अनन्त स्वग वया अनन्त नरक, ये ि◌ी दो ककत्य ि◌ै? या इस प्रकार के व्यल्क्तयों के शलए मृत्यु के बाद भी पूणतवा की ओर छपाने का कफर कोई अवसर ि◌ै?

कस्च्चन्नोभयविरष्टस्श्छन्नारशमि नश्यतत ।

341 जब लेटनेकेशलएधरती,तब बबस्तरोंके शलएधचल्न्तत ि◌ोने कीक्याआवश्यकता ?जबअपनीबांिसुलभि,तब तककयों की आवश्यकता ककसशलए? जब अपनी ि◌थेली ि◌ै ि◌ो, तब चाररयों और पात्नों की क्या आवश्यकता ? वायुमण्डल, वृक्षों की छाल इत्याहद के ि◌ोते ि◌ुए ि◌ाल-दुिालों की क्या आवश्यकता ि◌ै?

सत्या क्षक्षती ककं कशिपोः प्रयासैः, बािौ सुशसद्धे ह्युपबिवणैः ककम्।◌्

सत्याचजलो ककं पुरुधन्नपातैः, हदग्वल्कलादौ सतत ककं दुकूलैः ॥

अप्रततष्ठो मिाबािो विमूढ़ो ब्रह्मणः पथथ ॥ 38॥

(38) िे मिाबािु (कृष्ण), दोनों ओर से स्थान-भ्रष्ट िोकर ककसी भी स्थान पर दृढ़ता से जमा िुआ न िोने के कारण वि ब्रह्म की ओर जाने वाले माग वमें कककंतव्वययववमूढ़ िोकर फटे िुए बादल की भांतत किीं नष्ट तो निीं िो जाता?

दोनों ओर से स्थान-भ्रष्ट, इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः, िोकर किीं वि ऐसे प्रदेि में तो निीं रि जाता, ल्जसका कोई स्वामी निीं? क्या वि अपनेइस जीवन और िाश्वत जीवन दोनों को गंवा बैठता िै? उन अनेक व्यल्क्तयों का क्या िोता िै जो योग के अत्यन्त दुगुमव पथ पर चलते िुए उसके अन्त तक पिुंचने में सफल निीं िो पाते? क्या उनका सारा प्रयत्न एकदम व्यथ वरिता िै? क्या ककसी ऐसे काय वको िुरू करना भला िै, ल्जसे कक व्यल्क्त पूरा कर पाने में समथ वन िो ?

एतन्मे सशांयां कृष्ण छेत्तुमिुगस्यशेषतः ।
त्दिन्यः सशांयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपधये ॥ 39॥

(39) िे कृष्ण, तू मेरे इस संिय को पूरी तरि शमटा दे, क्योंकक तेरे शसवाय और कोई ऐसा निीं िै, जो इस संिय को नष्ट कर सके।

श्रीभगिानुिाच

पाथ गिैने नामुलु विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कस्श्चदुगुतगत तात गच्छतत ॥40॥

श्री भगवान् ने किा :

(40) िे पाथ व(अजुनव), उसका न तो इस जीवन में ववनाि िोता िै और न परलोक में; क्योंकक प्यारे शमत्र, जो व्यल्क्त भला काम करता िै, उसकी कभी दुदुविा निींिोती।

ईमानदारी से जीवन बबताने वाला कोई भी व्यल्क्त कष्ट में निीं फंस सकता। ककसी भले आदमी का अन्त बुरा निीं िो सकता। परमात्मा िमारी दुबुलवताको को, और उन पर ववजय पाने के शलए िम जो प्रयत्न करते िैं, उनको जानती िै। िमें तनरास निीं िोना चाहिए, क्योंकक यिां असफलता भी सफलता िै और ईमानदारी से ककया गया कोई भी प्रयत्न तनष्फल निीं जाता। ऐकिाटव का कथन िै: "यहद तुम अपने इरादे में ववफल निीं रिते, बल्ल्क केवल क्षमता की दृल्ष्ट से ववफल रिते, तो अवश्य िी परमात्मा की दृल्ष्ट में तुमने अपनी ओर से सब-कुछ कर डाला िै।" गेटे से तुलना कील्जए: "जो भी कोई उद्यम और श्रम करता िै, उसका िम उद्धार कर सकते िैं।"

प्राप्य पुण्यकृता ांलोकानुवषत्ा शाश्तीः समाः ।
शुचीना ांश्रीमता ांगे योगरष्टोऽशभजोयते ॥41॥

(41) जो व्यल्क्त योग के माग वसे भ्रष्ट ो जाता ै, वि पुण्यात्माओंके लोक में जाता ै और विांअनेकानेक वषों तक तनवास करने ेके बाद कफर पववतात्मा और समृद्ूध लोगों के घर में जन्म लेता ै।

शाश्तीः : अनेकानेक; सदा के शलए नीं।

शुचुीनाम् ्: धमात्वमा । 6, 11 में ुिधुचता से अशभप्राय बाह्य स्वच्छता से ै; यिां ंआन्तररक पववतता से

अशभप्राय ै।'[342]

अथिा योधगनामिे कुले भितत धीमताम्।्
एतद्धध दुलुभगतरां लोके जन्म यदीदृशम ॥42॥

(42) या वि बुद्धधमान योधगयों के वंमें भी जन्म ले सकता ै। इस प्रकार का जन्म इस संसार में और भी दुलुभव ोता ै।

तल त ांबुद्धधसयाोग ांलभते ेपीदेगहिकम्।्
यतते च ततो भूयूः सशांसद्धौ कुरुनन्दन ॥43॥

(43) वि अपने(ब्रह्म के साथ संयोग के) उन (मानशसक) संस्कारों को कफर प्राप्त कर लेता ै ल्जन्ें उसने अपनेपूवजवन्म में ववकशसत ककया था और यिां से (इसे प्रारम्भ-बबन्दु ुमानकर) े कुरुनन्दन (अजुनव), वि कफर पूणतवा पाने का प्रयत्न करता ै।
शसद्धध के माग वपर प्रगतत बिुत धीमी ोती ै और ो सकता ै कक मनुष्य को ाथ तक पिुंचने से पिले अनेक जन्मों में इसके शलए प्रयत्न करना पडे।े परन्तु एिहिदा में ककया गया कोई भी प्रयल नष्ट नींोता। ेम जो सम्बन्ध बना लेते और ल्जन ेल्क्तयों को प्राप्त कर लेते ैं, वे मृतूयु के समय नष्ट नींि जातीं। आगे ोने वाले ववकास के शलए वे ेप्रारम्भ-बबन्दु ुबन जाती ैं।

पूिाभ्भयासेन तेनिै हियतेह्यिशोऽवप सः ।
ल्जज्ञासुरुवप योगस्य शब्दब्रह्मातततततेग े॥44॥

---

[342] ोचं तु द्वववववधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
मृजूजलाभ्यां ंस्मृतं ंबाह्यां भाविुद्धधस्तथान्तरम् ्॥
- माध्व पारिर में उद्धृत व्याघ्रपाद

वि अपने इस पिले अभ्यास के द्वारा वववि-सा िोकर आगे ले जाया जाता िै। योग का ज्ञान प्राप्त िो जानेपर ल्जज्ञासु ुभी वैहदक तनयमों के परे पिुंच जाता िै।

शब्दब्रह्म : वैहदक तनयम । इसका संकेत वेदों और उनके द्वारा तनल्श्चत ककए गए ववधध-ववधानों की ओर िै। वैहदक तनयमों का पालन करने ेके द्वारा िमें उनसे परे पिुंचनेमें सिायता शमलती िै। तुलना कील्जए : "ब्रह्म दो प्रकार का िै। एक तो िददब्रह्म और दूसरा उससे परे ववद्यमान ब्रह्म (परब्रह्म) । जब कोई व्यल्क्त िददब्रह्म में तनष्णात िो जाता िै, तब वि उससे परे ववद्यमान ब्रह्म तक पिुंच जाता िै।"[343] तब ववश्वास का अन्त अनुभव में िो जाता िै, वाणी मूक िो जाती िै और शसद्धान्त मन्द पडते िुए ववलीन िो जाते िैं। सामान्यतया धम वके शलए प्ेरेरणा धम-वग्रन्थों के अध्ययन द्वारा या ककसी सम्प्रदाय में दीक्षक्षत िोने ेद्वारा प्राप्त िोती िै। यि तब तक सिायक िोती िै, जब तक कक स्वतःस्फूतत वइतनी अधधक और इतनी पूण वन िो जाए कक ककसी अन्य परोक्ष सिायता की आवश्यकता न रिे। साधारणतया वेद का अध्ययन द्वतकारी प्रभाव डालता िै। परन्तु जब एक बार िमें ऐसा उद्बोधन प्राप्त िो जाता िै, जो अपने-आप में पयाप्वत िोता िै, तब िमें ककसी बाह्य सिायता की आवश्यकता निींरिती और तब िम िददब्रह्म या ककसी संस्थात्मक संदिनव, से परे पिुंच जाते िैं। ल्जस आदमी को नदी पार करती िोती िै, उसे नाव की आवश्यकता िोती िै। परन्तु "जो व्यल्क्त अपनेलक्ष्य तक पिुंच चुका िै, उसे उस लक्ष्य तक पिुंचने ेके साधन-रूप ववधध-ववधानों का आश्रय निीं लेना चाहिए।" मल्ज्झमतनकाय, 1, 1351 रामानुज ने िददब्रह्म का अथ वप्रकृतत ककया िै।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी सशुांद्धककल्बषः ।
अनेकजन्मसशांसद्धस्ततो यातत परांगततम् ्॥45॥

(45) परन्तु जो योगी सब पापों से िुद्ध िोकर, जन्म-जन्मान्तरों में अपने-आप को पूण वबनाता िुआ अध्यवसायपूवकव यल करता रिता िै, वि परम गतत को प्राप्त िोता िै (सवोच्च लक्ष्य तक पिुंच जाता िै) ।

भले िी वि इस जीवन में अपनी दुबुलवताओंके कारण लक्ष्य तक पिुंचनेमें सफल न िो पाए, कफर भी उसका प्रयत्न मृत्यु के बाद भी उसके साथ रिेगा और दूसरे जन्मों में प्रगतत में उसकी तब तक सिायता करता रिेगा, जब तक वि अपनेलक्ष्य तक न पिुंच जाए। परमात्मा का प्रयोजन तब तक पूरा निीं िोगा, जब तक कक सब मानव-प्राखणयों का क्षमा, पश्चात्ताप और स्वास्थ्यदायक अनुिासन द्वारा उद्धार न िो जाए और वे कफर भगवान् ्के साथ संयोग की ल्स्थतत में न पिुंच जाएं। प्रत्येक आत्मा को कफर उसी परमात्मा तक पिुंचाना िोगा, ल्जसने ेउसे अपनिी रूप में शसरजा िै। परमात्मा का प्ेरेम अन्ततोगत्वा बडे–से- बडे ेववद्रोिी तत्त्वों को भी अपने साथ कफर समस्वर कर लेगा। गीता िमें सबके उद्धार के ववषय में एक आिापूण वभरोसा हदलाती िै।

---

343 मैत्रीउपतनषद् 6, 221 साथिीववष्णुपुराण से भी तुलना कील्जए : िददब्रह्मखण तनष्णातः परं ब्रह्माधधगच्छतत। 6,5

पूण वयोगी

तपस्स्भ्यिोऽधधको योगी ज्ञातनभ्योऽवप मतोऽधधकः ।
कशमभ्गयश्चाधधको योगी तस्माद्योगी भिाजुनग ॥46॥

(46) योगी तपल्स्वयों से बडा िै; वि ज्ञातनयों से भी बडा माना जाता िै और वि कमकवाल्ण्डयों से भी बडा िै; इसशलए िे अजुनव, तू योगी िी बन जा।

यिां ंगुरु यि किना चािता िै कक ल्जस योगी का यिां ंवणनव ककया गया यि उस तपस्वी से अधधक उत्कृष्ट िै, जो कठोर उपवास तथा अन्य कहठन भ्यास करनेके शलए वन में चला जाता िै; वि उस ज्ञानी से भी उत्कृष्ट िै, जो जलपानेके शलए कम वका त्याग करके ज्ञान के माग वको अपनाता िै; और वि कमकवाण्डी से भी अधधक उत्कृष्ट िै, जो फलों की इच्छा से वेद में ववहित काण्ड का पालन करता िै। ल्जस योग को तप, ज्ञान और कम वसे उत्कृष्ट बताया गया िै, उसमें इन तीनों के सवोच्च अंकिा समाविे िै और उसके साथ भल्क्त भी सल्म्मशलत िै। इस प्रकार का योगी अपने-आप को सबके हृदयों में बैठे िुए भगवान् ्की चरम उपासना में लगा देता िै और उसका जीवन हदव्य प्रकिा इं िरक्षण में आत्मववस्मृततकारी सेवा का जीवन िोता िै।

योग या परमात्मा के साथ संयोग, जो भल्क्त द्वारा प्राप्त िोता िै, सवोच्च िक्ष्य िै। अगले श्लोक में किा गया िै कक योधगयों में भी सबसे बडा योगी भक्त िै।

यिां ंज्ञान का अथ विास्त्र-पाल्ण्डत्य िै (िंकराचाय)व, आध्याल्त्मक बोध निीं।

योधगनामवप सिेषा ंमद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धिान्भजते ेयो मा ंस मे युक्ततमो मतः47॥

(47) सब योधगयों में भी उस योगी को म ैंअपनेसाथ सबसे अधधक संयुक्त मानता िंू, जो श्रद्धापूवकव अपनी आत्मा को मुझमें लगाकर मेरी पूजा करता िै।

योग के अनुिासन का एक लम्बा वववरण और उन बाधाओं का, ल्जनको कक जीतना िै, वववरण देनेके बाद गुरु यि तनष्कष वतनकालता िै कक मिान् ्योगी वि िै, जो मिान् ्भक्त िै।

इतत... ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ।

यि िै 'ध्यानयोग' नामक गीता का छठा अध्याय ।

अध्याय 7

ईश्वर और जगत् ्

ईश्वर प्रकृतत और आत्मा िै श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पाथ गयोग ंयुञ्जन्मदाश्रयः।
असशांयांसमग्र ंमा ंयथा ज्ञास्यशस तच्छृणु ु॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(1) िअिजुनव, अब यि सुन कक योग का अभ्यास करता िुआ, अपने धचत्त को मुझमें लगाकर और मुझी को आश्रय मानकर असल्न्दग्ध-रूप से तू पूरी तरि मुझको ककस प्रकार जानेगा ?

लेखक ब्रह्म का पूण वया समग्र ज्ञान देना चािता िै; केवल ववुिद्ध आत्मा का निीं, अवपतु संसार में

उसके प्रकट-रूप का भी।

ज्ञान ंतेऽिां सविज्ञानशमदां िक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्िा नेि भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमिशशष्यते ॥2॥

(2) मैं तुझे ेयि सारा ज्ञान ववज्ञानसहित पूरी तरि बताऊंगा, ल्जसे जान लेने के बाद जानने को और कुछ िेषे निीं ंबचेगा।

देखखए 3, 41 की हटप्पणी। ज्ञान की व्याख्या बोध के रूप में, प्रत्यक्ष आध्याल्त्मक प्रबोधन के रूप में की गई िै और ववज्ञान की व्याख्या अल्स्तत्व के शसद्धान्तों के ववस्तृत बुद्धधसंगत ज्ञान के रूप में। िमें केवल सम्बन्ध-रहित बरब्रह्म का िी ज्ञान निीं िोना चाहिए, अवपतु उसके वववववध प्रकट-रूपों का भी ज्ञान िोना चाहिए। भगवान् ्मनुष्य और प्रकृतत में िै, िालांकक ये उसे सीशमत निीं ंकर देते।

मनुष्याणा ंसिरेषु कस्श्चद्यततत शसद्धये।
यततामवप शसद्धानाांकस्श्चन्मा ंिेवत्त तत्त्तिः ॥3॥

(3) ज़िारों मनुष्यों में से कोई एक इस योग की शसद्धध के शलए यत्न करता िै; और जो लोग यत्न करते िैं और शसद्धध पा लेते िैं, उनमे से भी मुल्श्कल से कोई एक मुझे ेसच्चे रूप में जान पाता िै।

एक और पाठ िै-**यतताांच सिराणाम् ्:** "और िज़ारों यत्न करने ेबालों में से।" िममें से अधधकां लोग पूणतवा प्राप्त करने ेकी आवश्यकता तक अनुभव निींकरते। िम परम्पराओं और प्राधधकारों की आवाज़ के साथ-साथ चलते जाते िैं। जो लोग सत्य को देखने और लक्ष्य तक पिुंचने का प्रयत्न करते िैं, उनमें से केवल थोडे-से िी सफल िो पाते िैं। ल्जन लोगों को ऐसी दृल्ष्ट प्राप्त िो भी जाती िै, उनमें से एक भी उस दृल्ष्ट के अनुसार चलना और जीना निीं सीख पाता ।

भगवान् ्की दो प्रकृततयां(स्वभाव)

भूशूमरापोऽनलो ायुः खांमनो बुद्धधरेि च।
अिंकार इतीयांमे शभन्ना प्रकृततरष्टधा ॥4॥

(4)पृथ्वी, जल, अल्ग्न, वायु, आकाि, मन और बुद्धध और अिंकार- मेरी प्रकृतत इन आठ रूपों में बंटी िुई िै।

प्रकृततः : प्रकृतत, ल्जसे िल्क्त या माया माना गया िै344', जो वस्तु-रूपात्मक जगत् ्का आधार िै।345

ये वे आठ रूप िैं, ल्जनिें अव्यक्त प्रकृतत व्यक्त िोतेसमय धारण करती िै। यि एक प्राचीन वगीकरण िै, जो बाद में जाकर चौबीस तत्त्वों के रूप में और ववदद कर हदया गया िै। देखखए 13, 5। इल्न्द्रयों, मन और बुद्धध का सम्बन्ध तनम्नतर या भौततक प्रकृतत से िै; : क्योंकक सांख्य मनोववज्ञान के अ अनुसार ल्जसे वेदान्त ने भी स्वीकार ककया िै, वे वस्तुओं के साथ सम्पकव स्थावपत क िैं और चेतना केवल तब उत्पन्न िोती िै, जब कक आल्मक कताव, पुरुष, प्रबोधधत करता िै। जब आत्मा प्रबुद्ध िो जाती िै, तब इल्न्द्रयों, मन और की गततववधधयां ज्ञान की प्रकक्रया बन जाती िैं और वस्तुएं ज्ञान का ववषय िै जाती िैं। अिंकार या अिं की भावना 'वस्तु-रूपात्मक पक्ष में आती िै। क्ष वि मूल तत्त्व िै, ल्जसके द्वारा जीव वस्तुओंके साथ अपना सम्बन्ध स्थावपत करता िै। यि (अिंकार) अपनेसाथ संयुक्त िुए िरीर और इल्न्द्रयों का अपनेऊपर आरोपण कर लेता िै। यि िरीर की आल्मक कताव के साथ एक शमया एकात्मता उत्पन्न कर देता िै और इसके कारण 'म ैंया मेरा' की भावना उत्पन िो जाती िै।

अपरेयशमतस्त्न्यिां प्रकृतत ांविद्धध मे पराम्।्
जिीभूतां ांमिाबािो ययेदां धायतेग जगत् ्॥5॥

(5)मेरी तनम्नतर प्रकृतत िै। मेरी दूसूरी और उच्चतर प्रकृतत को भी जान ले, जो कक जीव-रूप िै और िे मिाबािु (अजुनव), ल्जसके द्वारा यि संसार धारण ककया जाता िै।

सवोच्च भगवान् ्ईश्वर िै, जो सारे ववश्व का व्यल्क्तक स्वामी िै। ल्जसके अन्दर चेतन आत्माएं (क्षेत्रज्ञ) और अचेतन प्रकृतत (क्षेत्र) िैं। ये दोनों उसके उच्चतर (परा) और तनम्नतर (अपरा) पक्ष समझे ेजाते िैं। वि प्रत्येक ववद्यमान वस्तु का जीवन और रूप िै।'346 परमात्मा के सावभवौम अल्स्तत्व में उसकी तनम्नतर प्रकृतत में अचेतना की सम्पूणतवा और उसकी उच्चतर प्रकृतत में चेतना की सम्पूणतवा सल्म्मशलत िै। िरीर, प्राण, इल्न्द्रयों,

---

344 मायाख्यापरमेश्वरिल्क्तरतनवचवनीयस्वभावा तनगुणाल्त्मका। - मधुसूदन।

345 जडप्रपचचोपादानभता। - नीलकण्ठ।

346 ववद्धिं ्प्रकृतत ममात्मभूतां ्ववद्धध मे परां ्प्रकृष्टा जीवभूतां ्क्षेनेज्ञलक्षणां ्प्राणधारणतनशमत्तभूतांतिा। - रामानुज।व

मन और बुद्धध के रूप में आत्मा का दि-धारण िमें एक अिकार प्रदान करता िै, जो भौततक पृष्ठभूशम को अपनी गततववधध के शलए प्रयोग में लाता िै। प्रत्येक व्यल्क्त के दो पिलू िैं, आत्मा और िरीर, क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र। ये दोनों ईश्वर की प्रकृततयां ंिैं, जो इन दोनों से ऊपर िै।'[347] ओल्ड टैस्टामेंट (पुरानी बाइबबल) में बताया गया िै कक सृल्ष्ट िून्य में से उत्पन्न िुई। प्लेटो और अरस्तू ने एक आहदकालीन भौततक तत्त्व की कल्पना की िै, ल्जसे परमात्मा रूप प्रदान करता िै। परमात्मा स्रष्टा न िोकर कारीगर या तनमातवा िै, क्योंकक उस आहदकालीन भौततक तत्त्व को भी तनत्य और अनुत्पन्न माना गया िै और परमात्मा की इच्छा तो केवल उसके रूप धारण करने का कारण बनती िै। ईसाई ववचारकों के मतानुसार परमात्मा ककसी पिले से ववद्यमान जततक तत्त्व के द्वारा सृल्ष्ट का सृजन निीं करता, अवपतु वि िून्य में से उसे रच डालता िै। भौततक तत्त्व और उसका बाह्य रूप, दोनों िी परमात्मा से तनकले िैं। इससे शमलता-जुलता दृल्ष्टकोण इस श्लोक में प्रस्तुत ककया गया िै। जीव ईश्वर की केवल आंशिक अशभव्यल्क्त िै।348 ईश्वर की अखण्ड अववभक्त वास्तववकता आत्माओं की ववववधता में ववभक्त प्रतीत िोने े लगती िै।349 एकता सत्य िै और ववववधता उसी की एक अशभव्यल्क्त िै और इस प्रकार वि एक तनम्नतर सत्य िै, ककन्तु वि भी भ्रम निीं ंिै।

एतद्योनीतन भूतातन सिाणगीत्युपधारय ।

अिं कृत्नस्य जगतः प्रभिः प्रलयस्तथा ॥6॥

(6) इस बात को समझ ले कक सब प्राखणयों का जन्म इसी से िुआ िै। म ैंइस सारे संसार का मूल (जनक) िंूू और म ैंिी इसका ववनाि भी िंूू।

यि सारा संसार अपने सब अल्स्तत्वमान पदाथों के साथ ईश्वर से उत्पन्न िुआ िै350 और प्रलय के समय उसी में लीन िो जाता िै। तुलना कील्जए, तैवत्तरीय उपतनषद 3 । परमात्मा इस ववश्व को अपनेअन्दर रखता िै, वि इसे अपने में से अथात्व ्स्वयं अपनी प्रकृतत में से इसे बिार तनकालता िै और कफर वापस अपनेअन्दर समेट लेता िै।

मत्तः परतरां नान्यस्त्कस्ञ्चदस्स्त धनञ्जय।

---

347 भागवत से तुलना कील्जए :

िे क्षेत्रज्ञ (आत्मा), तुझेनमस्कार िै। तू जो सबका अध्यक्ष िै, साक्षी िै, मिान् ्आत्मा िै और जो सब आत्माओं ंतथा सदा उत्पादनिील प्रकृतत का भी मूल िै।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सवाध्वयक्षाय साक्षक्षणे।

पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ -8, 3, 13

348 15,7

349 13, 16

350 तुलना कील्जए : 14,3; मम योतनमिवब्रह्म। साथ िी देखखए मुण्डकोपतनषद्, 1, 1, 6 और 3,1, 3। अक्षरं भूतयोतनम् ्... पुरुष भूतयोतनम् ्। ब्रह्मसूत्र : योतनश्च गीयते े। ।, 4, 27

मतय सिशगमदां प्रोत ां सूतूले मणणगणा इ ॥7॥

(7) े धिन को जीतने वाले (अजुनव), ऐसी कोई वस्तु निीं ंिै, जो मुझसे उच्चतर िो। जो कुछ भी इस संसार में िै, वि सब मुझमें उसी प्रकार वपरोया िुआ िै जैसे कक मखणयां धागे में वपरोई रिती िैं।

ईश्वर से उच्चतर और कोई मूल तत्त्व निीं ंिै। वि ईश्वर िी सब वस्तुओंको बनाता िै और स्वयंसब-कुछ िै। संसार की सत्ताएं परमात्मा द्वारा उसी प्रकार परस्पर शमलाकर रखी जाती िैं, जैसे कक धागा मखणयों को आपस में शमलाकर रखता िै।

रसोऽमिप्सु ुकौन्तेय प्रभास्स्म शशशसूयूयगोः ।
प्रणिः िसिैगदेषु शब्दः खे पौरुषां नृषु ु॥8॥

(8) े कुन्ती के पुत्र (अजुनव), म ैंजलों में स्वाद-रूप िंूं; चन्द्रमा और सूय वमें म ैंप्रकि िंूं; सब वेदों में म ैं 'ओऽम्' ् िदद िंूं, आकि में म ैंिदद िंूं और पुरुषों में पौरुष िंूं।

पुण्यो गन्धः पृथृथव्याांच तेजश्िास्स्म विभािसौ ।
जीनां सिभूगतूेषु तपश्चास्स्म तपस्स्िषु॥9॥

(9) पृथूवी में म ैंवविुद्ध सुगन्ध िंूं और अल्न में चमक िंूं। सब ववद्यमान वस्तुओंमें म ैंजीवन िंूं और तपल्स्वयों
में तप िंूं।

तुलना कील्जए : "तू ूसत्य िै, तू हदव्य आत्मा िै; तू भौततक जडतत्त्व निीं ंिै, न तू जीवनिीन िै; तू सारे जगत् ्का जीवन िै और सब प्राखणयों का भी जीवन िै।"[351]

बीज ांमा ांसिभूगतूानाांविद्धध पाथ गसनातनम्।्
बुद्धधबुद्धधधमतामस्स्म तेजस्तेजस्स्िनामिम् ्॥10॥

(10) े पाथ व(अजुनव), तू ूमुझेसब ववद्यमान वस्तुओंका सनातन बीज समझ । म ैंबुद्धधमानों की बुद्धध िंूं और तेजल्स्वयों का तेज िंूं।

बल ांबलिता ांचिाां कामरागविवस्जतगम् ्।

---

351 त्वंसत्यंदेवद्वेवात्मनजडोनमृतोऽवप वा। जगतां जीववतं च त्वंप्राखणनां जीववतं ंतथा ॥

धमावगिरुद्धो भूतेषु कामोऽस्स्म भरतषभ ॥11॥

(11) मैंकम (इच्छा) और राग (प्रेम) से रहित बलवानों का बल िंूं। ि भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), सब प्राखणयों में मैं धम वके अनुकूल रिने वाली लालसा िंूं।

कामराग : इच्छा और प्रेम । िंकराचाय वने इन दोनों में भेद करते िुए काम को अप्राप्त[352] वस्तु की लालसा और राग को प्राप्त353 वस्तु के प्रतत प्रेम बताया िै। इच्छा अपने-आप में बुरी वस्तु निीं ंिै। स्वाथपूवण व इच्छा का उन्मूलन ककया जाना चाहिए। ब्रह्म के साथ संयोग की इच्छा बुरी निीं। छान्दोग्य उपतनषद् में इच्छाओं को मूलतः वास्तववक (सत्य) बताया गया िै, यद्यवप उनके ऊपर अवास्तववक (अनृत) का आवरण रिता िै; 8, 31 िमारी इच्छाएं और गततववधधयां, यहद वे िममें वव‌द्यमान आत्मा को अशभव्यक्त करने वाली िों और दे सच्चे आल्त्मक व्यल्क्तत्व से तनकली िों, तो दैवीय इच्छा का वविुद्ध प्रवाि बन जाती िै।

ये चैि सात्त्विका भािा राजसास्तामसाश्च ये ।

मत्त एिेतत तास्न्‍िद्धि न त्िं तेषु ते मतय ॥12 ॥

(12) और ल्जतने भी भाव िैं, चािे वे लयात्मक (साल्त्वक), आविेपूण व(राजस), या आलस्यपूण व(तामस) िों, वे सब केवल मुझसे िी उत्पन्न िुए िैं, इस बात को तू समझ ले। मैं उनमें निीं िूं, वे मुझमें िैं।

लेखक सांख्य के प्रकृतत की स्वाधीनता वाले शसद्धान्तों को अस्वीकार कर देता िै। वि स्पष्ट किता िै कक इन तीनों गुणों द्वारा बनी िुई प्रत्येक वस्तुककसी भी अथ वमें परमात्मा से स्वतन्त्र, आत्मतनभरव तत्त्व निीं, अवपतु केवल उस परमात्मा से िी उत्पन्न िोती िै। वि परमात्मा इन सब वस्तुओंको अपनेअन्दर रखता िै और इनमें व्याप्त िै, जब कक ये वस्तुएं उसे अपनेअन्दर निीं रखती और उसमें व्याप्त निीं। परमात्मा और उसके प्राखणयों में यिी भेद ककया गया िै। वे सब ब्रह्म द्वारा सूधचत िोतिं, परन्तु उनके पररवतनव ब्रह्म की अखंडता को स्पि वनिींकरते। वि ककसी अन्य वस्तु के अधीन निीं, जब कक सब वस्तुएं उसके अधीन िैं।

प्रकृतत के गुण मनुष्यों को भ्रम में डालतिं

त्रिशभगुणगमयैभैविरेशभः सिशगमदां जगत्।

मोहितांनाशभजानातत मामेभ्यः परमव्ययम् ॥13॥

(13) प्रकृतत के इन तीन गुणों द्वारा भ्रम में पडकर सारा संसार मुझे निींपिचान पाता, जो कक मैं इन सबसे ऊपर िूं और अनश्वर िूं।

352 कामः तृषूणा असल्न्नकृष्टेषु ववषयेषु।

353 रागः रचजना प्राप्तेषु ववषयेषु

किंराचाय वका कथन ि कक भगवान् ्यिां ंइस बात पर खेद प्रकट करता ि कक संसार उस परम ईश्वर को निीं ंजानता, जो स्वभाव से िी तनत्य, िुदुध, बुद्ध और मुक्त ि; जो सब प्राखणयों की आत्मा ि और सब गुणों से रहित ि। ल्जसे जानने ेसे संसार की बुराई का बीज िी जलकर राख िो जाता ि।'[354]

मि पररवततततव िोतिुए रूपों को तो देखते िैं, ककन्तु उस तनत्य सत्ता को निींदेख पाते, ल्जसकी कक ये रूप अशभव्यल्क्त िैं। िम प्लेटो के गुफावाशसयों की भांतत दीवारों पर हिलती-डुलती छायाओं को तो देखतिैं, परन्तु िमें उस प्रकाि को भी देखना िोगा, ल्जसके कारण ये छायाएं बनती ि।

दैिी ह्येषा गुणुमयी मम माया दुरुत्यया।
मामेि ये प्रपद्यन्तेमायामेताांतरस्न्त ते ॥14॥

(14) मेरी इस गुणमय दैवी माया को जीत पाना बिुत कहठन ि। परन्तु जो लोग मेरी िी िरण में आते िैं, वे इसको पार कर जाते िैं।

दैिी: हदव्य । आधधदैववक'[355] या परमेश्वर से सम्बन्ध रखने वाली।356

मायाम् ्एताांतरस्न्त : इस माया के पार पिुंच जाते िैं। वे माया के संसार के पार पिुंच जाते िैं, जो कक भ्रम का मूल ि।357

रामानुज यि अथ वतनकालता ि कक माया वि ि, जो ववलक्षण प्रभाव उत्पन्न करने में समथ ि।

बुरे काम करने वालों की दिा

न मा ंदुष्कृततनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भािमाधश्रताः ॥15॥

(15) बुरे काम करने वाले, जो मूख िैं, जो मनुष्यों में नीच िैं (नराधम), ल्जनकी बुद्धध भ्रम के कारण बिक गई ि और जो आसुरी स्वभाव के िैं, वे मेरी िरण में निीं ंआते।

---

354 एवम्भूतमवप परमेश्वर तनत्यिुदुधबुद्धमुक्तस्वभावं ंसवभूवतात्मानं, तनगुणव, संसारदोषबीज्ञप्रदािकारण, मां, नाशभजानातत जगद् इत्यनुक्रोि दियवतत भगवान् ्।

355 अलौककिकीअत्यद्भुतेतत । श्रीधर।

356 देवस्य जीवरूपेण लीलया क्रीडतो मम सम्बल्न्धनीयं ंदैवी। - नीलकण्ठ ।

357 मायां सवभूवतमोहिनींतरल्न्त, संसांरबन्धान्मुच्यन्ते। - िंकराचाय।व

बुरे कम वकरने वाले भगवान् ्को प्राप्त निींकर सकते, क्योंकक उनके मन और संकल्प भगवान् ्के उपकरण निीं, ं अवपतु अिंकार के उपकरण िैं। वे अपने अपररष्कृत मनोवेगों को वि में करने ेका यत्न निीं ंकरते, अवपतु वे अपनेअन्दर बबद्यमान रजोगुण और तमोगुण के शिकार िैं। यहद िम अपनेअन्दर ववद्यमान सत्त्वगुण द्वारा रजोगुण और तमोगुण पर तनयन्त्रण कर लें, तो िमारा कम वसुव्यवल्स्थत और प्रबुद्ध बन जाता िै और वि वासना और अज्ञान का पररणाम निींरिता। तीनों गुणों के परे पिुंचने ेके शलए िमें पिले सत्त्वगुण की प्रधानता स्थावपत करनी िोगी। िम आध्याल्त्मक बन सकें, इससे पिले िमें नैततक बनना िोगा। आध्याल्त्मक स्तर पर िम द्वैत को पार कर जाते िैं और अपनेअन्दर बुद्धधमान् ्आत्मा के प्रकाि और बल द्वारा काय वकरते िैं। उस दिा में िम ककसी तनजी स्वाथ वको प्राप्त करने ेके शलए या ककसी तनजी कष्ट से बचनेके शलए काय वनिीं करते, अवपतु केवल ब्रह्म के उपकरण के रूप में कम वकरते रिते िैं।

भल्क्त के ववशभन्न प्रकार

चतुविधगा भजन्ते मा ंजनाः सुकृततनोऽजुनग ।
आतो ल्जज्ञासुरुाथी ज्ञानी च भरतषभग ॥16॥

(16) िे भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), जो धमात्वमा व्यल्क्त मेरी पूजा करते िैं, वे चार प्रकार के लोग िैं। एक तो वे, े जो ववपवत्त में फंसे िैं; दूसूरे ल्जज्ञासु, तीसरे धन प्राप्त करने ेके इच्छुक और चौथे ज्ञानी ।

सुकृततनः : धमात्वमा लोग। वे ेलोग, ल्जनका अपनेपूवजवन्म के धमपूवण वआचरण के कारण उच्चतर जीवन की ओर रुझान िै।'[358]

एक श्रेणी तो उन आत वलोगों की िै, जो कष्ट में पडे िुए िैं, ल्जन्िोंने नुकसान उठाया िै। जो लोग धन पाने के इच्छुक िैं, धनकाम (िंकराचाय)व, जो अपनी भौततक ल्स्थतत को सुधारना चािते िैं, वे दूसूरी श्रेणी में आते िैं। तीसरे समूि में वे भक्त और सीधे-सच्चेलोग िैं, जो सत्य को जानना चािते िैं। चौथी श्रेणी उन ज्ञातनयों की िै, ल्जन्िें ज्ञान प्राप्त िो गया िै। रामानुज ने ज्ञान का अथ वकेवल एक के प्रतत भल्क्त, एक भल्क्त ककया िै।

मिाभारत में चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख िै, ल्जनमें से तीन फलकामाः, या फल पाने के अशभलाषी िोते िैं, जब कक सवोत्तम भक्त वे िैं, जो एक िी देवता की अनन्य भाव से पूजा करते िैं। अन्य भक्त तो अन्य फलों की कामना करते िैं, परन्तु मुतन न कोई वस्तु मांगता िै और न ककसी वस्तु को अस्वीकार करता िै। वि अपने-आप को पूणतवया ब्रह्म को समवपतव कर देता िै और जो कुछ उसे हदया जाए, उसे स्वीकार लेता िै। उसकी मनोवृवत्त केवल परमात्मा के शलए, अपने-आप को ववस्मृत करके परमात्मा की उपयोधगतातनरपेक्ष पूजा करने ेकी रिती िै।359

[358] पूवजवन्मसुये कृतपुण्याजनाः । श्रीधर ।

[359] चतुववधवा मम जना भक्ता एवं हि मे शुरुतम्।् तेषामेकाल्न्तनः श्रेष्ठा ये चैव नान्यदेवताः ॥ िाल्न्तपव व341, 33

तेषा ांज्ञानी तनत्ययुक्त एकभस्क्तविशगशष्यते ।
वप्रयो हि ज्ञातननोऽत्यथमगिां स च मम वप्रयः ॥17॥

(17) इन सबमें से ज्ञानी व्यल्क्त, जो सदा ब्रह्म के साथ संयुक्त रिता ि और । ल्जसकी भल्क्त अनन्य िोती ि,
सवश्रेवष्ठ ि। उसे म ैंबुित अधधक वप्रय िंूू और वि मुझे ेबुित अधधक वप्रय ि।

जब तक िम ल्जज्ञासु ुया साधक िोतें, तब तक िी िम द्वैत के संसार में रितें परन्तु जब िमें ज्ञान
प्राप्त िो जाता ि, तब कोई द्वैत निीं ंरिता। मुतन अपने-आप को उस एकात्मा के साथ संयुक्त कर देता ि, जो
सबमें ि।

उदाराः सि गएँते ेज्ञानी त्ात्मैि मे मतम्।
आस्स्थतः सहियुक्तात्मामामिेनुत्तमागांततम् ॥18॥

(18) यों तो ये सभी बुित अच्छे िं, परन्तु ज्ञानी को तो म ैंसमझता िूँ कक वि म ैंिी िंूू क्योंकक पूरी तरि
अपने-आप को योग में लगाकर वि केवल मुझमें िी ल्स्थत िो जाता ि, जो कक म ैंसवोच्च लक्ष्य िंूू।

उदाराः सव वएवैते : यों तो ये सभी बुित अच्छे िं। िम मानशसक कष्ट से बचने के शलए (आतःव),
व्याविाररक लाभ प्राप्त करने के शलए (अथावथी), बौद्धधक तृलृप्त प्राप्त करनेके शलए (ल्जज्ञासुः), या ज्ञान प्राप्त
करने ेके शलए (ज्ञानी) प्राथनवा करते िं। ये सबके सब बुित अच्छे िं। यहद िम भौततक वस्तुओंके शलए भी प्राथनवा
करते ि और प्राथनवा को एक औपचाररक हदनचयाव के रूप में बदल लेते ि, या उसका उपयोग सौभाग्य लानेवाले
जादू ूके रूप में करते ि, तो भी िम धाशमकव भावना की वास्तववकता को मान रिे िोते िं। प्राथनवा मनुष्य का
परमात्मा तक पिुंचने ेके शलए प्रयल ि। इसमें यि मान शलया जाता ि कक संसार में कोई ऐसी व्यापक िल्क्त ि,
जो िमारी प्राथनवाओंका उत्तर देती ि। यहद िम कोई वस्तु मांगेंगे, तो वि िमें दे दी जाएगी। प्राथनवा के प्रयोग
द्वारा िम अपनी चेतना में एक ऐसी ज्योतत जगाते ि, जो िमारे मूखतवापूण वदम्भ, िमारे स्वाथपूवण वलोभ, िमारे
भयों और आिाओं को स्पष्ट हदखा देती ि। यि एक अखण्ड व्यल्क्तत्व, िरीर, मन और आत्मा की समस्वरता का

तनमाणव करनेका सावन ि। धीरे-धीरे िम अनुभव कर लेते ि कक जीवन में सौभाग्य के शलए या परीक्षा में सफलता
के शलए प्राथनवा करना अपने-आप को नीचा धगरानेवाला काम ि। िम यि प्राथनवा करते ि कक िम ब्रह्म का ज्ञान
प्राप्त कर सकें और अधधकाधधक उस ब्रह्म के समान िो सकें। प्राथनवा जीवन का माग वि। धीरे-धीर यि परमात्मा
के साल्न्नध्य का अभ्यास बन जाती ि। यि ज्ञान ि, अखल्ण्डत ज्ञान, हदव्य जीवन। जो ज्ञानी परमात्मा को उस
रूप में जानता ि, ल्जस रूप में कक वि वस्तुतः ि, वि परमात्मा को, जो कुछ वि ि, उसके शलए पे्रम करता ि। वि
ब्रह्म में वास करता ि। परमात्मा उसे उसी प्रकार वप्रय िोता ि, जैसे कक वि परमात्मा को वप्रय िोता ि। पिले तीन
प्रकार के भक्त अपने-अपने ववचारों के अनुसार परमात्मा का उपयोग करनेका प्रयल करते ि, परन्तु ज्ञानी तो
परमात्मा के िी बन जाते ि, ल्जससे कक वि अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सके; इसशलए वे उन

सबमें श्रेष्ठ िैं। यि सम्भव िै कक जब िम कहठन ववपवत्त में िों, तब िम अपनी यन्त्रणा से छुटकारा पानेके शलए एकाग्रधचत्तता और तीव्रता के साथ प्राथनवा करें। यहद इस प्रकार की प्राथनवा का उत्तर शमल जाए, तो यि परमात्मा के उस प्रयोजन को ववफल कर देना िोगा, ल्जसे कक अपने अन्धेपन के कारण िम देख पाने में असमथ विैं। परन्तु ज्ञानी का हृदय पववन िोता िै और उसमें परमात्मा की योजना को देखने के शलए एकाग्र संकल्प िोता िै और वि उस प्रयोजन की पूणतवा के शलए प्राथनवा करता िै, "मेरी निीं, ं तेरी इच्छा पूण विो।"

बिूना ांजन्मनामन्ते ेज्ञानिान्मांप्रपद्यते।

िासुदेिः सिशगमतत स मिात्मा सुदुलुभगः ॥19॥

बिुत-से जन्मों के अन्त में ज्ञानी व्यल्क्त - जो यि समझता िै कक जो कुछ भी िै, वि सब वासुदेव (ईश्वर) िी िै— मुझे ेप्राप्त िोता िै। ऐसा मिात्मा बिुत दुलुभव िोता िै।

बिूना ांजन्मनाम् ्अन्ते: बिुत-से जन्मों के बाद। सत्य को हृदयंगम कर पाना अनेक युगों का काय वि। जब तक कोई व्यल्क्त अनुभव की गिराइयों को उनकी ववववध जहटलताओं के साथ भलीभांतत न जान लें, तब तक यि आिा निीं की जा सकती कक उसे सत्य का ज्ञान िो जाएगा। और इस सबमें कातत समय लगता िै। परमात्मा पौधे को अपनी गतत से बढ़ने देता िै। प्राकृततक िशुको बनने ेमें नौ मिीनेलगते िैं, कफर आध्याल्त्मक िशु ुको बननेमें तो किींअधधक लम्बा समय लगेगा। प्रकृतत का सम्पूण वरूपान्तरण एक लम्बी प्रकक्रया

िासुदेिः सिम् ग ः: वासुदेव सब-कुछ िै। वासुदेव जीवन का स्वामी िै, जो सबमें तनवास करता िै।'[360] परमात्मा अपनी दो प्रकृततयों के रूप में सब-कुछ िै ।

इस वाक्यांश का अथ वरामानुज ने यि लगाया िै कक "वासुदेव मेरा सवस्वव िै। इसका संकेत परमात्मा के उस अनश्वर गौरव की ओर िै, जो ववनीत और ववधिी भक्त को अपने हृदय में अनुभव िोता िै। परमात्मा सब-कुछ िै, जब कक िम कुछ भी निीं। अन्य सब वस्तुओं की भांतत मनुष्य का अल्स्तत्व परमात्मा के बबना निींरि सकता, जब कक परमात्मा का अल्स्तत्व सदा बना रिता िै। िम ववश्वासपूवकव अपने-आप को परमात्मा के िाथों में यि ववश्वास करते िुए सौप देते िैं कक वि सब-कुछ िै। यि परमात्मा के प्रतत, जो सब-कुछ िै और जो वस्तुतः िै, ववनम्रता की अनुभूतत िै।

"वासुदेव सबका कारण िै।" - मध्व ।

ववनय और प्राथनवा के अन्य स्वरूप तनरथकव निीं; उनका अपना फल िै।

सहिष्णुता

360 वसततसवल्वस्मल्न्नततवासु:तस्यदेवः ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥20॥

(20) परन्तु ल्जन लोगों के मन उनकी लालसाओं के कारण ववकृत िो गए िैं, वे अपने-अपने स्वभाव के कारण ववशभन्न ववधध-ववधानों को करते िुए अन्य देवताओं की िरण में जाते िैं।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥21॥

(21) जो कोई भक्त श्रद्धापूवकव ल्जस भी रूप की पूजा करना चािता िै, म ैंउस-उस रूप में उसकी श्रद्धा को अचल बना देता िूं।

परमेश्वर प्रत्येक भक्त की श्रद्धा को पुष्ट करता िै और जो कोई जो फल चािता िै, उसे वि देता िै।
आत्मा अपने संघष वमें ल्जतनी ऊंची उठ जाती िै, परमात्मा उससे शमलने के शलए ठीक उतना िी नीचेझुकता िै।
गौतम बुद्ध, िंकराचाय वजैसे अत्यधधक धचन्तनिील ऋवषयों ने भी देवताओं में प्रचशलत लोकवप्रय ववश्वास का खण्डन निीं ककया। वे इस बात को समझतेथे कक परमेश्वर जो ककसी प्रकार अशभव्यक्त निीं ककया जा सकता और साथ िी यि भी कक वि ल्जन रूपों में प्रकट िो सकता िै, उनकी संख्या असीम िै। प्रत्येक सति को उसका स्वरूप उसकी गिराई से प्राप्त िोता िै, ठीक उसी प्रकार जैसे कक छाया अपने मूल तत्व की प्रकृतत को प्रततबबल्म्बत करती िै। इसके अततररक्त सब प्रकार की पूजा ऊंचा उठाती िै। चािे िम ककसी भी वस्तुपर श्रद्धा क्यों न करें, जब तक िमारी श्रद्धा गम्भीर िै, वि प्रगतत में सिायक िोती िी िै।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥22॥

(22) उस श्रद्धा से युक्त िोकर वि उसकी आराधना करना चािता िै, और उससे िी वि अपनेवांतछत फल प्राप्त करता िै, जब कक वस्तुतः वि फल म ैंिी देता िूं। सब रूप एक भगवान् के िी िैं; उनकी पूजा भगवान् की पूजा िै; और सब फलों को देने वाला भगवान् िी िै।[361]- श्रीधर।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ 22॥

(23) परन्तु इन अल्पबुद्धध वाले लोगों द्वारा प्राप्त ककया जाने वाला फल अस्थायी िोता िै। देवताओं की पूजा

361 सवावअवपदेवताममैवमूतूयवःतद्ाराधनमवप वस्तुतो ममाराधनमेव, तत्ततफलवाताऽवप चाऽमेिव ।

करने ेवाले लोग देवताओं को प्राप्त िोतिें, ककन्तु मेरा भक्त मेरे पास िी पिुंचता िै।

क्योकक लोकोत्तर ब्रिा को सरलता से निींजाना जा सकता, इसशलए िम भगवान् ्के रूपों की िरण लेते िैं और उनकी पूजा करते िैं। ल्जन फलों के शलए िम साधना करते िैं, उन्ें िम प्राप्त कर लेते िैं, क्योंकक भगवान् ् मिारी अपूण वदिनव–ल्क्त के प्रतत धैयवान् ्िै। िम ल्जस भी स्तर पर उसके पास पिुंचते िैं, वि उसी स्तर पर मिारी प्राथनवाओं को स्वीकार कर लेता िै और उनका उत्तर देता िै। ककसी भी प्रकार की भल्क्त व्यथ वनिीं। धीरे-धीरे तनरक्षर भक्त भी ब्रम में अपना सवोच्च हित खोज लेता िै और ववकशसत िोता िुआ उस तक पिुँच जाता िै। जो लोग उस लोकोत्तर परमेश्वर की पूजा के स्तर तक ऊंचेउठ जाते िैं, जो सब रूपों में व्याप्त िै और सब रूपों से परे िै, वे उस सवोच्च दिा को जान लेते िैं और उसे प्राप्त कर लेते िैं, जो अल्स्तत्व की दृल्ष्ट से अखण्ड, ज्ञान की दृल्ष्ट से पूण,व प्ेरम की दृल्ष्ट से परम और संकल्प की दृल्ष्ट से सम्पूण वि। अन्य सब वस्तुएं आंशिक और सीशमत िैं और वे ववकास के केवल तनम्नतर स्तरों पर िी अथवान् ्िैं।

अज्ञान की िल्क्त

अव्यक्तवं्यल्क्तमापन्न मन्यन्ते ेमामबुद्धयः ।

परं भिामजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ्॥24॥

(24) जो बुद्धिीन लोग, जो मेरे अपररवतनवील और सवोच्च उच्चतर स्वभाव को निीं ंजानते वे मुझे, े जो अव्यक्त िंूं, व्यक्त िुआ मानते िैं।

रूपिीन परमात्मा पर िम ल्जन रूपों का आरोप करते िैं, वे िमारी अपनी सीशमतताओं के कारण िोतिें। मि परम वास्तववकता के धचन्तन से दूरू िटकर काल्पतनक रूपों का धचन्तन करने ेकी ओर झुकते िैं। एक अव्यक्त तनत्य ब्रह्म को छोडकर अन्य देवता उस ब्रह्म पर आरोवपत रूपमाल िैं। वि परमात्मा अनेक देवताओं में ववद्यमान एक देवता निीं िै। वि संदा पररवतततव िोतिुए अनेक देवताओंके पीछे ववद्यमान एक परमात्मा िै, जो सब रूपों से परे िै और जो अन्तिीन गततिीलता का अचल केन्द्र िै।

नािंप्रकाशःसिस्गययोगमायासमािृतः।

मूढोऽय ंनाशभजानातत लोको मामजमव्ययम् ्॥25॥

(25) अपनी सृजनिील िल्क्त (योगमाया) द्वारा आवृतृत िोने के कारण म ैंसब लोगों के सम्मुख प्रकट निीं ं िोता। यि मूढ़ जगत मुझे ेनिींजानता, जो कक म ैंअजन्मा और अपररवतनवील िंूं।

योग : िंकराचाय वने इस िदद का अथ व'तीन गुणों का संयोग' ककय मधुसूदन की दृल्ष्ट में इसका अथ व 'संकल्प' िै।

भगवान् ्केवल संसार में निीं ि, अवपतु इसके परे भी िै। िम उसे गलती से कोई एक या दूसूरा सीशमत रूप समझ लेते िैं।

भगवान् ्से तुलना कील्जए : "िे प्रभु, सवव्वयापी भगवान्, ् परमात्मा योगेश्वर, इन तीनों लोकों में ऐसा कौन िै, जो इस रिस्य को जान सके कक तुम कब, किां, कैसे और ककन रूपों में क्रीडा करते रिते िो?"[362] केवल वविुद्ध स्त (ईश्वर) अव्यक्त िै; उसके अततररक्त अन्य सब वस्तुएं व्यक्त जगत् ्से सम्बन्य रखती िैं।

ेंदिां समतीतातन ितमगानातन चाजुनग।
भविष्याणण च भूतूातन मातु िेद न कश्चन॥26॥

(26) िे अजुनव, म ैंउन सब प्राखणयों को जानता िंूं जो अतीत में िो चुके िैं, जो इस समय ववद्यमान िैं और जो भववष्य में िोने वाले िैं; परन्तुमुझे ेकोई निींजानता।

इच्छाद्वेषिसमुत्थेन द्न्द्विमोिेन भारत ।
सिभूगतूातन सम्मोिां सगेयास्न्त परन्तप ॥27॥

(27) िे भारत (अजुनव), िे िलुओंको जीतने वाले (अजुनव), सब प्राणी इच्छा और द्वेष के कारण उत्पन्न िुए द्वैत के वि में िोकर मिो अथात् व ्भ्रम में पड जाते िैं।

ज्ञान का उद्देश्य

येषा ांत्न्तिगत ांपाप ांजनानाांपुण्यकमणगाम्।्

तेद्न्द्विमोितनमुक्गता भजन्ते ेमाांदृढव्रताः ॥28॥

(28) परन्तु वे पुण्यात्मा लोग, ल्जनका पाप नष्ट िो गया िै (जो पाप के प्रतत मर चुके िैं) द्वैत के मिो से मुक्त िोकर अपनेव्रतों पर ल्स्थर रिते िुए मेरी पूजा करते िैं।

पाप ककसी ववधान या रूहढ़ का उल्लंघन निीं ंिै, अवपतुयि सारी सीशमतता, अज्ञान, जीव की उस स्वाधीनता के आग्रि का, जो दूसूरों को िातन पिुंचाकर अपना लाभ तनकालना चािती िै, केन्द्रीय स्रोत िै। जब इस पाप को त्याग हदया जाता िै, जब इस अज्ञान पर ववजय पा ली जाती िै, तब िमारा जीवन उस एक भगवान् ्की सेवा में बीतता िै, जो सबमें ववद्यमान िै। इस प्रकक्रया में भल्क्त गम्भीरतर िोती जाती िै और परमात्मा का ज्ञान

---

362 को वेवत्त भूमन् ्भगवन् ्परात्मन् ्योगेश्वरोततभवतल्स्त्रलोक्याम्।् क्व वा कथं ंवा कतत वा कदेतत ववस्तारवन् ्क्रीडशस योगमायाम् ्॥

तब तक बढ़ता जाता ि◌ै, जब तक कक वि सवव्वयापी एक आत्मा के दिनव तक निींपुिंच पाता। वि तनत्य जीवन, जन्म और मरण से मुल्क्त ि◌ै। तुकाराम किता ि◌ै :

"मेरे अन्दर ववद्यमान आत्मा अब मर चुकी ि◌ै,
और अब उसके आसन पर तू ववराजमान ि◌ै;
िाँ, इस बात को म,◌ै तुका, प्रमाखणत करता ि◌ं◌ू
अब 'म'◌ै या 'मेरा' ि◌षे निीं ि◌ै।"[363]

जरामरणमोक्षाय मामाधश्रत्य यतस्न्त ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्रमध्यात्म ◌ंकम गचाणखलम् ॥29॥

(29) जो लोग मुझमें ि◌रण लेते ि◌ैं, और जरा और मरण से मुल्क्त पाने के शलए प्रयत्न करते ि◌ैं, वे ◌े सम्पूण वब्रह्म
को और सम्पूण वआत्मा को और कम वके सम्बन्ध में सब बातों को जान जाते ि◌ैं।
'अध्यात्मम्'◌् व्यल्क्तक आत्मा के नीचे ववद्यमान वास्तववकता ि◌ै।364

साधधभूताधधदिै ◌ं मा ◌ं साधधया ◌ं च ये विदुः। प्रयाणकालेऽवप च मा ◌ं ते `विदुयुक्गतचेतसः ॥30॥

(30) जो मुझेइस रूप में जानते ि◌ैं कक म ◌ैंि◌ी एक ि◌ं◌ू, जो भौततक जगत् ◌्का औ देवीय पक्षों का और सब यज्ञों का ि◌ासन करता ि◌ं◌ू, वे योग में हदल में लीन करके इस लोक से प्रयाण करते समय भी मेरा ज्ञान प्राप्त करते ि◌ै
मिसे किा गया ि◌ै कक यिांसे प्रस्थान करते समय ि◌म केवल कुछ आनुमातनक शसद्धान्तों को ि◌ी याद न

रखें, अवपतु उस परमात्मा को उसके सा रूपों में जानें, उस पर ववश्वास करें और उसकी पूजा करें।

यिां ◌ंकुछ नये पाररभावषक ि◌ददों का प्रयोग ककया गया ि◌ै और अगले अध्याय में अजुनव उनका अथ व पूछता ि◌ै। भगवान् ◌्को केवल उसके अपनेरूपने ि◌ी निीं ◌ंजानना, अवपतु प्रकृतत में उसके प्रकट रूपों में भी, वस्तुरूपात्मक और कतात्वमक तत्त्व में भी, कमों और यज्ञ के शसद्धान्त में भी जानना ि◌ै। गुरु अगले अध्याय में इन सबकी व्याख्या संक्षेप में करता ि◌ै।

इतत ... ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ।

---

363 मैकतनकोल : 'साम्सऑ हदमराठासेण्ट्स ' (1919), पृ.◌़79

364 प्रत्यगात्मववषय वस्तु । - ि◌ंकराचाय।व

यि ि ैज्ञान और विज्ञान का योग' नामक सातिांअध्याय ।

अध्याय 8

ववश्व के ववकास का क्रम

अजुनव प्रश्न करता ि ै

अजुनग उिाच

ककां तद्ब्रह्म ककमध्यात्म ककां कम गपुरुषोत्तम ।

अधधभूतांच ककांप्रोक्तमधधदैांककमुच्यते॥॥

ि1

अजुनव ने पूछा :

(1) ब्रह्म क्या ि?ै आत्मा क्या ि?ै और ि ेपुरुषोत्तम, कम वक्या ि?ै भूतों का (तत्त्वों का) क्षेत्र कौन-सा कि जाता ि?ै देवताओंका क्षेत्र कौन-सा कि जाता ि?ै

आत्मा में ववद्यमान वस्तु क्या ि ै(अध्यात्मम्) ? देवताओं में ववद्यमान वस्तु क्या ि ै(अधधदैवम्) ? यज्ञ में ववद्यमान वस्तु क्या ि ै(अधधयज्ञम्) ? सब भूतों में ववद्यमान वस्तु क्या ि ै(अधधभूतम्) ? इन सब प्रश्नों का उत्तर यि ि ैकक परम आमा सब शसरजी गई वस्तुओं, सब यज्ञों, सब देवताओं और सब कमों में व्याप्त ि।ै ये सब केवल भगवान् की ववववध अशभव्यल्क्तयां ि।ै'[365]

अधधयज्ञः कथ ांकोऽन दिेऽस्स्मन्मधुसूदन ।

प्रयाणकाले च कथ ांज्ञेयोऽशस तनयतात्मशभः ॥2॥

(2) िमेधुसूदन (कृष्ण), इस िरीर में यज्ञ का क्षेत्र (अंि) कौन-सा ि ैऔर कैसे ? कफर ल्जस व्यल्क्त ने अपने-आप को वि में कर शलया संसार से प्रस्थान के समय तुझको ककस प्रकार जान पाएगा? आध्याल्त्मक मनोवृवत्त वाले लोगों को मृत्यु के समय तुम्िारा ज्ञान ककय प्रकार िोता ि?ै

कृष्ण उत्तर देता ि ै

365 ममैवरुपान्तराखण। अशभनवगुप्त।

श्री भगिानुिाच

अक्षरां ब्रह्म परम ांस्िभािोऽध्यात्ममुचुयते ।

भूतूभािोद्भिकरो विसगःग कमसगक्षांज्ञतः ॥3॥

श्री भगवान् ने किा :

ब्रह्म (या परम) अनश्वर ि, सवोच्च (अन्य सब वस्तुओं से उच्चतर) ि। स्वभाव को िी आत्मा किा जाता

ि। कम वउस सृजनील िल्क्त का नाम ि, जो सब वस्तुओं को अल्स्तत्व में लानेका कारण ि।

स्िभाि : ब्रह्म जीव का रूप धारण कर लेता ि; अध्याय 15, 71[366]

अध्यात्म : िरीर का स्वामी, उपभोक्ता।367 यि ब्रह्म की वि प्रावस्था ि जेवैयल्क्तक आत्मा बनती ि।

ब्रह्म एक अपररवतनविील स्वतः अल्स्तत्व ि, ल्जस पर वे सब वस्तुएं-जेजीती िैं, गतत करती िैं और ल्जनका अल्स्तत्व ि-आधाररत िैं। आत्म मनुष और प्रकृतत में ववद्यमान आत्मा ि। कम ववि सृजनील संवेग ि, ल्जससे जीवन के रूप उद्भुत िोतेिैं। ववश्व का समूचा ववकास कम वकिलाता ि। भगवान इसे िुरू करता ि और कोई कारण निींकक वैयल्क्तक जीव इसमें भाग न से। अपररवतनविील ब्रह्म, जो कतृत्वव और वस्तु-रूपात्मकता के सब द्वन्द्वों से ऊप ि, ववश्व के प्रयोजन की दृल्ष्ट से तनत्य कताव, अध्यात्म बन जाता ि, जो तनत्य वस्तु-रूप के-जो कक प्रकृतत का पररवतनविील अंि ि, जो सब रूपों का आधार ि-मुकाबले में िोता ि, जब कक कम वसृजनील ल्क्त ि, गततववधध का मूल तत्त्व। ये सब स्वाधीन निीं ि, अवपतुएक िी भगवान के ववशभन्न प्रकट-रूप कताव और वस्तु-रूप की परस्पर कक्रया, जो कक ववश्व का केन्द्रीय आदि वि, ब्रम् परमात्मा की अशभव्यल्क्त ि, जो कताव और वस्तु-रूप के भेदभाव से ऊपर ि ।

माण्डूक्य उपतनषद् में इस बात को जोर देकर किा गया ि कक जिांताबा अतनवचवनीय और तनगुणव'[368] ि, विांजीववत परमात्मा संसार का िासक ि, अन्तयामवी आत्मा ।369 ब्रह्म और ईश्वर, परब्रह्म और व्यल्क्तक परमात्मा का अन्तर उपतनषद् में स्पष्ट रूप से प्रततपाहदत ककया गया ि। व्यल्क्तक परमात्मा ववश्व का स्वामी ि, जब कक ब्रह्म ववश्वोत्तर वास्तववकता ि।

अधधभूतांक्षरो भािः पुरुषश्चाधधदैितम्।

366 स्वस्य एव ब्रह्मण एव अंतिया जीवरूपेण भवनं स्वभावः । - श्रीधर ।

367 स एवात्मानं दिेमधधकृत्य भोक्तृतूवेन वतमवानोऽध्यात्मिददेनोच्यते । श्रीधर ।

368 अदृष्टम्, अव्यवियम्, अग्राह्यम्, अलक्षणम्, अधचन्त्यम अव्यपदेश्यम्, एकात्मप्रत्ययसारम प्रपचचोपिमम्, ान्तिम्, शिवम्, अद्वैतम् । 7

369 एष सवेश्वर, एष सवज्ञव, एषोऽन्तयामवी येष योतनः सवस्वय प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् । 6

अधधयज्ञोऽमिमेल दि दिभृतृाां ि‍र ॥4॥

(4) सब शसरजी गई वस्तुओंका आधार पररवतनविील प्रकृतत ि‍ै : दैवीय तत्त्वों का आधार ववश्व की आत्मा ि‍ै। और सब यज्ञों का आधार, ि‍े ि‍रीरधाररयों में श्रेष्ठ (अजुनव), इस ि‍रीर में म ैंस्वयांि‍ि‍ूां।

यिां ‍कफर लेखक यि चािता ि‍ै कक ि‍म ब्रह्म का उसके सब पिलुओंकी दृल्ष्ट से अखण्ड ज्ञान प्राप्त करें। एक अपररवतनविील हदव्य ि‍ल्क्त ि‍ै ब्रह्म; एक व्यल्क्तक परमात्मा ि‍ै ईश्वर, जो सम्पूण वभल्क्त का पाल ि‍ै; एक ववश्वात्मा, हिरण्यगभ,व जो ववश्व का अध्यक्ष देवता ि‍ै; और व्यल्क्तक आत्मा जीव ि‍ै, जो ब्रह्म के उच्चतर स्वभाव और पररवतनविील प्रकृतत में सियोग देता ि‍ै। देखखए 7,41

मृतूयु के क्षण में आत्मा का ध्यान जिांरिता ि‍ै, विींवि पिुंचती ि‍ै

अन्तकाले च मामि स्मरन्मुकुत्िा कलिेरम्।‍्
यः प्रयातत स मद्भिा ‍ांयातत नास्त्यत्न सशांयः ॥5॥

(5) मृतूयु के समय जो कोई केवल मेरा ध्यान करता ि‍ुआ अपने ि‍रीर का त्याग करके इस संसार से प्रयाण करता ि‍ै, वि मेरे पद को प्राप्त ि‍ोता ि‍ै, इसमें कोई संयि निीं ि‍ै।

इस श्लोक में कफर 7, 30 में कि‍ी गई बात को उठाया गया ि‍ै। उपतनषों में मृतूयुके क्षण में ववद्यमान मन की दिा के मित्त्व पर बिुत जोर हदया छान्दोग्य, 3, 14, 1; प्रश्न उपतनषद, 3, 10। ि‍म अल्न्तम क्षणों में परमात्मा का ववचार केवल तभी कर पाएंगे, जब कक ि‍म पिले भी उसके भक्त रि ि‍ों

ये ये ि‍ावप स्मरम्भिाांत्यजत्यन्ते कलिेरम् ‍्।
त ‍ांतमेतत कौन्तेय सदा तद्भिाभावितः ॥6॥

(6) िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव) अल्न्तम समय में मनुष्य ल्जस-ल्जस (अल्स्तत्व) की दिा का ध्यान करता ि‍ुआ रीर का त्याग करता ि‍ै, वि उसके में सदा मग्न रिता ि‍ुआ उस दिा को ि‍ी प्राप्त करता ि‍ै।

सदा तद्भिाभावितः : सदा उसके ववचार में मग्न रिता ि‍ुआ ।

केवल अल्न्तम क्षण की आकल्स्मक कल्पना निीं,‍ अवपतुसम्पूण वजीवन का अनवरत प्रयत्न वि वस्तु ‍ु

ि, जो भववष्य का तनणयव करती ि‍ै।

तद्भिाभावितः : ि‍ददिः इसका अथ वि‍ै - उसकी दिा (भाव) में पिचाया गया (भाववतः)। आत्मा उसी दिा को प्राप्त ि‍ोती ि‍ै, ल्जसका कक वि अंततम क्षणों में ध्यान कर री ि‍ोती ि‍ै। ि‍म जो कुछ सोचते ि‍ैं, विी बन

जाते ि ैं। िमसे अतीत के ववचारों से िमारे वतमवान जन्म का तनधारवण िुआ ि ै और िमारे वतमवान ववचारों से भववष्य के जन्म का तनधारवण िोगा।

तस्मात्सिेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

मय्यवपतगमनोबुद्धधमामेंिैष्यस्यसशांयम् ्॥7॥

(7) इसशलए तू सदा मुझेयाद कर और युद्ध कर। जब तेरा मन और बुद्धध ओर एकाग्र रिेंगे, तो तू तनस्सन्दिे

मुझको िी प्राप्त िोगा।

सिेषु कालेषु : सब समय । केवल उसी दिा में िम संक्रान्तिमय अंततम क्षणों में परमात्मा का ध्यान कर

पाने में समथ विोंगे। - श्रीधर ।

माम् ्अनुस्मर युध्य च : मुझेयाद रख और युद्ध कर। यि युद्ध, ल्जसका यिां ंकरना अभीष्ट ि ै, भौततक स्तर पर निीं ि ै, क्योंकक वि युद्ध सदा निीं ककया सकता। यि तो अन्धकार की िल्क्तयों के ववरुद्ध युद्ध ि ै, ल्जसे िमें तनरन्तर जारी रखना ि ै।

मिें िाश्वतता की अपनी चेतना को बनाए रखते िुए और अपररवतनविील परमात्मा के सान्न्नध्य में रिितेुए संसार के काय वमें लगे रिना चाहिए। "जैसे नतकवी जब ववशभन्न लयों के अनुसार नृतूय कर रिी िोती ि ै, तब भी वि अपना ध्यान अपनेशसर पर रखे िए घडे ेपर केन्न्द्रत रखती ि ै, उसी प्रकार सच्चा धमात्वमा मनुष्य अनेक कायों को करते िुए भी परमेश्वर के चरणकमलों के ध्यान को कभी निींछोडता।"[370] िमें जीवन के सब कमों को उस परमात्मा के प्रतत अवपतव कर देना िोगा, जो िमारे जीवन को सब ओर से घेरे िुए ि ै, जीवन में अन्दर
घुसा िुआ ि ै और उस जीवन को साथकव बनाता ि ै। केवल परमात्मा का स्मरण मात्र िी सब कायों को पववत्र बना देता ि ै। तुलना कील्जए: "म ैंभ्रमातीत (अच्युत) भगवान को प्रणाम करता िूं। उसका ध्यान करने से या उसका नाम जपने से तप, यज्ञ और कक्रयाओंमें िुई सब त्रुहटयां ंदूरू िो जाती ि ैं। ".[371]

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगाशमना ।

परम ंपुरुषांहदव्यां यातत पाथानुगधचन्तयन् ्॥8॥

(8) िे पाथ व(अजुनव), जो व्यल्क्त तनरन्तर अभ्यास द्वारा धचत्त को योग में लगाकर उस परम पुरुष का ध्यान

---

370 पुणानुपुङ्ग ववषयानुपसेवमानो धीरो न मुचचतत मुकुन्दपदारववन्दम् ्।
सङ्गीतवाद्यलयतालविंगतावप मौशलस्थकुम्भपरररक्षणधीनटवीव ॥

371 यस्य स्मृतूया च नामोक्त्या तपोयज्ञकक्रयाहदषु।
न्यून सम्पूणतवां ंयातत सद्यो वन्दे तमच्युतम् ्॥

करता ि ै, और अपनेधचत्त को किंभटकने निीं ेदेता, वि अवश्य ि ी उस हदव्य और सवोच्च पुरुष को प्राप्त करता ि ै।

मृतूयुि–य्या पर ककया जानेवाला पश्चात्ताप ि मारी रक्षा निींकर सकेगा, अवपतु तनरन्तर अभ्यास और

भगवान् के प्रतत अववचल समपणव द्वारा ि मारा उद्धार ि ोगा।

कवि पुराणमनुशाशसतार मणोरणीयासांमनुस्मरेद्यः ।
सिस्गय धातारमधचन्त्यरूप माहदत्यिण गतमसः परस्तात् ॥9॥

(9) जो व्यल्क्त उस द्रष्टा (कवव), उस पुरातन ि ासक का ध्यान करता ि ै, जो कक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ि ै और सबका धारण करने ेवाला ि ै, ल्जसके रूप का ध्यान भी निीं ंककया जा सकता और जो अन्धकार से परे सूय वके समान रंग वाला ि ै;

देखखए श्वेताश्वतर उपतनषद्, 3, 18।

कवि : द्रष्टा, देखने वाला। यिां इसका अथ वि ै सवज्ञव।'[372]

यिां ंसम्बन्धरहित, अपररवतनवीिल ब्रह्म का वणनव निीं ंि ै, अवपतु ईश्वर का वणनव ि ै, जो कक व्यल्क्तक

परमात्मा ि ै, द्रष्टा ि ै, स्रष्टा ि ै और ववश्व का ि ासक ि ै। वि अन्धकार का ववरोधी प्रकाि ि ै।373

प्रयाणकाले मनसाचलेन, भक्त्या युक्तो योगबलेन चैि।
स्िोमधाये प्राणमािेश्य सम्यक्, स त ंपरं पुरुषमुपैतत हदव्यम् ॥10॥

(10) जो व्यल्क्त इस संसार से प्रस्थान के समय मन को भल्क्त और योगबल से ल्स्थर करके और अपनी प्राणिल्क्त को भौंिों के मध्य में भली भांतत स्थावपत करके वैसा करता ि ै, वि उस हदव्य परम पुरुष को प्राप्त ि ोता ि ै।

स्पष्ट ि ै कक ऐसा कर पाना केवल उन लोगों के शलए ि ी सम्भव ि ै, जो योग की ि ल्क्त द्वारा अपनी मृतूयु

के समय का चुनाव स्वय करते ि ैं।374

यदक्षर ि ेदविदो ि दस्न्त, विशस्न्त यद्यतयो ि ीतरागाः ।
यहदच्छन्तो ब्रह्मचय गचरस्न्त, तत्ते पदां सग्रांिेण प्रिक्ष्ये ॥11॥

---

372 कववं क्रान्तदशिनं सवज्ञवम्। ि ंकराचाय व।

373 प्रकषरूवपत्वेन तमोववरोधधनम्। - मधुसूदन

374 योगेनान्ते तनुत्यजाम्। - काशलदास; रघुवंि 1,8

(11) मैं संक्षेप में तेरे सामने उस दि का वणनव करता िंूं, ल्जसे वेद को जानने वाले अनश्वर (अक्षर) कितेिं;
वीतराग मुतन लोग ल्जसमें प्रवेि करते िैं और ल्जसकी कामना से वे ब्रह्मचय वका जीवन बबताते िैं।
देखखए कठोपतनषद्, 2, 151 "ल्जस िदद का सब वेद जाप करते िैं और सब तप ल्जसकी घोषणा करते िैं
और ल्जसकी कामना करते िुए धाशमकव ल्जज्ञासा वाले व्यल्क्त जीवन बबताते िैं वि िदद म ैंसंक्षेप में तुझेबताए
देता िंूं।" ईश्वरवादी लोग इसे सवोच्च स्वग,व 'ववष्णु का परम स्थान' समझतेिं; ववष्णोः परमंपदम् ्।

सिद्वाराणण सयांम्य मनो हृहद तनरुध्य च।
मूधू्याधगायात्मनः प्राणमास्स्थतो योगधारणाम् ्॥12॥

(12) िरीर के सब द्वारों को संयम में रखकर, मन को हृदय में रोककर, प्राणिल्क्त को मूधा व(शसर) में ल्स्थर
करके और योग द्वारा एकाग्र िोकर;
िरीर को द्वारों वाली नगरी किा जाता िै: 5, 13। हृदय में रोके गए मन से अशभप्राय िै कक वि मन,
ल्जसके कायों को रोक हदया गया िै। योगिास्त्र में बताया गया िै कक जो आत्मा हृदय से सुषुम्ना नाडी में से िोकर
शसर में ल्स्थत ब्रह्मरन्ध्र तक पिुंचती िै और विांसे तनकलती िै, वि परमात्मा के साथ एकाकार िो जाती िै।

ओशमत्येकाक्षरां ब्रह्म व्यािरन्मामनुस्मरन् ्।
यः प्रयातत त्यजन्देिां स यातत परमाांगततम् ्॥13॥

(13) और जो एक अक्षर ओऽम् ्(जो कक ब्रह्म िै) का उच्चारण करता िुआ मुझे ेस्मरण करता िुआ अपने
िरीर को त्यागकर इस संसार से प्रयाण करता िै, वि उच्चतम लक्ष्य (परम गतत) को प्राप्त िोता िै।
'ओऽम्'् िदद उस ब्रह्म का प्रतीक िै, ल्जसे ककसी प्रकार अशभव्यक्त निीं ंककया जा सकता।
माम् ्अनुस्मरन् ्: मुझेयाद करता िुआ। उच्चतम ल्स्थतत, योगसूत्र के अनुसार, परमात्मा की उपासना

द्वारा प्राप्त की जा सकती िै।'[375]

अनन्यचेताः सततां यो मा ांस्मरतत तनत्यशः ।
तस्यािां सुलुभः पाथ गतनत्ययुक्तस्य योधगनः ॥14॥

(14) जो मनुष्य अन्य ककसी वस्तु का ध्यान न करता िुआ तनरन्तर मेरा िी स्मरण करता िै, वि अनिुाशसत
योगी (या वि, जो भगवान् ्के साथ शमलकर एक िो गया िै) मुझे ेसरलता से प्राप्त कर लेता िै।

---

375 समाधधशसद्धधरीश्वरप्रखणधानात् ।्

मामुपेत्य पुनजन्गम दुःखालयमशाश्तिम्।ः्
नाप्नुिस्न्त मिात्मानः सशांसद्धध ांपरमाांगताः ॥15॥

(15) मुझ तक पिुंच जानेके बाद वे मिान् ्आत्माएं पुनजन्वम ग्रिण निीं ंकरतीं, जो दुःख का घर िै और अस्थायी िै, क्योंकक वे आत्माएं परम शसद्धध को प्राप्त कर चुकी िोती िैं।

9, 33 की हटप्पणी देखखए।

आब्रह्मभुिनाल्लोकाः पुनरािततनगोऽजुनग ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनजन्गम न विद्यते ॥16॥

(16) ब्रह्मा के लोक से लेकर नीचे के सब लोक ऐसे िैं, ल्जनसे कफर पुनजन्वम की ओर लौटना िोता िै। परन्तु िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), मुझ तक पिुंच जाने के बाद कफर ककसी को पुनजन्वम ग्रिण निीं ंकरना पडता।

सब लोक पररवतनव के विवती िैं।376

सिरयुगपयन्गतमियद्ब्रह्मणो विदुः ।
रावत्त युगसिसान्ता ांतेऽिोरात्रविदो जनाः॥17॥

(17) जो लोग इस बात को जान लेते िैं कक ब्रह्मा का एक हदन एक िजार युगों की अवधध का िोता िै और यि कक ब्रह्मा की राबत्र एक िजार युग लम्बी िोती िै, वे हदन और रात को जाननेवाले व्यल्क्त िैं।

हदन ववश्व की अशभव्यल्क्त का काल िै और राबत्र अनशभव्यल्क्त का काल। दोनों समान अवधध के िैं और एक के पश्चात् ्एक आने वाले िैं।

अव्यक्ताद्व्यिक्तयः सिाःग प्रभिन्त्यिरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैिाव्यक्तसज्ञां के ॥18॥

(18) हदन के आनेपर अव्यक्त से सब वस्तुए प्रकट िो जाती िैं और राबत्र के आने ्पर वे सब वस्तुए कफर उसी अव्यक्त किी जानेवाली वस्तु में ववलीन िो जाती िैं।

यिां ंअव्यक्त का अशभप्राय प्रकृतत से िै।

भूतग्रामः स एिायांभूत्िा भूत्िा प्रलीयते।

---

376 पुनरावततनवःकालपररल्च्छन्नत्वात्।् - किराचाय।व

रात्र्यागमेऽशि: पाथ गप्रभित्यिरागमे ॥ 19॥

(19) ि पाथ व(अजुनव), यि विी बार-बार उत्पन्न िोनेवाला अल्स्तत्वमान् ्वस्तुओंका समि ूबबल्कुल बेबस-सा राबत्र के आगमन पर ववलीन िो जाता िै और हदन के आगमन पर कफर अपनेअल्स्तत्व में प्रकट िो जाता िै।

सब अल्स्तत्वमान् ्वस्तुओं(भूतों) का समय-समय पर िोने वाला आववभाव और ववलय सब वस्तुओं के

स्वामी को प्रभाववत निीं करता।

परस्तस्मात्तुभािोऽन्योव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सिेषुभूतेषु नश्यत्तु ुन विनश्यतत ॥20॥

(20) परन्तु इस अव्यक्त से भी परे एक और अव्यक्त सनातन अल्स्तत्व िै, जो सब अल्स्तत्वमान वस्तुओंके नष्ट िो जाने पर भी नष्ट निीं िोता।

यि ऊध्वलवौककक (लोकोत्तर) अव्यक्त िै, जो सब प्रकार के पररवतनवों में भी अपररवतनविील और तनत्य िै। कई बार अव्यक्त के दो प्रकारों में अन्तर केजा जाता िै; एक तो वि अव्यक्त, ल्जसमें वे सब प्राणी प्रवेि करते िैं, ल्जनका उद्धार निीं ंिुआ; और एक लोकोत्तर अव्यक्त, ल्जसे 'िुदुधता' रु जाता िै और ल्जसे साधारण मन अनुभव िी निीं कर सकता, और ल्जम में जाता िै प्रवेि करती िैं, ल्जनका उद्धार िो चुका िै। हदन और रात की लयबद्ध गतत उन सब लौककक भूतों पर िोती िै, जो िाश्वत निीं ंिै। प्रकक्रया से परे भगवान् ्िै, अव्यक्त ब्रह्म, जो सवोच्च लक्ष्य िै। जो उसे प्राप्त कर लेते िैं, वे हदन और रात के परे पिुंच जाते िैं।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमािु: परमांगततम।
य ंप्राप्य न तनितन्गते ेतद्धाम परम ंमम ॥21॥

(21) यि अव्यक्त अनश्वर किलाता िै। उसे सवोच्च ल्स्थतत किा गया िै। जो उसे प्राप्त कर लेते िैं, वे वापस निीं ंलौटते। विी मेरा परम धाम (तनवास-स्थान) िै।

मि जन्म और मरण के या ववश्व की अशभव्यल्क्त (प्रभव) और अनशभव्यल्क्ल (प्रलय) के चक्र से बच

जाते िैं। उस अतनवचवनीय ब्रह्म के धाम तक पिुंचने के शलए, ल्जसका कक धाम लौककक अशभव्यल्क्त से परे िै, िमें अपनेसमूचे व्यल्क्तल को भगवान् ्को अवपतव कर देना िोगा। िाश्वत अव्यक्त की लोकोत्तर दा भी भल्क्त या उपासना द्वारा प्राप्त की जा सकती िै। उस ब्रह्म के साथ अपनी सम्पूण वचेतन सत्ता के संयोग द्वारा िम पूण व तनष्पवत्त तक पिुंच जाते िैं। व्यल्क्तक परमात्मा, ईश्वर का परम धाम परब्रह्म िै। साथ िी देखखए, 8, 21

पुरुषः स परः पाथ गभक्त्या लभ्यस्त्निन्यया ।

यस्यान्तःस्थातन भूतातन येन सिशगमदां ततम्22॥

(22) ि पाथ व(अजुनव), वि परम पुरुष, ल्जसमें सब भूत तनवास करते िैं और ल्जससे यि संसार व्याप्त िै, अनन्य भल्क्त द्वारा प्राप्त ककया जा सकता िै।

दो माग व

यत्न काले त्निािृवृत्तमािृवृत्त ांचैि योधगनः ।

प्रयाता यास्न्त तांकालांक्षियाशम भरतषभा॥23॥

(23) ि भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), अब म ैंतुझेवि समय बताता िूं, ल्जसमें संसार से प्रयाण करने वाले योगी कफर वापस निीं लौटते और वि समय भी बताता िूं, ल्जसमें प्रयाण करने वाले कफर वापस लौट आते िैं।

अस्ग्नज्योततरगिः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत प्रयाता गच्छस्न्त ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥24॥

(24) अल्ग्न, प्रकाि, हदन, िुकुल पक्ष और उत्तरायण (ल्जन हदनों सूय वभूमध्य रेखा से उत्तर की ओर रिता िै) के छः मिीनेयि वि समय िै, ल्जसमें इस संसार से प्रस्थान करने वाले ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म तक पिुंच जाते िैं।

धूमो रात्ररस्तथा कृष्णः षण्माषा दक्षक्षणायनम् ।
तर चान्द्रमस ांज्योततयोगी प्राप्य तनिततेग ॥25॥

(25) धुआं, राबत्र, कृष्णपक्ष और दक्षक्षणायन (ल्जन हदनों सूय वभूमध्यरेखा से दक्षक्षण की ओर रिता िै) के छः मिीने—यि वि समय िै, ल्जसमें प्रयाण करनेवाले योगी चन्द्रमा की ज्योतत प्राप्त करके वापस लौट आते िैं।

किा जाता िै कक िमारे मृत पूवजव (वपतर) चन्द्रमा के लोक में तनवास करते िैं और पृथ्वी पर वापस लौटने का समय िोने तक विीं रिते िैं।

शुक्लकृष्णे गती ह्यतेजगतः शाश्िते मते।
एकया यात्यनािृवृत्तमन्ययािततेग पुनः ॥26॥

(26) प्रकािमय और अन्धकारमय, संसार के ये दो माग विाश्वत माग वसमझे जाते िैं। एक से जानेवाला वापस निीं लौटता, जब कक दूसूरे से जानेवाला वापस लौट आता िै।

जीवन प्रकिा और अन्धकार के मध्य चल रिा एक संघष वि। इनमें से पिला मुल्क्त का कारण बनता िै और वपछला पुनजन्वम का। यिां पर लेखक के युगान्त-सम्बन्धी एक ववश्वास का उपयोग एक मिान् ् आध्याल्त्मक सत्य को प्रकट करने के शलए ककया िै और वि सत्य यि िै कक जो लोग अज्ञान की रातत में भटकते रिते िैं, वेवपतरों के माग वसे जाते िैं और वे पुनजन्वम के विवती रिते िैं और जो लोग ज्ञान के प्रकिा में रिते िैं और ज्ञान के माग वपर चलते रिते िैं, वे पुनजन्वम के बन्धन से मुल्क्त पा लेते िैं।

नैते सृती पाथ गजानन्योगी मुहुयतत कश्चन।
तस्माल्त्सैषु कालेषु योगयुक्तो भिाजुनग ॥27॥

(27) िे पाथ व(अजुनव), जो योगी इन मागों को जान लेता िै, वि कभी भ्रम में निीं पडता। इसशलए िे अजुनव, तू सदा योग में जुटा रि।

तू चािे कुछ भी काम क्यों न कर रिा िो, परन्तु तनत्यब्रह्म के ध्यान को कभी मत छोड।

वेदेषु यज्ञेषुतपःसु ुचैव, िानेषु यत्पुण्यफल ंप्रहदष्टम् ्।
अत्येतत तत्सिशगमदां विहदत्िा, योगी परां स्थानमुपैतत चाद्यम् ्॥28॥

(28) यि सब जान लेनेके बाद योगी वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तप और दान के पुण्य से प्राप्त िोने ेवाले फलों के परे पिुंच जाता िै और आहद तथा परम स्थान को प्राप्त करता िै।

वेदों के अध्ययन, यज्ञों, तपों और दानों के फलस्वरूप जो ल्स्थततयां प्राप्त िोती िैं, वे तनम्नतर ल्स्थततयां िोती िैं, ल्जन्िें वि योगी पार कर जाता िै, जो उनसे ऊपर उठकर अल्न्तम लक्ष्य तक पिुंचता िै।

इतत... अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ।

यि िै 'अक्षरब्रह्म का योग'' नामक आठिां अध्याय ।

अध्याय 9

भगवान् ्अपनी सृल्ष्ट से बडा िै

सबसे बडा रिस्य

श्री भगािानुिाच

इदां तु तेगुहुयतम ांप्रिक्ष्याम्यनसूयिे ।

ज्ञानवांज्ञिानसहितयांज्ज्ञात्िा मोक्ष्यसेऽशुभात् ्॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(1) ैंतुझको, जो कक ईष्यावसे रहित िै, ववज्ञानसहित ज्ञान का यि गम्भीर रिस्य बतलाता िूं्, ल्जसे जानकर तू सब बुराइयों से मुक्त िो जाएगा।

विज्ञानसहितम्, ् अनुभवयुक्तम्। ् - िंकराचाय।व परन्तु िम ज्ञान का अथ व'प्रबोध' और ववज्ञान का अथ व "ववस्तृत ज्ञान' मानते िैं। इनमें से पिला आधधववद्यक सत्य िै, जब कक वपछला वैज्ञातनक ज्ञान िै। िमारे पास सत्य को, जो अन्तज्ञानवात्मक और साथ िी साथ मानवीय मन का बौद्धधक ववस्तार िै, उपलदध करनेके शलए ये ववशभन्न और परस्परपूरक साधन ववद्यमान िैं। िमें प्रबोध और ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, वास्तववकता में प्रवि करना चाहिए और वस्तुओंके स्वभाव को गिराई तक समझना चाहिए। दितवनक लोग यि शसद्ध कर देते िैं कक परमात्मा का अल्स्तत्व िै, परन्तु उनका परमात्मा के सम्बन्ध में ज्ञान परोक्ष िै; मुतन लोग यि बताते िैं कक उन्िोंने परमात्मा की वास्तववकता को अपनी आत्मा गिराइयों में अनुभव ककया िै और उनका ज्ञान प्रत्यक्ष िै।' की[377]

देखखए 3, 41; 6, 8।

राजविद्या राजगुहुयांपविलशमदमुत्तमम् ्।

प्रत्यक्षािगम ांधम्य गसुसुखु ांकतुमगव्ययम् ्॥2॥

(2) यि सबसे बडा ज्ञान िै; सबसे बडा रिस्य िै; यि सबसे अधधक िै िै; यि प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जाना जाता िै; यि धमानुवकूल िै। इसका अभ्यास करना सरल िै और यि अनश्वर िै।

राजविद्या, राजगुह्यम् ्: िददाथ वि ज्ञान का राजा, रिस्यों का राजा, ककन्तुभावाथ वि सबसे बडा ज्ञान, सबसे बडा रिस्य ।

प्रत्यक्षािगमम् ्: यि तकव का ववषय निीं, अवपतु ुप्रत्यक्ष अनुभव द्वारा शसद्ध िै। यि पररचय द्वारा प्राप्त ज्ञान िै; केवल वणनव, किी-सुनी बात या ककसले की बताई गई बात पर आधाररत ज्ञान निीं ंिै। सत्य तो स्वयंअपने प्रकार में चमक रिा िै और इस बात की प्रतीक्षा में िै कक यहद रुकावट डालनेवाले आवरण िटा हदए

---

377 अल्स्तब्रह्मेततचेद्वेदपरोक्षज्ञानमेव तत्। ् अि (वाअल्स्म) ब्रह्मेतत चेद् वेद अपरोक्ष तदुच्यते े॥

जाएं तो वि िमारे द्वारा देख शलया जाए। मनुष्य को अपनेववकशसत और पववत्र अन्तज्ञानव द्वारा भगवान् ्को अपनेआत्म के रूप में िी देखना िै।378 तुलना कील्जए, प्रबोधववहदतम्।् केन उपतनषद् 2, 121

अश्रद्दधानाः पुरुषा धमस्गयास्य परन्तप ।

अप्राप्य मा ांततनितन्गतेमृतूयुससांाररत्मतगन ॥3॥

[ि]ेत्रुओंको सताने वाले (अजुनव), जो लोग इस माग वमें श्रद्धा निीं ंरखते, वे मुझे ेप्राप्त न करके कफर मत्य वजीवन (संसार) के माग वमें लौट आते िैं।

यि सवोच्च ज्ञान अवतारधारी भगवान् ्कृष्ण की ब्रह्म के साथ, जो सबका मूल िै, एकरूपता का ज्ञान िै। मिं अल्न्तम प्रबोधन तब प्राप्त िोगा, जब कक िम अवतार की उपासना इस ज्ञान के साथ करेंगे। ब्रह्म का सीधा ध्यान कर पाना कििं ंअधधक कहठन िै। क्योंकक अजुनव श्रद्धावान् ्मनुष्य िै, इसशलए उसे यि रिस्य बताया गया ि। श्रद्धिीन लोगों को, जो इसे स्वीकार निीं करते, मुल्क्त प्राप्त निीं िोती, अवपतु वे कफर जन्म के बन्धन में आ जाते िैं। ल्जस श्रद्धा की मांग की गई िै, वि उद्धार को प्राप्त कर सकने वाले ज्ञान की क्षमता में श्रद्धा िै। ब्रह्म की स्वतंत्रता की ओर ववकशसत िोने के शलए पिला कदम िमारे अन्दर वव्यमान उस परमेश्वर में श्रद्धा का िोना िैजो िमारे अल्स्तत्व और कमों को संभाले िुए िै। जब िम उस आन्तररक ब्रह्म के प्रतत आत्मसमपणव कर देते िैं, तब योगाभ्यास सरल िो जाता िै। अवतारधारी भगवान् ्परम वास्तववकता का िी रूप िै

मया ततशमदां सिं ंजगदव्यक्तमूतूतनगा ।

मत्स्थातन सिभूगतूातन न चािां तेषुस्स्थतः ॥4॥

[इस] सारे संसार को मनैं अपने अव्यक्त रूप द्वारा व्याप्त ककया िुआ िै। सब प्राणी मुझमें तनवास करते िैं, ककन्तुम ैंउनमें तनवास निींकरता।

देखखए 7, 121

सम्पूण ववववश्व का अल्स्तत्व लोकातीत परमेश्वर के कारण िै और कफर भी इस संसार के रूप उस परमेश्वर को पूरी तरि न तो अपने अन्दर रखते िैं और न उसे अशभव्यक्त करते िैं। उसकी परम वास्तववकता दिकालाधीन वस्तुओंकी प्रतीतत से बिुत ऊपर िै।

न च मत्स्थातन भूतूातन पश्य मे योगमैशि्रम् ्।

भूतूभृनू्न च भूतूस्थो ममात्मा भूतूभािनः ॥5॥

---

378 न िस्तैनावप गुरुणा दृश्यते ेपरमेश्वरः ।

दृश्यते ेस्वात्मनैवात्मा स्वया सत्वस्थया धथया । -योगवाशिष्ठ ,6, 118,4

(5)और (कफर भी) सब भूतों (अल्स्ततवमान् ्वस्तुओं) का तनवास मुझमें निीं; मेरे इस हदव्य रिस्य को देख। मेरी आत्मा जो सब भूतों का मूल िै, वि सब भूतों को संभाले तो िुए िै, ककन्तु वि उनमें तनवास निीं ंकरती।

योगम् ्ऐश्ररम् ्: हदव्य रिस्य । परम ईश्वर से, सीशमत तत्त्व रूप में हदखाई पडनेवाले ववश्व के आववभाव की व्याख्या ब्रह्म की िल्क्त द्वारा की गई िै। भगवान् ्सब तत्त्वों का मूल िै, परन्तु वि उनके द्वारा अस्पृष्ट रिता िै। यि हदव्य िल्क्त का योग िै। यद्यवप वि सब सत्तावान् ्वस्तुओंको उत्पन्न करता िै, । इतना ऊपर िै कक िम यि भी निीं कि सकतेकक कफर भी वि परमात्मा उन करता िै। य वि उनमें तनवास बबलकुल ठीक-ठीक कि जाए, तो परमात्मा की अन्तयाशवमता का ववचार 'भी ऐसा िै कक ल्जसका समथनव निीं ंककया जा सकता। सब अल्स्तत्व उसकी दो प्रकार की प्रकार यती के कारण िैं। परन्तु क्योंकक उसकी अपनी उच्चतर प्रकृतत आत्मा िै, जो कक प्रकृतत और के काय वसे असम्बल्न्धत िै, इसशलए यि भी सत्य िै कक सब भूत अथातव वस्तुपरक और तनवास निींकरतींऔर न वि उनमें तनवास करता िै। वे एक िी िैं, कफर भी पृथक िै।

"जीव या िरीरी आत्मा िरीर को धारण करता िुआ और उसे संभालत िुआ अिंकार या आत्मबुद्धध द्वारा उससे धचपटा रिता िै। ककन्तु जीव के ववपरीत को म ैंयद्यवप सब भतों को धारण करता िै और संभालता िं. कफर भी म ैंउनमें तनवास औ निीं ंकरता क्योंकक म ैंअिंकार या आत्मबुद्धध से मुक्त िंूं।" श्रीधर।

गीता संसार को अस्वीकार निींकरती, जो कक परमात्मा के कारण ववद्यमान िै और ल्जसके पीछे, ऊपर और आगे परमात्मा िै। संसार परमात्मा के कारण ववद्यमान िै, जो परमात्मा संसार के बबना भी अपने-आपमें उससे कम निींरिेगा, जो कक वि वस्तुतः िै। परमात्मा के ववपरीत, संसार का अपना ववशिष्ट अल्स्तत्व उसके अपनेअन्दर निीं ंिै, इसशलए इसका अल्स्तत्व केवल सीशमत िै और परम निीं। यिां ंगुरु का झुकाव सवेश्वरवाद (पैनथीइज़्म) की ओर निीं, ल्जसका कथन िै कक प्रत्येक वस्तु परमात्मा िै, अवपतु िविवास्यवाद (पैनैन्धीइज़्म) की ओर िै, जो इस बात का सूचक िै कक प्रत्येक वस्तु परमात्मा के अन्दर ववद्यमान िै। ववश्व की प्रकक्रया परम ब्रह्म का पूव-वप्रकटन निीं ंिै। कोई भी सीशमत प्रकक्रया परम ब्रह्म को अल्न्तम रूप से और पूरी तरि से अशभव्यक्त निीं ंकर सकती, िालांकक यि संसार परमात्मा का सजीव प्रकटन िै।

यथाकाशस्स्थतो तनत्यां िायु ुसिलगगो मिान्।्
तथा सिाणगण भूतूातन मत्स्थानीत्युपधारय ॥6॥

(6) ल्जस प्रकार सब ओर चलती िुई प्रचण्ड िवा सदा आकाि में ल्स्थत रिती िै, उसी प्रकार तू समझ ले कक सब भूत (ववद्यमान वस्तुएं) मुझमें तनवास करते िैं।

आकाि उन सबको अपने अन्दर रखता िै, परन्तु वि उनसे छुआ निींरिता ।

सवव्वयापी भी एक िै, अनेक निीं। असीम पृषूठभूशम िै, ल्जसमें वायु-तत्त्व रिता िै। परन्तु आकाि का स्वभाव ल्स्थर िै। । उसी प्रकार असीम परमात्मा नावप यि अपररवतनवील सत्ता िै, कफर भी यि सब गततील सत्ताओं का और अपररवतनवील सिाल िै। यि गततील इकाइयों में से ककसी एक में भी तनहित निीीं, जो स्वकी सब अन्ततोगत्वा परमात्मा पर तनभरव िैं। और कफर भी परमात्मा अनेक िातभारले िुए िै। वायु आकाि में रिती िै, परन्तु यि आकाि से निींबनी िुई िीर मूलतः आकाि के साथ उसमें कोई समानता निीं िै। केवल एक ऐसे अथ वि िैं। िम कि सकतेिैं कक वस्तुएं परमात्मा के अन्दर ववद्यमान िैं।

परमात्मा की पूण वलोकातीतता, ल्जसे बाद में मध्व ने ववकशसत ककया, वि स्पष्ट सामनेआती िै।
रामानुज के मत में भी ववश्व ब्रह्म का प्रकटन िै; परन्तु इस श्लोक में कि गया िै कक परमात्मा सब वस्तुओंको अल्स्तत्व तो प्रदान करता िै ककन्तु वि उनके अन्दर ववद्यमान निींरिता। वस्तुओंका अल्स्तत्व परमात्मा िी अद्भुत िल्क्त के कारण िै। परमात्मा संसार से इतना ऊपर उठा िुआ िै कक वि सब सांसाररक अल्स्तत्वों से पृथक िैऔर वि उनसे इतना प्रततकूल िै कक उसे 'पूणतवया अन्य' समझना िोगा। यि एक गम्भीर धाशमकव अन्तज्ञानव की अशभव्यल्क्त िै।

सिभूगतूातन कौन्तेय प्रकृतत ांयास्न्त मामकाम् ्।
कल्पक्षये पुनस्तातन कल्पादौ विसृजाम्यिम् ्॥7॥

(7) िे कुिन्ती के पुत्र (अजुनव), कल्प (चक्र) की समाल्प्त पर सब भूत (अल्स्तत्वमान् ्वस्तुएं) उस प्रकृतत में समा जाते िैं, जो मेरी अपनी िै और अगले कल्प (चक्र) के आरम्भ में म ैंउन्िेंकिफर बिार तनकाल देता िंूं।

प्रकृतत ांस्ािमिष्टभ्य विसृजाशम पुनः पुनः ।
भूतूग्रामशमम ांकृत्समिश ांप्रकृतिेशगात् ्॥8॥

(8) अपनी प्रकृतत को वि में रखते िुए म ैंइन भूतों के समिू को बारम्बार उत्पन्न करता िंूं, जो कक प्रकृतत के वि में िोने ेके कारण बबलकुल बेबस िैं।

अव्यक्त प्रकृतत जब अव्यक्त आत्मा द्वारा प्रकाशित िो जाती िै, र और स्वभाव प्रकृतत में तनहित बीजों द्वारा तनधारवरत िोतेिैं। हदव्य आत्मा को केवल इसे अपनेवि में रखना-भर िोता िै।

जीव कम वके तनयम के अधीन िै और इसशलए वववि िोकर ववश्व के जीवन में िरीर धारण करने ेके शलए बाधधत िै। 5, 6 में यि कि गया िै कक का अपनी माया द्वारा (आत्ममायया) जन्म लेता िै। मानवीय आत्माएं अपनेका की प्रभु निीं ंिै। वे प्रकृतत के विवती िैं, जब कक भगवान् ्प्रकृतत का तनयन्त करता िै और अज्ञान के कारण ववि-सा प्रकृतत द्वारा चलाया निीं जाता। दोनों िी मामलों में सूजन का साधन माया िै। हदव्य िरीर धारण के मामले में यि योगमाया, आत्ममाया, प्रकृतत िै, जो भगवान् ्के प्रकाि और आनन्द से भरी रिती िै और

उसके तनयन्त्रण के अधीन रिकर काय वकरती ि ै। मानवीय ि ीरधारण के मामले में यि अववद्या माया ि ै।
मानवीय आत्मा अज्ञान में फंसी रिती ि ै और प्रकृतत के अधीन रिने के कारण वववि ि ोकर अपने कम वसे बंधी
रिती ि ै।

न च मा ंतातन कमाणगण तनबध्नस्न्त धनञ्जय।

उदासीनिदासीनमसक्तांतेषु कमसुग ु॥9॥

(9) ि ेधन को जीतने वाले (अजुनव), ये कम वमुझेबन्धन में नि ीं डालते, क्योंकक म ैंइन कमों में अनासक्त और
उदासीन-सा बैठा रिता ि ंू ।

यद्यवप भगवान् ् सृलूष्ट और प्रलय का उनकी आत्मा बनकर और संदिकव बनकर तनयन्त्रण करता ि ै,
कफर भी वि उनमें फंसता नि ीं, क्योंकक वि ववभ की घटनाओं के शसलशसले से ऊपर ि ै। क्योंकक यि सब उस
प्रकृतत का काय वि ै। जो परमात्मा की ि ै, इसशलए उसे इसके अन्दर व्याप्त माना जा सकता ि ै और कफर भी अपने
लोकोत्तर पक्ष की दृलष्ट से वि वस्तुओं और घटनाओ की सांसाररक परम्परा से परे ि ै। इस प्रकार परमात्मा ववश्व
की क्रीडा में अथक रूप से सकक्रय ि सार वि कफर भी ववश्व से ऊपर और उसके तनयमों से मुक्त ि ै। परमात्मा उस
ववश्व-चक्र से बंधा ि ुआ नि ीं ि ै. ल्जसे कक वि घुमा रिा ि ै। अनधगनत व्यल्क्त शसम लेते ि ैं, बढ़ते ि ैं, प्रयल करते ि ैं
और कष्ट उठाते ि ैं, मरते ि ैं और कफर जन्म देते ि ैं, परन्तु परम आत्मा सदा स्वतन्त्र रिता ि ै। वे अपनेकमों का
फल भुगतते ई और अपने अतीत के कमों में बंधे रिते ि ैं, परन्तु वि सदा मुक्त रिता ि ै। यि ववकास ववश्व के
प्रभात में प्रारम्भ ि ोता ि ै और ववश्व की रावत्र आने ेपर कफर वापस लौटा शलया जाता ि ै।

मयाध्यक्षेण प्रकृततः सूयूते ेसचराचरम्।्

ितुनानेन कौन्तेय जगद्विपररिततेग ॥10॥

(10) ि ेकुन्ती के पुत्रल (अजुनव), मेरी देख-रेख में यि प्रकृतत सब चराचर वस्तुओंको जन्म देती ि ै और इसके
द्वारा यि संसार-चक्र घूमता ि ै।

यिां ंकृष्ण को उस परमात्मा के रूप में प्रस्तुत ककया गया ि ै, जो सारे ववश्व में व्याप्त ि ै, जो सब
अल्स्तत्वमान् ्वस्तुओंको संभाले ि ुए ि ै और कफर भी लोकातीत और उदासीन ि ै। आनन्दधगरर का कथन ि ै कक
मिें सृलूष्ट के प्रयोजन के प्रश्न को उठाना ि ी नि ीं ंचाहिए। "ि म यि नि ींकि सकते कक यि सृलूष्ट भगवान् ्के
उपभोग के शलए ि ै; क्योंकक भगवान् ्वस्तुतः ककसी वस्तु का उपभोग नि ीं करता। वि तो वविुद्ध चेतना ि ै, केवल
एक साक्षी। और उसके अलावा कोई अन्य उपभोक्ता ि ै नि ीं, क्योंकक उसके अलावा और कोई चेतन सत्ता ि ी नि ीं ि ै
। सृलूष्ट का उद्देश्य मोक्ष पाना भी नि ीं ंि ो सकता, क्योंकक यि मोक्ष की ववरोधधनी ि ै। इस प्रकार न तो यि प्रश्न ि ी
और न इसका कोई उत्तर ि ी सम्भव ि ै। और इस प्रश्न के शलए कोई अवसर भी नि ीं ंि ै, क्योंकक सृलूष्ट परमात्मा की

माया के कारण िुई िै।" ऋग्वेद से तुलना कील्जए : "कौन प्रत्यक्ष रूप से इस बात को जान सकता िै और कौन बता सकता िै कक यि धचल-ववधचल सृलूष्ट किां से और क्यों उत्पन्न िुई?"[379]

परमेश्वर की भल्क्त का बिुत बडा फल िै : अपेक्षाकृत छोटी भंल्क्तयों के छोटे फल िैं

अिजानस्न्त मा ंमूढ़ा मानुषी ंतनुमाधश्रतम्।
परं भिामजानन्तो मम भूतमिेश्िरम् ॥11॥

(11) मूढ़ (अज्ञानी) लोग मानवशरीर धारण ककए िुए मेरी अविेलना करते िैं, क्योंकक वे मेरी उच्चतर प्रकृतत को, सब भूतों (अल्स्तत्वमान् वस्तुओं) के स्वामी के रूप को निीं जानते।

िम केवल बाह्य मानवशरीर को देखते िैं और उसके अन्दर ववद्यमान ब्रह्म को निीं देखते। िम केवल बाह्य आकृतत को देखतेिैं और आन्तररक वास्तववकता को निींदेखते। परमात्मा को उसके पाधथव छद्मवेि में पिचानने के शलए प्रयल की आवश्यकता िोती िै। यहद िम अपने सम्पूण वअल्स्तत्व को, िै ताल्त्वक प्रकृतत की सीमाओंसे ऊपर उठकर, िाश्वत ब्रह्म की ओर न मोड दें और उस मित्तर चेतना को प्राप्त न कर लें, ल्जसके द्वारा िम ब्रह्म में तनवास कर सकें, तो िम सीशमत आकषणवों के शिकार बनेरिेंगे।

मूतत-वपूजा ब्रह्म तक पिुंचने के साधन के रूप में काम में लाई जाती िै। अन्यथा यि सदोष िै। भागवत में भगवान् के मुंि से किलवाया गया िै: "म ैंसब प्राखणयों में उनकी आत्मा के रूप में ववद्यमान िंू, परन्तु मनुष्य मेरी उस उपल्स्थतत की अविेलना करके मूतत-वपूजा का हदखावा करता िै।"[380]

मोघाशा मोधकमाणगो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरी ंचैि प्रकृतत ंमोहिनीं धश्रताः ॥12॥

(12) वेलोग असुरों और राक्षसों के मोिक स्वभाव को धारण करते िैं। उनकी मित्त्वाकांक्षाएं व्यथ वरिती िैं, उनके कम वव्यथ वरितेिैं, उनका ज्ञान व्यथ वरिता िै और वे वववेकिीन िो जाते िैं।

राक्षसीम् : राक्षसों की-सी; जो लोग तमोगुण के वि में िैं और जो कू्ररता के कम वकरते िैं।

आसुरीम्: असुरों की सी; जो रजोगुण के वि में िैं और जो मित्त्वाकांक्षा, लोभ तथा इसी प्रकार की अन्य प्रववृत्तयों के विीभूत िैं। - श्रीधर।

---

[379] को अद्धा वेदक इिप्रवोचत्कुत आज़ाता, कुत इय ववसृलूष्टः । 10, 129,6 तैवैत्तरीय ब्राह्मण 2,8,9

[380] अिं सवेषु भूतेषु भूतात्मावल्स्थतः सदा ।
तमवज्ञाय मां मत्यःव कुरुते अचाववडम्बनम् ॥ -3, 29, 21

वेक्षखणक रूपों वाले इस संसार से धचपटेरिते ि‍ैं और मोहिनी प्रकृतत के शिकार बनते ि‍ैं और उसके नीचे तनहित वास्तववकता (ब्रह्म) की उपेक्षा करते ि‍ैं।

मित्मानस्तु मा ांपाथ गर्दिी ांप्रकृततमाधश्रताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्िा भूत्ाहदमव्ययम् ् ॥13॥

(13) ि‍ेपृथ व(अजुनव), वे मिान् ्आत्मा वाले लोग, जो हदव्य प्रकृतत में तनवास करते ि‍ैं, मुझेसब अल्स्तत्वमान् ् वस्तुओंका अनश्वर मूल समझकर अनन्य धचत्त से मेरी उपासना करते ि‍ैं।

छलपूण वस्वभाव (मोहिनी प्रकृतत) का हदव्य स्वभाव (दैवी प्रकृतत) से देश्य हदखाया गया ि‍ै। यहद ि‍म आसुरी प्रकृतत के ि‍ैं, तो ि‍म अपनी पृथृक् अि की चेतना में रिति‍ैं और उसे अपनी गततववधधयों का केन्द्र बना लेते ि‍ैं और संसार के तनष्फल चक्र में फंसे रिते ि‍ैं और अपनी वास्तववक भववतव्यता को गंवा बैठते ि‍ैं। दूसूरी ओर यहद मि हदव्य प्रकृतत के ि‍ैं, तो ि‍म सच्ची आलानुभूतत के प्रतत अपने-आप को खोल देते ि‍ैं। ि‍मारी सम्पूण वप्रकृतत ब्रह्म की ओर मुड जाती ि‍ै और ि‍मारा सारा जीवन भगवान् ्की एक अववराम उपासना बन जाता ि‍ै। ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने ेऔर जीवन में उसको अनुभव करने ेका प्रयत्न सफल ि‍ोता ि‍ै और ि‍म एक समपणव की भावना से कम वकरनेलगते ि‍ैं।

सततांकीतयगन्तो मा ांयतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मा ांभक्त्या तनत्ययुक्ता उपासते ॥14॥

(14) सदा मेरा गुणगान करते ि‍ुए, यल करते ि‍ुए और अपने व्रतों पर ल्स्थर रिते ि‍ुए, भल्क्त के साथ मुझे े प्रणाम करते ि‍ुए और सदा योग में लगे ि‍ुए वे मेरी पूजा करते ि‍ैं।

ज्ञात्वा (13) भक्त्या ... तनत्ययुक्ताः । इन ि‍ददों से सूधचत ि‍ोता ि‍ै कक सवोच्च शसद्धध ककस प्रकार ज्ञान, भल्क्त और कम वका सल्म्मश्रण ि‍ै।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपुासते।
एकत्िेन पृथृक्त्िेन बिुधा विश्तोमुखुम् ् ॥15॥

(15) अन्य लोग ज्ञानयज्ञ द्वारा यज्ञ करते ि‍ुए मेरी उपासना करते ि‍ैं। वे ेएक रूप वाला और साथ ि‍ी अनेक रूपों वाला, सब हदिाओं ंकी जो अशभमुख जानकर मेरी पूजा करते ि‍ैं।

किंराचाय वका मत िै कक यिांपुजाररयों के तीन वगों का उल्लेख गया िै।381 रामानुज और मध्व का मत ोै किक केवल एक िी वग वका उल्लेख िै । ततलक का ववचार िै कक यिांअद्वैत, द्वैत और ववशिष्टाद्वैत से अशभप्राय िै।

मनुष्य उस भगवान् ्की पूजा करते िैं, जो िमारे सम्मुख सब रूपों में िुआ िै, जो सब अल्स्तत्वों के साथ एक रूप िै और साथ िी उन सबसे एक भी िै।

अिं क्रतुरिं यज्ञः स्िधािमिमौषधम् ्।

मन्रोऽिमिमेिाज्यमिमस्ग्नरिं िुतम् ्॥16॥

(16) म ैंिी कमकवाण्ड िंूं, म ैंिी यज्ञ िंूं, म ैंिी वपतरों के शलए वपण्डदान िूँ, म ैंिी औषधध िंूं, म ैंि
घृत िंूं, म ैंिी अल्ग्न िंूं और म ैंिी अिुतत िंूं।

औषधध या जडी-बूटी सब प्राखणयों के आिार की प्रतीक िै।382 वैहदक यज्ञ की व्याख्या िमारी सम्पूण व प्रकृतत की अिुतत के रूप में, ववश्वात्मा के प्रतत सम्पूण वआत्मसमपणव के रूप में की गई िै। जो कुछ िमने उससे प्राप्त ककया िै, वि उसे वापस दे देते िैं। उपिार और आत्मसमपणव दोनों िी उसके िैं।

वपतािमस्य जगतो माता धाता वपतामिः ।

वेद्यं पववलमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥17॥

(17) म ैंइस संसार का वपता िंूं, माता िंूं, संभालनेवाला िंूं और वपतामि िंूं। म ैंज्ञान का लक्ष्य िंूं
वाला िंूं, म ैं'ओऽम' ध्वतन िं और म ैंिी ऋक्, साम और यजुवेद भी िंूं।

गततभतगागप्रभुः साक्षी तनिासः शरण ंसुहृत ।

प्रभिः प्रलयः स्थानांतनधान ंबीजमव्ययम् ्॥18॥

(18) म ैंिी लक्ष्य िंूं, भरण-पोषण करने ेवाला िंूं, स्वामी िंूं, साक्षी िंूं, तनवास स्थान िंूं िरण
िी उत्पवत्त और ववनाि िंूं; म ैंिी ल्स्थतत िंूं; म ैंिी ववश्राम का स्थान िूं और अनश्वर बीज िंूं। तुलना कील्जए
बुद्ध की िरण में जाता िंूं। वि मेरा िरण-स्थान िै।"383

381 नीलकण्ठका कथन िै एकत्वेनअिमेव भगवान् ्वासुदेव इत्यभेवेन औपतन पृथक्त्वेन अयम् ्ईश्वरो मम स्वामीतत बुद्धया प्राकृता, अन्ये पुनबिुवधा बिुप्रकार ववश्लोक सवैद्वररयल्वत्कल्चचदृष्टं तद्भगवत्स्वरूपमेव, यत् ्शुरुतं ंतत्तन्नामैव यदुकुतं ंभुक्तेवा तदवप ववश्वतोमुखुंयथा स्यात ्तथा माम ्उपासते।े

382 औषधं सवप्रवाखणशभयद्ध अच्यते ेतद् औषधिददवाच्येम्।् - िकराचाय व।

383 बुद्ध िरणं गच्छाशम एष मेिरणम् ्।

तपाम्यिमिां ि ष गतनगृिाम्युत्सृजाशम च।
अमृत ्ांचैि मृत्ूयुश्च सदसच्चािामजुनग ॥19॥

(19) म ैंतपता (गमी देता) ि ांूू; म ैंिी वषावको रोकता और छोडता ि ांूू। म ैंअमरता ि ांूू और साथ िी मृत्ूयुभ
अजुनव, म ैंसत् ्(ल्जसका अल्स्तत्व िै) भी ि ांूू और असत् ्भी ि ांूू।

ऋग्वेद से तुलना कील्जए : यस्य छाया अमृतं ्यस्य मृत्ूयुः ।

सत् ्परम वास्तववकता िै और असत् ्ब्रह्माण्डीय अल्स्तत्व िै और भगवान ये दोनों िैं। जब वि व्यक्त

िोता िै, तब वि सत् ्िोता िै; और जब संसार अव्यक्त िोता िै, तब वि असत् ्िोता िै।384

रामानुज सत् ्की व्याख्या वतमवान अल्स्तत्व और असत् ्की व्याख्या अतीत और भववष्यत् ्के अल्स्तत्व के रूप में करता िै।

मुख्य बात यि िै कक परमेश्वर की िम चािे ल्जस रूप में पूजा करें, वि िमारी प्राथनवाओंको स्वीकार करता िै और प्राथथतव वस्तुएं प्रदान करता िै।"385

रैववद्या मा सोमपाः पूतपापा
यज्ञैररष्ट्वा स्गगतगत
ां प्राथयमसतेपुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक -
श्नस्न्त हदव्यास्न्दवि दिभोगान्॥ ्20॥

(20) तीन वेदों के जाननेवाले लोग, जो सोमरस का पान करते िैं और पापों से मुक्त िो चुके िैं, यज्ञों द्वारा मेरी उपासना करते िुए स्वग वपुंचने के शलए प्राथनवा करते िैं। वे (स्वग वके राजा) इन्द्र के पववन लोक में पिले िैं और विा पर देवों को प्राप्त िोने वाले सुखों का उपभोग करते िैं।

ते त ांभुक्त्िा स्गिलगोकां विशाल,ां क्षीणे पुण्ये मत्यलगोकां विशस्न्त।
एिां गतागत रयीधममगनुप्रपन्ना कामकामा लभन्ते ॥21॥

(21) उस ववशाल स्वगलवोक का आनन्द लेनेके बाद जब उनका पुण्य समाप्त िो जाता िै, तब वे कफर मत्यलवोक में आ जाते िैं; इस प्रकार वेदोक्त धम वका पालन करते िुए और सुखोपभोग की इच्छा रखते िुए वे पररवतनवील क (जो जन्म और मरण के ववती िैं) आवागमन को प्राप्त करते िैं।

384 कायकवारणेवासदसती। िंकराचाय।व

385 अतस्ततेषां ्ववश्वतोमुख मम भजजन कुवतवाम्,् सवरूवपेणामनुर्यि करोमीतत भावः। -नीलकण्ठ ।

यिां ंपर गुरु वैहदक शसद्धान्त की ओर संकेत करता िै और बताता िै कक जो लोग ववहित धाशमकव ववधधयों को पूरा करते िैं, वे मृतूयु के बाद स्वग वके सुब को प्राप्त करते िैं; और वि यि भी बताता िै कक ककस प्रकार इस स्वग वके मुख को सवोच्च लक्ष्य निींमाना जा सकता। इस प्रकार के लोग कम वके तनयम से बंधे रितेिैं, क्योंकक वेअब भी कामनाओंद्वारा प्रलोशभत िोतेिैं, कामकामा:, और वे ेकफर इस ववश्व के क्रम में वापस लौट आते िैं, क्योंकक वे अिंकार के केन्द्र से काय वकरते िैं और क्योंकक उनका अज्ञान नष्ट निीं ंिुआ िोता। यहद िम प्रततफल में स्वग वचािते िैं, तो वि िमें शमल जाएगा; परन्तु जब तक िम जीवन के सो लक्ष्य को प्राप्त निीं कर लेते, तब तक िमें कफर मत्य वअल्स्तत्व में वापस लौद आना िोगा। मानवीय जीवन अपूण वसामग्री में से आत्मा के हदव्य स्वभाव को ववकशसत करने ेके शलए एक अवसर िै। चािे िम इस संसार के सुख-भोग पाने का िर प्रयत्न करें, या भववष्य में स्वग वपाने का यल करें, दोनों दिाओं में िम अिंकार केल्न्द्रत चेतना से काय वकर रिे िोते िैं।

अनन्यास्श्चन्तयन्तो मा ंये जनाः पयुपगासते े।

तेषा ंतनत्याशभयुक्तानांयोगक्षेम ंिािाम्यिम् ्॥22॥

(22) परन्तु जो लोग अनन्य भाव से सदा अध्यवसायपूवकव मेरा िी धचन्तन करते रितेिैं, म ैंउनके योग (अप्राप्त की प्राल्प्त) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) का भार स्वयं संभालता िंूं।386

गुरु यि बताता िै कक वैहदक माग वएक जाल िै, ल्जससे सवोच्च की साधना करने ेवाले लोगों को बचना चाहिए।

परमात्मा अपनेभक्तों के सारे बोझ और सब धचन्ताओं को स्वयंसंभाल लेता िैं ।387

हदव्य प्ेरम का अनुभव करने के शलए अन्य सब प्ेरमों को त्याग देना िोगा। इहद िम अपने-आप को पूरी तरि परमात्मा की दया पर छोड दें तो वि िमारी सब धचन्ताओं और दु:खों को स्वयं अपनेऊपर ले लेता िै। िम उसको उद्धार माल करने ेवाली देखभाल और बल देने वाली करुणा पर भरोसा रख सकतेिं।388

येऽप्यन्यदेिता भक्ता यजन्तेश्रद्धयास्न्तिताः ।

.तेऽवप मामेि कौन्तेय यजन्त्यविधधपूकगम् ्॥23॥

---

386 योगोऽप्राप्तस्यप्रापणम्क्षेमस्तद्रक्षणम देखखए, 2, 45

387 भगवान् ्एव तेषांयोगक्षेमंवितत।

388 एक बार राबबया से पूछा गया: "क्या तुम सविवल्क्तमान् ्परमात्मा से प्ेरम करती िो?" "िो।" "क्या तुम िैतान से घृणा करती िो ?" उसने उत्तर हदया: "भगवान् ्के प्ेरम के कारण मेरे पास इतनी फुसतव िी निीं ंरिती कक म ैंिैतान से घृणा कर सकूं। मनैं पैगम्बर को सपनेमें देखा था। आसने पूछा, 'अरी राबबया, क्या तू मुझसे प्ेरम करती िै?' मनैं उत्तर हदया, 'ओ खुदा के पैगम्बर, तुमसे कौन प्ेरम निीं करता ? परन्तु खुदा के प्ेरम नेमुझेइतना तल्लीन कर शलया िै कक मेरे हदल में ककसी अन्य वस्तु के शलए न तो प्ेरम और न घृणा िी बाकी रिी िै।" आर. ए. तनकलसन : ए शलटरेरी हिस्री ऑफ हद अरब्स (1930), 234

(23) अन्य देवताओं के भी जो भक्त श्रद्धापूवकव उनकी पूजा करते ि ि कुन्ती के पुत्र (अजुनव), वे भी केवल मेरी िी पूजा करते ि. यद्यवप उनकी ए ववधध के अनुसार निीं िोती।
गीता का लेखक आकिा के ककसी भी भाग से आने ेवाले प्रकिा करता ि। उसे चमकनेका अधधकार ि,

क्योंकक वि प्रकिा ि।

अिं हि सियगज्ञानांभोक्ता च प्रभुरेि च।
न तु मामशभजानस्न्त तत्त्वेनातश्च्यिस्न्त ते ॥ 24॥

(24) म ैसब यज्ञों का उपभोग करने ेवाला और स्वामी ि। परन्तु मेरे वास्तववक रूप में निीं ंजानते, इसशलए वे नीचेधगरतेिैं।

यास्न्त दिेव्रता दिेान् ्वपतृन्यास्न्त वपतृव्रताः।
भूतातनयास्न्त भूतेज्यायास्न्तमधास्जनोऽवपमाम् ्25॥

(25) देवताओं के पुजारी देवताओं को प्राप्त करते ि, वपतरों के पुजारी को प्राप्त करते ि, भूतों के पुजारी भूतों को प्राप्त करते ि, और पूजा करते ि, वे ेमुझे ेप्राप्त करते ि।

ववकास की ववशभन्न अवस्थाओं में मनुष्यों द्वारा देदीप्यमान देवताओं मृतकों की आत्माओं की और मनोजगत् ्में ववद्यमान आत्माओं की पूजा जाती रिी ि। परन्तु ये सब भगवान् ्के सीशमत रूप ि और ये साधना में आत्मा को वि िास्न्त प्रदान निींकर सकते, जो कक बुद्धध से परे ि। पूजा पररणाम पूस्जत रूप के साथ घुल-शमल जाना िोता ि और इन सीशमत सोच पररणाम सीशमत िी िोता ि। कोई भी भस्क्त अपना उच्चतम प्रततफल देनेचूकती निीं। तनम्नतर वस्तु की भस्क्त से तनम्नतर प्रततफल प्राप्त िोता ि, जब सवोच्च भगवान् ्की भस्क्त का प्रततफल सवोच्च िोता ि। सब सच्ची चा भस्क्तयों का लक्ष्य सवोच्च परमेश्वर की खोज िी ि।

भस्क्त और उसके पररणाम

पर ंपुष्पंफल ंतोयंयो मे भक्त्या प्रयच्छतत ।
तदिं भक्त्युपहृतमश्नाशम प्रयतात्मनः ॥26॥

(26) जो कोई मुझेश्रद्धा के साथ पत्ती, फूल, फल या जल पाल। उसके पे्रमपूवकव और िुद्ध हृदय से हदए गए उस उपिार को म ैअवश्य स्वीकार करता िंू।

उपिार ककतना िी तुच्छ क्यों न िो, यहद वि पे्रम और सच्चाई के साथ हदया जाता ि, तो वि प्रभु को स्वीकाय विोता ि। सवोच्च भगवान् ्तक पिुंचने िमाग वसूक्ष्म अधधववद्या या जहटल कमकवाण्ड का माग वनिीं ंि।

यि तो केवल कामसमपणव का माग वि, ल्जसका प्रतीक पत्ती, फूल, फल या जल का उपिार ि। ल्जस वस्तु की आवश्यकता ि, वि ि भल्क्तपूण वहृदय ॥

यत्करोवष यदश्नाशस यज्जुिोवष ददाशस यत्।्

यत्तपस्यशस कौन्तेय तत्कुरुष्व मदपणगम् ्॥27॥

(27) जो कुछ तू करता ि, जो कुछ तू ्खाता ि, जो कुछ तू यज्ञ करता ि और जो कुछ तू दान देता ि और जो कुछ तू तपस्या करता ि, ि कुन्ती के पुन (अजुनव), तू वि सब मुझे ेहदया जा रिा उपिार समझकर कर।

आत्मसमपणव का पररणाम सब कमों को परमात्मा के प्रतत समवपतव कर देनेके रूप में िोता ि। दैतनक जीवन के सामान्य कमों का प्रवाि ईश्वर की उपासना में से िोकर बिना चाहिए। ईश्वर का प्रेम जीवन की कठोरताओं से बच भागने का माग निीं ंि, अवपतु यि तो सेवा के शलए आत्मापणव ि। कममवाग,व जो कक वविहत ववधध-ववधानों को करने ेके कत्तव्य से िुरू िोता ि, इस ल्स्थतत में पिुंचकर समाप्त िोता ि कक सब कम वजब अनासल्क्त और समपणव की भावना से ककए जाएं, तो वे पववल िो जाते िैं।

"मेरी अपनी आत्मा तू ि; मेरी बुद्धध पावतवी (शिव की पत्नी) ि; मेरे जीवन के कृत्य (प्राण) मेरे साथी िैं; रीर मेरा घर ि; इल्न्द्रयों के ववषयों का ववववध उपभोग मेरी पूजा ि, तनद्रा समाधध की दिा ि; मेरे कदम मल्न्दर की प्रदक्षक्षणा ि और मेरे सब वचन प्राथनवाएं िैं। ि मिादेव, म ैंजो कुछ भी कम वकरता िंू, उनमें से प्रत्येक तेरी िी पूजा ि। "[389] यहद आपको जो कुछ करना ि, उसे आप समपणव की भावना से करते िैं, तो वि परमात्मा की उपासना ि; उसके अततररक अन्य कुछ भी करने ेकी आवश्यकता निीं ि।390

शुभाशुभफलैरेि ंमोक्ष्यसे कमबगन्धनैः ।

सन्ांयासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यशस ॥28॥

(28) इस प्रकार तू उन िुभ और अिुभ पररणामों से मुक्त िो जाएगा, जो कम वके बन्धन िैं। अपनेमन को कमों के त्याग के माग वमें दृढतापूवकव लगाकर तू मुक्त िो जाएगा और मुझे ेप्राप्त िो जाएगा।

---

389 आत्मा त्वं, धगररजा मततः, सिचराः प्राणाः; िरीरं गृिम्,्
पूजा मे ववषयोपभोगरचना, तनद्रा समाधधल्स्थततः ।
संचारः पदयो, प्रदक्षक्षणववधधः, स्तोलाखण सवावधगरो,
यद्यत्कम वकरोशम तत्तदखखलं ंिम्भो त्वदाराधनम् ्।

390 मधुसूदन का कथन ि: अवश्यम्भाववनां ंकमणवां मतय परमगुरौ समपणवमेव मद्भजनम्: न तु तदथ वपथग्व्यापारः कल्श्चत् ्कतव्वय इत्यशभप्रायः ।

इस प्रकार के त्याग और पववत्लीकरण द्वारा आत्मा का सम्पूण वजीदन भगवान् ्की सेवा के शलए प्रदान कर हदया जाता ि ै और जीव अपनेबन्दनों से मुक्त ि ो जाता ि ै और उसके कम वकफर आत्मा को बन्धन में निीं डालते।

समोऽिं सिभूगतेषु न मे द्वेष्योऽस्स्त न वप्रयः ।
ये भजस्न्त तु मा ंभक्त्या मतय ते तेषु चाप्यिम् ्॥29॥

(29) म ैं सब प्राखणयों में एक जैसा ि ी ि ंू। मुझे न तो ककसी से द्वेष ि ै, न ककसी से प्रेम। परन्तु जो भल्क्तपूवकव मेरी पूजा करते ि ैं, वे मेरे अन्दर ि ैं और म ैं भी उनके अन्दर ि ंू।

परमात्मा का कोई शमत्र या ि तु ु निीं ि ै। वि तनष्पक्ष ि ै। वि अपनेमन की मौज से न तो ककसी को तनन्दनीय ठिराता ि ै और न ककसी को अपनेशलए वरण करता ि ै। उसके प्रेम को प्राप्त करने का एकमाल माग व श्रद्धा और भल्क्त का ि ै और ि र ककसी को उस माग वपर स्वयंिी चलना ि ोगा।

अवप चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेि स मन्तव्यः सम्यग्व्यिशसतो हि सः ॥ 30॥

(30) यहद कोई बडे से बडा दुराचारी व्यल्क्त भी अनन्य भाव से मेरी पूजा करता ि ै, तो उसे धमात्वमा ि ी समझना चाहिए, क्योंकक उसनेअच्छा तनश्चय कर शलया ि ै।

"अपनेबाह्य जीवन में बरे मागों के त्याग द्वारा और अपने आन्तररक अच्छे प की ि ल्क्त द्वारा।"

किराचाय।व साथ ि ी तुलना कील्जए: "यहद वि पाप ने के बाद पश्चात्ताप करता ि ै, तो पाप से मुक्त ि ो जाता ि ै; यहद वि यि संकल्प ि ै कक वि कफर कभी पाप निीं करेगा, तो वि पववत ि ो जाता ि ै। "[391]अतीत शलए गए कमों का पाप अनन्य धचत्त से परमात्मा की ओर अशभमुख ि ुए बबना निीं जा सकता। तुलना कील्जए, बौधायन धमसूवत्र : "मनुष्य को चाहिए कक वि जानेककए दुष्कुमों का धचन्तन करता ि ुआ और तप करता ि ुआ बबना प्रमाद ककछ भान ववलय पश्चात्ताप करता रि े। इसके द्वारा वि पाप से मुक्त ि ो जाएगा।"[392] कम वतं तरि कभी बन्धन में निीं डालता। पतन की तनम्नतम गिराइयों में ववद्यमान में भी एक ज्योतत रिती ि ै, ल्जसे वि बुझा निींसकता, भले िी वि उसे ि ाने की ककतनी ि ी कोशिश करे और उससे ककतना ि ी ववमुख क्यों न ि ो जाए। जाते ि ी ि म पततत ि ों, कफर भी परमात्मा ि में ि मारे अल्स्तत्व के मूल द्वारा संभाले एता ि ै और वि सदा अपनी ज्योतत की ककरणें ि मारे अन्धकारपूण वऔर ववद्रोिी दयों में भेजने को उद्यत रिता ि ै। ि मारी अपनी अपूणतवा और पाप की अनुभूतत ि

391 कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात् ्पापात् ्प्रमुच्यते े।
नव कुयाव पुनररतत तनवृत्या पूयते ेतु ुसः ॥

392 सोचेतमनसा तनत्यंदुष्कृतान्यनुधचन्तयन्। ्
तपस्वी चाप्रमादी च ततः पापात् ्प्रमुच्यते े।

मिारे हृदयों में ववद्यमान भगवान् ्के दबाव को प्रकट कर देती िै। तुकाराम िे तुलना कील्जए : "म ैंपतततों में भी पततत िंूं; ततगुना पततत िूँ; परन्तु तू ूमुझे ेअपनी िल्क्त द्वारा अवश्य ऊंचा उठा। न तो मेरा हृदय पववत िै और न तेरे चरणों देमेरी श्रद्धा िी ल्स्थर िै। म ैंपाप से पैदा िुआ िंूं। म ैंइसे ककतनी बार कि? यि तुका किता िै।" कफर : "म ैंबुद्धध से िून्य िंूं, गरज़मन्द िंूं और गरजमन्द से भी गया-बीता िंूं। म ैंअपने मन को ल्स्थर नीिंकर सकता; म अपनी चंचल इल्न्द्रयों को रोक नीिंसकता, म ैंप्रयत्न करके िार गया िंूं; िाल्न्त और ववश्राम मुझसे दूरू िै। मनैं तुझे ेपूण वश्रद्धा अवपतव की िै; मनैं ेअपना जीवन तेरे चरणों पर रख हदया िै तेरी जैसी इच्छा िो वैसा कर। मुझे केवल तेरा िी आसरा िै। िे भगवान्, ् मुझे ेएङ्ग पर ववश्वास िै। म ैंमजबूती से तेरे चरणों में धचपटा िुआ िंूं। तुका किता िै कक मेरे प्रयत्न की देखभाल करना तेरा काम िै।"[393] एक दृष्टान्त में नाकेदार हृदय के अन्तस्तम से प्राथनवा करता िै: "िे परमात्मा, तू ूमुझ पापी के प्रतत दयालु बन।

इस श्लोक का यि अथ वनीिं िै कक िमें अपनेकमूँ के पररणामों अन्धकार आसानी से छुटकारा शमल सकता िै। िम कारण को अपना काय वउत्पन्न करने ेसे रोक नीिं ंसकते। ववश्व की व्यवस्था में ककसी मनमाने स्तिक्षेप की अनिाता िै नीिंदी जा सकती। जब कोई पापी अनन्य भल्क्त के साथ परमात्मा की सब प्र अशभमुख िीता िै, तब एक नया कारण आ उपल्स्थत िोता िै। उसका उदा उसके पश्चात्ताप की ित वपर आधाररत रिता। जैसा कक िमने देखा िै, पाला हृदय का एक सच्चा पररवतनव िोता िै और उसमें अतीत के पाप के शलए मनसा या दुुःख और उस पाप की भववष्य में पुनरावृवृत्त को रोकनेका तनश्चय सल्म्मशलय रिता िै। जब एक बार इस संकल्प को अपना शलया जाता िै, तब तनरन्तर का उच्चतर में रूपान्तरण ल्स्थरतापूवकव िोने ेलगता िै। यहद िम मानवीय प्रयल में िी ववश्वास रखें, तो उन्नतत बुित कहठन िो सकती िै। गलततयों, अपूणतवा और आत्मसंकल्प पर ववजय प्राप्त कर पाना कहठन िै। परन्तु जब आत्मा अपनेअिंकार को त्याग देती िै और अपने-आप को भगवान् ्के प्रतत खोल देती िै, तब सारा भार भगवान् ्संभाल लेता िै और आत्मा को आध्याल्त्मक स्तर तक ऊपर उठा लेता िै। तुलसीदास का कथन िै : "कोयला अपना कालापन केवल तभी त्यागता िै, जब कक आग उसके अन्दर तक प्रववष्ट िीजाती िै।"[394] ऐसे कोई पाप नीिं ंिैं, ल्जन्िंक्षमा न ककया जा सकता िो।

क्षक्षप्रां भितत धमात्गमा शश्च्छािस्न्त तनगच्छतत ।

कौन्तेय प्रततजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यतत ॥31॥

(31) वि जल्दी िी धमात्वमा बन जाता िै और उसे धचरस्थायी िाल्न्त प्राप्त िो जाती िै। िे कुन्ती के पुल (अजुनव), इस बात को तनल्श्चत रूप से समझ ले कक मेरा भक्त कभी नष्ट नीिंिीता।395

393 फ्रेजर और माराधीजःतुक ाराम1, पृ.ृ 92

394 गरुड पुराण से तुलना कील्जए:

भल्क्तरष्टववधा ह्येषा यल्स्मन् ्म्लेच्छोऽवप वततेव ।

स ववप्रेन्द्रो मुतनः श्रीमान् ्स यततः स च पल्ण्डतः ॥

395 प्रततजानीहि प्रततज्ञां कुरु मद्भक्तो न प्रणश्यतत ।

यहद िम अपने-आप को परमात्मा के िाथों में छोड दें, तो िम तनतान्त कार में निीं ंपड सकते।

"राम की उल्क्त से तुलना कील्जए : "जो एक बार भी मेरी िरण में आना चािता िै और 'म ैंतुम्िारा िूँ'

'किकर मुझसे सिायता की प्राथनवा करता िै, उसे और सब प्राखणयों से अभय प्रदान करता िंूं; यि मेरा व्रत िै। "[396]

मा ंहि पाथ गव्यपाधश्रत्य येऽवप स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियौश्ैयास्तथाशूद्रास्तेऽवपयास्न्तपरागांततम् ्॥32॥

(32) ि पाथ व(अजुनव), जो लोग मेरी िरण ले लेते िैं, चािे वे नीच कुलों में उत्पन्न िुए िों, ल्स्त्रयां िों, वैश्य िों या िूद्र िों, वे भी उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते िैं।

गीता का सन्दिे जातत, शलग या उपजाततयों के भेदभाव के बबना सबके मापनेशलए खुला िै। इस श्लोक का अथ वयि निीं ंसमझा जाना चाहिए कक यि ल्स्त्रयों और िूद्रों के शलए वेदाध्ययन का तनषेध करने ेवाली सामाल्जक प्रथाओं का समथकव िै। इसमें तो ल्जस समय गीता शलखी जा रिी थी, उस काल में प्रचशलत सभी दृल्ष्टकोण का तनदिे-भर ककया गया िै। गीता इस प्रकार के सामाल्जक तनयमों को स्वीकार निीं ंकरती ।397 आध्याल्त्मक मान्यताओंपर जोर देने के कारण गीता जातीय भेदभाव से ऊपर उठ जाती िै। इसका प्ेरम का सन्दिे सब पुरुषों ल्स्त्रयों, सवणों और अन्त्यजों के शलए खुला िुआ िै।398

ककं पुनबाह्र्मणाः पुण्या भक्ता राजषयगस्तथा ।
अतनत्यमसुखुंलोकशमम ंप्राप्य भजस्िमाम् ्॥33॥

---

396 सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीतत च याचते े।
अभयंसवभवतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतुं ंमम ।

397 प्राचीन काल में अहिन्दुओंको असभ्य समझने की प्रववृत्त थी, िालांकक अपने-आप को श्रेष्ठ समझने की यि मनोवृत्त केवल हिन्दुओं तक िी सीशमत निीं थी। प्राचीन काल के यूनानी ववदेशियों को जंगली समझतेथे। रोमन सेनापतत कुल्ण्टशलयन वैरस ने जमेतनया के तनवाशसयों के ववषय में किा था. "यि ठीक िै कक वे मनुष्य िैं, परन्तु आवाज़ और िरीर के अंगों के शसवाय उनमें मनुष्य का और कोई अंि निीं िै।" फ्रांसीसी दाितवनक मोन्तेस्क्यू (1689-1755) निेरयों के ववषय में किा था : "कोई यि कल्पना भी निीं कर सकता कक परमात्मा ने, जो कक इतना बुद्धधमान् ्िै, एक बबलकुल काले िरीर में कोई आत्मा, और वि भी अमर आत्मा, डाली िोगी। यि सोच पाना असम्भव िै कक ये लोग मानव-प्राणी िैं।"

398 यि ववचार प्रत्येक वववेकिील हिन्दू ूके शलए बिुत अपमान और लज्जा का ववषय िै कक ज द्वार अस्पृश्यता को उधचत ठिराने का प्रयत्न ककया जाता िै। बुद्ध ने अन्त्यजों का अपने में स्वागत ककया था। रामायण में एक ऐसे व्यल्क्त ने राम को अपनी नाव में बैठाकर गया िै घाट उतारा था, ल्जसे आजकल अछूत समझा जाता िै। भल्क्त के मिान् ्उपदेिको, रोधी जी रखने वाले सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण िैं, भले िी उनका जन्म ककसी भी कुल में क्यों न िुआ िो। वैष्णवों ने समानता स्थावपत करने के शलए प्रयल ककया और घोषणा की कक भगवान मेंववधान डाकू और वेश्याएं - सब थे।

(न्यूक) पववत ब्राह्मणों और भक्त राजवषयवों का तो किना ि क्या। इस अस्थायी और दुःखपूण वसंसार में आकर अब तू ्मेरी पूजा कर।
दूसरे िददों में, जब वे लोग भी, जो कक अपनेअतीत के जमी कारण अनेक अयोग्यताओंके शिकार िैं और सांसाररक धन्धों में फंसे िैं, आप दुबुलवताओंको जीत सकतैं और उच्चतम पद प्राप्त कर सकते िैं, तब अ माग वउन ब्राह्मणों और राजवषयवों के शलए तो और भी सरल िोगा, जो पिले से से आध्याल्त्मक ववृत्त वाले िैं।

अतनत्यम् ्असुख ंलोकम् ्: अस्थायी कष्टपूण वसंसार। औकफक लोगे की दृल्ष्ट में इस संसार का जीवन कष्ट और परीनी ि िै। िम एक चक्र के साथ बंधे िुए िैं, जो जन्म और मरण के अनन्त चक्करों में घूम रि िै। केवल अपने-आप को पववल बनाकर और त्याग द्वारा िम इस चक्र से छूट सकतैं और परमात्मा के साथ संयोग का सुख प्राप्त कर सकतैं। जॉन बनेंट ने औकफक (औकफयस के शसद्धान्त से सम्बल्न्धत) ववश्वासों और लगभग उसले काल में भारत में प्रचशलत ववश्वासों में पाई जानेवाली आश्चयजवनक समानता का तनदि ककया िै।
'अली ग्रीक क़लॉसी़' (1930), पृषूठ 821 बुद्ध की शिक्षाओं का प्रारम्भ ि ववश्व की इन दो वविेषेताओं, इसकी अस्थातयता और दुःख द्वारा िुआ िै।399 एक ईरानी उल्क्त िै, जो ईसा द्वारा किि गई बताई जाती िै: "संसार एक पुल िै। इसके ऊपर से गुज़र जाओ, परन्तु इस पर घर मत बनाओ।" न केवल यि संसार, अवपतु ववश्व की प्रकक्रया की प्रत्येक प्रावस्था (दौर), मानवीय इततिास का प्रत्येक पिलू, मानवीय जीवन का प्रत्येक सोपाननैव की ताजगी, बालकपन का अक्खडपन, यौवन का आदिवाद, ववयोगावस्था के उम्र आवेि और पौरुष की मित्वाकांक्षाएं, सब पुला िै, ल्जसका प्रयोजन यि िै कक उनके ऊपर से गुज़र जाया जाए, न कक उन पर स्थायी रूप से बस जाया जाए। आधुतनक ववज्ञान बताता िै कक मानवीय जीवन ककतना दयनीय रूप से मयाहवदत िै। जां पाल साच वके अल्स्तत्ववाद के शसद्धान्त में यि मान शलया गया िै कक मानवीय अल्स्तत्व कुछ स्थायी दिाओं ंका विवती िै। िममें से प्रत्येक उत्पन्न िोता िै; एक ऐसी वास्तववकता में उलझा रिता िै, जो उस व्यल्क्त पर तनभरव निीं ंिै; अन्य लोगों पर अपनी कक्रया करता िै और दूसूरों की कक्रयाओं द्वारा प्रभाववत िोता िै। वि मृतूयु से बच निीं ंसकता। यहद इन सब दिाओं ंको एक साथ शमलाकर देखा जाए, तो मानवीय अल्स्तत्व एक दुखुान्त वास्तववकता बन जाता िै। िममें से प्रत्येक को इस तनरािाजनक दिा में अपनेउद्धार के शलए अपनेसंकल्प के प्रयत्न द्वारा काय वकरना िोगा। अल्स्तत्ववादी की दृल्ष्ट में, मनुष्य को अपनेसाधनों के सिारे छोड हदया गया िै। उसे परमात्मा की उद्धार करनेवाली करुणा में कोई श्रद्धा निीं। गीता का गुरु िमें वस्तुओंकी क्षणभंगुरता और वृद्धावस्था और मृतूयु के अशभिाप से बचने के शलए, जरामरणमोक्षाय400, एक माग वहदखाता िै। वि िमें भगवान् ्की िरण लेनेको किता िै।

मन्मना भिमद्भक्तो मद्याजी मांांनमस्कुरु ।
मामेिैष्यशस युक्त्वैिमात्मान ंमत्परायणः ॥34॥

---

399 तुलनाकील्जए 13,8
400 7.29

(34) अपनेमन को मुझमें ल्स्थर कर; मेरा भक्त बन; मेरी पूजा कर; मुझेप्रणाम कर। इस प्रकार अपने-आप को अनुिासन में रखते िुए मुझे ेअपना लक्ष्य बनाकर तू मुझ तक पिुंच जाएगा।

यि व्यल्क्तक कृष्ण निीं ंिै, ल्जसके प्रतत िमें अपने-आप को पूरी तरि और तनत्य ब्रह्म समवपतव कर देना ै, अवपतुअजन्मा, अनाहद और िै, जो से बोल रिा िै। अपनी अिंकारकेल्न्द्रत चेतना से ब्रह्म के स्तर तक ऊपर उठनेका माग वयिी िै कक िम अपनी बौद्धधक, मनोवेगात्मक और संकल्पात्मक िल्क्तयो को परमात्मा में केल्न्द्रत कर दें। उस दिा में िमारा सम्पूण वअल्स्तत्व रुपान्तररत िो जाता िै और आत्मा की एकता और ववश्वजनीनता तक ऊपर उठ जाता िै ज्ञान, पे्रम और िल्क्त एक सवोच्च एकता में शमल जाती िैं। आनन्द और राबत्र आत्मववलोप का, पूण वआत्मत्याग का और परम अंगीकरण का पररणाम िैं।

इतत राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम निमोऽध्यायः।

यि िै 'सिोच्च ज्ञान और सिोच्च रिस्य' नामक नौिांअध्याय ।

परमात्मा सबका मूल िै...

अध्याय 10

परमात्मा सबका मूल िै; उसे जान लेना सब-कुछ जान लेना िै

परमात्मा की अन्तयाशवमता और लोकातीतता

श्री भगिानुिाच

भूयू एि मिाबािो शृणु ुमे परम िंिचः ।
यत्तेऽिं प्रीयमाणाय िक्ष्याशम हितकाम्यया ॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(1) िे बिलवान् ्बािुओंवाले (अजुनव), और भी मेरे सवोच्च वचन को सुन। तेरी िुभकामना से म ैंतुझेयि सब बता रिा िंूं, क्योंकक तू ू(मेरी बातों में) आनन्द ले रिा िै।

प्रीयमाणाय का अथ वयि भी ककया जा सकता िै कक 'तू जो मुझे ेवप्रय िै'।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभि िंन मिषयगः ।
अिमाहदहि गदेिानांमिषीणा िंच सिशगः ॥2॥

(2) मेरे उद्गम या मूल को न तो देवगण िी जानते िैं और न मिवष वलोग िी; क्योंकक म ैंसब प्रकार से देवताओं और मिवषयवों का मूल िंूं।

सिशगः : प्रत्येक प्रकार से; सवप्रवकारैः । - िंकराचाय।व

भगवान् ्अजन्मा और तनत्य िै और वि सारे संसार का स्वामी भी िै। यद्यवप उसका कभी जन्म निीं िुआ, कफर भी सब अल्स्तत्व उसमें से िी तनकलते िैं। गुरु बतलाता िै कक वस्तुतः वि स्वयं िी तनत्य ईश्वर िै और वि अन्य सब वस्तुओंकी अपेक्षा प्राचीन िै और सारा व्यक्त गौरव उसी से तनकला िै।

यो मामजमनाहद िंच िेवत्त लोकमिेश्िरम् ्।
असम्मूढः स मत्येषु सिपगापैः प्रमुच्यते ॥3॥

(3) जो कोई मुझ अजन्मा, अनाहद और सब लोकों के िल्कािली स्वामी को जानता िै, मत्य वलोगों में विी भ्रम-रहित िै और वि सब पापों से मुक्त िो जाता िै।

जब िम सब वस्तुओंको इस रूप में देखना सीख लेते िैं कक वे ेएक िी लोकातीत वास्तववकता (ब्रह्म) से

उत्पन्न िुई िैं, तब िम सारी खोजबीन और भ्रम से मुक्त िो जाते िैं।

बुद्धिज्ञानगमसम्मोः क्षमा सत्यां दमः शमः ।
सुखांदुःख ांभिोऽभिो भयां चाभयमेि च ॥4॥

(4) बुद्धि, ज्ञान, मूढ़ता या भ्रम से मुल्क्त, धैय व(क्षमा), सत्य, आत्मसंयम और िाल्न्त, सुख और दुःख,
अल्स्तत्व

और अनल्स्तत्व (भाव और अभाव), भय और तनभयवता,

दम : आत्मतनयन्त्रण, बाह्य इल्न्द्रयों को िान्त करना िै।

शम : िाल्न्त, यि आन्तररक आत्मा की िाल्न्त िै।

अहिसांा समता तुस्ष्टस्तपो दानां यशोऽयशः ।
भिस्न्त भािा भूतानाांमत्त एि पृथृस्ग्िधाः ॥5॥

(5) अहिंसा, समधचत्तता, सन्तुल्ष्ट, तपस्या, दान, यि और बदनामी, ये सब प्राखणयों की ववशभन्न दिाएं िैं,
जो मुझसे िी उत्पन्न िोती िैं।

अहिसांा : हिंसा न करना; प्राचीन ग्रन्थों में इसका अथ वि-कष्ट न पिुंचाना, वविेष रूप से, न मारना।

प्राखणयों की ये सब अलग-अलग दिाएं उनके अतीत के कमों के अनुसार िी िोती िैं।401 भगवान् ्संसार

के दुःख और कष्ट के शलए भी परोक्ष रूप से उत्तरदायी िै। वि संसार का स्वामी िै और उसे माग वहदखाता िै, िालांकक वि संसार के द्वन्द्वों से बबलकुल अछूता रिता िै।

मिषयगः सप्त पूिे चत्िारो मनिस्तथा ।
मद्भािा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥6॥

---

401 स्वकमानुवरूपेण। - िकिराचाय।व

(6) पुराने ेसात मिवष वऔर चार मनु भी मेरी प्रकृतत के िी िैं और वे मेरे मन से उत्पन्न िुए िैं, और उनसे संसार के ये सब प्राणी उत्पन्न िुए िैं।

ये वे िल्क्तयां िैं, जो संसार की अनेक प्रकक्रयाओं के कायभवार को संभालती िैं। पुरानी परम्परा के अनुसार

यि माना जाता िै कक मनुवि पिला मनुष्य िै, ल्जससे प्राखणयों की प्रत्येक नई जातत िुरू िोती िै।

एता ांविभूतूत ांयोग ांच मम यो िेवत्त तत्त्ततिः ।

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नाल सशांयः ॥7॥

(7) जो कोई मेरी इस ववभूतत (यि या प्रकटन) को और िल्क्त (ल्स्थर कम)व को तत्त्व-रूप में जानता िै, वि अववचशलत योग द्वारा मेरे साथ संयुक्त िो जाता िै, अथावत् ्शमल जाता िै, इसमें कोई संिय निीं ंिै।

विभूतत : महिमा402 । जाननेवाला ब्रह्म के साथ अपनी एकता को पिचान लेगा और संसार के काय वमें

भाग लेगा, जो संसार कक ब्रह्म का िी एक प्रकट रूप िै। तनयत रूप वाले ब्रह्म का ज्ञान अतनयत रूप वाले ब्रह्म के ज्ञान तक पिुंचने ेका माग वि।403

ज्ञान और भल्क्त

अिां सिस्गय प्रभिो मत्तः सिं ंप्रिततेग।

इतत मत्िा भिजन्ते मा ांबुधा भिासमस्न्िताः॥ 8॥

(8) म ैंसब वस्तुओं का उत्पवत्तस्थान िैं; मुझमें िी सारी (सृल्ष्ट) चलती िै। इस बात को जानते िुए ज्ञानी लोग ववश्वासपूवकव मेरी पूजा करते िैं।

भिा : मन की सिी दिा । - रामानुज ।

अब यिां गुरु ईश्वर के रूप में बोल रिा िै। परमात्मा संसार का भौततक और फलोत्पादक कारण िै।

साधक बदलते िुए रूपों के कारण भ्रम में निीं पडता, अवपतु इस बात को जानते िुए कक भगवान् ्सब रूपों का मूल िै, वि भगवान् ्की िी पूजा करता िै।

मस्च्चत्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ्।

---

402 ववभूतत ववस्तारम् ्। िंकराचाय वकी दृल्ष्ट में ऐश्वय वऔर रामानुज की दृल्ष्ट में उधचत भावना, उत्सािा और श्रद्धा। किराचाय वपर टीका करते िुए आनन्दधगरर का कथन िै, "ववववधा भूततभवन अभये सवात्वमकत्वम्।्" यि प्रकट-रूप की महिमा िै।

403 सोपाधधक ज्ञानेतनरुपाधधक ज्ञाने द्वारम्।् - आनन्दधगरर ।

कथयन्तश्च मा ांतनत्यां तुष्यस्न्त च रमस्न्त च ॥9॥

(9) उनके ववचार मुझमें ल्स्थर िो जाते िैं; उनके जीवन (पूणतवया) मेरे प्रतत समवपतव िोतिैं; एक-दूसूरे को ज्ञान देते िुए और सदा मेरे ववषय में वातालवाप करते िुए वे सन्तुष्ट रितिैं और मुझमें िी आनन्द अनुभव करते िैं।

तेषा ांसतततयुक्तानाांभजता ांप्रीततपूिकगम् ्।
ददाशम बुद्धधयोग ांत ांयेन मामुपुयास्न्त ते ॥10॥

(10) जो लोग इस प्रकार तनरन्तर मेरी भल्क्त करते िैं और प्रीततपूवकव मेरी पूजा करते िैं, उन्िें मि ैंबुद्धध की एकाग्रता प्रदान करता िूं, ल्जसके द्वारा वे ेमेरे पास पिुंच जाते िैं।

बुद्धधयोग : मन की आस्था ल्जसके द्वारा शिष्य उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता िै, ल्जससे वि

पररवतनविील और नश्वर सब रूपों में एक िी भगवान् ्के दिनव करने लगता िै।

तेषामिेानुकम्पाथमगिमज्ञानज गतमः ।
नाशयाम्यात्मभािस्थो ज्ञानदीपेन भास्िता ॥ 11॥

(11) पर दयालु िोने ेके कारण म ैंअपनी वास्तववक दिा में रिता िुआ ज्ञान के चमकते िुए दीपक द्वारा उनके अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देता िूं।

परमात्मा मनुष्य के कल्याण के शलए संसार को प्रभाववत करता िै, जब कक वि स्वयं इससे पृथक् रिता ि। आत्मभाव की व्याख्या प्राखणयों की आन्तररक भावना के रूप में भी की गई िै। यिां ्पर गुरु इस बात को स्पष्ट करता िै कक ककस प्रकार भल्क्त से अज्ञान का नाि और ज्ञान का उदय िोता िै। जब अज्ञान नष्ट िो जाता िै, तब परमात्मा मनुष्य की आत्मा में प्रकट िो जाता िै। जब प्रेम और भल्क्त का उदय िोता िै, तब ब्रह्म िी व्यल्क्त में भर उठता िै। भल्क्त ज्ञान का एक साधन भी िै। इसके द्वारा िम भगवान् ्की करुणा और बुद्धध का बल, बुद्धधयोग प्राप्त करते िैं। बुद्धध के प्रत्यक्ष अन्तज्ञानव द्वारा बौद्धधक ज्ञान दील्प्तमान् ्और सुतनल्श्चत िो उठता ि।

ईश्वर सबका बीज और सबकी पूणतवा िै

अजुनग उिाच

परां ब्रह्म परां धाम पविनांपरम ांभिान् ्।
पुरुषांशाश्तिांहदव्यमाहददेिमज ांविभुम् ्॥12॥

अजुनव ने किा :

(12) तू परब्रह्म िै, परमधाम िै और तू ूपरम पववल करने ेवाला िै, िाश्वत हदव्य पुरुष िै। तू ूसबसे प्रथम
देवता ै, अजन्मा िै और सवव्वयापी िै।

िाुस्त्ामिृषृयः सिे दिवष गरदस्तथा।
अशसतो दिलो व्यासः स्यि ांचिे ब्रीवष मे13॥

(13) सब ऋवषयों ने तेरे ववषय में यिी किा िै; यिां तक कक हदव्य ऋवष नारद, साथ िी अशसत, देवल और
व्यास ने भी यिी किा िै और तूने ेस्वयंभी यिी मुझेबताया िै।

अजुनव, जो कुछ पिले बताया जा चुका िै, उसकी सत्यता को स्वीकार करता िै और अपना यि ववश्वास
प्रकट करता िै कक वि कृष्ण, जो उससे बात कर रिा िै, सवोच्च परमेश्वर िै; परब्रह्म, जो सदा मुक्त िै और ल्जस
तक िम आत्मसमपणव द्वारा पिुंच सकते िैं। वि अपने अनुभव द्वारा उस सत्य को वाणी द्वारा प्रकट करता िै,
ल्जसे पिले उन ऋवषयों ने प्रकट ककया था, उन्िोंने उसे देखा था और जो उसके साथ शमलकर एक िो गए थे।
रिस्यपूण वज्ञान परमात्मा द्वारा प्रकट ककया जाता िै और ऋवष लोग उसके साक्षी िैं और अजुनव अपनेअनुभव
द्वारा उसका सत्यापन करता िै (उसको सत्यता की पुल्ष्ट करता िै।) ऋवषयों द्वारा बताए गए अमूत वसत्य अब
देदीप्यमान अन्तज्ञानव बन जाते िैं, व्यल्क्त के समूचे अल्स्तत्व के दील्प्तमान् ्अनुभव ।

सिमेगतदृतां मन्ये यन्मा ांिदशस केशि ।
न हि ते भगिन्व्यस्क्त विदुदुिा न दानिाः ॥ 14॥

(14) िे केिव (कृष्ण), जो कुछ तू ूकिता िै, म ैंउस सबको सत्य मानता िूं। िे स्वामी, तेरे व्यक्त रूप को न
तो देवता जानते िैं और न दानव ।

स्यिमिात्मनात्मान िेत्थ त्िं पुरुषोत्तम।
भूतूभािन भूतूेश दिदि जगत्पते ॥15॥

(15) िे पुरुषोत्तम, सब प्राखणयों के मूल, सब प्राखणयों के स्वामी, देवताओं के देवता, सारे संसार के स्वामी,
केवल तू िी अपनेद्वारा अपने-आप को जानता िै।

त्तिुमिगस्यशेषेण हदव्या ह्यात्मविभूतूयः ।
याशभविभूगतूतशभललोकातनमास्ांत्व्ािंयाप्यततष्ठसि 16॥

(16) तू मुझे ेअपनेउन सबके सब हदव्य प्रकट-रूपों को (ववभूततयों को) बता, ल्जनके द्वारा तू इन सब लोकों

को व्याप्त करके (उनमें और उनसे परे) तनवास करता िै।

विभूतयः : प्रकट-रूप; वे ेहदव्य गौरविाली रूप, ल्जनके द्वारा भगवान् ्सब लोकों को व्याप्त ककए िुए िैं। वे तनमाणवात्मक िल्क्तयां या आल्त्मक िल्क्तयां, ल्जनसे प्रत्येक वस्तुको उसका सारभूत स्वभाव प्राप्त िोता िै। वे प्लेटो के हदव्य ववचारों, यिांइस संसार में सब वस्तुओं के पूणरूवपों और आदिों, से शमलती-जुलती िैं। अन्तर केवल इतना िै कक 'ववचार' िदद से एक तनजीव अमूततवा, एक तनष्प्राण श्रेणी ध्वतनत िोती िै, जब कक ववभूतत एक

सजीव तनमाणवात्मक मूल तत्त्व िै।

कथ ंविद्यामिां योधगस्त्ाि ंसदा पररधचन्तयन् ्।
केषुकेषु च भािेषु धचन्त्योऽशस भगिन्मया ॥17॥

(17) योगी, , म ैंतनरन्तर ध्यान करता िुआ तुझे ेककस प्रकार जान सकता िूं? िे भगवान्, ् म ैंतुम्िारे ककन-ककन वववववध रूपों में तुम्िारा ध्यान करूं।

कृष्ण स्रष्टा के रूप में अपने कम वके कारण योगी िैं। अजुनव प्रकृतत के उन पिलुओं को जानना चािता िै, ल्जनमें कक ईश्वर की ववद्यमानता अधधक स्पष्ट रूप से प्रकट िै और वि कृष्ण से पूछता िै कक वि ककन रूपों में उसका ववचार करे, ल्जससे कक उसे ध्यान करने ेमें सिायता शमले।

विस्तरेणात्मनो योग विभूतत ंच जनादगन ।
भूयः कथय तृप्त्तहि गशृण्ितो नास्स्तमेऽमृतम्18्॥

(18) िे जनादवन (कृष्ण), तू ववस्तार से अपनी िल्क्तयों और ववभूततयों का वणनव कर; क्योंकक म ैंतेरे अमृत-तुल्य वचनों को सुनकर अघा िी निंिा िोतूं ा।

अमृतम् ्: अमृत जैसे। उसके िदद जीवन देनेवाले िैं।

गीता ब्रह्म और जगत् ्के मध्य, वणनवातीत वास्तववकता (ब्रह्म) और उसकी अपयाप्वत अशभव्यल्क्त के मध्य ववरोध निंबताती। यि एक सवागीण आध्याल्त्मक दृल्ष्टकोण उपल्स्थत करती िै। इसमें सन्देि निं ंकक यि अवणनवीय (अतनदेश्यम्)् अव्यक्त और अपररवतनवीय (अव्यक्तम् ्अक्षरम्)्, अधचन्तनीय (अधचन्त्यरूपम्)् और परम का उल्लेख करती िै, जो सब अनुभवजन्य संकल्पों से परे िै, परन्तु परब्रह्म की उपासना िरीरी प्राखणयों के शलए कहठन िै।" भगवान् ्तक संसार के साथ उसके सम्बन्धों द्वारा पिुंचना सरलतर िै और यि पद्धतत अधधक स्वाभाववक िै। भगवान् ्वि व्यल्क्तक ईश्वर िै, जो प्रकृतत की बिुपक्षीय कक्रया का तनयन्त्रण करता िै और प्रत्येक प्राणी के हृदय में तनवास करता िै। परब्रह्म परमेश्वर िै मनुष्य में और ववश्व में ल्स्थत परमात्मा। ककन्तु उसकी प्रकृतत नाम-रूपमय जगत् ्की परम्परा द्वारा ढकी िुई िै। मनुष्य को परमात्मा के साथ अपनी आल्त्मक एकता और परमात्मा के बनाए सब प्राखणयों के साथ अपनी एकता को खोज तनकालना िोगा।

श्रीभगिानुिाच

न्ति ते कथतयष्याशम हदव्या ह्यात्मविभूतूयः ।

प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥19॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(19) िे कुरुओं ्ंमें श्रेष्ठ (अजुनव), म ्ैंतुझे ्अपने हदव्य रूप बतलाऊंगा। म ्ैंकेवल प्रमुख-प्रमुख रूप बताऊंगा, क्योंकक मेरे ववस्तार का तो किीं ्ंकोई अन्त िी निीं ्ंिै (ववस्तार से बतानेलगू, तो उसका अन्त िी न िोगा)।

अिमात्मा गुडाकेश सिभूगतूाशयस्स्थतः ।

अिमाहदश्च मध्यांच भूतूानामन्त एि च ॥20॥

(20) िे गुडाकेि (अजुनव), म ्ैंसब प्राखणयों के हृदय में बैठा िुआ आत्मा िं्ूं्। म ्ैंसब भूतों (वस्तुओंया प्राखणयों) का प्रारम्भ, मध्य और अन्त िं्ूं्।

यि संसार एक सजीव समूची वस्तु िै, एक ववराल परस्परसम्बद्धता, एक ब्रह्माण्डीय समस्वरता,

ल्जसे परमात्मा ने बनाया िै और उसे संभाले िुए िै।

आहदत्यानामिां विष्णुर्ज्योतितषा ्ंरविरांशुमान् ्।

मरीधचमरुगतामस्स्म नक्षराणामिां शशी ॥20॥

(21) आहदत्यों में म ्ैंववष्णु िं्ूं्; प्रकािों में (ज्योततयों में) म ्ैंदमकता िुआ सूय विूं; मरुतों में म ्ैंमरीधच िं्ूं्; नक्षलों में म ्ैंचन्द्रमा िं्ूं्।

आहदत्य वैहदक देवता िैं। भगवान् ्सब वस्तुओंमें िै, परन्तु सब वस्तुओं में वि अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा अधधक स्पष्ट िै। संसार में एक आरोिी क्रम िै। परमात्मा भौततक तत्त्व की अपेक्षा जीवन में, जीवन की अपेक्षा चेतना में अधधक व्यक्त िोता िै और सन्तों और ऋवषयों में सबसे अधधक व्यक्त िोता िै। इसी व्यवस्था के अनुसार, वि ववषेि मित्त्वपूण व्यल्क्तयों में सबसे अधधक प्रकट िोता िै। गीता के समय में इन पौराखणक व्यल्क्तयों में से कुछ हिन्दुओंके शलए िायद जीती-जागती वास्तववकताएं रिी िोंगे।

िेदानां सामिेदोऽस्स्म देिानामस्स्म िासिः ।

इस्न्द्रयाणा ्ंमनश्यास्स्म भूतूानामस्स्म चेतना ॥22॥

(22) वेदों में में सामवेद िं्ूं्देवताओं में म ्ैंइन्द्र िं्ूं्; इल्न्द्रयों में म ्ैंमन िं्ूं् और प्राखणयों में म ्ैंचेतना िं्ूं्।

सामवेद का उल्लेख उसके गान-सौन्दय वके कारण मुख्य वेद के रूप में ककया गया िै।[404]

रुद्राणा ांशकांरश्चास्स्म वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
सूिूा ांपिाकश्चास्स्म मेरुः शशखररणामिम् ॥21॥

(23) रुद्रों में म ैंिंकर (शिव) िूं; यक्षों और राक्षसों में म ैंकुबेर िूं; वस्तुओं में म ैंअल्न िूं, और पवतव-शिख म ैंमेरु िूं।

पुरोधसा ांच मुख्युयांमा ांविद्धध पाथ गबृिस्पततम् ।
सेनानीनामिां स्कन्दः सरसामस्स्म सागरः ॥24॥

(24) िे पाथ व(अजुनव), मुझे ेतू पुरोहितों में मुख्य पुरोहित बृिस्पतत समझ; (युद्ध के) सेनापततयों में म ैंस्कन्द
िूं; जलाियों में म ैंसमुद्र िूं।

मिषीणा ांभृगुरिां धगरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानाांजपयज्ञोऽस्स्म स्थिाराणा ांहिमालयः ॥25॥

(25) मिान् ऋवषयों में म ैंभृगु िूं; वाखणयों (वचन) में म ैंएक अक्षर 'ओऽम्' िूं; यज्ञों में म ैंजपयज्ञ (मौन उपासना) िूं और स्थावर (अचल) वस्तुओं में म ैंहिमालय िूं।

अश्वत्थः सिवृक्षाणा ांदेवषीणाां च नारदः ।
गन्धिाणगा ांधचत्ररथः शसद्धानाां कवपलो मुतनः ॥26॥

(26) वृक्षों में म ैंपीपल िूं और हदव्य ऋवषयों में म ैंनारद िूं; म ैंगन्धों में धचत्तरथ िूं और शसद्ध ऋवषयों में
कवपल मुतन िूं।

कवपल मुतन ने सांख्य-दिनव की रचना की िै।

उच्चैःश्रिसमश्वानाां विद्धध माममृतोद्भिम् ।
ऐरावत ांगजेन्द्राणाांनराणाांच नराधधपम् ॥27॥

---

[404] सामवेदोगानैनरमणीयत्वात्। नीलकण्ठ।

(27) अश्वों में तू मुझे ेउच्चै:श्रवा समझ, जो अमृत से उत्पन्न िुआ था; श्रेष्ठ िाधथयों में म ैंऐरावत (इन्द्र का
िाथी) ूँ और मनुष्यों में म ैंराजा िींूं।

आयुधानामिं िज ांधेनूनामस्स्म कामधुक्।
प्रजनश्चास्स्म कन्दप:ग साणामस्स्म िासुकुक:28॥

(28) स्त्रियों में म ैंवज्र िींूं; गौओंमें म ैंकामधेनु िींूं; सन्तानों को उत्पन्न करने वालों में म ैंकामदेव िींूं और सपों में
म ैंवासुकक िींूं।

अनन्तश्चास्स्म नागाना ांिरुणो यादसामिम् ्।
वपतृणामयमगा चास्स्म यम: सयांमतामिम् ्॥29॥

(29) नागों में म ैंअनन्त (िेषनाग) िींूं; जलचरों में म ैंवरुण िींूं; (हदवंगत) पूवजवों में (वपतरों में) म ैंअयमवा िीं
तनयम और व्यवस्था का पालन करने वालों में म ैंयम िींूं।

प्रिादश्चास्स्म दैत्यानां काल: कलयतामिम् ्।
मृगाणा ांच मृगेन्द्रोऽिं िैनतेयश्च पक्षक्षणाम् ्॥30॥

(30) दैत्यों में म ैंप्रह्लाद िींूं; गणना करने ेवालों में म ैंकाल िींूं; पिुओं में म ैंपिुराज शसंिींूं और पक्षक्षयों में
ववनता का पुत्र (गरुड) िींूं।

पिन: पितामस्स्म राम: शस्त्रभृतामिम् ्।
झषाणा ांमकरश्चास्स्म रोतसामस्स्म जाह्नवी ॥31॥

(31) पववत्र करने वालों में म ैंवायु िींूं; िस्त्रधाररयों में म ैंराम िींूं मच्छों में म ैंमगरमच्छ िींूं और नहदयों में म
गंगा िूं।

सगाणगामाहदरन्तश्च मध्यांचिैामजुनग ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां िाद: प्रिदतामिम् ्॥32॥

(32) िे अजुनव, म ैंसब शसरजी गई वस्तुओंका (सृलृष्टयों का) आहद, अन्त और मध्य िीं ववद्याओं में म ैं
अध्यात्मववद्या िींूं; वाद-वववाद करने वालों का म ैंतकव िींूं।

अध्यात्मविद्या विद्यानाम् **ः** ववद्याओं में म ैआत्मा की ववद्या ि। अध्यात्मववद्या भावान के परम आनन्द को पानेका माग वै। यि कोई बौद्धधक अआयावववद्या सामाल्जक अशभयान निीं। यि उद्धार करने वाले ज्ञान का माग वै और इसशलए इसकी साधना गम्भीर धाशमकव तनष्ठा के साथ करनी िोती ि। आत्मा के ववज्ञान के रूप में दिनव िमें उस अज्ञान के ऊपर ववजय पाने में सियता देता ि, जो िमसे ब्रह्म के स्वरूप को तछपाए िुए ि। प्लेटो के मतानुसार, यि सावभवौम बोधामसे * इसके अभाव में ववभागीय ववद्याएं भ्रामक बन जाती ि। प्लेटो शलखता ि: "कुल शमलाकर ववद्याओंका ज्ञान, यहद उसमें सवोत्तम ववद्या सल्म्मशलत न िो, कुछ मामलों में जाननेवाले की सियता करेगा, परन्तु ुअधधकांश मामलों में जानने ेवाले को िातन िी अधधक िोगी।" ऐल्सीबबयेड्स, 2, 144 डी।

अक्षराणामकारोऽस्स्म द्न्दि्ः सामाशसकस्य च ।

अिमेवाक्षयः कालो धातािां विश्तोमुखः ॥33॥

(33) अक्षरों में म ै'अ' अक्षर िूं और समासों में म ैद्वन्द्व समास िूं; म ैिी अनश्वरकाल िूं और म ैिी वि
ववधाता िूं ल्जसके मुख सब हदिाओं में ववद्यमान ि।

काल : समय। तुलना कील्जए : कालस्वरूपी भगवान् ्कृष्णः। ववष्णुपुराण, 5, 381

मृत्युः सिगरश्िामुदुभिश्च भविष्यताम्।्

कीततःग श्रीाक्गचनारीणास्ांमृततमेधा धृतृतःक्षमा ॥34॥

(34) म ैसबको तनगल जाने वाली मृत्यु िूं और म ैभववष्य में िोने वाली सब वस्तुओंका उद्गम िूं; नाररयों में
म ै कीतत,व लक्ष्मी, वाणी, स्मृतृत, बुद्धध, दृढ़ता और क्षमा (धीरता) िूं।

बृित्साम तथा साम्नांगायत्री छन्दसामिम् ्।

मासाना ांमागशगीषोऽमृतूनांकुसुमाकरः ॥35॥

(35) इसी प्रकार साम (गीतों) में म ैबृित् ्साम िूं; छन्दों में म ैगायत्री िूं मिीनों में म ैमागिवीष िूं और ऋतुओं में म ैकुसुमाकर (फूलों की खान, वसन्त) िूं।

धूत ांछलयतामस्स्म तेजस्तेजस्स्विनामिम् ्।

जयोऽस्स्मव्यिसायोऽस्स्मसत्त्िसित्त्ितामिम् ्॥ 36॥

(36) छलनेवालों का म ैजुआ (द्यूत) ि; में तेजल्स्वयों का तेज ि; म ैववजय ि, म ैप्रयत्न िूं और अच्छे लोगों में

अच्छाई िंू।

िृष्णीना ंिासुदेिोऽस्स्म पाण्डिानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यिं व्यासः किीनामुशुना कविः ॥37॥

(37) वृष्णयों में म ैंवासुदेव िंू; पाण्डवों में म ैंधनंजय (अजुनव) िंू, मुतनयों में म ैंव्यास िंू और कववयों में उिना कवव िंू।

दण्डो दमयतामस्स्म नीततरस्स्म स्जगीषताम् ्।
मौनंचैिास्स्म गुह्यानांज्ञानंज्ञानितामिम् ्॥38॥

(38) दमन करने वालों का म ैं(सज़ा देनेका) दण्ड िंू; जो लोग ववजय प्राप्त करना चािते िैं, उनकी म ैंनीतत िूं; रिस्यपूण ववस्तुओंमें म ैंमौन िंू और ज्ञातनयों का म ैंज्ञान िंू।

यच्चावप सिभूगतूाना ंबीज ंतदिमजुनग।
न तदस्स्त विना यत्स्यान्मया भूतू ंचराचरम् 39॥

(39) िे अजुनव, सब वस्तुओंका जो भी कुछ बीज िै, वि म ैंिंू; चराचर वस्तुओंमें ऐसी कोई वस्तु निीं िै, जो मेरे बबना रि सके।405

नान्तोऽस्स्त मम हदव्याना ंविभूतूीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेूविस्तरो मया ॥40॥

(40) िे ित्रु ुको जीतनेवाले (अजुनव), मेरी हदव्य ववभूततयों का कोई अन्त निीं। जो कुछ मनैं ेतुझे ेबताया िै, वि तो मेरी असीम महिमा का केवल तनदिनवमात्र िै।

यद्विभूतूतमत्सत्त्िंश्रीमदुसुजतगमेि िा ।
तत्तदेिािगच्छ त्िंमम तेजोऽशसभंिम् ्॥41॥

(41) जो भी कोई प्राणी गौरव, चारुता और िक्ति से युक्त िै, तू समझ ले कक वि मेरे िी तेज के अंि से उत्पन्न िुआ िै।

---

405 द्रौपदीकीउल्क्तसेतुलनाकील्जएमत्यत्वा चैव भूतानाममरत्व हदवौकसाम्।् त्वतय सव वमिाबिो लोककाय वप्रततल्ष्ठतम् ्
।

यों तो सभी वस्तुओंको परमात्मा ने संभाला िुआ िै, परन्तुसुन्दर और तेजस्वी वस्तुओंमें परमात्मा अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधधक स्पष्टतया प्रकट िोता िै। वीरता का प्रत्येक काय,व बशलदान का प्रत्येक जीवन और प्रततभा का प्रत्येक काय वब्रह्म की िी एक अशभव्यल्क्त िै। मानवीय जीवन के काव्यपूण वक्षण मनुष्य के सीशमत मन से इतने ेपरे की वस्तु िै कक उनकी व्याख्या िी निीं ंकी जा सकती।

अथिा बिुनैतेन ककं ज्ञातेन तिाजुनग।

विष्टभ्यािशमदं कृत्नमेकांशेन स्स्थतो जगत् ्॥ 42॥

(42) परन्तु िे अजुनव, तुझे ेइस ववस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता िै? म ैंइस सम्पूण ववश्व को अपनेज़रा-से अंि द्वारा व्याप्त करके इसे संभाले रिता िंूू।

एकाशेंने : एक अंि द्वारा। इसका यि अथ वनिीं ंिै कक ब्रह्म की एकता अनेक अंिों में खल्ण्डत िो जाती िै। यि ब्रह्माण्ड असीम ब्रह्म का एक आंशिक प्रकटन (अशभव्यल्क्त) िै और यि उसके देदीप्यमान प्रकाि की एक ककरण से प्रकाशित िै।406 भगवान् ्का लोकातीत प्रकाि इस ब्रह्माण्ड से परे और दिे तथा काल से परे तनवास करता िै।

इतत... विभूततयोगो नाम दशमोऽध्यायः ।

यि िै 'विभूततयोग' नामक दसिां अध्याय ।

अध्याय 11

406

ऋग्वेद से तुलना कील्जए: 'पादो अस्य ववश्वा भूतातन तनपाद् अस्यामृतं ्हदवव। 3,90,10। पुरुषसूक्त में किा गया िै कक यि तो केवल उसकी महिमा का वणनव िै, स्वयं ्पुरुष तो इसकी अपेक्षा किीं अधधक बडा िै। साथ िी देखखए छान्दोग्य उपतनषद्, 6, 12, 3 और मैलायणी उपतनषद्, 7,441,6 पर हटप्पणी करतेिुए अशभनवगुप्त ने, जो 'तदात्मानम्' ् के बजाय 'तवात्मांराम् ् पाठ मानता िै, शलखा िै : श्री भगवान् ्ककल पूणपवाड्गुणत्वात् ्िरीरसम्पकवमावरहितोऽवप ल्स्थततकाररत्वात् ्कारुखणकतया आत्मांसिृजतत; आत्मा पूणपवाड्गुण्यः अंिः उपकारकत्वेन अप्रधानभूतो यल तद् आत्मां िरीरं गृह्णातत इत्यथःव ।

भगवान् ्का हदव्य रूपान्तर

अजुनव भगवान् ्के सावभवौम (ववश्व) रूप को देखना चािता िै

अजुनग उिाच

मदनुग्रिाय परम ांगुह्युयमध्यात्मसक्षांज्ञतम् ्।

यत्त्ियोक्तांिचस्तेन मोिोऽयांविगतो मम ॥1॥

अजुनव ने किा :

(1) तूने ेआत्मा के सम्बन्ध में करुणा करके जो मुझे ेयि परम रिस्य समझाया िै, उसके कारण मेरा मोि समाप्त िो गया िै।

यि भ्रम, कक संसार की वस्तुए अपनेसिारे िी ववद्यमान िैं और स्वयंअपने-आप को संभाले िुए िैं और

यि कक वे परमात्मा के बबना िी जीववत रिती िैं और चलती-कफरती िैं, समाप्त िो गया िै।

भिाप्ययौ हि भूतूाना श्रुतौ विस्तरशो मया।

त्त्तिः कमलपराक्ष मिाात्म्यमवप चाव्ययम् ्॥2॥

(2) िे कमललोचन (कृष्ण), मनैं तुझसे वस्तुओं के जन्म और ववनाि के सम्बन्ध में और साथ िी तेरे अनश्वर गौरव के सम्बन्ध में ववस्तार से सब- कुछ सुना िै।

एिमेतद्यथात्य त्िमात्मानां परमेश्िर ।

द्रष्टुशमच्छाशम ते रूपमैश्िरां पुरुषोत्तम ॥3॥

िे परमेश्वर, यहद यि सब ऐसा िी िै, जैसा कक तूने ेबताया िै, तो िे पुरुषोत्तम, म ैंतेरे ईश्वरीय हदव्य रूप को देखना चािता िूंू।

इस बात को जानना, कक िाश्वत आत्मा सब वस्तुओंमें तनवास करती िै, एक बात िै और इसका दिनव करना दूसूरी, बात। अजुनव हदव्य रुपरकी देखना चािता िै, अदृश्य ब्रह्म के दृश्यमान िरीर को और इस बात को, कक वि परमात्मा 'जो सब वस्तुओंका जन्म और मृतूयु िै', कैसा िै। 10, 8। अव्यक्त आधधभौततक सत्य को दृश्यमान वास्तववकता बनाया जाना चाहिए।

मन्यसे यहद तच्छक्यांमया द्रष्टुशमतत प्रभो।

योगेश्िर ततो मे त्ंदिशयगात्मानमव्ययम् ्॥4॥

(4) िे प्रभु, यहद तू समझता िै कक वि रूप मुझे ेहदखाई पड सकता िै, तो िे योगेश्वर (कृष्ण), तू अपना वि अनश्वर रूप मुझे ेहदखा।

भगवान् ्का प्रकट िोना

श्रीभगिानुिाच

पश्य मे पाथ गरूपाणण शतशोऽथ सिरशः ।

नानाविधातन हदव्यातन नानिाणाकृगतीतन च ॥5॥

श्री भगवान् ्ने किा :

िे पाथ व(अजुनव), तू मेरे सैकडों–िज़ारों, नाना प्रकार के हदव्य, ववववध रंगों और आकृततयों वाले रूपों को देख ।

हदव्य िल्क्त का मिान् ्आत्मप्रकिान उस अजुनव के सम्मुख प्रकट िोता िै, जो ववश्व की प्रकक्रया और भववतव्यता के सच्चेअथ वको समझता िै। मिाभारत में 6, 131 में यि किा गया िै कक कृष्ण अपनेववश्व-रूप में दुयोधन के सम्मुख तब प्रकट. िुआ था, जब कक सल्न्ध का अल्न्तम प्रयल करने ेके शलए आए िुए कृष्ण को दुयोधन ने बन्दी बना लेने का प्रयत्न ककया था।

यि हदव्य रूप-दिनव कोई ककंवदन्ती या पौराखणक कथा निीं ंिै, अवपतु एक आध्याल्त्मक अनुभव िै। धाशमकव अनुभव के इततिास में इस प्रकार के अनेक दिनवों का उल्लेख प्राप्त िोता िै। ईसा का रूपान्तर[407]', दशमश्क की सडक पर साऊल का दिनव कौन्स्टैण्टाइन द्वारा एक क्रास का दिनव, ल्जस पर कक ये िदद अंककत थे

---

[407] माकव, 9, 2-81 सेण्ट हिल्डेगोड व(1098-1180) (स्त्री) ने एक दिनव का उल्लेख ककया िै, ल्जसमें उसने एक सुन्दर मानवीय रूपी' पुरुष को देखा था; उस रूप ने अपना पररचय ल्जन िददों में हदया था, उनसे गीता के इस वणनव की याद आ जाती िै। "म ैं िी वि सवोच्च और अल्ग्नमय िल्क्त िै, जो जीवन की सब धचनगाररयों को जन्म देती िै। मुझमें मृतूयु का कोई अंि निीं िै, कफर भी म ैंउसका तनयतन करता िै, क्योंकक म ैंज्ञान द्वारा उसी प्रकार ढका िुआ िै, जैसे पक्षी पंखों से ढका िोता िै। म ैंहदव्य तत्व का वि सप्राण और अल्ग्नमय सार िै, जो खेतों के सौन्दय वमें चमकता िै। म ैंपानी में चमकता िूँ म ैंसूय वऔर चन्द्रमा और तारों में जल रिा िंूं। अदृश्य वायु में जो रिस्यमय िल्क्त िै, वि मेरी िी िै। म ैंसब प्राखणयों के श्वास को संभाल रखता िंूं। िररयाली और फूलों में म ैंिी सांस लेता िै और जब जलधाराएंजीववत वस्तुओं की भांतत बिती िैं, तब वि म ैंिी िोता िंूं। मनैं िी उन स्तम्भों को बनाया िै, जो सारी पृथूवी को संभालते िैं। ... ये सब इसशलए जीववत िैं, क्योंकक म ैंउनमें िंूं, और म ैंउनका जीवन िंूं। म ैंज्ञान िंूं। ल्जस गजनवामय िदद से ये सब वस्तुएं बनी थी, वि िदद मेरा िी िै। म ैंसब कतुओं में रमा िुआ िै, ल्जससे वे तनष्प्राण न िो जाएं। म ैंजीवन िै।" चाल्स वशसंगंर द्वारा सम्पाहदत 'स्टबीज इन दी हिस्री एण्ड मैथैड ऑफ साइन्स' (1917) में से उद्धृत; पृ.ृ 33

इस धचह्न को लेकर ववजय करो', तथा जॉन ऑ आकव के इसी प्रकार के दिनव अजुनव के हदव्य रूप-दिनव की कोहट के िी अनुभव िै।

पश्याहदत्यान्सून्द्रानस्श्निी मरुतस्तथा ।
बूिन्यदृष्टपूवागणण पश्याश्चयागणण भारत ॥6॥

(6) िे भारत (अजुनव), तू ूआहदत्यों को, वसुओंको, रुद्रों को, दो अल्श्वनों को और मरुतों को देख। और भी अनेक आश्चयों को देख, ल्जन्िें कक तूने पिले कभी निींदेखा।

इिैकस्थांजगत्कृत्त ंपश्याय सचराचरम्।्
मम दिे गुडाकेश यच्चान्यद्रष्टुशमच्छशस ॥7॥

(7) िे गुडाकेि (अजुनव), यिां ंआज तू ूसारे जगत् ्को, सब चराचरों को देख और जो कुछ तू देखना चािता िै, उस सबको मेरे िरीर में एकल िुआ देख।

यि सब वस्तुओंका एक परमात्मा में दिनव िै। जब िम अपने ज्ञान की पूरी क्षमता का ववकास कर लेते े िैं, तब िम इस बात को देख लेते िैं कक सब (अतीत, वतमवान और भववष्यत्)् वतमवान िी िै।

न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनिै स्वचक्षुषा ।
हदव्यां ददाशम ते चक्षुः पश्य में योगमैश्वरम् ्॥8॥

(8) परन्तु तू मुझे ेअपनी इन (मानवीय) आंखों से निीं ंदेख पाएगा; म ैंतुझे ेहदव्य दृल्ष्ट देता िंूंू। तू मेरी हदव्य िल्क्त को देख ।

कोई भी पाधथव आंख सवोच्च रूप को निीं ंदेख सकती। मानवीय आंख ऐसे अत्यधधक प्रकाि को देखने के शलए निींबनी। मांसचक्षु मांस की बनी िुई आंख िै, जब कक हदव्य चक्षुदैवीय आंख िै।408

---

408 उपतनषद् का कचन िै :

सुनते िुए भी वे निीं सुनते;े जानतेिुए भी वे निीं ंजानते;े देखतेिुए भी वे निीं ंदेखते; वे केवल ज्ञान की आंखों से देखते िैं।

शृण्वन्तोऽवप न िृण्वल्न्त जानन्तोऽवप न जानते।े

पश्यन्तोऽवप न पश्यल्न्त पश्यल्न्त ज्ञानचक्षुषः ।

मोक्षधम वमें तनम्नशलखखत श्लोक शमलता िै:

माया िोषा मया सृष्टा यन्मां ंपश्यशस नारद।

सवभूवतगुणैयुक्वतंन तु मांद्रष्टुमिवशस ।

इस पर टीका करते िुए मधुसूदन ने किा िै: "सवभूवतगुणैयुक्वते ेकारणोपाधध मा चमचवक्षुषण ब्रष्टुं नािशस।" पैगम्बर के िददों में तुलना कील्जए: "प्रभु, उसकी आखें खोल दो, ल्जससे वि देख सके।" साथ िी देखखए ववज़न ऑफ पेजेककयेल, ऐक्सौडस 33, 18; रीवैलेिन, 4; और सद्धम वपुण्डरीक, 1।" उडो, चमको; क्योंकक तुम्िारा प्रकाि आ गया िै और

मानवीय आंख केवल बाह्य रूपों को देख सकती ि ै; आन्तररक आत्मा का ज्ञान आल्त्मक आंख से िोता ै। एक प्रकार का ज्ञान ऐसा िोता ि ै, ल्जसे िम अपने प्रयत्नों द्वारा प्राप्त कर सकते ि ै - इल्न्द्रयों द्वारा प्रदत्त अनुभव और बौद्धधक गततववधध पर आधाररत ज्ञान। एक और प्रकार का ज्ञान उस समय िो सकता ि ै, जब कक मि चारुता के प्रभाव के अधीन िों-आल्त्मक वास्तववकताओं का प्रत्यक्ष ज्ञान। देवता का दिनव देवता की िी एक देन ि ै। यि सारा वववरण हदव्य प्रकृतत में नानाववध ववश्व की एकता को सूधचत करने ेका एक काव्यपूण वढंग ि ै।

यि दिनव कोई मानशसक कल्पना निीं ंि ै, अवपतु सीशमत मन से परे एक सत्य का उद्घाटन ि ै। यिां अनुभव की स्वतःस्फूततवा और प्रत्यक्षता को स्पष्ट ककया गया ि ै।

संजय द्वारा हदव्य रूप का वणनव

सजांय उिाच

एिमुक्त्िा ततो राजन्मिायोगेश्िरो िरर: ।

दशयगामास पाथायग परम ंरूपमैश्िरम् ्॥9॥

संजय ने किा :

(9) मिाराज, इस प्रकार किकर मिान् ्योगेश्वर िरर (कृष्ण) नेअजुनव के सम्मुख अपना सवोच्च और हदव्य रूप प्रकट ककया।

यि कृष्ण का हदव्य रूपान्तर ि ै, ल्जसमें कक अजुनव स्वग वऔर पृथ्वी के सब प्राखणयों को हदव्य रूप में देखता ि ै।

अनेक िक्लनयनमनेकाद्भुतुदशनगम् ्।

अनेकहदव्याभरण ंहदव्यानेकोधतायुधम् ्॥10॥

(10) वि रूप अनेक मुखों और आंखों वाला था, उसमें अनेक आश्चयजवनक दृश्य थे। उसनेअनेक हदव्य आभूषण धारण ककए िुए थे और उसनेअनेक हदव्य िस्त्र उठाए िुए थे।

यिां ंपर ऐसा प्रतीत िोता ि ै कक कवव उस अनुभव का वणनव करने ेके प्रयत्न में जो कक वस्तुतः अवणनवीय ै, िददों की कमी और वाणी की अपूणतवा का अनुभव कर रिा ि ै।

अनेकिकानयनम् ्: अनेक मुखों और आंखों वाला। वि सबको तनगल जानेवाला और सबको देखने वाला ि ै।

प्रभु कीमहिमातुम्िरि ऊपर उहदतगईिैतुमदेखपाओगेऔरदेदीप्यमानबनोगेऔरतुम्िाराहृदयरोमांधचतऔरविाल िोआएगा। (ईसाइयाि 9, 1 - 5) ।

ये सावभवौम सत्ता के वणनव िैं। पुरुषसूक्त में भी इससे शमलता-जुलता वणनव प्राप्त िोता िै। सिस्रीषाव पुरुषः सिस्राक्षः सिस्रपात् ्(ऋग्वेद 10, 90)। तुलना कील्जए : मुण्डकोपतनषद् 2, 1, 41

हदव्यमाल्याम्बरधरां हदव्यगन्धानुलेपनम् ्।
सिाश्चियमगयां दिमनन्तां विश्ितोमुखुम् ्॥11॥

(11) उसनेहदव्य मालाएं और वस्त्र धारण ककए िुए थे। उसनेहदव्य गन्ध (इत्र) और लेप लगाए िुए थे। उसमें सब आश्चय वथे। वि हदव्य और अनन्त था। उसके मुख सब हदिाओं की ओर ववद्यमान थे।

हदवि सूयूसगिरस्य भिेयुगपदुसुत्थता ।
यहद भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य मित्मनः ॥ 12॥

(12) यहद आकाि में एक िजार सूयों की चमक एक-साथ दमक उठे, तो वि उस मिान् ्आत्मा के तेज के समान िो सकती िै।

तलैकैस्थांजगत्कृल्म प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देिदेिस्य शरीरे पाण्डिस्तदा ॥13॥

(13) विां पाण्डव (अजुनव) ने उस देवों के भी देव के िरीर में अनेक रूपों में बंटे िुए सारे संसार को एक िी जगि ल्स्थत देखा।

अजुनव को नाना वस्तुओंमें परमात्मा का और एक परमात्मा में िी नाना वस्तुओंका दिनव िुआ। सब वस्तुएं विी रिती िैं, और कफर भी वे ेसब बदल जाती िैं। दैनल्न्दन जगत् ्की पररधचत वस्तुओंके लुप्त िो जानेपर आश्चय वअनुभव िोता िै। प्रत्येक वस्तु एक-दूसूरे के साथ गुंथी िुई िै और प्रत्येक वस्तु उस सम्पूण वको प्रततबबल्म्बत करती िै। यि दिनव सारे पाधथव जीवन की सम्भाव्य हदव्यता का प्रकािन िै।

अजुनव भगवान् ्से तनवेदन करता िै

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शशरसा देिंकृताञ्जशलरभाषत ॥14॥

(14) तब धनंजय (अजुनव) आश्चय वसे अशभभूत िो गया। उसके रोंगटे खडे िो गए। उसनेशसर झुकाकर, िाथ जोडकर भगवान् ्को प्रणाम ककया और किा :

आतंक से ववकल िोकर, रोमांधचत िोकर, शसर झुकाए और िाथ जोडे िुए आजुनव स्तुतत करता िै।

अजुनग उिाच

पश्याशम दिास्ांति दि दि, सिांस्तथा भूतूविशेषसङ्घान् ्।

ब्रह्माणमीश ांकमलासनस्थ मृषीश्च सिानुगरगाश्ांच हदव्यान् ्॥15॥

अजुनव ने किा :

(15) िगवान्, ् म ैंतुम्िारे िरीर में सब देवताओंऔर ववववध प्रकार के प्राखणयों के समिूों को देख रिा िूं। म ैं कमल के आसन पर बैठे िुए ववधाता ब्रह्मा को तथा अन्य ऋवषयों को और हदव्य नागों को देख रिा िूँ।

परमात्मा का दिनव िमारे क्षक्षततज को ववस्तृत कर देता िै और वि िमें उस पाधथव कोलािल और कष्टों से परे ले जाता िै, जो इतनी आसानी से िम पर िावी िो जाते िैं। परमात्मा की सृलूष्ट इस छोटे-से ग्रि तक िी सीशमत निीं िै, जो कक इस ब्रह्माण्ड का एक क्षुद्र-सा अंि िै। अजुनव देखता िै कक यि ववश्व तो अनेक और ववववध प्रकार की आत्माओं से भरा िुआ िै।409

अनेकबािूदरिक्र ने ल ांपश्याशम त्िा ांसितगोऽनन्तरूप्म्।

नान्त ांन मध्यांन पुनस्तिाहद, पश्याशम विश्िेश्िरि विश्िरूप 16॥

(16) म ैंतुझे ेसब ओर अनन्त रूपों में देख रिा िूं। तेरी अनेक भुजाएं िैं; अनेक पेट िैं; अनेक मुख िैं और अनेक नेल िैं, परन्तु िे ववश्व के स्वामी, िे ववश्व-रूप, मुझेकिीं ंतेरा अन्त, मध्य या आहद हदखाई निीं पड रिा।

वक्ि : चिेरे या मुख ।

ककरीहटनां गहदनांचकक्रण ांच, तेजोराशश ांसितगो दीस्प्तमन्तम् ्।

पश्याशम त्िा ांदुतुनरीक्ष्य ांसम त्याद्दीप्तानलाकगयुततमप्रमेयम् ्॥17॥

(17) म ैंतुझे ेमुकुट, गदा और चक्र धारण ककए िुए, सब ओर दमकते िुए तेजः-पुंज के रूप में देख रिा िूं, ल्जसे देख पाना भी कहठन िै (चौधचयाने वाला), जो सब ओर से धधकती िुई आग और सूय वके समान देदीप्यमान िै और जो अनुपम िै।

त्िमिक्षरां परम ांिेहदतव्य, ां त्िमिस्य विश्िस्य परां तन्धानम्।्

त्िमिव्ययः शाश्तिधमगोप्ता, सनातनस्त्िा पुरुषो मतो मे ॥ 18॥

409 एम.के. गांधी ीसौंग्याप्रॉनल्जज्ञन (1934), पृ. 129

(18) तू अनश्वर भगवान् ्ि◌ै, ल्जसका ज्ञान प्राप्त ककया जाना चाहिए। तू संसार का परम ववश्राम का स्थान ि◌ै; तू िाश्वत (सनातन) धम वका अमर रक्षक ि◌ै। मुझे ◌ेतो लगता ि◌ै कक तू ि◌ी सनातन पुरुष ि◌ै।

अक्षरम् ◌्**:** अनश्वर । अजुनव किता ि◌ै कक भगवान् ्ब्रह्म और ईश्वर, दोनों ि◌ी ि◌ै। परब्रह्म और परमात्मा

दोनों ।410

शाश्ितिधमगोप्ता : सदा बने रिने ◌ेवाले धम वका अमर रक्षक। अशभनवगुप्त ने इसके स्थान पर 'सात्त्वतधमगवोप्ता' पाठ माना ि◌ै, ल्जसका अथ वि◌ै सात्वत धम वका रक्षका

अनाहदमध्यान्तमनन्तिीय गमनन्तबिाुां शशशसूयूनेगलम् ◌्।
पश्याशम त्िा ◌ांदीप्तिुताशिक्ल,◌ां स्तिेजसा विश्िशमदां तपन्तम् ◌्॥19॥

(19) म ◌ैंतुझे ◌ेदेख रिा ि◌ूं◌ू, ल्जसका न कोई आहद ि◌ै, न मध्य और न कोई अन्त ि◌ै; ल्जसकी ि◌ल्क्त अनन्त ि◌ै; ल्जसकी असंख्य भुजाएं ि◌ैं; सूय वऔर चन्द्र ल्जसके नेन ि◌ै, ल्जसका मुख धधकती ि◌ुई आग की भांतत ि◌ै और जो अपनेतेज से सारे संसार को तपा रिा ि◌ै।

घिाापृधृथव्योररदमन्तरां हि, व्याप्तां त्ियैकैन हदशश्च सिाःग ।
दृष्ट्िाद्भुतांरूपमुग्र ◌ांतिेदां, लोकलयां प्रव्यधथतां मिात्मन् ◌्॥20॥

(20) आकाि और पृथ्वी के बीच का यि सारा स्थान और सारी हदिाएं, केवल तुझ अकेले से ि◌ी व्याप्त ि◌ैं: ि◌े मिान् ्आत्मा वाले, जब तेरा यि आश्चयजवनक भयंकर रूप हदखाई पडता ि◌ै, तब तीनों लोक कांप उठते ◌ि◌ैं।

अमीहि त्िासुरुसघांाविशस्न्तकेधचद्भीताः प्राञ्जलयो गृणृस्न्त।
स्स्तीत्युक्त्िा मिवषशगसद्धसघांाः, स्तुिस्न्त. त्िास्तुततशभः पुष्कलाशभः॥21॥

(21) उधर वे देवताओंके समूि तेरे अन्दर प्रवि कर रि ि◌ैं और उनमें से कुछ ि◌ाथ जोडे ◌ेतेरी स्तुतत कर रि ◌ैं। मिवषयवों और शसद्धों के समूि 'स्वल्स्त' (कल्याण ि◌ो) किकर अत्यन्त प्रिंसायुक्त मन्त्रों से तेरी स्तुतत कर रि ि◌ैं। आध्याल्त्मक प्राखणयों के समूि उस परमात्मा की स्तुतत करते ि◌ैं और ि◌षाविमय उपासना में खोए रिि◌ैं।

रुद्राहदत्या ि◌सिो ये च साध्या विश्िोऽस्श्िनौ मरुतश्चोष्णपाश्च ।
गन्धियगक्षासुरुशसद्धसघांा ि◌ीक्षन्ते ◌ेत्िा ◌ांविस्स्मताश्चै सिे ॥22॥

---

410 एतेनसगुणरूपस्यतनगुणवात्यम्उक्तम्। नीलकण्ठ ।

(22) रुद्रगण, आहदत्यगण, वसुगण और साध्यगण, ववश्वेदेवगण और दो अल्श्वनीकुमार, मरुत् ्और वपतर

तथा गन्धों, यक्षों, असुरों और शसद्धों के समि्, सब तेरी ओर देख रि ेिैं और देखकर सब चककत िो रि ेिैं।

रूप ंमित्ते मिाबािो बिुवक्त्रनेत्रं, बिुबािूरुपादम्।
बिूदरं बिुदंष्ट्राकरालं, दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यधचतास्तथािम् ॥23॥

(23) िे मिाबािो, तेरे इस अनेक मुखों और आंखों वाले, अनेक भुजाओं, जांघों और पैरों वाले, अनेक पेट
वाले, अनेक बडे-बडे दांतों के कारण भयानक दीख पढ़ने वाले ववशाल रूप को देखकर सारे लोक कांप रिे
िैं और उसी प्रकार मैं कांप रिा िूं।

यि भगवान् की सावभवौमता तथा सवत्रववववद्यमानता को ध्वतनत करने के शलए की गई काव्योधचत

अत्युल्क्त िै।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवणं, व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यधथतान्तरात्मा, धृततं न विन्दाशम शमं च विष्णो ॥24॥

(24) तेरे इस आकाश को छूने वाले, अनेक रंगों में दमकतेिुए, खूब चौडा मुंि खोले िुए और बडी-बडी
चमकती आंखों वाले इस रूप को देखकर मेरी आन्तरतम आत्मा भय से कांप रिी िै और िे ववष्णु,
मुझे न धीरज बंध रिा िै और न िी शान्तत शमल रिी िै।

दंष्ट्राकरालातन च ते मुखातन, दृष्ट्वैव कालानलसस्न्नभातन ।
हदशो न जाने न लभे च शमं, प्रसीद देवेश जगस्न्नवास ॥25॥

(25) जब मैं बडे-बडे दांतों के कारण डरावनेऔर काल की सवग्रवासी लपटों के समान तेरे मुखों को देखता
िूं, तो मुझेहदिाएं तक सूझनी बन्द िो जाती िैं और ककसी प्रकार चैन निींपडता। िे देवताओं के स्वामी,
िे संसार के आश्रय, तू करुणा कर।
कालानल : दिदाथ वि प्रलय की अल्ग्न ।

अजुनव अपनी धीर-विा खो बैठता िै। इस भयंकर अनुभव में ववस्मय, आतंक और िषोन्माद के तत्त्व

ववद्यमान िैं।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः, सवे सिैवावतनपालसंघैः ।

भीष्मो द्रोणः सूतूपुरस्तथासौ, सिास्मदीयैरवप योधमुख्यैः ॥ 26॥

(26) उधर सब राजाओंके समूिों के साथ वे धृतराष्ट्र के पुल और भीष्म, द्रोण और कण,व िमारे पक्ष के प्रमुख योद्धाओंके साथ-साथ िी,

क्राणण ते त्ररमाणा विशस्न्त, दांष्ट्राकरालातन भयानकातन ।
केधचद्विलग्ना दशनान्तरेषु, सदृंश्यन्तेचूणणतैगरुत्तमाङ्गः ॥27॥

(27) तेरे उन डरावनेमुखों में घुसे जा रिे िैं, जो बडे-बडे ेदांतों के कारण बिुत भयंकर िो उठे िैं। कुछ उन दांतों के बीच में फंसे हदखाई पड रिे िैं। उनके शसर वपसकर चूर-चूर िो गए िैं।

यथा नदीनांबििोऽम्बुिेगाः, समुद्रमेिाशभमुखा द्रिस्न्त ।
तथा तिामी नरलोकिीरा, विशस्न्त िक्राण्यशभविज्िलस्न्त ॥28॥

(28) ल्जस प्रकार नहदयों की अनेक वेगवती धाराएं समुद्र की ओर दौडती चली जाती िैं, उसी प्रकार ये नरलोक के वीर योद्धा तेरे लपटें उगलते िुए मुखो में घुसे जा रिे िैं।

यथा प्रदीप्तां ज्िलिनांपतङ्गा विशस्न्त नाशाय समृद्धिेगाः ।
तथैि नाशाय विशस्न्त लोका स्तिावप िक्राणण समृद्धिेगाः ॥29॥

(29) ल्जस प्रकार पतंगे जोर से जलती िुई आग पर अपनेवविनाश के शलए तेजी से झपटते िुए आते िैं, उसी प्रकार ये लोग अपनेवविनाश के शलए झापडले िुए तेरे मुखों में घुस रिे िैं।

ये प्राणी अपनेअज्ञान के कारण अन्धे िोकर अपनेवविनाश की ओर दौड रिे िैं और दैवीय तनयन्त्रक इस सबको िोनेदे रिा िै, क्योंकक वे ेसब अपनेकमों का फल भुगत रिे िैं। जब िम ककसी कम वको करने ेके शलए तत्पर िोतेिैं, तो िम उसके पररणामों के शलए भी उद्यत रिते िैं। स्वतन्त कक्रयाएं िमें उनके पररणामों का विवती बना देती िैं। क्योंकक यि कारण और काय वका तनयम दैवीय मन की अशभव्यल्क्त िै, इसशलए यि भी किा जा सकता िै कक ब्रह्म इस तनयम को कायाल्वन्वत कर रिा िै। लेखक विश्व-रूप की धारणा द्वारा इस बात को स्पष्ट करता िै कक ककस प्रकार अपनी वविालता, सुन्दरता और आतंक के सहित सारा ब्रह्माण्ड, सारे देवता, मिात्मा, पिु ुऔर पौधे परमात्मा के जीवन की समृद्धध के अन्दर िी िैं। सबको अपने अन्दर रखते िुए परमात्मा अपने-आप से बािर निीं जा सकता। िम मनुष्य-प्राणी, जो ताककवक ढंग से वववचार करते िैं, कभी एक वविय को लेकर व्यस्त रिते िैं और कभी ककसी दूसूरे वविय को लेकर । िम एक के बाद एक वविय पर वववचार करते िैं, परन्तु दैवीय मन सब बातों को एक िी समझता िै। उसके शलए न कोई अतीत िै और न कोई भवविष्यत् ि।

लेशलयसे ग्रसमानः समन्ता ल्लोकान्समग्रान्दिनैज्र्लद्शभः ।

तेजोशभरापूय ांजगत्समयां, भासस्तिोग्राः प्रतपस्न्त विष्णो॥30॥

(30) अपनेजलते िुए मुखों से सब ओर के लोकों को तनगलता िुआ तू उन्िेंचाट रिा िै। िे वविष्णु, तेरी अल्ग्नमय ककरणें इस सारे संसार को भर रिी िैं और इसे अपने प्रचण्ड तेज से झुलसा रिी िैं।

आख्याहि मे को भिानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते दिेवर प्रसीद।

विज्ञातुशमच्छाशम भिन्तमाद्य,ां न हि प्रजानाशम ति प्रवृत्तम्॥31॥

(31) मुझे ेबता कक इतने भयानक रूप वाला तू कौन िै। देवताओं में श्रेष्ठ, तुझको प्रणाम िै। दया कर। म ैं जानना चािता िूूँ कक तू ूआहददेव कौन िै, क्योंकक म ैंतेरे कायकवलाप को निींजानता।

शिष्य गम्भीरतर ज्ञान की खोज करता िै।

न्यायाधीि परमात्मा

श्रीभगिानुिाच

कालोऽस्स्म लोकक्षयकृतिृद्धो लोकान्समिातुशगमि प्रिृत्तः ।

ऋतेऽवप त्िा ांन भविष्यस्न्त सिे, येऽिस्स्थताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥32॥

श्री भगवान् ने किा :

(32) म ैंलोकों का ववनाि करने ेवाला काल िूूँ, जो अब बडा िो गया िूूँ और यिांइन लोकों का दमन करने में लगा िुआ िूूँ। ये परस्पर-ववरोधी सेनाओं में पंल्क्तबद्ध खडे िुए योद्धा तेरे (तेरे कम वके) बबना भी िेषे निीं रिेंगे।

काल ववश्व का प्रधान संचालक िै। यहद परमात्मा को काल-रूप में सोचा जाए, तो वि तनरन्तर सृल्ष्ट कर

रिा िै और ववनाि कर रिा िै। काल वि उमडता िुआ प्रवाि िै, जो अववराम चलता जाता िै।

परम पुरुष सृजन और ववनाि दोनों की ल्ज़म्मेदारी अपने शसर लेता िै। गीता इस सुपररधचत शसद्धान्त को निीं ंमानती कक जो कुछ अच्छा िै, वि तो परमात्मा की देन िै और जो कुछ बुरा िै, वि िैतान की देन िै। यहद परमात्मा मत्य वअल्स्तत्व के शलए उत्तरदायी िै, तो वि उस अल्स्तत्व के अन्तगवत सब बातों के शलए, जीवन और सृजन के शलए, वेदना और मृत्यु के शलए भी उत्तरदायी िै।

परमात्मा का काल पर तनयन्त्रण िै, क्योंकक वि काल के बािर िै और यहद िम भी काल के ऊपर उठ सकें, तो िम भी इस पर अधधकार कर सकते िैं। काल के पीछे ववद्यमान िल्क्त िोने के कारण वि िमारी अपेक्षा किीं अधधक दूर तक देखता िै और इस बात को जानता िै कक ककस प्रकार सब घटनाएं तनयल्न्त्रत िैं और इसशलए

अजुनव को बताता िै कक कारण अनेक वषों से कक्रयािील िै और अब वे अपनेस्वाभाववक पररणामों की ओर बढ़ रिे िैं। इन पररणामों को इस समय, चािे िम कुछ भी क्यों न कर लें, घहटत िोने से रोका निीं जा सकता। उसके त्रिुओं का ववनाि बिुत पिले ककए गए कायों द्वारा अटल रूप से तनल्श्चत िो चुका िै। इस प्रकार का अवैयल्क्तक 'भाग्य िोता िै, ल्जसे ईसाई प्रारदध (प्रॉववडेण्स) कितें एक सामान्य ब्रह्माण्डीय आवश्यकता, 'म्यारा' (भाग्य) और जो परमात्मा की प्रकृतत (स्वभाव) के एक पक्ष की अशभव्यल्क्त िै; और इसीशलए ल्जसे परमात्मा के प्रभुतासम्पन्न व्यल्क्तत्व का, जो अपने अधचन्त्य उद्देश्यों के साधन में लगा रिता िै, संकल्प समझा जा सकता िै। उसके समक्ष आत्मतनधारवण के सब दावे अकारथ िैं।

तस्मात्त्मुिवुत्तष्ठ यशो लभस्ि, स्जत्िा शिुनुभुि राज्यांसमृद्धम्।् म
यैिते तनिताः पूिमेगि, तनशमत्तमार ंभि सव्यसाधचन् ्॥33॥

(33)इसशलए तू ूउठ खडा िो और यि प्राप्त कर। अपनेिलुओंको जीतकर तू इस समृद्धधपूण वराज्य का उपभोग कर। वे ेसब तो पिले िी मेरे द्वारा मारे जा चुके िैं। िे सव्यसाची (अजुनव), तू ूअब इसका कारण-भर बन जा।

भववतव्यता का ईश्वर सब बातों का तनश्चय करता िै और उन्िें तनयत करता िै और अजुनव को तो केवल उसका साधन-उस सविवल्क्तमान् ्की अंगुशलयों के नीचेरखी िुई बांसुरी बनना िै, जो अपनिी एक उद्देश्य को पूरा कर रिा िै और एक मिान् ्ववकास करने में लगा िै। यहद अजुनव यि समझता िै कक उसे अपने अपूण वववेक के अनुसार काय वकरना िै, तो वि अपने-आप को धोखा दे रिा िै। कोई भी व्यल्ष्ट आत्मा परमात्मा के इस वविेषाधधकार में िस्तक्षेप निींकर सकती। िस्त्र उठाने से इनकार करनेके कारण अजुनव धृष्टता का दोषी िै। देखखए : 18,581

तनशमत्तमालम् ्: केवल कारण। ऐसा प्रतीत िोता िै कक लेखक दैवीय पूवतवनणयवन के शसद्धान्त का समथनव करता िै और व्यल्क्त की तनतान्त असिायता और क्षुद्रता तथा उसके संकल्प और प्रयत्न की व्यथतवा की ओर संकेत करता िै। तनश्चय पिले िी ककया जा चुका िै और अजुनव उसे बदलने के शलए कुछ भी निींकर सकता। वि परमात्मा के िाथों में िल्किीन उपकरण-भर िै और कफर भी इसमें यि ध्वतन िै कक परमात्मा स्वेच्छाचारी और मनमौजी निीं ंिै, अवपतु न्यायी और पे्रेममय िै। इन दोनों ववचारों का मेल ककस तरि बैठाया जाए? यिां ंपर पूवतवनणयव करनेवाले और एकमाल काय वकरनेवाले परमात्मा का दैवीय ववचार प्रकट ककया गया िै, जो िममें उस परमात्मा पर पूणतवया आधश्रत िोने का 'भाव जगाता िै, जो 'बबलकुल अन्य' िै और जो िमारे ववरुद्ध परम प्रततपक्ष के रूप में ववद्यमान िै। परमात्मा की िल्क्त का एक तीव्र अन्तज्ञानव यिां ंपर प्रकट िोता िै, जैसा कक वि जौब में और पौल में प्रकट िुआ िै: "क्या बनाई गई वस्तु अपने तनमातवा के सामने खडी िोकर कि सकती िै कक तूने ेमुझेऐसा क्यों बनाया िै?"

मिें सारी ववश्व की प्रकक्रया को एक पूवतवनधारवरत योजना का उद्घाटनमाल, पिले से तैयार शसने-कथा का अनावरणमाल, समझने की आवश्यकता निीं। लेखक यिां ंपर मानवीय कमों की अभववष्यदिनवीयता का खण्डन उतना निीं ंकर रिा, ल्जतना कक वि िाश्वतता के अथ वको जोर देकर कि रिा िै, ल्जसमें कक काल के सब अतीत, वतमवान और भववष्य के सब-क्षण दैवीय आत्मा के शलए वतमवान िी िोतिं। काल में ववकास के प्रत्येक क्षण की प्रगततिील नवीनता हदव्य िाश्वतता के साथ असंगत निीं।

परमात्मा के ववचार मानवीय उपकरण द्वारा िी कक्रया में पररणत िोते िैं। यहद िम समझदार िैं, तो िम इस प्रकार काय वकरते िैं कक परमात्मा के िाथों में उपकरण बत जाते िैं। िम परमात्मा को िमारी आत्मा को अपने में लीन कर लेनेदेते िैं और अपनेअिभाव का कोई धचह्न िेषे निीं रिने ेदेते। िमें उसके आदेिों को ग्रिण करना िोगा और उसकी इच्छा का पालन यि किते िुए करना िोगा : "तेरी इच्छा में िी मेरी िाल्न्त िै"; "वपता, म ैंअपनी आत्मा को तेरे िाथों में सौंपता िंूं।"*[411] अजुनव को यि अनुभव करना चाहिए : "तेरी इच्छा के शसवाय अन्य ककसी वस्तु का अल्स्तत्व निीं। केवल तू िी कताव िै और म ैंतो केवल उपकरण-भर िंूं।" युद्ध की डरावनी ववभीवषका उसमें ववरल्क्त जगाती िै। मानवीय प्रमापों के अनुसार परखा जाए, तो यि समझ में आनेवाली बात निींलगती, परन्तु जब मानो सविवल्क्तमान् ्परमात्मा के प्रयोजन को प्रकट करने के शलए पदाव उठा हदया जाता िै, तो वि उसके शलए राजी िो जाता िै। अब उसके शलए इस बात का मित्त्व निीं रिता कक उसकी अपनी इच्छा क्या थी, या वि इस संसार में या परलोक में क्या पाने की आिा रख सकता िै। दिकालमय इस संसार के पीछे और इसके अन्दर तक व्याप्त, परमात्मा का एक रचनात्मक प्रयोजन िै। िमें उस सवोच्च इरादे को समझना िोगा और उसकी सेवा में िी सन्तोष मानना िोगा। प्रत्येक काय वस्वयं उससे बिुत परे की ककसी वस्तु का प्रतीक िै।

द्रोण ंच भीष्म ंच जयद्रथां च, कणं ंतथान्यानवप योधीरान् ्।
मया ितास्गत्िांजहि मा व्यधथष्ठा, युध्यस् जेताशस रणे सपत्नान्॥24॥

(24) तू द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कण वतथा अन्य वीर योद्धाओं को मार डाल, जो मेरे द्वारा पिले िी मार डाले गए िैं। डर मत। युद्ध कर। तू युद्ध में िलुओंको अवश्य जीत लेगा।

मया ितान् ्: ल्जनकी मृतूयु मनैं ेतनल्श्चत कर दी िै। परमात्मा उनके जीवनों की हदिा को और उनके शलए तनयत लक्ष्य को भी जानता िै। संसार में ऐसी तुच्छ-से-तुच्छ और क्षुद्र-से-क्षुद्र भी कोई वस्तु निीं िै, जो परमात्मा द्वारा पिले िी आहदष्ट या अनुमत न िो, यिांतक कक ककसी छोटी-सी धचडडया की मृतूयुभी निीं।

अजुनव से किा गया िै कक वि ववधाता के पद को संभाल ले। बाह्यतः वि प्रकृतत का स्वामी िोगा और आन्तररक दृल्ष्ट से वि सब सम्भाववत घटनाओंसे ऊपर िो जाएगा।

[411] 4 ल्यूक , 23, 46

सजांय उिाच

एतच्छ्रुत्िा िचनांकेशिस्य, कृताञ्जशलिेपमानः ककरीटी।

नमस्कृत्िा भूयू एिाि कृष्ण,ां सगद्गदां भीतभीतः प्रणम्य ॥35 ॥

संजय ने किा :

(35) केशव (कृष्ण) के इन वचनों को सुनकर कांपते िुए ककरीटी (अजुनव) ने िाथ जोडकर कृष्ण को नमस्कार ककया और कफर भय से कांपतेिुए प्रणाम करके रुंधी िुई वाणी में कृष्ण से किा;
रूडोल्ि ओटो ने इस सारे दृश्य को धम वमें हदव्यभाव के स्थान के, मिान् ्रिस्य के, उदािरण के रूप में

प्रस्तुत ककया िै। यि िमारे सम्मुख परमात्मा के लोकोत्तर पक्ष को प्रस्तुत करता िै।

अजुनव के स्तुतत के श्लोक

अजुनग उिाच

स्थाने िृषीकेश ति प्रकीत्याग, जगतिाष्यत्यनुरुज्यते ेच।

रक्षाांसस भीतातन हदशो द्रिस्न्त, सिे नमस्यस्न्त च शसद्धसङ्काः36 ॥

अजुनव ने किा :

(36)हृषीकेश (कृष्ण), संसार जो तेरे यि के गीत गानेमें आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव करता िै, वि ठीक िी करता िै। राक्षस डरकर सब हदिाओंमें भाग रिे िैं और शसद्ध (पूणतवा को प्राप्त िुए) लोगों के समूि तुझे(आदर से) नमस्कार कर रिे िैं।

आराधना और पररताप के तीव्र 'भाववेि में अजुनव भगवान् ्की स्तुतत करता िै। वि न केवल काल की ववनािकारी िस्क्त को देखता िै, अवपतु आध्यास्त्मक भगवत्-सास्न्नध्य और सृस्ष्ट के तनयामक ववधान को भी देखता िै। जिां इनमें से पिला आतंक उत्पन्न करता िै, विांपदूसरा िषावेगमय उल्लास की भावना को जन्म देता िै और अजुनव आत्यस्न्तक स्तुतत में अपनी आत्मा को उडेले देता िै।

कस्माच्च ते न नमेरन्मिात्मन, गरीयसे ब्रह्मणोऽप्याहदकत्रे।

अनन्त देिेश जगस्न्निास, त्िमक्षरां सदसत्तत्परां यत् ्॥37 ॥

(37) और िे मिान् ्आत्मा वाले, वे तुझे ेप्रणाम क्यों न करें, तू ूजो कक आहदस्रष्टा ब्रह्मा से भी मिान् ्िै? िे अनन्त, देवताओं के स्वामी, संसार के स्वामी, संसार के आश्रय, तू अनश्वर िै, तू अस्स्तत्वमान् ्और अनस्स्तत्वमान् ्िै; और उससे भी परे जो कुछ िै, वि तू िै।

जगस्न्निास : संसार का आश्रय। परमात्मा, स्जसमें कक यि जगत् ्तनवास करता िै।

आहदकले : तू सवप्रवथम स्रष्टा िै या तू ब्रह्मा तक का स्रष्टा िै।

त्मिाहददेिः पुरुषः पुराण स्त्मिस्य विश्वस्यि परां तनधानम् ्।
ित्ताशस िेधां च परां च धाम, त्यिा तत ांविश्मिनन्तरूप ॥38॥

(38) तू देवताओं में सवप्रवथम िै; तू आद्यपुरुष िै; तू इस संसार का परम ववश्राम-स्थान िै। तू िी ज्ञाता िै और तू िी ज्ञेय िै और तू िी सवोच्च लक्ष्य िै। और िे अनन्त रूपों वाले, तूने िी इस संसार को व्याप्त ककया िुआ िै।

वायुयमगोऽस्ग्निरुणः शशाङ्क, प्रजापततस्त्विं प्रवपतामिश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सिरकृत्िः, पुनश्च भूयोऽवप नमो नमस्ते॥39॥

(39) तू वायु िै; तू यम (ववनाि करनेवाला) िै; तू अल्ग्न िै; तू वरुण (समुद्र का देवता) िै; और तू िािंक (चन्द्रमा) िै और प्रजापतत, (सबका) वपतामि िै। तुझे िज़ार बार नमस्कार िै; तुझेबारम्बार नमस्कार िै। कुछ के मतानुसार अथ िै-"प्रजापतत और सबका वपतामि िै।"

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते, नमोऽस्तुते सितग एि सि।ग
अनन्तिीयाशगमतविक्रमस्त्विं, सिं ंसमाप्नोवष ततोऽशस सिः॥40॥

(40) तुझे ेसामने से नमस्कार िै; तुझे ेपीछे की ओर से नमस्कार िै; िे सब- कुछ, तुझे ेसब ओर से नमस्कार िै। तेरी िल्क्त असीम िै और तेरा बल अमाप िै; तू सबमें रमा िुआ िै, इसशलए तू ूसब-कुछ िै।

भगवान् ्का तनवास अन्दर, बािर, ऊपर, नीचे, चारों ओर, सब जगि िै और ऐसा कोई स्थान निीं ंिै, जिां

वि न िो। देखखए मुण्डकोपतनषद्, 2, 2,11 1 छान्दोग्य उपतनषद् 7, 251

इस सत्य को, कक िम सब एक िी भगवान् ्के प्राणी िैं और वि िममें से प्रत्येक में और सबमें ववद्यमान िै, बार-बार दुिराया गया िै।

सखेतत मत्वा प्रसभ ंयदुक्त, ं िे कृष्ण िे यादि िे सखेतत ।
अजानता महिमानां तिेदां, मया प्रमादात्प्रणयेन िावप ॥41॥

(41) तेरी इस महिमा के तथ्य को न जानते िुए और यि समझकर कक तू मेरा साथी िै, मनैं ेअपनी लापरवािी से या प्रेम के कारण अवववेकपूवकव तुझेजो 'िे कृष्ण, िे यादव, िे शमल' आहद किा िै; 'तवेदम्'् की जगि एक और पाठ-भेद शमलता िै 'तवेमम्'् ।

यच्चा िािासाथमगसत्कृतोऽf िविारशय्यासनभोज नेषु ।
एकोऽथिाप्यच्युत तत्समक्ष, तत्क्षामये त्ामिमप्रमेयम ॥ 42॥

(42) और कभी खेल में, बबस्तर पर लेटे िुए या बैठे िुए या भोजन के समय अकेले में या अन्य लोगों के सामने िंसी-मजाक में मनैं ेजो तेरे प्रतत असम्मान प्रकट ककया िै, उसके शलए िे अच्युत (अपनेस्थान से ववचशलत न िोनेवाले), और िे अप्रमेय (अमाप), म ैंतुझसे क्षमा की प्राथनवा करता िूं।

परमात्मा का दिनव भक्त में अपनी अपववनता और पाप की एक गिरी अनुभूतत उत्पन्न कर देता िै।

जब ईसाइयिा ने प्रभु को एक ऊंचेऔर ऊपर उठे िुए शसंिासिन पर बैठे देखा तो उसनेकिा: "मुझे ेधधक्कार िै। म ैं बबादव िो गया, क्योंकक मेरे ओठ अस्वच्छ िैं क्योंकक मेरी आंखों ने उस राजा को देखा िै, जो देवदूतों का राजा िै।" (6, 1,5)।

वपताशस लोकस्य चराचरस्य, त्मिस्य पूजूयश्च गुरुगरगीयान् ्।
न त्त्सिमोऽस्त्यभ्यधधकः कुतोऽन्यो, लोकलये ऽप्यप्रततमप्रभाि ॥43॥

(43) तू इस सारे चराचर जगत् ्का वपता िै। तू इस संसार का पूजनीय िै और आदरणीय गुरु िै। िे अनुपम महिमा वाले, तीनों लोकों में कोई तेरे समान िी निीं, तो कफर कोई तुझसे अधधक तो िो िी ककस प्रकार सकता िै!

तस्मात्प्रणम्य प्रणणधाय काय,ग प्रसादये त्ामिमीशमीड्यम् ्।
वपतिे पुलस्य सखिे सख्युः, वप्रयः वप्रयायिागशस दिे सोढुम् ्॥44॥

(44) इसशलए प्रणाम करके और अपनेिरीर को तेरे सम्मुख साष्टांग झुकाकर म ैंतुझ आराधनीय प्रभु ुको प्रसन्न करना चािता िूं। िे देव, तू मेरे व्यविार को उसी प्रकार क्षमा कर, जैसे वपता पुत्र के, या शमल शमल के या प्रेमी अपनेवप्रय के व्यविार को सिन करता िै।

भगवान् ्को एक लोकातीत रिस्य के रूप में निीं समझना िै, अवपतु अपनेसाथ घतनष्ठ रूप में भी समझना िै; वैसा िी घतनष्ठ, जैसा कक वपता अपने पुत्र के साथ िोता िै या शमल अपने शमत्र के साथ िोता िै या प्रेमी अपने वप्रय के साथ िोता िै। ये मानवीय सम्बन्ध परमात्मा में अपनी पूणतवम अशभव्यल्क्त को प्राप्त िोते िैं और आगे चलकर वैष्णव-साहित्य में इन ववचारों का और अधधक पूण वरूप से उपयोग ककया गया िै।

वपता के रूप में परमात्मा हिन्दुओंके शलए एक सुपररधचत धारणा िै। ऋग्वेद में किा गया िै : "तू िमारे शलए उसी प्रकार सुलभ बन जा, ल्जस प्रकार वपता पुल के शलए िोता िै। िे स्वतः देदीप्यमान प्रभु, ु तू िमारे साथ रि

और अपने आिीवादव िमें दे।"[412] कफर, यजुवेद में किा गया िै: "िे प्रभु, तू िमारा वपता िै; तु वपता की िी भांतत िमें शिक्षा दे। "[413] 'ओल्ड टेस्टामेंट' में भी वपता की कल्पना का उपयोग ककया गया िै। "ल्जस प्रकार वपता अपने बच्चों पर दया करता िै, उसी प्रकार परमात्मा उन पर दया करता िै, जो उससे डरते िैं।"[414] वपता के रूप में परमात्मा का ववचार ईसा की शिक्षाओंकी केन्द्रीय धारणा बन गया िै।

अदृष्टपूि गहृवषतोऽस्स्म दृष्ट्िा, भयेन च प्रव्यधथतं मनो मे।
तदेि मे दशयग दे रूप,ं प्रसीद देश जगस्न्नास ॥45॥

(45) मैंने वि रूप देखा िै, ल्जसे पिले ककसी ने कभी निीं देखा और मैं इसे देखकर आनल्न्दत िुआ िूं, परन्तु मेरा हृदय भय से कांप रिा िै। िे प्रभु, मुझेअपना दूसूरा (पिला) रूप हदखा और िे देवताओं के देवता, िे संसार के आश्रय, तू मुझ पर प्रसन्न िो ।

लोकातीत और सावभवौम आत्मा का यि रूप िी, ल्जसके कुछ पक्ष इतने भयावि िैं, सब-कुछ निीं िै, अवपतु व्यल्क्तक परमात्मा का, परमेश्वर के मध्यवती प्रतीक का, भी एक रूप िै, जो भयभीत मत्य वके शलए बिुत िी आश्वासन देनेवाला िै। अजुनव, जो प्रकाि की उस चौंधधया देने वाली चमक को सि पाने में असमथ वि, जो कृष्ण के सम्पूण वअल्स्तत्व को िी समाप्त कर देती िै, कुछ अपेक्षाकृत अधधक वप्रय रूप देखना चािता िै। जो प्रकाि सदा लोक- लोकान्तरों से परे चमकता रिता िै, विी अन्दर ववद्यमान प्रकाि भी िै, जो उसके अपनेहृदय में ववद्यमान गुरु और शमत्र िै।

ककरीहटनं गहदन चक्रिस्त शमच्छाशम त्िां द्रष्टुमिं तथैि।
तेनैि रूपेण चतुभुजेगन, सिस्रबािो भि विश्िमूतेू ॥46॥

(46) मैं तुझे कफर पिले की िी भांतत ककरीट धारण ककए, गदा और चक्र िाथ में शलये िुए देखना चािता िूं। िे सिस्र बािुओं वाले और ववश्व-रूप, तू कफर अपना चतुभुजव रूप धारण कर ले।

अजुनव कृष्ण से ववष्णु का रूप धारण करने को कि रिा िै, ल्जस ववष्णु का कक कृष्ण को अवतार माना जाता िै।

भगवान् की कृपा और आश्वासन

श्रीभगिानुिाच

मया प्रसन्नेन तिाजुनेगदं, रूपं परं दशशतगमात्मयोगात्।

412 1.1.9
413 37,20
414 साम 103. 13. साथ िी देशखए 68,5

तेजोमयां विश्मिनन्तमाथ,ग यन्मे त्दिन्येन न दृष्टपूिम् ग ्47॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(47) िे अजुनव, मनैं प्रसन्न िोकर अपनी हदव्य िल्क्त के द्वारा तुझे ेयि परम रूप हदखाया िै, जो तेजोमय, सावभवौम, असीम और आद्य (सबसे पिले का) िै, ल्जसे तेरे शसवाय और तुझसे पिले और ककसी ने निीं देखा।

यि दिनव मनुष्य की साधना का अल्न्तम लक्ष्य निीं िै; यहद ऐसा िोता, तो गीता यिीं पर समाप्त िो जाती। इस क्षखणक दिनव को साधक का एक स्थायी अनुभव बनना िोगा। समाधध धाशमकव जीवन का न तो अल्न्तम लक्ष्य िी िै और न सारभूत तत्त्व िी। चकाचौंध कर देनेवाली कौंध, भावोल्लासमय उडान को स्थायी श्रद्धा में रूपान्तररत ककया जाना चाहिए। अजुनव इस रोमांचकारी दृश्य को, जो कक उसने देखा िै, अब भूल निीं ् सकता, सन्तु उसे इसे अपनेजीवन में कक्रयाल्न्वत करना िै। हदव्य दिनव केवल माग वखोलता िै; यि आगे निीं बढ़ाता। ल्जस प्रकार िम आंख से देखी िुई वस्तु की परख और पुल्ष्ट अन्य इल्न्द्रयों के साक्ष्य द्वारा करते िैं, उसी प्रकार हदव्य दिनव द्वारा प्राप्त ज्ञान को भी जीवन के अन्य तत्त्वों द्वारा पूण वकरने ेकी आवश्यकता िोती िै।

न नच िेदयज्ञाध्ययनैन गदान कक्रयाशभन गतपोशभरुप्रैः ।
एिरूंपः शक्य अिां नृलोके, द्रष्टुां त्दिन्येन कुरुप्रीर ॥48॥

(48) िे कुरुओं ्में श्रेष्ठ (अजुनव), इस मनुष्य-लोक में तेरे शसवाय अन्य ककसी भी व्यल्क्त द्वारा म ैंन तो वेदों के द्वारा, न यज्ञों द्वारा, न दान द्वारा, न कमकवाण्ड की कक्रयाओं द्वारा और न कठोर तपस्या द्वारा िी इस रूप में देखा जा सकता िंू।

मा ते व्यथा मा च विमूढूभािो दृष्ट्िा रूपां घोरमीिृङ्मेदम् ्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्ि,ां तदेि मे रूपशमदां प्रपश्य ॥49॥

(49) मेरे इस भयानक रूप को देखकर तू घबरा मत और कंकतव्ययववमूढ़ भी मत िो। भय को त्यागकर प्रसन्न मन से अब तू ूकफर मेरे दूसूरे (पिले) रूप को देख।

सजांय उिाच

इत्युजुनगांिासुदेिस्तथोक्त्िा, स्िकिां रूप ांदशयगामास भूयूः ।
आश्िासियामास च भीतमेनां, भूत्िा पुनः सौम्यिपुमिगात्मा ॥50॥

संजय ने किा :

(50) वासुदेव (कृष्ण) ने अजुनव से यि किकर उसे कफर अपना स्वरूप हदखाया। उस मिान् ्आत्मा वाले

कृष्ण ने अपना सौम्य रूप धारण करके डरे िुए अजुनव को सान्त्वना दी।

अजुनग उिाच

दृष्ट्वेदं मानुष ंरूप ंति सौम्यं जनादगन ।

इदानीमस्स्म सिंतृ्तः सचेताः प्रकृतत ंगतः ॥51॥

अजुनव ने किा :

(51) िे जनादवन (कृष्ण), तेरे इस सौम्य मानवीय रूप को देखकर मेरे िोि- िवास ठीक िो गए िैं और मैं कफर अपनी स्वाभाववक स्स्थतत में आ गया िूं।

श्रीभगिानुिाच

सुदुदगशगमदं रूप ंदृष्टिानशस यन्मम ।

देिा अप्यस्य रूपस्य तनत्यं दशनगकाक्षक्षणः ॥52॥

श्री भगवान् ने किा :

(52) तूने मेरे उस रूप को देखा िै, स्जसे देख पाना बिुत िी कहठन िै। देवता भी इस रूप को देखनेके शलए सदा लालातयत रिते िैं।

नािं िेदैन गतपसा न दानेन न चेज्यया।

शक्य एिंविधो द्रष्टुं दृष्टिानशस मां यथा ॥ 53॥

(53) तूने मुझको अभी स्जस रूप में देखा िै, उस रूप में मुझेवेदों द्वारा, तपस्या द्वारा, दान द्वारा या यज्ञों द्वारा भी निीं देखा जा सकता।

यि श्लोक 11, 48 की पुनरुस्क्तमात्र िै।

भक्त्या त्िनन्यया शक्य अिमेिंविधोऽजुनग ।

ज्ञातु ंद्रष्टुं च तत्त्िेन प्रिेष्टुं च परन्तप ॥ 54॥

(54) परन्तु िे अजुनव, अनन्य भस्क्त द्वारा मुझको इस रूप में जाना जा सकता िै और सचमुच देखा जा सकता िै और िे ित्रुओंको सताने वाले (अजुनव),

मुझमें प्रवि भी ककया जा सकता िै। िंकराचाय वने आदि वभक्त उसे बताया िै, जो अपनी सब इल्न्द्रयों से केवल एक िी ववषय (वस्तु), परमात्मा को अनुभव करता िै।"[415] वि अपनी सम्पूण वआत्मा और हृदय से परमात्मा की आराधना करता िै।"[416]

सच्चेभक्तों के शलए साक्षात्कार या हदव्य-रूप का प्रत्यक्ष दिनव सम्भव िै।

सत्कमकृगम्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गिस्जतगः ।

तनिैः सिभूगतूेषु यः स मामेतत पाण्डि ॥55॥

(55) पाण्डव (अजुनव), जो व्यल्क्त मेरे शलए काम करता िै, जो मुझे ेअपना लक्ष्य मानता िै, जो मेरी पूजा करता िै, जो आसल्क्त से रहित िै, जो सब प्राखणयों के प्रतत तनवैरै (िेलुता से रहित) िै, वि मुझ तक पिुंच जाता िै।

यिी भल्क्त का सार िै। देखखए: 12, 13। यि श्लोक गीता की सम्पूण वशिक्षा का सार िै।417 िमें अपनी आत्मा को परमात्मा के अशभमुख करके और संसार की सभी वस्तुओं के प्रतत सब प्रकार की आसल्क्त से रहित िोकिर और ककसी भी प्राणी के प्रतत ित्रुता न रखते िुए अपनेकतव्वयों का पालन करते रिना चाहिए।

मिारे व्यवसाय और प्रकृतत कैसे भी क्यों न िों- चिो िम सृजृनिील ववचारक िो, चिो धचन्तनिील कवव, या चिो कफर सामान्य नर-नारी िों, ल्जन्िें कोई ववविेष प्रततभा प्राप्त निीं ंिुई िै परन्तु यहद िमें ईश्वर के प्रतत प्ेरम की सबसे बडी देन प्राप्त िै, तो िम परमात्मा के उपकरण, उसके प्ेरम और उद्देश्य के साधन बन जाते िैं। जब जीववत आत्माओं का यि ववस्तृत संसार परमात्मा के साथ समस्वर िो जाता िै और केवल उसकी इच्छापूण व करने ेके शलए ववद्यमान रिता िै, तब मनुष्य को अपना लक्ष्य प्राप्त िो जाता िै।

हदव्य-रूप के दिनव के भयावि अनुभव के पश्चात् ्िी गीता का अन्त निीं िो जाता। लोकातीत आत्मा का, जो सबका मूल उद्गम िै और कफर भी जो स्वयं सदा अववचल रिता िै, मिान् ्रिस्य हदखाई पडता िै। भगवान् ्सीशमत वस्तुओंकी अन्तिीन परम्परा के शलए पृष्ठभूशम िै। अजुनव ने इस सत्य को देख शलया िै, परन्तु उसे अपने सम्पूण वस्वभाव को ब्रह्म के स्वेच्छापूवकव अंगीकार में रूपान्तररत करके इस सत्य को अपने जीवन में उतारना िोगा। क्षखणक दिनव, चिो उसका प्रभाव ककतना िी ववद और स्थायी क्यों न िो, पूण वउपलल्दध निीं ंिै। स्थायी वास्तववकता के अनुसन्धान का, अल्न्तम सत्य की खोज का अन्त केवल ककसी मनोवेगात्मक सन्तुल्ष्ट या अस्थायी आविेात्मक अनुभव में निीं िो सकता।

इतत ... विश्रूपदशनगयोगो नामैकादशोऽध्यायः ।

---

415 सवैरैवपकरणैःवासुदेवादन्यन्नोपलभ्यते ेयया सा अनन्या भल्क्तः ।

416 ममुद्भक्तो गामेव सवप्रवकारैः सवात्वमना सवोत्सिान भजते। - िंकराचाय।व

417 गीतिाास्त्रस्य सारजूतोऽथःव ।

यि ि ववश्वरूप का दिनव' नामक ग्यारिवां अध्याय ।

व्यस्क्तक भगिान् ्की पूजा..

अध्याय 12

व्यल्क्तक भगवान् ्की पूजा परब्रह्म की उपासना की अपेक्षा अधधक अच्छी ि

भल्क्त और ध्यान

अजुनग उिच

एि ांसततयुक्ता ये भक्तास्त्ाांपियुपगासते।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तांतेषा ांके योगवित्तमाः ॥1॥

अजुनव ने किा :

इस प्रकार सदा तनष्ठापूवकव जो भक्त तेरी पूजा करते िैं और दूसूरी ओर जो लोग अनश्वर और अव्यक्त (1) की उपासना करते िैं, इन दोनों में से योग का ज्ञान ककसको अधधक िै ?

कुछ लोग ऐसे िैं, जो एक और अव्यल्क्तक और संसार से असम्बल्न्धत ब्रह्म के साथ एकाकार िोने की साधना करते िैं और अन्य कुछ लोग ऐसे िैं, जो मनुष्यों और प्रकृतत के जगत् ्में व्यक्त व्यल्क्तक परमात्मा के साथ एक िोने की साधना करते िैं। इनमें से योग का ज्ञान ककसको अधधक िै? क्या िमें सब व्यक्त रूपों की ओर से मुंि मौड लेना िोगा और अपररवतनवीिल अव्यक्त को पाने के शलए यल करना िोगा, या िमें व्यक्त रूप की

भल्क्त करनी िोगी और उसकी सेवा के रूप में कम वकरना िोगा? क्या िमें परम की या व्यल्क्तक परमात्मा की, ब्राह्म की या ईश्वर की उपासना करनी िै?

श्रीभगिानुिाच

मय्यािेश्य मनो ये मा ंतनत्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्तेमे युक्ततमा मताः ॥2॥

श्री भगवान ने किा :

(2) जो लोग अपने मन को मुझमें ल्स्थर करके, सदा तनष्ठापूवकव और परम श्रद्धा के साथ मेरी पूजा करते िैं, म ैंउन्ें योग में सबसे अधधक पूण वसमझता िूं।

गुरु पक्का तनश्चायक उत्तर देता िै कक जो लोग परमात्मा की उसके व्यक्त रूप में पूजा करते िैं, उन्ें योग का अधधक अच्छा ज्ञान िै।

उपासना का अथ वि पूजा।'[418]

ये त्क्षिरमतनदेश्यमव्यक्तंपयुपगासते।

सित्गलगमधचन्त्यं च कूटस्थमचल ंध्रुिम् ॥3॥

(3) ककन्तु जो लोग अनश्वर, अतनवचवनीय, अव्यक्त, सब जगि वविमान, अधचन्तनीय, अपररवतनवील (कूटस्थ), गततरहित (अचल) और तनरन्तर एक-सा रिने वाले (ध्रुव) की उपासना करते िैं;

सस्न्नयम्येस्न्द्रयग्राम ंसिलग समबुद्धयः ।

तेप्राप्नुिस्न्त मामेि सिभूगतहिते रताः ॥4॥

(4) वेसब इल्न्द्रयों को वि में करके, सब दिाओं में समानधचत्त रितेिुए, सब प्राखणयों के कल्याण में आनन्द अनुभव करते िुए (अन्य लोगों की भांतत िी) मुझको िी प्राप्त िोते िैं।

सस्न्नयम्य : संयम में रखते िुए। यिां िमसे इल्न्द्रयों को वि में रखने को किा गया िै, उनका पूणतवया वजनव करने को निीं।

---

[418] उपासनाका अथवितन्रन्तरध्यान।िंकराचाय वका कथन िै: "उपासन नाम वयथािास्त्रम् उपास्यस्का अथस्वय ववषयीकरणेन सामीप्यम् उपगम्य तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवािेण दीघकवाले बद आिनम्, तद् उपासनम् आचक्षते।"

सिभूगतहिते ेरताः : सब प्राखणयों के कल्याण में आनन्द अनुभव करते िुए। जो लोग ववश्वात्मा के साथ अपनी एकता को अनुभव कर लेते िैं, वे भी जब तक िरीर धारण ककए रिते िैं, संसार के कल्याण के शलए काय व करते रिते िै। देखखए 5, 25, ल्जसमें यि किा गया िै कक मुक्त आत्माएं सब प्राखणयों के कल्याण में आनन्द अनुभव करती िैं।

यिां ंमानवता की सेवा को योग का एक आवश्यक अंग बताया गया िै। मिाभारत में यि प्राथनवा की गई िै: "मुझेकौन वि पववल माग वबताएगा, ल्जससे िोकर म ैंसब दु:खी हृदयों में प्रवि पा सकूं और उनके कष्ट को इस समय और सदा के शलए अपनेऊपर ले सकूं?"

तुकाराम से भी तुलना कील्जए :

"वि मनुष्य सच्चा िै
जो दु:खखयों को छाती से लगाता िै;
इस प्रकार के मनुष्यों में
स्वयंभगवान् ्
अपनेमहिमिाली रूप में तनवास करता िै;
ऐसे मनुष्य का हृदय लबालब भरा रिता िै
करुणा, ववनम्रता और प्ेरेम से;
वि सब पररत्यक्तों को अपना लेता िै। "[419]

क्लेशोऽधधकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ्।
अव्यक्ता हि गततदुगःख ंिदेिवद्भिरवाप्यते ॥5॥

ल्जनके ववचार अव्यक्त की ओर लगे िुए िैं, उनकी कहठनाई किींअधधक िै, क्योंकक अव्यक्त का लक्ष्य देिधारी प्राखणयों द्वारा प्राप्त ककया जाना बिुत कहठन िै।

लोकातीत परमेश्वर की खोज सजीव ईश्वर की, जो सब वस्तुओं और व्यल्क्तयों की आत्मा िै, पूजा की अपेक्षा अधधक कहठन िै। 'अवधूतगीता' में दत्तालेय किता िै: "म ैंउसे ककस प्रकार प्रणाम करूं जो अरूप िै, अशभन्न िै, जो आनन्दमय िै और अनश्वर िै, ल्जसनेप्रत्येक वस्तु को स्वयंअपनेद्वारा अपनेमें िी व्याप्त ककया िुआ िै।"[420] अपररवतनिील को मन द्वारा सरलता से ग्रिण निीं ककया जा सकता और यि माग व

419 एम. के गांधी सौरस फ्रॉम वप्रजन (1934), पृ.ृ129 2

420 येनेदं पूररतंसवमवात्मनैवात्मनात्मतन ।
तनराकारं कथं वन्दे ह्यशभन्न शिवमव्ययम् ्॥

अपेक्षाकृत अधधक दुगुमव ि◌ै। उसी लक्ष्य तक ि◌म व्यल्क्तक ईश्वर की भल्क्त के माग वद्वारा अपनी सारी ि◌ल्क्तयों को ज्ञान, संकल्प और अनुभूतत को परमात्मा की ओर मोडकर अधधक सरल और स्वाभाववक ढंग से पिुंच सकते ि◌ैं। तुलना कील्जए: "यहद रिस्यवादी योगी ध्यान लगाकर तनगुणव और तनल्ष्क्रय ज्योतत के दिनव करते ि◌ैं, वे दिनव करते रिें। मेरी तो केवल यिी लालसा ि◌ै कक मेरी प्रसन्न आंखों के सम्मुख वि श्याम ि◌ी प्रकट ि◌ोता रिे, जो यमुना के रेतीले तट पर दौडता रिता ि◌ै।"[421]

ववशभन्न माग व

ये तु सिाणगण कमाणगण मतय सन्ांयस्य मत्पराः ।
अनन्येनैि योगेन मा ◌ांध्यायन्त उपासते ॥6॥

(6) परन्तु जो लोग अपनेसब कमों को मुझमें समवपतव करके, मुझमें ध्यान लगाए ि◌ुए, अनन्य भल्क्त से ध्यान करते ि◌ुए मेरी पूजा करते ि◌ैं;

तेषामिां समुद्धता गमृतूयुससांारसागरात् ◌्।
भिाशम नधचरात्पाथ गमय्योशशतचेतसाम् ◌्॥7॥

(7) अपने ववचारों को मुझ पर केल्न्द्रत करते ि◌ैं, ि◌े अजुनव, म ◌ैंइस मृतूयुद्वारा सीशमत संसाररूपी समुद्र से उनका ि◌ीघ्र ि◌ी उद्धार कर देता ि◌ू◌ं।

परमात्मा उद्धार करने ◌ेवाला, रक्षक ि◌ै। जब ि◌म अपनेहृदय और मन को उसकी ओर लगा देते ि◌ैं, तो वि िमें मृतूयुके समुद्र से ऊपर उठा लेता ि◌ै और ि◌में ि◌ाश्वत (अमरता) में स्थान प्रदान करता ि◌ै। ल्जसकी प्रकृतत वैराग्य या संन्यास की ओर निीं ◌ंि◌ै, उसके शलए भल्क्त का माग वअधधक उपयुक्त ि◌ै। भागवत में किा गया ि◌ै : "भल्क्त का माग वउसके शलए सबसे अधधक उपयुक्त ि◌ै। जो संसार से न तो बिुत ऊबा ि◌ुआ ि◌ै और न संसार में बिुत आसक्त ि◌ै।"[422] यि ि◌मारे स्वभाव पर आधाररत ि◌ै कक ि◌म प्रवृत्त-धम,व कममवाग,व को अपनाएं या तनवृत्त-धम,व संन्यास के माग,व को।

दशमश्ककेसटें जॉनसेतुलनाकील्जए: "दृश्यमानपक्षसेिमारेववचारोंकोएकआध्याल्त्मकउदानकीओरउठनाचाहिए और परमात्मा की अदृश्य महिमा की और ऊपर उठना चाहिए।"

421 ध्यानावल्स्थतलङ्गलेन मनसा ततनगुणव तनल्ष्क्रय,

ज्योततः ककचचन योधगनो यहद पुनः पश्यल्न्त पश्यन्तु ते।

आमाके तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाल्च्चरं,

काशलन्दीपुशलनेष पल्क्कमवप तत्रीले तमो धावतत ॥

422 न तनववण्णो माशलसक्तो भल्क्तयोगोऽस्य शसद्धधदः । 11, 20, 7

मय्यैि मन आधत्स्व मितय बुद्धध ांतनिेशय ।
तनिशसष्यशस मय्यैि अत ऊर्ध्वं न सशांयः ॥8॥

(8) तू अपनेमन को मुझमें लगा। अपनी बुद्धध को मेरी ओर लगा। उसके बाद तू केवल मुझमें िी तनवास करता रिेगा, इसमें कोई सन्दिे निीं।

अथ धचत्त ांसमाधातु ांन शक्नोवष मतय स्स्थरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो माशमच्छाप्तु ांधनञ्जय ॥9॥

(9) िे धनंजय (अजुनव), यहद तू अपनेधचत्त को ल्स्थरतापूवकव मुझमें लगानेमें असमथ वि, तब तू अभ्यासयोग

द्वारा (धचत्त को एकाग्र करने के द्वारा) मुझ तक पिुंचने का यत्न कर।

यहद यि आध्याल्त्मक दिा स्वतः उत्पन्न निीं िोजाती, तो िमे एकाग्रीकरण का अभ्यास करना

चाहिए, ल्जससे िम आत्मा को ल्स्थरतापूवकव परमात्मा की ओर ले जाने के उपयुक्त बन सकें। इस अभ्यास द्वारा भगवान् ्िनैःिनैः िमारे स्वभाव पर अधधकार कर लेता िै।

अभ्यासेऽप्यसमथोशस पत्कमपगरमो भि ।
मदथमगवप कमाणगण कुिस्गन्सद्धमिाप्स्यशस ॥10॥

(10) यहद तू अभ्यास द्वारा भी मुझे प्राप्त करने में असमथ वि, तब तू मेरी सेवा को अपना परम लक्ष्य बना ले; मेरे शलए कम वकरता िुआ भी तू शसद्धध (पूणतवा) को प्राप्त कर लेगा।

यहद मन की बहिमुखव प्रवृवृत्तयों के कारण अथवा अपनी पररल्स्थततयों के कारण एकाग्रीकरण का अभ्यास भी कहठन जान पडे, तब सब कम वपरमात्मा के शलए करनेचाहिए। इस प्रकार व्यल्क्त को िाश्वत वास्तववकता का ज्ञान िो जाता िै।

कई बार 'मत्कम'व का अथ वपरमात्मा की सेवा, पूजा, फूल और फल चढ़ाना, धूप जलाना, मल्न्दर बनवाना और वेदिास्त्रों का अध्ययन करना इत्याहद लगाया जाता िै।"[423]

अथैतदप्यशक्तोऽशस कतुं मद्योगमाधश्रतः।
सिकगमफगलत्याग ांततः कुरु यतात्मिान् ॥11॥

(11) यहद तू इतना भी करने में असमथ वि, तब तू मेरी अनुिाशसत गततववधध (योग) की िरण ले और

---

423 अशभनवगुप्तमत्कमाखवणकोभगवत्कमाखवण'-जैसेपूजाजपस्वाध्यायिोमइत्याहदकासमानाथकव मानतिै।

अपने-आप को वि में करके सब कमों के फल की इच्छा को त्याग दे।

मद्योगम् ्आधश्रत: : मेरी आश्चयजवनक िल्क्त में िरण लेकर । श्रीधर ।

यहद आप अपनेसब कम वभगवान् ्को समवपतव निींकर सकते, तब फलों की इच्छा रखे बबना कम व कील्जए। कामनिीन कम,व तनष्काम कम,व के योग को अपना लील्जए। िम सारे व्यल्क्तगत प्रयत्नों का त्याग कर सकतेिैं, अपने-आप को पूरी तरि एकमाल परमात्मा की रक्षक िल्क्त के भरोसे छोड सकतेिैं, फल के सब ववचारों को त्यागकर आत्म-अनुिासन और कम वमें लग सकतेिैं। मनुष्य को भगवान् ्के िाथों में एक बच्चेजैसा बन जाना चाहिए।

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाव्यानां विशशष्यते ।

ध्यानात्कमफगलत्यागस्त्यागाच्छास्न्तरनन्तरम् ्॥12॥

(12) तनल्श्चत रूप से (एकाग्रीकरण के) अभ्यास से अधधक अच्छा िै; ध्यान ज्ञान से अच्छा िै; फल का त्याग ध्यान से भी अच्छा िै; त्याग से तुरन्त िाल्न्त प्राप्त िो जाती िै।

श्रीधर ने 'ज्ञान' की व्याख्या आवेि या आत्मा को परमात्मा की ओर प्रेररत करने ्के रूप में, और 'ध्यान' की व्याख्या परमात्मा से भरे िोने ्के रूप में, भगवन्मयत्वम् ्के रूप में की िै और यि आत्मा पर स्वयंभगवान् ्के पूण वअधधकार द्वारा पूरा िोता िै। 'सूयगवीता' से तुलना कील्जए : "भल्क्त ज्ञान से अच्छी िै और लालसािीन कम व भल्क्त से अच्छा िै। जो कोई वेदान्त के इस शसद्धान्त को समझ लेता िै, उसे िी सवश्रेवष्ठ मनुष्य समझना चाहिए।"[424] भल्क्त, ध्यान और एकाग्रीकरण का अभ्यास, ये सब कम वके फलों के त्याग की अपेक्षा अधधक कहठन िैं। कम वके फल का त्याग अिाल्न्त के कारणों को नष्ट कर देता िै और एक आन्तररक तनस्तदधता और िाल्न्त को जन्म देता िै, जो कक आध्याल्त्मक जीवन का असली आधार िै। भल्क्त पर जोर देनेका पररणाम यि िोता िै कक ज्ञान गौण िो जाता िै और मन श्रद्धालु और उपासनायुक्त िो जाता िै और सब कम वपरमात्मा को समवपतव करने ्के कारण पववल िो जाते िैं।

सच्चा भक्त

अद्वेष्टा सिभूगतूाना ंमैलैः करुण एि च।

तनममगो तनरङ्कारः समुदु्ःखसुखुः क्षमी ॥13॥

(13) जो व्यल्क्त ककसी प्राणी से द्वेष निीं ्करता, जो सबका शमल िै और सबके प्रतत सिानुभूततपूण वि,ै जो

---

424 ज्ञानापुपाल्स्तस्त्कृष्टा, कमोत्कृष्टमुपासनात् ्।

इतत यो वेद वेदान्तः स एव पुरुषोसमः ॥

-114,77

अिंकार और ममता की भावना से रहित ि‍ै, जो सुख और दु:ख में समान रिता ि‍ै और जो धैयवान् ्ि‍ै;

सतुंष्टः सतत ंयोगी यतात्मा दृढतनश्चयः ।

मय्यवपतगमनोबुद्धधर्योमद्भक्तः स मे वप्रयः ॥14॥

(14) जो योगी ि‍ै, सदा सन्तुष्ट रिता ि‍ै, अपने-आप को वि में रखता ि‍ै, जो दृढ़-तनश्चयी ि‍ै, ल्जसने अपनेमन और बुद्धध को मुझे ेअवपतव कर हदया ि‍ै; मेरा वि भक्त मुझे वप्रय ि‍ै।

इन श्लोकों में गीता में सच्चे भक्त के गुणों, आत्मा की स्वतन्त्रता, सबके प्रतत शमलभाव, धैय वऔर

प्रिान्तता का उल्लेख ककया गया ि‍ै।

यस्मान्नोद्धधजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

षिामगषभगयोडेगैमुैक्गतो यः स च मे वप्रयः ॥15॥

(15) ल्जससे संसार निीं ंघबराता और जो संसार से निीं ंघबराता और जो आनन्द और क्रोध से, 'भय और उद्वेग से रहित ि‍ै, वि भी मुझे ेवप्रय ि‍ै। वि ककसी के शलए कष्ट का कारण निीं बनता; और न कोई उसे कष्ट का अनुभव करा सकता ि‍ै।

अनपेक्षः शुधचदगक्ष उदासीनो गतव्यथः ।

सिारगम्भपररत्यागी यो मद्भक्तः स मे वप्रयः ॥ 16॥

(16) जो ककसी से कोई आिा निींरखता; जो ि‍ुद्ध ि‍ै; कम वमें कुिल ि‍ै; जो उदासीन (तनरपेक्ष) ि‍ै और ल्जसे कोई कष्ट निीं; ल्जसने (कम वके सम्बन्ध में) सब आग्रिों को त्याग हदया ि‍ै, वि मेरा भक्त मुझे ेवप्रय ि‍ै।

वि अपने सब कमों के फलों का त्याग कर देता ि‍ै। उसके काम कुिलतापूण,व दक्ष, ि‍ुद्ुध और वासनारहित िोते ि‍ैं। वि अपनेआप को कल्पना या स्वप्नों में निींखो बैठता, अवपतु ुसंसार में अपनेमाग वको जानता ि‍ै।

यो न ि‍ृष्यतत न द्वेस्टि न शोचतत न कासतत ।

शुभाशुभपररत्यागी भस्क्तमान्यः स मे वप्रयः ॥17॥

(17) जो व्यल्क्त न प्रसन्न िोता ि‍ै, न द्वेष करता ि‍ै, न दु:ख मानता ि‍ै, न इच्छा करता ि‍ै और ल्जसने ेभले और बुरे दोनों का पररत्याग कर हदया ि‍ै और जो इस प्रकार मेरी भल्क्त करता ि‍ै, वि मुझेवप्रय ि‍ै।

समः शत्रौ च शमत्रे च तथा मानापमानयोः ।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समःसङ्गविवर्जितः॥18॥

(18) जो शत्रु और शमत्र दोनों के साथ एक-सा बताव करता है; जो मान और अपमान को समान दृष्टि से देखता है; जो सदी-गमी और सुख-दुःख में एक जैसा रहता है और जो आसक्ति से रहित है;

समः शत्रौ च शमत्रौ च । ईसा से तुलना कीजिए: "वि अपनेसूय वको बुरे और 'भले दोनों पर उहदत करता है और वषावको न्यायी और अन्यायी दोनों पर बरसाता है ।"[425]

तुल्यतनन्दास्तुततीनीसतुंष्टो येनकेनधचत्।ि

अतनकेतःस्स्थरमततभस्क्तमान्मे वप्रयोनरः॥19॥

(19) जो तनन्दा और प्रिंसा को एक समान समझता है; जो मौन रहता है (वाणी को अपने वि में रखता है) और जो कुछ शमल जाए, उसी से सन्तुष्ट रहता है; ल्जसका कोई तनयत तनवास स्थान नहीं है; ल्जसकी बुद्धि ल्स्थर है और जो मुझमें भक्ति रखता है, वि मुझेवप्रय है।

अतनकेतः : ल्जसका ल्स्थर घर न हो, गृिीन। यद्यवप वि सब सामाल्जक कतव्वयों को पूरा करता है, कफर भी वि ककसी एक पररवार या घर से बंधकर नहीं रिता। क्योंकक ये सब आत्माएं ककसी अमुक पररवार या अमुक सामाल्जक समूि के शलए नहींजीतीं, अवपतु समूचे रूप में मानव जातत के शलए जीती हैं, इसशलए उनका कोई तनयत घर नहीं होता। उनकी अन्तःप्रेरणा उन्हें जिां भी ले जाए वेवहींजानेको स्वतन्त्र होती हैं। वे ककसी एक स्थान से बंधकर नहीं रहतीं और न ककसी एक सम्प्रदाय तक ही सीशमत रहती हैं। वे अतीत से भी नहीं बंधी होती और न ककसी अपररवतनवीय प्राधधकार की रक्षा करने के शलए ही बाधधत होती हैं। उन्हें सदा समूचे रूप में मानवता के कल्याण का ध्यान रहता है। ये संन्यासी ककसी भी सामाल्जक समूि में प्रकट हो सकते हैं। महाभारत से तुलना कीजिए : "जो व्यक्ति जो कुछ शमल जाए, वही पहन लेता है; जो कुछ शमल जाए, उसी से पेट भर लेता है; जहां जगह शमल जाए वहींसो जाता है; उसे देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं।"[426]

ये तुधामृतृशमदांयथोक्तांपयुपगासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे वप्रयाः ॥ 20॥

---

425 वैल्यू 5.45

426 येनकेनधचदाच्छन्नो येनकेनधचदाशितः ।

यल कवन हायी स्यात् तं देवाः ब्राह्मण ववदुः । - हाल्न्तपर्व 245. 12

साथ ही देखखए ववष्णुपुराण, 3, 7, 20:

न चलतत तनजवणधवमतवो यः,

सममशलरात्मसुदुधद्ववपक्षपक्षे

न हातत न च हल्न्त ककल्श्चदुच्चैः,

शसतमवत्र उमवेतत ववष्णुभक्तम् ।

परन्तु जो लोग श्रद्धापूवकव मुझे ेअपना सवोच्च लक्ष्य मानते िुए इस अमरज्ञान का अनुसरण करते िैं, (20)
भ्क्त मुझे ेबुित िी अधधक वप्रय िैं।

श्रधानाः : श्रद्धा रखनेवाले। अनुभव प्राप्त िोने ेसे पिले आत्मा में श्रद्धा िोनी चाहिए, ल्जसके साथ मन और प्राण की सिमतत ववद्यमान रिती िै। ल्जन लोगों को अनुभव प्राप्त िो जाता िै, उनके शलए यि दृल्ष्ट का ववषय िै: अन्य लोगों के शलए यि श्रद्धा िै, एक पुकार या एक वववविता।

जब िम वस्तुओंमें एक आत्मा को देखने लगते िैं, तब समधचत्तता, स्वाथपूवण वइच्छाओंसे मुल्क्त, िमारे सम्पूण वस्वभाव का अन्तयावमी आत्मा के प्रतत आत्मसमपणव और सबके प्रतत प्ेरेमभाव उत्पन्न िो जाता िै। जब ये गुण प्रकट िो जाते िैं, तब िमारी भल्क्त पूण विो जाती िै और िम परमात्मा के अपनेआदमी बन जाते िैं। तब मिारा जीवन आकषणव और ववकषणव की िल्क्तयों, शमल्लता और िबुता, सुख और दुुःख द्वारा प्ेरेररत निींिोता, अवपतु केवल इस एक िी इच्छा से प्ेरेररत िोता िै कक िम अपने-आप को परमात्मा के प्रतत अवपतव कर दें और इस प्रकार संसार की सेवा के शलए अपने-आप को अवपतव कर दें, जो संसार भगवान् ्के साथ एकरूप िै।427

इतत ... भस्क्तयोगो नाम द्वादिशोऽध्यायः ।

यि िै 'भस्क्तयोग' नामक बाििवां अध्याय ।

अध्याय 13

427 तुलसीदास के िददों में:

"िे प्रभु, मुझ पर करुणा कील्जए:
कक म ैंअच्छे और िुद्ध का अनुसरण कर सकूं
कक सीधी-सादी वस्तुओंसेसतुष्ट रि
कक अपने साधथयों का साधनों के रूप में निीं, अवपतु साध्य के रूप में प्रयोग कर सकू,
कक उनकी मन, वचन और कम वद्वारा दृढतापूवकव सेवा कर सकूं,
कभी द्वेष या लज्जा का कोई िदद मंुि सेे न तनकाले;
सब स्वाथ वऔर अशभमान को त्याग दें,
दूसूरों की तनन्दा न करू
मन को िान्त रख सकूं
धचन्ताओं से रहित िो जाऊं और तुमसे दूरू न भटक
न सुख के और न दुुःख के कारण;
मेरे चरणों को इस माग वपर चला दोः
और मुझेइस माग वपर दृढ़ रखो;
केवल इस प्रकार म ैंतुर्म्ें प्रसन्न कर सकूंगा और तुम्िारी ठीक-ठीक सेवा कर सकूंगा। " - एम. के. गांधी : सोंग्स फ्रॉम वप्रज़न (1934). पू. 52

रीर क्षेत्र ि ै, आत्मा क्षेत्रज्ञ ि ै, और इन दोनों में अन्तर

क्षेल और क्षेत्रज्ञ

अजुनग उिाच

प्रकृतत ां पुरुष ांचि क्षेत्ल क्षेलज्ञमेि च।

एतद्वेहदतुशमच्छाशम ज्ञान ां ज्ञेयांच केशिः ॥1॥

अजुनव ने किा :

(1) केिव (कृष्ण), म ैंयि जानना चािता ि ूं कक प्रकृतत और पुरुष क्या ि ै? क्षेत्र और क्षेतज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय का उद्देश्य क्या ि ै?

कुछ संस्करणों में यि श्लोक प्राप्त निीं िोता। िंकराचाय वने इस पर टीका निीं की ि ै। यहद इसे सल्म्मशलत कर शलया जाए, तो गीता के श्लोकों की कुल संख्या 701 िो जाएगी और 700 निीं रिेगी, जो कक परम्परागत रूप से मानी िुई संख्या ि ै। इसशलए िमनेश्लोकों पर संख्या डालतेिुए इसे सल्म्मशलत निीं ककया।

श्रीभगिानुिाच

इदां शरीरां कौन्तेय क्षेरशमत्यशभधीयते ।

एतयो िेवत्त त ां प्रािुः क्षेलज्ञ इतत तद्धधदः ॥2॥

श्री भगवान् ने किा :

(2) कुन्ती के पुत्र (अजुनव), यि िरीर क्षेल किलाता ि ै और जो मनुष्य इसको जानता ि ै, उसे तत्व को जानने वाले लोग क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र को जानने वाला) कितेिैं।

प्रकृतत अचेतन गततवववधध ि ै और पुरुष तनल्ष्क्रय चेतना ि ै। िरीर वि क्षेत्र किा जाता ि ै, ल्जसमें घटनाएं घटती िैं; वृद्धध, ह्रास और मृत्यु सब इसमें िी िोती िैं। तनल्ष्क्रय और अनासक्त चेतन मूल तत्व, जो सब सकक्रय दिाओं के पीछे साक्षी-रूप में रिता ि ै, क्षेलज्ञ ि ै। चेतना और उन पदाथों में, ल्जनका कक चेतना तनरीक्षण करती ि ै, यिी सुपररधचत अन्तर ि ै। क्षेत्रज्ञ चेतना का प्रकाि ि ै, सब ववषयों (पदाथों) का जाननेवाला ि ै।'[428] साक्षी व्यल्क्तगत िरीरधारी मन निीं, अवपतु वि ब्रह्माण्डीय चेतना ि ै, ल्जसके शलए सारा ब्रह्माण्ड िी एक ववषय या पदाथ वै। यि िान्त और तनत्य ि ै और साक्षी बनकर देखने के शलए इसे इल्न्द्रयों और मन के प्रयोग की आवश्यकता निींिोती।

---

428 साथीदेखखएश्वेताश्वतरउपतनषदः 6, 16; और मैत्रायणी उपतनषद् 2,5

क्षेत्रज्ञ परमेश्वर ि◌ै, जो इस संसार के ववषय या पदाथ वरूप में निीं ◌ं ि◌ै। वि सब क्षेलों में ब्रह्मा (संसार का बनानेवाला) से लेकर घास की पत्ती तक में सीशमत करने वाली दिाओं द्वारा अन्य वस्तुओंसे पृथक् ककया जाता ि◌ै, यद्यवप वि सब सीमाओंसे रहित ि◌ै और ककसी भी प्रकार की श्र्ेखणयों के रूप में उसकी पररभाषा निीं ◌ंकी जा सकती।'[429] अपररवतनवील चेतना को ज्ञाता या क्षेत्रज्ञ केवल आलंकाररक रूप में (उपचारात्) ◌् किा जाता ि◌ै।

जब ि◌म मानवीय आत्मा की प्रकृतत को जाननेका प्रयत्न करते ि◌ैं, तो ि◌म या तो इसे ऊपर की ओर से जानना ि◌ुरू कर सकति◌ैं या नीचेकी ओर से; दैवीय मूल तत्व की ओर से अथवा मूल प्रकृतत की ओर से। मनुष्य दिुरा, आत्मववरोधी प्राणी ि◌ै; वि मुक्त भी ि◌ै और दासता में बंधा ि◌ुआ भी; वि देवताओं के समान ि◌ै और उसमें उसके पतन के धचह्न भी ि◌ैं अथातव वि प्रकृतत में अवतीण वुिआ ि◌ै। पततत प्राणी के रूप में मनुष्य का तनधारवण प्रकृतत की ि◌ल्क्तयों द्वारा ि◌ोता ि◌ै। वि पूणतवया ताल्त्वक ि◌ल्क्तयों, इल्न्द्रयों के वेगों, भय और धचन्ता से प्रेेररत प्रतीत ि◌ोता ि◌ै। परन्तु मनुष्य की इच्छा अपनी पततत प्रकृतत पर ववजय पाने की ि◌ोती ि◌ै। प्राखण-ववज्ञान, मनोववज्ञान और समाज-ववज्ञान जैसे वस्तु-रूपात्मक ववज्ञानों ने ल्जस मनुष्य का अध्ययन ककया ि◌ै, वि एक स्वाभाववक प्राणी ि◌ै और वि संसार में ि◌ोने ◌ेवाली प्रकक्रयाओंकी उपज ि◌ै। परन्तु कताव के रूप में मनुष्य का एक और उद्गम स्थान ि◌ै। वि संसार का ि◌िशु निीं ◌ं ि◌ै, वि प्रकृतत निीं ि◌ै, वि प्रकृतत के वस्तु-रूपात्मक सोपान-तन्त्र का अंग निीं ि◌ै, वि उसका अधीनस्थ अंि निीं ◌ं ि◌ै। पुरुष या क्षेतज्ञ को अन्य पदाथों या द्रव्यों में से ि◌ी एक पदाथ व निीं ◌ंमाना जा सकता; उसे केवल कताव माना जा सकता ि◌ै, ल्जसके अन्दर अल्स्तत्व का रिस्य तछपा ि◌ुआ ि◌ै, जो एक व्यल्ष्ट के रूप में सम्पूण वववश्व ि◌ै। इसशलए वि संसार का, या अन्य ककसी अंगी का एक अंि निीं ◌ं ि◌ै। व्याविाररक प्राणी के रूप में वि एक 'लाइबतनज' के ि◌ल्क्त केन्द्र की भांतत ि◌ो सकता ि◌ै, जो सब ओर से बन्द ि◌ै और ल्जसमें कोई दरवाज़े या खखडककयांनिीं ि◌ै। कताव के रूप में वि असीमता में प्रवेि करता ि◌ै और असीमता उसमें प्रवेि करती ि◌ै। क्षेतज्ञ एक ऐसे रूप में, ल्जसकी व्यल्ष्टतः आववृत्त निीं ि◌ि सकती, सावभवौम ि◌ै। मानव-प्राणी सावभवौम असीम और सावभवौम ववशिष्ट का एक संयोग ि◌ै। अपनेकतात्वमक पिल की दृल्ष्ट से वि सम्पूण व(अंगी) का एक अंि निीं ि◌ै, अवपतु स्वयं ि◌ी सम्भाव्य सम्पूण वि◌ै। उसे वास्तववक रूप देना, सावभवौमता को उपलदध करना मनुष्य का आदि वि◌ै। कताव अपने-आप को सावभवौम अन्तवस्वतु से भर लेता ि◌ै अपनी याला के अन्त में सम्पूणतवा में एकता को उपलदध कर लेता ि◌ै। मनुष्य की ववलक्षणता दो आंखों और दो ि◌ाथों के सामान्य नमूने पर बना ि◌ोने में निीं ◌ं ि◌ै, अवपतु उसके आन्तररक मूल तत्व में ि◌ै, जो जीवन की एक गुणात्मक अन्तवस्वतु की सृजनात्मक प्राल्प्त के शलए उसे प्रेेररत करता ि◌ै। उसमें एक अद्भुत ववविेता ि◌ै, जो असामान्य ि◌ै। आदि वव्यल्क्तत्व बेजोड ि◌िता ि◌ै और उसे उसी रूप में दिुराया निींजा सकता। प्रत्येक व्यल्क्त मंल़्िल पर पिुंचकर एक ऐसा बेजोड (अद्ववतीय) रूप वाला प्राणी बन जाता ि◌ै, जो बबलकुल तनराला ि◌ोता ि◌ै, ल्जसे उसी रूप में दिुराया निीं जा सकता और न उसके स्थान पर ककसी अन्य को रखा जा सकता ि◌ै।

क्षेरज्ञ चावप मा ◌ंविद्धध सिक्षेि◌ु भारत।

---

429 .क्षेत्रज्ञ मा परमेश्वरम् ◌्असंसाररण ववद्धध जानीहि सवक्षेवनेषुयः क्षेतज्ञः ब्रह्माहदस्तरबपयन्वतानेक क्षेत् ◌्2 एवररपररभक्त तं तनरस्तसवोपाधधभेवं सदसदाहदिददप्रत्ययगोचर ववद्धध। ि◌ंकराचाय व

क्षेरोलज्ञयोज्ञतन ांयत्तज्ज्ञान ांमतांमम ॥3॥

(3) िेभारत (अजुनव), तू ूसब क्षेतों में मुझे ेक्षेत्लज्ञ समझ। क्षेल और उसके जानने ेवाले के ज्ञान को म ैंसच्चा ज्ञान समझता िंूं।

किराचाय वका मत िै कक परमेश्वर अपनी ब्रह्माण्डीय ववभूततयों के कारण संसारी प्रतीत िोता िै, ठीक वैसे िी जैसे कक व्यल्ष्ट-आत्मा िरीर के साथ अपनी एकत्व बुद्धध से बंधा िुआ प्रतीत िोता िै।[430] ईसाई शसद्धान्त के अनुसार, पतन मनुष्य के अन्दर ववद्यमान परमात्मा की मूतत वको, जो कक स्वतन्त्रता िै, 'भूल जाना िै और बाह्य वस्तुओंमें फंस जाना िै, जो कक परविता िै। तत्वतः मनुष्य प्रकृतत का अंि निीं िै, अवपतु ुआत्मा का अंि िै, जो प्रकृतत की अववरामता में िस्तक्षेप करता िै।

तत्क्षेल यच्च यादृक्य यद्विकारर यतश्च यत् ्।
स च यो यत्प्रभिाश्च तत्समासेन मे श्रृणु ु॥4॥

(4) अब मुझसे संक्षेप में यि सुन कक क्षेत्र क्या िै, वि ककस प्रकार का िै, उसमें क्या-क्या पररवतनव िोतिें और वि किां से आया िै और वि (क्षेल को जानने ेवाला) क्या िै और उसकी िल्क्तयां क्या िैं।

क्षेत्र के अवयव

ऋवषशभबिुगधा गीत ांछन्दोशभविविगधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूरूपदैश्चि ितुमद्‌शभवितगनस्श्चतैः ॥5॥

(5) ऋवषयों द्वारा वववववध मन्त्रों में इसका गान अनेक ढंग से और पृथक् रूप से ककया गया िै और इसका वणनव उधचत तकव वाले और तनश्चायक अशभव्यल्क्त वाले ब्रह्मसूलों द्वारा भी ककया गया िै।

यिां ंगीता से यि बात ध्वतनत िोती िै कक इसमें उन्िीं सत्यों का प्रततपादन ककया गया िै जो वेदों, उपतनषदों और बादरायण द्वारा रधचत ब्रह्मसूलों में पिले से िी ववद्यमान िैं। वैहदक मन्त्रों को छन्द किा जाता िै।

मिाभूतान्यिङ्कारा बुाद्धरव्यक्तमि च।
इस्न्द्रयाणण दरीकां च पञ्च चेस्न्द्रयगोचराः ॥6॥

(6) मिान् ्पांच तत्व, अिंकार, बुद्धध और साथ िी अव्यक्त, दस इल्न्द्रयां और मन और पांच इल्न्द्रयों के ववषय;

---

[430] तत्रैवसततक्षेत्रज्ञस्यैश्वरस्यैवसतौऽववद्याकुडोपाधधभेदतः संसाररत्यम् ्इव भवतत यथा दिेाद्यात्मत्वम् ्।

ये क्षेत्र के अवयव िैं, अनुभव की अन्तवस्वतु, सांख्य-दिनव के चौबीस मूल तत्व। मानशसक और भौततक के भेद वस्तु-रूपात्मक तत्व से सम्बल्न्धत िैं। वे स्वयं क्षेल के अन्तगतव िी भेद िैं।

रीर, इल्न्द्रयों के वे रूप, ल्जनके द्वारा िम कताव को पिचानते िैं, वस्तु- रूपात्मक पक्ष से सम्बल्न्धत िैं। अिंकार एक कृल्त्लम रचना िै, जो चेतन अनुभव से पृथक् िो जाने से उत्पन्न िोता िै। दिनव करने वाली चेतना विी िै, चािे वि नील आकाि को आलोककत करे, या ककसी लाल फूल को। ल्जन क्षेत्रों को आलोककत ककया जा रिा िै, वे भले िी ववशभन्न िों, परन्तुउन्िें आलोककत करने वाला प्रकाि वि एक िी िै।

इच्छा द्वेषः सुखु ंदुःख ंसातश्चेतना धृतृतः।
एतत्क्षेनां समासेन सविकारमुदाहृतम् ्॥7॥

(7) इच्छा और द्वेष, सुख और दुःख, स्थूल दि का वपण्ड (िरीर), बुद्धध और ल्स्थरता, यि संक्षेप में उसके ववकारों समेत क्षेत्र का वणनव िै।

मानशसक रुझानों को भी क्षेत्र की वविेषता बताने वाला किा गया िै, क्योंकक वे भी ज्ञान के ववषय िैं।

जानने ेवाला कताव िै और उसे ककसी पदाथ वया वस्तु के रूप में बदल देने का अथ वि-अज्ञान, अववद्या। वस्तु-रूपात्मकीकरण का अथ वि कताव को वस्तुओंके जगत् ्में ढकेल देना। वस्तु-जगत् ्में कुछ भी ऐसा निीं, जो प्रामाखणक वास्तववकता िो। िम अपनेअन्दर ववद्यमान कताव को केवल वस्तु- जगत् ्की िमको दास बनाने वाली िल्क्त पर ववजय प्राप्त करके और उसमें घुल-शमल जानेसे इनकार करके िी प्राप्त कर सकतेिैं। इसका अथ वि प्रततरोध, कष्ट। आसपास के जगत् ्और उसकी रूहढ़यों से सिमत िो जाना कष्ट को कम कर देता िै; और इससे इनकार करने ेसे कष्ट बढ़ता िै। कष्ट िी वि प्रकक्रया िै, ल्जसमें से गुजरकर िम अपनी सच्ची प्रकृतत के शलए संघष वकरते िैं।

ज्ञान

अमातनत्मिदस्म्भत्मििसांाक्षास्न्तराजिगम् ्।
आचायोपासनांशौचांस्थैयमगात्मवितनग्रिः ॥8॥

(8) ववनय (अशभमान का अभाव), ईमानदारी (छल-कपट का अभाव), अहिंसा, सिनिीलता, सरलता, गुरु की सेवा, िुद्धता (िरीर की और मन की), ल्स्थरता और आत्मसंयम।

इस्न्द्रयाथेषु िैराग्यमनिङ्कार एि च।
जन्ममृत्युजराव्याधधदुःखदोषानुदशनगम् ्॥9॥

(9) इल्न्द्रयों के ववषयों से वैराग्य, अिंकाररूनूयता और जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, बीमारी और दुःख की बुराइयों को समझना;

असस्क्तरनशभष्ङ्गि पुलदारगृिादशु।
तनत्यां च समधचत्तत्शिमष्टातनष्टोपपवत्तषु॥10॥

(10) अनासल्क्त, पुल-पत्नी-घर इत्याहद के साथ मिो न िोना और सब अभीष्ट और अनभीष्ट घटनाओं के प्रतत तनरन्तर समानधचत्तता का भाव;

मतय चानन्ययोगेन भस्क्तरव्यशभचाररणी ।
विविक्त देश से वित्मिरततजनगससांहद ॥11॥

(11) अनन्य रूप से अनुिाशसत भाव से मेरे प्रतत अववचल भल्क्त, एकान्त स्थान में तनवास करना और जनसमुदाय के प्रतत अरुधच;

अध्यात्मज्ञानतनत्यत्िां तत्त्ज्ञानाथदगशनगम् ्।
एतज्ज्ञानशमतत प्रोक्तमज्ञानां यदतोऽन्यथा ॥12॥

(12) तनरन्तर आत्मा के ज्ञान में मग्न रिना, सत्य के ज्ञान के उद्देश्य की अन्तिवल्ष्ट- यि (सच्चा) ज्ञान किा गया िै और जो कुछ इससे शभन्न िै, यि अज्ञान िै।

गुणों की इस सूची से यि स्पष्ट िै कक ज्ञान के अन्तगतव नैततक गुणों के अभ्यास का भी समाविे िै। केवल सैद्धाल्न्तक अध्ययन से काम निींचलेगा।"[431] नैततक गुणों के ववकास द्वारा तनत्य अपररवतनविील आत्मा का प्रकिा, जो सबको साक्षी-रूप से देख रिा िै, परन्तु ककसी में आसक्त निीं, नश्वर रूपों से पृथक् पिचाना जाता िै और उसके साथ नश्वर रूपों का घपला निींिोता।

ज्ञेयांयत्तत्प्रिक्ष्याशम यज्ज्ञात्िामृतमश्नुते।
अनाहदमत्परां ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥13॥

431 नायनात्माप्रवचनेनलभ्योनमेचवान बिुना शुरुतेन । कठोपतनषद् ,2, 22; मुण्डकोपतनषद्32-3

(13) अब म ैंतुझको यि बतलाऊंगा कक जाननेयोग्य (ज्ञेय) क्या िै, ल्जसको जान लेनेसे िाश्वत जीवन प्राप्त िी जाता िै। वि िै परब्रह्म, ल्जसका कोई आहद निीं िै और जो किा जाता िै कक न तो सत् ्(अल्स्तत्वमान्) ् िै और न असत् ्(ल्जसका अल्स्तत्व निीं) ।

अनाहद मत्परम् ्: आहदरहित (अनाहद) और मेरे द्वारा िाशसत । -रामानुज ।

अनाहदमत् ्परम् ्: आहदरहित, अनाहद भगवान्। ् ि्ंकराचाय व।

वि तनत्य िै, जो अल्स्तत्व और अनल्स्तत्व, आहद और अन्त के सब अनुभवगम्य ववरोधों से ऊपर िै और यहद िम उसे प्राप्त कर लेते िैं, तो जन्म और मरण केवल बािरी घटनाएं रि जाती िैं, जो आत्मा की तनत्यता को स्पि वनिींकर पातीं।

क्षेत्र का जाननेवाला, क्षेत्रज्ञ

सितग:पाणणपादां तत्सितगोऽक्षक्षशशरोमुखुम् ्।
सितग: श्रुततमल्लोके सिमगिृत्य ततष्ठतत ॥14॥

(14) उसके िाथ और पैर सब जगि िैं; उसकी आंखें, शसर और मुख सब ओर िैं; उसके कान सब हदिाओं में िैं; वि सबको आवृत्त करके संसार में तनवास कर रिा िै।

अनुभव के सब ववषयों के एक कताव के रूप में उसे सबको आवृत्त करने वाला और सब जगि िाथ-पैर-आंख-कान वाला बताया गया िै। हदकव प्रकिा के बबना कोई अनुभव िो िी निींसकता। क्योंकक भगवान् ्के दो पक्ष िैं, एक लोकातीतता और अनासल्क्त का, दूसूरा अनात्म (प्रकृतत) के साथ प्रत्येक ववशिष्ट संयोग में अन्तव्यावपता का; इसशलए उसे ववरोधाभासों की एक श्रृंखला के रूप में वखणतव ककया गया िै। वि बािर िै और अन्दर भी, अचल िै और चल भी, दूरू िै और पास भी, अववभक्त िै और कफर भी ववभक्त िै। मिाभारत में किा गया िै कक जब आत्मा प्रकृतत के गुणों से संयुक्त रिता िै, तब उसे क्षेलज्ञ किा जाता िै; जब वि उन गुणों से मुक्त िी जाता िै, तब वि परमात्मा किलाता िै।432

सिेन्द्रियगुणाभास सिेन्द्रियविवर्जतगम् ्।
असक्त ांसिभृगचृचै तनगुणग ांगुणुभोक्तृ ृच ॥15॥

(15) वि ऐसा प्रतीत िोता िै कक उसमें सब इल्न्द्रयों के गुण िैं और कफर भी वि ककसी भी इल्न्द्रय से रहित िै;

---

432 आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्त: संयुक्त: प्रकृतेगुणैव ।
तैरेव तु ववतनमुक्वत: परमात्मेत्युदित: ॥
ि्ाल्न्तपव व187, 24

वि अनासक्त ि◌ै; कफर भी सबको संभाले ि◌ुए ि◌ै; वि गुणों से (प्रकृतत के क्रमववधान से) रहित ि◌ै और कफर भी उनका उपभोग कर रिा ि◌ै।

इस श्लोक में बताया गया ि◌ै कक ईश्वर पररवतनविील ि◌ै और अपररवतनविील भी; वि सब कुछ ि◌ै और एक ि◌ै। वि सब-कुछ देखता ि◌ै, परन्तु ि◌ारीररक आंख (चमचवक्षु) द्वारा निीं;◌ं वि सब-कुछ सुनता ि◌ै, परन्तु िारीररक कान द्वारा निीं;◌ं वि सब-कुछ जानता ि◌ै, परन्तुसीशमत मन द्वारा निीं। श्वेताश्वतर उपतनषद् से तुलना कील्जए, 3, 19: वि आंख के बबना देखता ि◌ै; वि कान के बबना सुनता ि◌ै। ईश्वर की वविालता गुणों के आरोप (अध्यारोप) और तनषेध (अपवाद) द्वारा स्पष्ट की गई ि◌ै।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेि च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचान्तके च तत् ॥16॥

(16) वि सब प्राखणयों के बािर ि◌ै और अन्दर भी। वि अचल ि◌ै और चलायमान भी। वि इतना सूक्ष्म ि◌ै कक उसे जाना निींजा सकता। वि बिुत दूर ि◌ै और कफर भी वि पास ि◌ै।

अविभक्त ◌ंच भूतेषु विभक्तशमि च स्स्थतम् ◌्।
भूतभतृ गच तज्ज्ञेय ◌ंग्रशसष्णु ◌ुप्रभविष्णु ◌ुच ॥17॥

(17) वि अववभक्त (अववभाज्य) ि◌ै और कफर भी वि प्राखणयों में ववभक्त ि◌ुआ-सा प्रतीत ि◌ोता ि◌ै। यि समझना चाहिए कक वि सब प्राखणयों का भरण-पोषण करता ि◌ै, उनका ववनाि करता ि◌ै और कफर नये शसरे से उन्िें उत्पन्न करता ि◌ै।

डायोनीशसयस से तुलना कील्जए: 'ववभक्त वस्तुओंमें अववभक्त' । सब वस्तुएं उसी से तनकलती ि◌ैं, उसी द्वारा संभाली जाती ि◌ैं और कफर वापस उसी में ले ली जाती ि◌ैं।

ज्योततषामवप तज्ज्योततस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृहदसिस्गयविस्ष्ठतम्॥18॥

(18) वि ज्योततयों की भी ज्योतत ि◌ै। वि अन्धकार से परे किा जाता ि◌ै। वि ज्ञान ि◌ै; ज्ञान का ववषय ि◌ै और ज्ञान का लक्ष्य ि◌ै-वि सबके हृदय में ल्स्थत ि◌ै।

प्रकाि-स्वरूप परमात्मा सब प्राखणयों के हृदय में तनवास करता ि◌ै। इनमें से कई स्थल उपतनषदों के उद्धरण ि◌ैं। देखखए श्वेताश्वतर उपतनषद् 3, 8 और 16; ईिोपतनषद, 5; मुण्डकोपतनषद् 13, 1,7; बृिदारण्यक उपतनषद्, 4, 4, 16।

ज्ञान का फल

इतत क्षेर तथा ज्ञानांज्ञेयांचोक्तांसमासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भािायोपपद्यते ॥19॥

(19) इस प्रकार छोल, ज्ञान और ज्ञान के ववषय का संक्षेप में वणनव कर हदया गया िै। जो मेरा भक्त इस बात को समझ लेता िै, वि मेरी दिा को प्राप्त िोनेयोग्य बन जाता िै।

जब भक्त तनत्य अन्तवासवी ब्रह्म को देख लेता िै, तब वि हदव्य स्वभाव को धारण कर लेता िै, ल्जसकी

ववविेषताएं स्वतन्त्रता, पे्रम और समानता िै। "वि मेरी दिा में पिुंच जाता िै।"

प्रकृतत और आत्मा

प्रकृतत पुरुषांचैि विद्धानादी उभिावप।

विकाराश्ांच गुणाश्ांचैि विद्धध प्रकृततसम्भिान् ॥20॥

(20) तुम इस बात को समझ ले कक प्रकृतत और पुरुष (आत्मा) दोनों अनाहद (आरम्भिीन) िैं; और इस बात को भी समझ ले कक रूप (ववकार) और गुण प्रकृतत से िी उत्पन्न िुए िैं।

ल्जस प्रकार ईश्वर तनत्य िै, उसी प्रकार उसकी प्रकृततयां भी तनत्य िैं।"[433]

दो प्रकृततयों, प्रकृतत और आत्मा, पर अपनेअधधकार के द्वारा ईश्वर ववश्व की सृलूष्ट, ल्स्थतत और प्रलय करता िै। इस स्थान पर वखणतव पुरुष सांख्य का बिुगुणात्मक पुरुष निीं िै, अवपतु क्षेलज्ञ िै, जो सब क्षेत्लों में एक िी िै। गीता प्रकृतत और पुरुष को दो स्वतन्त्र मूल तत्व निीं ंमानती, जैसा कक सांख्य मानता िै, अवपतु उन दोनों को एक और उसी ईश्वर के तनकृष्ट और उत्कृष्ट रूप मानती िै।

कायककरणकतृत्वे िेतुः प्रकृततरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानांभोक्तृत्वे िेतुरुच्यते ॥21॥

(21) प्रकृतत को काय,व करण (साधन) और कतृत्वव (अशभकताव िोना) का कारण किा जाता िै और आत्मा को सुख और दुःख के अनुभव के सम्बन्ध में कारण किा जाता िै।

'कायकवरणकतृत्ववे'े के स्थान पर एक और पाठ िै 'कायकवारणकतृत्ववे' । देखखए फ्रैंकशलन ऐजटवन :

भगवद्गीता खण्ड 1, पृ. 187 पर हटप्पणी।

---

433 तनत्येश्वरवादईश्वरस्यतत्प्रकृत्योरवप युक्तं तनत्यत्वेन भववतुम्। - शंकराचाय व।

रीर और इल्न्द्रयां प्रकृतत द्वारा उत्पन्न की जाती िँ और पुरुष द्वारा सुख और दु:ख का अनुभव कुछ तनल्श्चत सीमाओंके अधीन िै। आत्मा क परमानन्दपूण वप्रभाव वस्तु-रूपात्मक प्रकृतत के साथ एकरूपता के कारण सुख और दु:ख से कलंककत (मशलन) िो जाता िै।

पुरुषः प्रकृततस्थोहिभुङ्क्तेप्रकृततजान्गुणुान् ्।

कारण गुणुसङ्गोऽस्य सदसयोतनजन्मसु ु॥22॥

(22) प्रकृतत में ल्स्थत आत्मा प्रकृतत से उत्पन्न गुणों का उपभोग करती िै। इन गुणों के साथ आसल्क्त अच्छी और बुरी योतनयों में उसके जन्म का कारण बनती िै।

उपद्रष्टानुमन्ता च भता गभोक्ता मिेश्रिः ।

रमात्मेतत चाप्युक्तो दिेऽस्स्मन्पुरुषः परः ॥23॥

(23) िीर में ल्स्थत परमेश्वर साक्षी, अनुमतत देने वाला, संभालने वाला, उपभोग करने ेवाला, मिान् ्प्रभु ुऔर परमात्मा किलाता िै।

यिां ंपरम आत्मा उस मन:िरीररक व्यल्क्त से शभन्न िै, जो प्रकृतत की गततववधधयों में फंसे रिने ेके कारण पृथृक करने ेवाली चेतना से ऊपर उठकर अमर आत्मा बन जाता िै। गीता में क्षेलज्ञ और परमेश्वर में कोई भेद निीं ककया गया िै।'[434]

य एिंवेवत्ति पुरुष ंप्रकृतत ंच गुणुैः सि।

सिथगा ितमगानोऽवप न स भूयोऽशभजायते ॥24॥

(24) जो कोई इस प्रकार गुणों के साथ-साथ आत्मा (पुरुष) और प्रकृतत को जान लेता िै, वि भले िी ककसी प्रकार भी काय वक्यों न करता रिे, कफर जन्म निीं ंलेता।

सिथगा ितमगानोऽवप : चािे वि सब प्रकार काम करता िै; चािे वि जीवन की ककसी भी दिा में क्यों न िो।

-रामानुज ।

मुल्क्त के ववशभन्न माग व

ध्यानेनात्मतन पश्यस्न्त केधचदात्मानमात्मना ।

अन्ये साख्ांयेन योगेन कमयगोगेन चापरे ॥25॥

---

434 अनश्वयोभेदानभ्युपगमाद्गीतिाास्त्रे।े िंकराचाय।व

(25) कुछ लोग आत्मा द्वारा आत्मा में आत्मा को उपासना (ध्यान) द्वारा देखर्तें; कुछ अन्य लोग ज्ञानमाग व

द्वारा और कुछ अन्य लोग कममवाग वद्वारा इस प्रकार आत्मा का दिनव करते िैं।

यिां ्सांख्य िदद का प्रयोग ज्ञान के शलए िुआ िै।

अन्ये त्िमिजानन्तः श्रुत्ान्यिेभ्य उपासते।

तेऽवप चातततरन्त्यिे मृत्ूयुश्रुततपरायणाः ॥26॥

(26) परन्तु ुकुछ अन्य लोग इस बात को (योग के इन मागों को) न जानते िुए अन्य लोगों से सुनकर उपासना करते िैं; और वे भी जो कुछ उन्िोंने सुना िै, उस पर आस्था रखते िुए मृत्ूयु के परे पिुंच जाते िैं।

जो लोग गुरुओं435 की प्रामाखणकता पर भरोसा रखते िैं और उनके उपदिे के अनुसार उपासना करते िैं,

उनके हृदय भी परमात्मा की दया के प्रतत खुल जाते िैं और इस प्रकार वे िाश्वत जीवन को प्राप्त कर लेते िैं।

यित्सज्जायते ेककस्ञ्चत्सत्त्िं स्थिारजङ्गमम् ्।

क्षेरक्षेरज्ञसयाीगात्तद्धिद्धि भरतषभग ॥27॥

(27) िे भरतों में श्ेरेष्ठ (अजुनव), तू ूइस बात को समझ ले कक जो कोई भी स्थावर या जंगम वस्तु उत्पन्न िुई िै, वि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग द्वारा िी उत्पन्न िुई िै।

सम्पूण वजीवन आत्म और अनात्म के मध्य िोने ेवाला व्यापार िै। िंकराचाय वके मतानुसार इन दोनों का संयोग अध्यास के ढंग का िै, ल्जसमें एक को ग़लती से दूसूरा समझ शलया जाता िै। जब यि भ्रम दूरू िो जाता िै, तब बन्धन समाप्त िो जाता िै।

सम ंसिेषु भूतेषु ततष्ठन्त ंपरमेश्िरम् ्।

विनश्यत्स्िविनश्यन्तां यः पश्यतत स पश्यतत ॥28॥

(28) जो व्यल्क्त परमात्मा को सब वस्तुओंमें समान रूप से तनवास करता िुआ और उन वस्तुओंके नष्ट िोने पर भी उसे नष्ट न िोता िुआ देखता िै, विी वस्तुतः देखता िै।

जो कोई सब वस्तुओंमें ववश्वात्मा को देखता िै, विी सचमुच देखता िै और अपने-आप भी सावभवौम बन

जाता िै।

435 शुरुततपरायणा;केवलपरोपदिप्रमाणाः स्वयं ्वववेकरल्ष्टताः। - िंकराचाय वि

'जब वस्तुएं नष्ट िोती िैं, तब भी वि कभी नष्ट निींिोता।' यहद सब वस्तुएं ववकासात्मक पुल्ष्ट की एक अववराम दिा में ववद्यमान िैं, तब परमात्मा पररवतनविीन निींिो सकता। उदािरण के शलए, बगसवन परमात्मा को संसार में पूणतवया अन्तव्यापवी मानता िै, जो कक संसार के पररवतनवों के साथ पररवतततव िोता रिता िै। ववकासिील परमात्मा का, ल्जसकी कक ववश्व के ववकास की प्रकक्रया के एक अं-रूप में कल्पना की गई िै, तब अल्स्तत्व िी समाप्त िो जाएगा, जब ववश्व की गतत समाप्त िो जाएगी। तापगततववज्ञान (थमोडाइनैशमक्स) के दूसूरे तनयम में एक घटनिीन तनष्प्रविाता और पूण ववश्राम की दिा ध्वतनत की गई िै। एक ववकसमान या वधमवान परमात्मा संसार का स्रष्टा या उद्धारकताव निींिो सकता। वि धाशमकव भावनाओं का समुधचत ववषय निीं ंिै। इस श्लोक में गीता िमें ववश्वास हदलाती िै कक जब संसार का अल्स्तत्व समाप्त िो जाता िै, तब भी परमात्मा जीववत रिता िै और बना रिता िै।

समं पश्यन् हि सिलग समिस्स्थतमीश्रिम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानां ततो यातत परां गततम् ॥29॥

(29) क्योंकक वि ईश्वर को सब जगि समान रूप से ववद्यमान देखता िै, इसशलए वि अपनेआत्म द्वारा अपनी सच्ची आत्मा को चोट निींपिुंचाता; और तब वि सवोच्च लक्ष्य (परम गतत) को प्राप्त कर लेता िै।

प्रकृत्यै च कमाणगण कक्रयमाणातन सिशगः ।
यः पश्यतत तथात्मानमकतारगां स पश्यतत ॥30॥

(30) जो व्यल्क्त इस बात को देख लेता िै कक सब कम वकेवल प्रकृतत द्वारा ककए जा रिे िैं और साथ िी यि कक आत्मा कम वकरने वाली निींिै, विी वस्तुतः देखता िै।

सच्ची आत्मा कम वकरने वाली (कताव) निीं िै, अवपतु केवल साक्षी िै। वि दिकव िै, अशभनेता निीं। शंकराचाय वका कथन िै कक इस बात का कोई प्रमाण निीं िै कक जो अकताव, अव्यय और सब गुणों से रहित िै, उसमें ककसी प्रकार की ववववध-रूपता िो सकती िै, वैसे िी, जैसे कक आकाि में ककसी प्रकार की ववववध-रूपता निीं िोती।"[436] कम वमन और बुद्धध पर प्रभाव डालते िैं, आत्मा पर निीं।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यतत ।
तत एव च विस्तारां ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ 31॥

(31) जब वि इस बात को देख लेता िै कक सब वस्तुओंकी पृथकता की दिा उस एक में िी केल्न्द्रत िै और

---

436 क्षेत्रज्ञमकतारंवसवोपाधधवधचवल्जतवम्।तनगुणवस्याकतुतवनविेषस्याकािस्येव भेदे प्रमाणानुपपवत्तः ।

उसमें से िी यि सारा ववस्तार िोता िै, तब वि ब्रह्म को प्राप्त कर लेता िै। जब प्रकृतत की ववववधता और उसके ववकास का मूल उस िाश्वत एक में ढूंढ शलया जाता िै, तब िम भी िाश्वता को प्राप्त कर लेते िैं। "वि आत्मा की सवव्वयापी प्रकृतत को प्राप्त कर लेता िै, क्योंकक सब प्रकार की सीशमतताओं का कारण आत्मा की एकता में ववलीन िो जाता िै।" - आनन्दधगरर ।

अनाहदत्वास्न्नगुणगत्वात्पिरमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽवप कौन्तेय न करोतत न शलप्यते ◌े॥32॥

(32) क्योंकक परमात्मा अनश्वर िै, अनाहद िै और तनगुणव िै, इसशलए िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), यद्यवप वि रीर में तनवास करता िै, कफर भी वि न तो कोई कम वकरता िै और न उसमें शलप्त िोता िै।

यथा सिगत ◌ंसौम्यादाकाश ◌ंनोपशलप्यते ।
सिरगािस्थतो दि तथात्मा नोपशलप्यते ॥33॥

(33) ल्जस प्रकार सवव्वयापी आकाि अपनी सूक्ष्मता के कारण ककसी वस्तु से शलप्त निीं ◌ंिोता, उसी प्रकार सब िरीरों में ल्स्थत आत्मा भी ककसी प्रकार शलप्त निींिोती।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्न लोकशमम ◌ंरविः।
क्षेर क्षेरी तथा कृत्न प्रकाशयतत भारत ॥34॥

(34) जैसे एक सूय वइस सारे संसार को प्रकाशित करता िै, उसी प्रकार िे भारत (अजुनव) क्षेत्र का स्वामी (क्षेत्री) इस सारे क्षेत्र को प्रकाशित करता िै।

क्षेत्रज्ञ सारे क्षेत्र को, अल्स्तत्वमानता के सम्पूण वसंसार को प्रकाशित करता िै।

क्षेरक्षेलज्ञयोरेिमन्तरां ज्ञानचक्षुषा ।
भूतूप्रकृततमोक्ष ◌ंच ये विदुयास्न्त तेपरम्॥35॥

(35) जो लोग अपने ज्ञान-चक्षुओंसे इस प्रकार क्षेत्र और क्षेतज्ञ के अन्तर को और सब प्राखणयों के प्रकृतत से मुक्त िो जाने को जान लेते िैं, वे सवोंच्च (भगवान्)◌् को पा लेते िैं।

भूतप्रकृतत : वस्तुओंऔर प्राखणयों का भौततक स्वभाव ।

इतत.. क्षेर क्षेरज्ञविभागयोगोनामत्रयोदशोऽध्यायः ।

यि िै 'क्षेर और क्षेलज्ञ के भेद का योग' नामक तेरिवांअध्याय ।

अध्याय 14

सब वस्तुओं ंऔर प्राखणयों का रिस्यमय जनक

सवोच्च ज्ञान

श्रीभगिानुिाच

परां भूयूः प्रिक्ष्याशम ज्ञानाना ंज्ञानमुतुतमम् ्।

यज्ज्ञात्िा मुनुयः सिे परा ंशसद्धधशमतो गताः ॥1॥

श्री भगवान् ्बोले :

(1) अब म ैंतुझे ेवि सवोच्च ज्ञान भी बताऊंगा, जो सब ज्ञानों में श्रेष्ठ िै और ल्जसे जानकर सब मुतन इस संसार से ऊपर उठकर परम शसद्धध (पूणतवा) तक पिुंच गए िैं।

इदां ज्ञानमुपुाधश्रत्य मम साधम्यमगागताः ।

सगेऽवप नोपजायन्ते ेप्रलये न व्यथस्न्त च ॥2॥

(2) इस ज्ञान का सिारा लेकर और मेरे स्वरूप वाले बनकर वे सृलूष्ट का समय आने ेपर भी जन्म निींलेते; और न वे प्रलयकाल आने पर दुःखी िी िोतेिैं।

ाश्वित जीवन अतनदेश्य परब्रह्म में ववलीन ो जाना निीं ै, अवपतु एक ऐसी सावभवौमता और आत्मा की स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेना ै, जो अनुभवगम्य गततववधध से ऊपर उठी ुई ै। इसकी ल्स्थतत सृलूष्ट और प्रलय की प्रकक्रयाओं से अप्रभाववत रिती ै, क्योंकक यि सब प्रकार के प्रकटनों (ववभूततयों) से बढ़कर ै। मुक्त आत्मा उन्नतत करता ुआ ब्रह्म के समान ो जाता ै और एक अपररवतनवीील अल्स्तत्व धारण कर लेता ै, जो तनत्यरूप से उस परमेश्वर के प्रतत सचेत रिता ै, जो ववश्व के ववववध रूपों को धारण करता ै। यि स्वरूपता या तद्रूपता निीं। अवपतुकेवल समानधमतवा या गुणों की समानता ै। वि उसके साथ एक स्वभाव वाला ो जाता ै, ल्जसकी कक वि खोज कर रिा ोता ै और सादृश्य मुल्क्त प्राप्त कर लेता ै। वि अपनी बाह्य चेतना और जीवन में ब्रह्म को अनुभव कर लेता ै। तुलना कील्जए : "इसशलए तुम पूण वबनो, ठीक वैसे ी, जैसे कक तुम्िारा वपता, जो स्वग वमें ै, पूण वि।" मैथ्यू 5, 48। ंकराचाय वका मत इससे शभन्न ै। उसका ववचार ै कक साधम्य वका अथ वस्वभाव की तद्रूपता ै, गुणों की समानता निीं।437

मम योतनमिगद्ब्रह्म तस्स्मन्गभ गदधाम्यिम् ्।
सभांः सिभूगतूाना ंततो भितत भारत ॥3॥

(3)िान् ्ब्रह्म (प्रकृतत) मेरा गभ वि; म ैंउसमें बीज डालता ंूू और े भारत (अजुनव), उससे ये सब वस्तुएं और प्राणी उत्पन्न ोतीं।

यहद िम केवल प्रकृतत की उपज ोते, तो िम ाश्वत जीवन को प्राप्त निींकर सकतेथे। इस श्लोक में यि बात स्पष्ट रूप से कि गई ै कक सारा अल्स्तत्व ब्रह्म की ी एक अशभव्यल्क्त ै। वि ववश्व का बीज ै। इस संसार के प्रसंग में वि हिरण्यगभ,व ववश्व-आत्मा, बन जाता ै। ंकराचाय वका कथन ै। "म ैंक्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को संयुक्त करता ंूू, ल्जससे हिरण्यगभ वका जन्म ोता ै और उससे सब प्राणी उत्पन्न ोते ैं।" भगवान् ्वि वपता ै, जो गभ वमें, जो कक अनात्म ै, बीज, जो कक सारभूत जीवन ै, डालता ै और इस प्रकार प्रत्येक व्यल्ष्ट के जन्म का कारण बनता ै। यि संसार ससीम पर ो री असीम की क्रीडा ै। देखखए 2, 12 पर हटप्पणी। यिां लेखक ने असत्,् प्रलय या राहि में से रूप के ववकास के सृलूष्ट-शसद्धान्त को अपनाया ै। सब वस्तुओंके रूप जो अथाि नूिय में से उत्पन्न ोतीं, परमात्मा से ी तनकले ैं। ये ी वे बीज ैं, ल्जन्िें वि असत् ्में डालता ै।

सियगोतनषु कौन्तेय मूतूयगः सभांस्न्त याः।
तासा ंब्रह्म मिद्योतनरिं बीजप्रदः वपता ॥4॥

(4) े कुन्ती के पुत्लन (अजुनव), जिां ंकिींभी ल्जन ककन्िींभी योतनयों में जो भी रूप उत्पन्न ोतीं, उन सबकी योतन मिान् ्ब्रह्म ै और म ैंवपता ंूू, जो कक बीज डालता ै।

---

437 ममपरमेश्वरस्य साधम्यवमत्स्वरूपता न तु समानधमतवां ंसाधम्यम् व,् क्षेतज्ञेश्वरयो दानाभापा तिास्त्रे े। - ंकराचाय व। मम ईश्वरस्य साधम्य वसवात्वमत्वं ंसवतवनयन्तुत्वम्,् इत्याहदधमसवाभ्यंसाधम्यम्,् नीलकण्ठ। साधम्य वमद्यत्वम्।् - श्रीधर ।

सब जीववत रूपों की माता प्रकृतत ै और वपता परमात्मा ै। क्योंकक प्रकृतत भी परमात्मा की ी एक प्रकृतत (स्वभाव) ै, इसशलए परमात्मा ववश्व का वपता और माता दोनों ी ै। वि ववश्व का बीज और गभ वदोनों ै। इस धारणा को पूजा के कुछ रूपों में उपयोग ककया गया ै; पूजा के ये रूप उस वस्तु से ववकशसत ुए ैं, ल्जसकी कुछ आधुतनक पववत्रतावादी अश्लील शलग-पूजावाद किकर खखल्ली उडाते ैं। परमात्मा की आत्मा मारे जीवनों में प्राण डालती ै और उन्ें वैसा बनाती ै, जैसा कक उन्ें परमात्मा बनाना चािता ै।

ब्रह्म इस संसार का वीयरूवप कारण ै। सब वस्तुएं ब्रह्म के वीयाणुवओं (लोगोई स्परमेहटकोई) अथात्व ् प्राणदातयनी आत्माओं द्वारा भौततक तत्व के गभाधवान के पररणामस्वरूप उत्पन्न ोती ैं। उनके द्वारा ी परमात्मा संसार में अपना काम चलाता ै। ब्रह्म (लोगोस) के ये बीज ी वे आदि व(ववचारात्मक) रूप ैं, जो भौततक तत्व के स्थूल संसार को वस्तुओं और प्राखणयों के रूप में ढालते ैं। वे आदि वया ववचार, ोने वाली वस्तुओं के नमूने, े सबके सब परमात्मा में ववद्यमान ैं। प्रकटन (अशभव्यल्क्त) की प्रत्येक सम्भावना का मूल उसकी अव्यक्त में तत्स्थानीय सम्भावना में ै; उसमें वि ाश्वत कारण के रूप में ववद्यमान रिती ै, ल्जसका कक अशभव्यल्क्त एक बाह्य प्रकट-रूप ै। परमात्मा को सृलष्ट का, उसके सम्पूण वववस्तार समेत तनत्य दिनव ोता रिता ै। सुकरात और प्लेटो की रचनाओं में ववचारों और भौततक तत्व की द्वैत के रूप में कल्पना की गई ै, जिां ववचारों के सूक्ष्म जगत और भौततक तत्व के स्थूल जगत के मध्य ववद्यमान सम्बन्ध को समझ पाना बित कहठन ै। गीता में इन दोनों को ब्रह्म का अं बिताया गया ै। परमात्मा स्वयंी बीज-रूपी ववचारों को स्थूल जगत् ्के रूपों में अवतररत करता ै। ये बीज-रूप ववचार, ल्जनका उद्गम दैवीय ै और जो कारण-रूप ब्रह्म (लोगोस) के अंि ैं, परमात्मा के प्रतत मारे पे्रम की व्याख्या करते ैं। जिां परमात्मा एक अथ वमें मानवीय प्रकृतत के शलए अनुभवातीत ै, विांआत्मा में ब्रह्म की एक प्रत्यक्ष अशभव्यल्क्त भी ै। ववश्व की यि प्रकक्रया तब तक चलती रिती ै, जब तक कक कारण-रूप मूल (ऐल्फा) और अल्न्तम तनष्पवत्त (ओमेगा) परस्पर शमल न जाए।

अच्छाई, आवेि और तनल्ष्क्रयता (सत्व, रज और तम)

सत्त्ां रजस्तम इतत गुणाः प्रकृततसम्भिाः ।
तनबध्नल्न्त मिाबािो दे देहिनमव्ययम् ्॥5॥

िेमिाबािु (अजुनव), अच्छाई (सत्व), आवेि (रजस) और तनल्ष्क्रयता (तमस्) ्, ये तीन गुण प्रकृतत से उत्पन्न ुए ैं और ये अनश्वर िरीरी (आत्मा) को िरीर में बांधकर रखते ैं

अनश्वर आत्मा को जन्म और मरण के चक्र में फंसा ुआ प्रतीत करानेवाली िल्क्त गुणों की िल्क्त ै। वे गुण 'प्रकृतत के आधघटक ैं और सब तत्वों के आधार ैं। इसशलए उन्ें इन तत्वों में ववद्यमान गुण निीं ंकिा जा सकता।'- आनन्दधगरर। उन्ें गुण इसशलए किा जाता ै, क्योंकक उनकी उत्पवत्त सांख्य के पुरुष या गीता के क्षेत्रज्ञ पर आधश्रत ै। गुण प्रकृतत की तीन प्रवृवत्तयां ंै या वे तीन धागे ैं, ल्जनसे प्रकृतत की रस्सी बटी गई ै। सत्व चेतना के प्रकाि को प्रततध्वतनत करता ै और उसके द्वारा आलोककत ोता ै और इसशलए उसकी वविेषेता

चमक (प्रकाि) िै। रजस में बहिमुखव गततवववधध (प्रवृवृत्त) िै और तमस् ्की वविेषेता जडता (अप्रवृवृत्त) और लापरवािी (प्रमाद) िै।[438] सत्व पूण ववविुद्धता और द्युतत िै, जब कक रजस् ्अिुद्धता िै, जो कक गततवववधध की ओर से जाती िै और तमस् ्अन्धकार एवं जडता िै। क्योंकक गीता में गुणों का मुख्य रूप से व्यविार नैततक अथ वमें ककया गया िै, इसशलए िमने सत्व के शलए अच्छाई रजस् ्के शलए आवेि और तमस् ्के शलए तनल्ष्क्रयता िब्द का प्रयोग ककया िै।

ब्रह्माण्डीय तैत में इन तीन गुणों में से एक-एक का प्राधान्य प्रततबबल्म्बत िै; रक्षक ववष्णु ्में सत्व का, स्रष्टा ब्रह्मा में रजस् ्का और प्रलयंकर शिव में तमस् ्का। सत्व ववश्व की ल्स्थरता में सिायक िै; रजस् ्ववश्व की सृजनिील गततवववधध में; और तमस वस्तुओंकी जीण-विीण िोने और मरनेकी प्रवृवृत्त का प्रततततनधध िै। ये गुण संसार की ल्स्थतत, उत्पवत्त और प्रलय के शलए उत्तरदायी िैं गणों का ईश्वर के तीन पक्षों पर आरोप इस बात का सूचक िै कक ईश्वर का सम्बन्ध वस्तु-रूपात्मक या व्यक्त जगत् ्से िै। परमात्मा मानवता में उसके उद्धार के शलए संघष वकर रिा िै और देवतुल्य आत्माएं उसके इस उद्धार के काय वमें उसके साथ सियोग करती िैं।[439]

जब आत्मा अपने-आप को प्रकृतत के गुणों के साथ एक समझने लगती िै, तब वि अपनी तनत्यता को भूल जाती िै और मन, प्राण तथा िरीर का उपयोग अिंकारपूण वतृल्प्त के शलए करती िै। बन्धन से ऊपर उठनेके शलए िमें प्रकृतत के गुणों से ऊपर उठना िोगा और बत्रगुणातीत बनना िोगा; तब िम आत्मा के स्वतन्त्र और अदृश्य स्वभाव को धारण कर सकेंगे। तब सत्व उन्नयन (सदलीमेिन) द्वारा चेतना का प्रकाि, ज्योतत बन जाता िै, रजस् ्तप बन जाता िै और तमस् ्प्रिान्तता या िाल्न्त बन जाता िै।

तर सत्त्ां तनमलगत्ाप्रकाशकमनामयम् ्।

सुखुसङ्गेन बध्नातत ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥6॥

(6) इनमें से अच्छाई (सत्व) वविुद्ध िोने के कारण प्रकाि और स्वास्थ्य का कारण बनती िै। िे तनष्कलंक अजुनव, यि सत्व-गुण आनन्द और ज्ञान के प्रतत आसल्क्त के कारण मनुष्य को बांधता िै।

यिां ंज्ञान का अथ वतनम्नतर बौद्धधक ज्ञान िै।

सत्व िमें अिंभाव से मुल्क्त निीं ंहदलाता। यि भी इच्छा उत्पन्न करता िै, भले िी वि इच्छा अच्छी वस्तुओंके शलए िो। आत्मा, जो कक सब आसल्क्तयों से मुक्त िै, यिां आनन्द और ज्ञान के प्रतत आसक्त रिती िै। यहद िम अिंभाव के साथ सोचना और कामना करना बन्द न करें, तो िम मुक्त निीं िैं। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धध

---

438 11 और 22, 12 और 22, 13

439 ईसाइयाि से तुलना कील्जए, जो मसीयाि के ववषय में इस प्रकार किता िै: "उसनेिमारे कष्टों को सिा और िमारे दु:खों को झेला। वि िमारे अपराधों के शलए आित िुआ। िमारी िाल्न्त के शलए दंड उसे सिना पडा और उसके द्वारा खाए कोडों से िम स्वस्थ िोते िैं।" (53,45)

से िै, जो कक प्रकृतत की एक उपज िै और उसको वविुद्ध चेतना से शभन्न समझा जाना चाहिए, जो कक आत्मा का सार-तत्व िै।

रजो रागात्मकां विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भिम् ्।
तस्न्नबनातत कौन्तेय कमसगङ्गेन देहिनम् ्॥7॥

(7) तू यि समझ ले कक आवेि (रजस्) ् आकषणव के (अनुरागात्मक) ढंग का िै, जो लोभ और आसल्क्त से उत्पन्न िोता िै। िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), यि िरीरी (आत्मा) को कम वके प्रतत आसल्क्त द्वारा जकडकर रखता िै। यद्यवप आत्मा कताव निीं ंिै, कफर भी रजोगुण उसके द्वारा इस ववचार से कम व करवाता िै कक 'म ैंकताव िंूं'। - आनन्दधगरर ।

तमस्त्ज्ञानज ंविद्धि मोिनांसिदेगहिनाम् ्।
प्रमादालस्यतनद्राशभस्तस्न्नबध्नातत भारत ॥8॥

(8) तू यि समझ कक तनल्ष्क्रयता अज्ञान से उत्पन्न िोती िै और सब देिधाररयों को मोि में (भ्रम में) डाल देती

ि।ै िे भारत (अजुनव), यि लापरवािी, आलस्य और तनद्रा (के गुणों के ववकास) द्वारा बन्धन में डाल देती ि।ै

सत्त्िां सुखे सजांयतत रजः कमणगण भारत ।
ज्ञानमािृत्य तु ुतमः प्रमादे सजांयत्युत ॥9॥

(9) िे भारत (अजुनव), अच्छाई अथातव ्सत्व-गुण मनुष्य को आनन्द में और रजोगुण कम वमें लगाता िै, कक्न्तु तमोगुण बुद्धध को ढककर प्रमाद की ओर लगाता िै।

रजस्तमश्चाशभभूय सत्त्िां भितत भारत।
रजः सत्त्िां तमश्चैि तमः सत्त्िां रजस्तथा ॥10॥

(10) िे भारत (अजुनव), सत्व रजस् ्और तमस् ्को दबाकर उन पर ववजयी िोता िै। रजस् ्सत्व और तमस को दबाकर उन पर ववजयी िोता िै और इसी प्रकार तमस् ्सत्व और रजस को दबाकर उन पर ववजयी िोता िै।

तीनों गुण सब मानव-प्राखणयों में ववद्यमान रिते िैं, भले िी वे अलग- अलग मात्राओंमें िों। कोई भी उनसे बचा िुआ निीं िै और प्रत्येक आत्मा में कोई-न-कोई एक गुण प्रधान िोता िै। मनुष्यों को उस गुण के

 आधार पर, जो उनमें प्रधान िोता िै, साल्त्वक, राजशसक अथवा तामस किा जाता िै। जब रीरिास्त्र में िरीर की

प्रकृततयों (ह्यूमर) का शसद्धान्त प्रचशलत था, तब मनुष्यों का वगीकरण चार प्रकृततयों में से ककसी एक की प्रधानता के कारण रक्त-प्रधान (सैंगुइन), वपत्त-प्रधान (बबशलयस), कफ-प्रधान (शलम्फैहटक) और चेता-प्रधान (नवसव) के रूप में ककया जाता था। हिन्दू वगीकरण में मानशसक वविेषताओं को ध्यान में रखा गया िै। साल्त्वक प्रकृतत अपना उद्देश्य प्रकाि और ज्ञान को बनाती िै; राजशसक प्रकृतत िाल्न्त और बाह्य वस्तुओंकी लालसा से पूण विोती िैं। साल्त्वक स्वभाव की गततववधधयां स्वतन्त्र, िान्त और स्वाथरवहित िोती िैं, जब कक राजशसक स्वभाव सदा सकक्रय रिना चािता िै और िान्त निीं बैठ सकता और उसकी गततववधधयां स्वाथ-वलालसा से शलप्त रिती िैं। तामशसक प्रकृतत तनल्ष्क्रय और जड िोती िै। उसका मन अन्धकारपूण वऔर भ्रान्त िोता िै और उसका सारा जीवन तनरन्तर अपने परररवेि के सम्मुख झुकते चले जानेका िी िोता िै।

सिद्वारेषु दिेऽस्स्मन्प्रकाश उपजायते।

ज्ञान ांयदा तदा विद्याहदिृद्धं ांसत्शिमत्युतु ॥11॥

(11) जब ज्ञान का प्रकाि िरीर के सब द्वारों से बािर फूटने लगता िै, तब यि समझा जा सकता िै कक सत्व-गुण बढ़ रिा िै।

सवद्ववारेषु दिेऽल्स्मन्: इस िरीर के सब द्वारों में ज्ञान के प्रकाि की पूण विारीररक अशभव्यल्क्त िो सकती िै। चेतना का सत्य भौततक तत्व में अशभव्यल्क्त का ववरोधी निीं िै। ब्रह्म को भौततक स्तर पर भी अनुभव ककया जा सकता िै। मानवीय चेतना को हदव्य बनाना, भौततक तत्व तक प्रकाि को पिुंचाना और सम्पूण वजीवन का रूपान्तर कर देना योग का लक्ष्य िै।

जब िमारे मन आलोककत िो उठते िैं और इल्न्द्रयांतीव्रतर िो जाती िैं, तब सत्व-गुण प्रधान िोता िै।

लोभः प्रिृवृत्तरारम्भः कमणगामशमः स्पृिा।

रजस्येतातन जायन्तेविवृद्धे भरतषभग ॥12॥

(12) िे भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), जब रजोगुण बढ़ जाता िै, तब लोभ, गततववधध, कायों का प्रारम्भ, िाल्न्त और वस्तुओंकी लालसा ये सब उत्पन्न िो जाते िैं;

रजोगुण की प्रधानता से जीवन और उसके सुखों को पाने के शलए आवेिपूण वप्रयत्न उत्पन्न िोता

अप्रकाशोऽप्रिवृत्तश्च प्रमादो मोि एव च।

तमस्येतातन जायन्तेविवृद्धे कुरुनन्दन ॥13॥

(13) िे कुरुनन्दन (अजुनव), जब तमोगुण बढ़ जाता िै, तब प्रकाि का अभाव, तनल्ष्क्रयता, लापरवािी और

केवल मूढ़ता, ये सब उत्पन्न िोतीं।

जिां ंप्रकाि सत्व-गुण का पररणाम िै, विांअप्रकाि या प्रभाव का अभाव तमोगुण का फल िै। ग़लती, ग़लतिमी, लापरवािी और तनल्ष्क्रयता, ये तामशसक स्वभाव के वविेष धचह्न िैं।

यदा सत्त्वे प्रिृद्धे तु प्रलयां यातत देिभृत् ्।
तदोत्तम विदा ांलोकानमलान्प्रततपद्यते ॥14॥

(14) जब देिधारी आत्मा उसे दिा में ववलय को प्राप्त िोती िै, जब कक सत्वगुण प्रधान िो, तब वि सवोच्च (भगवान्) ् को जानने ेवालों के वविुद्ध लोकों में पिुंचती िै।

वेमुल्क्त निींपाते, अवपतु ब्रह्मलोक में जन्म लेते िैं। मुल्क्त की दिा तनस्त्रैगुण्य अथात् व ्बत्रगुणातीतता िै।

रजशस प्रलयां गत्िा कमसगङ्धगषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमशस मूढयोतनषु ुजायते ॥15॥

(15) जब रजोगुण प्रधान िो, उस समय ववलय को प्राप्त िोने ेपर वि कमों में आसक्त लोगों के बीच जन्म लेती िै; और यहद उसका ववलय तब िो, जब कक तमोगुण प्रधान िो, तब वि मूढ़ योतनयों में जन्म लेती िै।

कमणगः सुकृतस्यािुः साल्त्त्वकां तनमलग ांफलम् ्।
रजसस्तु फलां दुःखमज्ञानांतमसः फलम् ्॥16॥

(16) अच्छे (साल्त्वक) कम वका फल साल्त्त्वक और तनमलव किा जाता िै; राजशसक कम वका फल दुःख िोता िै और तामशसक कम वका फल अज्ञान िोता िै।

सत्त्वात्सिजायते ज्ञानांरजसो लोभ एि च।
प्रमादमोिौ तमसो भितोऽज्ञानमेि च ॥17॥

(17) सत्व-गुण से ज्ञान उत्पन्न िोता िै, रजोगुण से लोभ उत्पन्न िोता िै और तमोगुण से प्रमाद, मूढ़ता और अज्ञान उत्पन्न िोता िै।

यिां ंतीनों गुणों के मनोवैज्ञातनक पररणाम बताए गए िैं।

ऊर्ध्वगच्छस्न्तसत्स्थामध्येततष्ठस्न्तराजसाः ।

जघन्यगुणिवृत्तस्था अधो गच्छस्न्त तामसाः ॥18॥

(18) जो लोग सत्व-गुण में ल्स्थत िोतें, वे ऊपर की ओर उठते जाते िैं। रजोगुण वाले लोग मध्य के क्षेत्र में रितें और तामशसक प्रववृत्त वाले लोग जघन्य कमों में लगे रिकर नीचेकी ओर धगरतेजाते िैं।

आत्मा का ववकास तीन सोपानों में िोता िै; यि तनल्ष्क्रय जडता और अज्ञान की अधीनता से भौततक सुखों के शलए संघष वद्वारा ऊपर उठती िुई ज्ञान और आनन्द की खोज की ओर बढ़ती िै। परन्तु जब तक िम आसक्त रिते िैं, भले िी वि आसल्क्त श्रेष्ठ वस्तुओं के प्रतत क्यों न िो, िम सीशमत रितें और इसशलए सदा एक असुरक्षा की भावना बनी रिती िै, क्योंकक रतस् ्और तमस् ्िमारे अन्दर ववद्यमान सत्व पर िावी िो जा सकतें। सवोच्च आदि वनैततक से ऊपर उठकर आध्याल्त्मक स्तर पर पिुंचना िै। अच्छे (साल्त्वक) मनुष्य को सन्त (बत्रगुणातीत) बनना चाहिए। जब तक िम इस ल्स्थतत तक न पिुंच जाएं, तब तक िम केवल तनमावण की दिा में िैं; िमारा ववकास अपूण वि।

नान्यां गुणेभ्यः कतारगां यदा द्रष्टानुपश्यतत ।

गुणेभ्यश्च परां िवत्त मद्भिांसोऽधधगच्छतत ॥19॥

(19) जब देखने वाला (द्रष्टा) इन गुणों के अलावा अन्य ककसी कताव को निीं देखता और उसकी भी जान लेता िै जो कक इन गुणों से परे िै, तब वि मेरे स्वरूप को प्राप्त िो जाता िै।

"तब ब्रह्म के साथ उसकी तद्रूपता व्यक्त िो जाती िै।" - आनन्दधगरर।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देिी देिसमुद्भवान् ्।

जन्ममृत्युजरादुःखैविमुक्तोऽमृतमश्नुते॥20॥

(20) जब िरीरधारी आत्मा िरीर से उत्पन्न िोने वाले इन तीन गुणों से ऊपर उठ जाती िै, तब वि जन्म, मरण, वृद्धावस्था और दुःखों से मुक्त िो जाती िै और उसे िाश्वत जीवन प्राप्त िो जाता िै।

देिसमुद्भवान् ्: इसमें यि अथ वतनहित िै कक गुण िरीर के कारण उत्पन्न िोतें।"[440] ये वे बीज िैं, ल्जनमें से िरीर ववकशसत िोता िै।" - िंकराचायाव साल्त्वक अच्छाई भी अपूण वि, क्योंकक इस अच्छाई के शलए भी इसके ववरोध के साथ संघष वकी ित वलगी िुई िै। ज्योंिी यि संघष वसमाप्त िो जाता िै और अच्छाई पूण वबन जाती

440 देिोत्पवत्तबीजभूतूम्। ्

ै, त्योंकि वि अच्छाई निीं ंरिती और वि सब नैततक बाधाओं से ऊपर उठ जाती िै। सत्व की प्रकृतत का ववकास करने ेके द्वारा िम उससे ऊपर उठ जाते िैं और लोकातीत ज्ञान को प्राप्त करते िैं।441

जो बत्रगुणातीत िै, उसकी वविेषेताएं

अजुनग उिाच

कैशलंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भितत प्रभो।

ककमाचारः कथ ंचैतास्त्रींरीन्गुणानततितवते॥21॥

अजुनव ने किा :

(21) िे प्रभु, ु जो इन तीन गुणों से ऊपर उठ जाता िै, उसकी क्या पिचान िोती (िै? उसका रिन-सिन कैसा िोता िै? वि इन तीनों गुणों से परे ककस प्रकार पिुंचता िै ?

जीवन्मुक्त की, जो व्यल्क्त वतमवान जीवन में िी पूणतवा को प्राप्त कर चुका िै, उसकी क्या वविेषेताएं िोती िैं? ये वविेषेताएं बिुत कुछ विी िैं, जो ल्स्थत- प्रज्ञ की िैं (2, 25 से आगे) और जो भक्त की िैं, (12, 13 से आगे)। इससे यि स्पष्ट िै कक पूणतवा की वविेषेताएं एक-सी िी िैं, चािे उस पूणतवा को ककसी भी प्रकार प्राप्त कर शलया जाए।

श्रीभगिानुिाच

प्रकाशांच प्रिृत्त ंच मोिमेि च पाण्डि ।

न द्वेल्ष्ट सम्प्रिृत्तातन न तनिृत्तातन काङ्क्षतत॥22॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(22) िे पाण्डव (अजुनव), जो व्यल्क्त प्रकाि, गततववधध और मूढ़ता के उत्पन्न िोनेपर उन्िें बुरा निीं ंमानता और जब वे न िों, तब उनके शलए इच्छा निीं करता;

उदासीनिदासीनो गुणैयो न विचाल्यते ।

गुणा ितन्गत इत्यिे योऽतितष्ठतत नेङ्गते॥23॥

(23) जो उदासीन (तनस्पृि या तटस्थ) की भांतत गुणों द्वारा ववचशलत न िोता िुआ बैठा रिता िै, जो यि समझता िुआ, कक केवल गुण िी कम वकर रिे िैं, अववचशलत भाव से अलग रिता िै;

---

441 ल्जसप्रकारिम कांटेंसे काटेकोतनकालतेिैं, उसी प्रकार सांसाररक वस्तुओंका त्याग करने के द्वारा िमें त्याग को भी त्याग देना चाहिए। कण्टक कण्टकेनेव येन त्यजशस ते त्यज । सत्व-गुण के द्वारा िम रजस् ्और तमस् ्पर ववजय पातेिैं और उसके बाद स्वयं ंसत्य से भी ऊपर उठ जाते िैं।

वि प्रकृतत के पररवतनवों को देखता ि‍ै, परन्तु उनमें उलझता नि‍ीं। गुणों का ववि‍ुद्ध प्रकि‍ा, हदव्य गततववधध और पूण विल्न्त के रूप में उन्नयन ककया जाता ि‍ै।

समदु:खसुखु: स्‌स्थि: समलोष्टाश्मकाञ्चन: ।
तुल्यवप्रयावप्रयो धीरस्तुल्यतनन्दात्मसस्‌ांतुतत: ॥24॥

(24) जो सुख और दु:ख को समान समझता ि‍ै, जो अपनेआत्म में ि‍ी ल्स्थत रिता ि‍ै, जो शमट्टी के ढेले, पत्थर और स्वणखवण्ड को समान समझता ि‍ै, जो वप्रय और अवप्रय वस्तुओंमें एक-सा रिता ि‍ै, ल्जसका मन ल्स्थर ि‍ै और जो तनन्दा और स्तुतत को एक जैसा समझता ि‍ै;

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो शमराररपक्षयो: ।
सिारगम्भपररत्यागी गुणातीत: स उच्यते ॥25॥

(25) जो मान और अपमान में समान रिता ि‍ै और जो शमलों और ि‍त्रुओंके प्रतत एक-सा ि‍ै और ल्जसनेसब कमों का पररत्याग कर हदया ि‍ै, उसे गुणातीत अथात्व ्गुणों से ऊपर उठा ि‍ुआ कि‍ा जाता ि‍ै।

मा ंच योऽव्यशभचारेण भस्क्तयोगेन सेिते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते े॥26॥

(26) जो अनन्य भल्क्तयोग से मेरी सेवा करता ि‍ै, वि तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता ि‍ै और वि ब्रह्म बन जाने के योग्य ि‍ो जाता ि‍ै, वि मुल्क्त के उपयुक्त ि‍ो जाता ि‍ै।

ब्रह्मणो हि प्रततष्ठिाममृतृस्याव्ययस्य च।
शाश्‌तिस्य च धमस्गाय सुखुस्यैकास्न्तकस्य च ॥27॥

(27) (क्योंकक) म ैंअमर और अनश्वर ब्रह्म का, ि‍ाश्वत धम वऔर परम आनन्द का तनवास स्थान ि‍ूं।
यिां ंपर व्यल्क्तक ईश्वर को परब्रह्म का आधार बताया गया ि‍ै। ि‍ंकराचाय वने इसका अथ वयि तनकाला ि‍ै कक परमेश्वर इस अथ वमें ब्रह्म ि‍ै कक वि ब्रह्म का व्यक्त रूप ि‍ै। ब्रह्म अपनेभक्तों पर अपनी करुणा ईश्वर-भल्क्त के द्वारा हदखाता ि‍ै और वि परमेश्वर व्यक्त ि‍ल्क्त ि‍ै और इसशलए वि स्वयं ब्रह्म ि‍ी ि‍ै। ि‍ंकराचाय वने एक और वैकल्ल्पक व्याख्या भी प्रस्तुत की ि‍ै : ब्रह्म व्यल्क्तक ईश्वर ि‍ै और इस श्लोक का अथ वि, "म ैंजो कक अतनदेश्य और अतनवचवनीय ि‍ूं, उस तनहदवष्ट ब्रह्म का तनवास स्थान ि‍ूं, जो कक अमर और अववनाश्य ि‍ै।" नीलकण्ठ ने ब्रह्म का अथ ववेद माना ि‍ै। रामानुज ने ब्रह्म की व्याख्या मुक्त आत्मा के रूप में और मध्व ने माया के रूप में की ि‍ै। मधुसूदन ने इसे व्यल्क्तक ईश्वर माना ि‍ै। कृष्ण ने अपने-आप को परम, अतनहदवष्ट ब्रह्म के साथ तद्रूप कर शलया ि‍ै।

इतत ... गुणरयविभागयोगो नाम चतुदगशोऽध्यायः ।

यि ि 'तीनिों गुणिों के विभेद का योग' नामक चौदिािं अध्याय।

अध्याय 15

जीवन का वृकूष

ववश्ववृकूष

श्रीभगिानुिाच

ऊध्िमूगलूमध:शाखमश्ित्थांप्रािुरव्ययम् ्।
छन्दाशांस यस्य पणातन यस्त ंिंिेद स िेदवित् ्॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(1) लोग उस अनश्वर अश्वत्थ (पीपल का पेड) के ववषय में बताते िैं, ल्जसकी कक जडें ऊपर की ओर िैं और िाखिाएं नीचेकी ओर िैं। उसके पत्ते वेद िैं; और जो इस बात को जान लेता िै, वि वेदों का ज्ञाता िै।

कठोपतनषद् से तुलना कील्जए : "यि ववश्व-वृकूष, ल्जसकी कक जडें ऊपर की ओर िैं और िाखाएं नीचे की ओर, िाश्वत िै।"[442] यि संसार-वृकूष िै। मिाभारत में ववश्व की प्रकक्रया की तुलना एक वृकूष से की गई िै, ल्जसे कक ज्ञान की मज़बूत तलवार द्वारा काटा जा सकता िै, ज्ञानेन परमाशसना। क्योंकक इस वृकूष का उद्गम परमात्मा से िोता िै, इसशलए यि किा गया िै कक इसकी जडे े'ऊपर' िैं; क्योंकक यि संसार के रूप में फैलता िै, इसशलए इसकी िाखिाए 'नीर की ओर' किी जाती िैं। यि संसार एक जीववत िरीर िै, जो भगवान् ्के साथ संयुक्त िै।

प्राचीन ववश्वास के अनुसार यि किा जाता िै कक वैहदक यज्ञ संसार को बनाए रखता िै, इसशलए मन्त्र उसके पत्ते िैं, जो कक तनेऔर िाखाओं समेत इस वृकूष को जीववत रखते िैं।443

अधश्चोध्िं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रिृद्धा विषयप्रिालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततातन, कमानुगबन्धीतन मनुष्यलोके ॥2॥

(2) इसकी िाखाएं ऊपर और नीचे फैली िुई िैं, ल्जनका पोषण गुणों द्वारा िोता िै। इल्न्द्रयों के ववषय इसकी टितनयां िैं और नीचेमनुष्यलोक में इसकी जडें फैली िुई िैं, ल्जनके पररणामस्वरूप कम िोतेिैं।

---

442 5, 1।साथ िी देखखए ऋग्वेद 1,24, 7 म ैंसंसार-वृकूष का मूल िंूं। तैवत्तरीय उपतनषद् 1, 10 पैटैशलया औकफवक ताशलका यि संकेत करती िै कक िमारा िरीर पृथ्वी से आता िै और िमारी आत्मा स्वग वसे आती िै। "म ैंपृथ्वी का और तारों वाले आकाि का पुत्र िंूं, परन्तु मेरी जातत केवल स्वग वकी िी िै।" प्लेटो से तुलना कील्जए: "जिां ंतक िमारी आत्मा के सबसे अधधक प्रभुत्विील अंि का सम्बन्ध िै, उसको िमें इस रूप में समझना चाहिए: िम यि घोषणा करतेिैं कक परमात्मा नेिमेंमें से प्रत्येक को अपनी शमत्नतापूण वआत्मा के रूप में उस प्रकार की आत्मा दी िै, जो िमारे िरीर के ऊपरी शसरे में ल्स्थत िै और जो यि देखकर कक िम पाधथव निीं, ं अवपतु स्वधगकव वनस्पतत िैं, िमें पृथ्वी से ऊपर उस स्वग वकी ओर उठाती िै, जो िमारा आत्मीय िै।" हटमेइयस, 90 ए।

443 अश्वमेधपव व47.12 - 15

किंराचाय वने इसका यि अथ वककया िै कक नीचेकी ओर फैली िुई जडे ेगौण िैं। ये वासनाएं िैं, ल्जर्न्ें किक आत्मा अपने पूवकवमों के फल के रूप में साव ले जाती िै।

न रूपमस्यैि तथोपलभ्यते, े नान्तो न चाहदन गच सप्रांततष्ठा ।
अश्र्त्थिमेनां सुविरुढदमूलू- मसङ्गशस्त्रेण दृढ़ेन तछत्त्िा ॥3॥

(3) इस प्रकार इसका वास्तववक रूप यिांहदखाई र्नींपडता; न इसका अन्त, न आहद और न इसका आधार िी हदखाई पडता िै। इस पक्की जडों वाले अश्वत्थ (पीपल के वृकूष) को अनासल्क्त की दृढ़ तलवार से काटकर;

ततःपदां तत्पररमाधगतगव्य, ां यस्स्मन्गता नतनितस्गन्त भूयूः।
तमिे चाद्यांपुरुषांप्रपद्ये, यतः प्रिवृत्तः प्रसृतृा पुराणी ॥4॥

(4) तब यि किते िुए कक "म ैंउस आद्य पुरुष में िरण लेता िंूं् ल्जससे यि ववश्व की प्राचीन धारा तनकली िै," उस माग वकी खोज करनी चाहिए, ल्जस पर गए िुए लोग कफर वापस र्नीं ंलौटते ।

शिष्य अपने-आप को वस्तु-रूप से पृथृक् करके उस आद्य चेतना में िरण लेता िै ल्जससे ववश्व की ऊजाएंव तनकलती िैं।

तनमानगमिोा स्जतसङ्गदोषा अध्यात्मतनत्या वितनिृतृतकामाः ।
दन्द्वैर्विमुकुताः सुखुदुःखसज्ञां- गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययां तत् ्॥5॥

(5) जो लोग अशभमान और मिो से मुक्त िो गए िैं, ल्जर्न्ेंबुरी आसल्क्तयों को जीत शलया िै, ल्जनकी सब इच्छाएं िान्त िो गई िैं, जो सदा परमात्मा की भल्क्त में लगे रितें, जो सुख और दुःख के रूप से ज्ञात द्वैतों से मुक्त िो गए िैं और मूढ़ता से रहित िो गए िैं, वे उस िाश्वत पद (दिा) को प्राप्त िोतें।

व्यक्त जीवन केवल एक अंिै

न तद्भासयते सूयूो न शशाङ्को न पिाकः ।
यद्गत्िा न तनितन्गते ेतद्धाम परम ंमम ॥6॥

(6) उसे न तो सूय वप्रकाशित करता िै, न चन्द्रमा और न अल्ग्न। वि मेरा परम धाम िै, जिांपिुंचकर कफर वापस र्नीं ंलौटना िोता।

तुलना कील्जए; कठोपतनषद् 5, 15; मुण्डकोपतनषद् 2, 2-10।

इस श्लोक में अपररवतनर्वील ब्रह्म की ओर संकेत ककया गया िै, ल्जसे तपस्या के अभ्यास द्वारा प्राप्त ककया जा सकता िै।

ईश्वर संसार का जीवन िै

मर्मैवाांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनःषष्ठानीस्न्द्रयाणण प्रकृततस्थातन कषतगत ॥7॥

मेरा अपना िी एक अंि तिनत्य जीव बनकर जीवन के संसार में पांच इल्न्द्रयों को और उनके साथ छठे मन को, जो कक प्रकृतत में ल्स्थत िै, अपनी ओर खींच लेता िै।

मर्मैवांशः : मेरा अपना िी एक अंि इसका यि अथ विर्नीं िै कक भगवान्को टुकडों में ववभक्त या खल्ण्डत ककया जा सकता िै। व्यल्ष्ट भगवान् ्की एक गतत िै, एक मिान् ्जीवन का केन्द्र। आत्मा वि नाशभक िै, जो अपने-आप को ववस्ताररत कर सकती िै और हृदय और मन द्वारा, एक घतनष्ठ संयोग द्वारा, सारे संसार को आत्मसात् ्कर सकती िै। वास्तववक अशभव्यल्क्तयां, सम्भव िै कक, आंशिक िों, परन्तु व्यल्ष्ट आत्मा की वास्तववकता ब्रह्म िै, जो मानवीय प्रकट- रूप में पूरी तरि सामनेर्निीं आता। मनुष्य में ववद्यमान परमात्मा की मूतत वस्वग वऔर पृथ्वी के मध्य बना एक सेतु िै। ववश्व में प्रत्येक व्यल्ष्ट का िाश्वत मित्व िै। जब वि अपनी सीशमतताओं से ऊपर उठ जाती िै, तब वि अततव्यल्क्तक (सुपरपसनवल) परब्रह्म में ववलीन र्निीं िो जाती, अवपतु भगवान्444 में तनवास करती रिती िै और ववश्व की गततववधध में परमात्मा की एक हिस्सेदार बन जाती िै।

र्ंकराचाय वने यि अथ वतनकाला िै कक आत्मा ईश्वर का उसी रूप में एक अंि िै, ल्जस प्रकार एक घडे ्या घर के अन्दर का आकाि सम्पूण वआकाि का एक अंि िै। रामानुज की दृल्ष्ट में आत्मा परमात्मा का वस्तुतः एक अंि िै। वि संसार में तत्वतः एक व्यल्ष्ट आत्मा बन जाता िै और इल्न्द्रयों के ववषयों का सेवन करनेके कारण बन्धन में फंस जाता िै।

जीवभूतः : एक जीववत आत्मा बनकर। र्ंकरानन्द का कथन िै : "िाश्वत अंि क्षेत्रज्ञ की दिा को प्राप्त करके नाम और रूप को व्यक्त करनेके उद्देश्य से ज्ञाता बन जाता िै।445 भगवान् ्ककसी रीतत से (प्रकारान्तरेण) जीव बन जाता िै। सारतः वि जीव र्निीं िोता, अवपतु उसका रूप धारण कर लेता िै। वि जीवभूत िोता िै, जीवात्मक र्निीं।

---

444 तनवशसष्यशसमय्येव, 12,8

445 नामरूपव्याकरणाय क्षेत्रज्ञतां गतः प्रमाता भूत्वा ततष्ठतत ।

जीवात्मा नानाववध ब्रह्म का एक केन्द्र ि◌ै और हदव्य चेतना के एक पिलू ◌ूको ि◌ी अशभव्यक्त करती ि◌ै।
जीव का सम्बन्ध व्यक्त संसार से ि◌ै और वि उस एक (ब्रह्म) पर आधश्रत ि◌ै। आत्मा वि एक ि◌ै, जो इस सारे व्यक्त ववश्व को संभाले ि◌ुए ि◌ै। जीव की पूणतवा अपनी ववशिष्ट प्रकृतत की अशभव्यल्क्त में ि◌ी ि◌ै। यहद वि ब्रह्म के प्रतत सिी मनोवृवृत्त रखता ि◌ै, तो उसका स्वभाव उन प्रभावों से रहित ि◌ोकर ि◌ुद्ध ि◌ो जाता ि◌ै, जो उसे घटाते और ववकृत करते ि◌ैं और उस जीव का व्यल्क्तत्व स्पष्टता से सामनेआ जाता ि◌ै। जिांव्यल्क्त तत्वतः परमात्मा के साथ एक ि◌ै, विांव्यक्त जगत् ◌्में प्रत्येक व्यल्क्त ब्रह्म का एक आंशिक व्यक्त रूप ि◌ै। ि◌ममें से प्रत्येक उस हदव्य चेतना की एक ककरण ि◌ै, ल्जसमें कक ि◌मारा अल्स्तत्व, यहद ि◌म ि◌ोनेदें, तो रूपान्तररत ि◌ो सकता ि◌ै।

प्रकृततस्थातन : उनके स्वाभाववक स्थानों में। - ि◌ंकराचायाव प्रकृतत से बनेि◌ुए ि◌रीरों में रिति◌ुए। - रामानुज।

शरीरां यदिाप्नोतत यच्चाप्युत्क्रामतीश्िरः।
गृिीत्िैतातन सयांतत िायुगन्गधातनिाशयात् ◌्॥8॥

(8) जब ईश्वर ि◌रीर धारण करता ि◌ै और जब वि ि◌रीर को छोडता ि◌ै, तब वि इन (इल्न्द्रयों और मन) को साथ ले जाता ि◌ै, जैसे कक वायु सुगन्धों को उनके स्थानों से ले जाती ि◌ै।

ववश्व अल्स्तत्व में जब आत्मा भटकती रिती ि◌ै, तब सूक्ष्म ि◌रीर उसके साथ रिता ि◌ै।

श्रोत्रांचक्षुः स्पशनगां च रसन ◌ांघ्राणमेि च।
अधधष्ठाय मनश्चायां विषयानुपसेिते॥9॥

(9) वि कान, आंख, स्पि वकी इल्न्द्रय, स्वाद की इल्न्द्रय और नाशसका तथा मन का उपयोग करता ि◌ुआ इल्न्द्रयों के ववषयों का आनन्द लेता ि◌ै।

उत्क्रामन्तस्िांस्थतिांावपभुञ्जानांिागुणान्ितिम् ◌्।
विमूढ़ा नानुपश्यस्न्त पश्यस्न्त ज्ञानचक्षुषः ॥10॥

(10) जब वि ि◌रीर को छोडता ि◌ै या उसमें रिता ि◌ै या गुणों के सम्पकव में आकर उपभोग करता ि◌ै, उस समय मूढ़ लोग (अन्तवासवी आत्मा को) निींदेख पाते। परन्तु ल्जनके ज्ञान की आंख ि◌ै (या ज्ञान ल्जनकी आंख ि◌ै), वे उसे देख पातेिं।

यतन्तो योधगनश्चैनां पश्यन्त्यात्मन्यिस्स्थतम् ◌्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनांपश्यन्त्यचेतसः ॥11॥

(11) यत्नपूवकव साधना में लगे िुए योगी लोग उसे आत्मा में ल्स्थत देखतिैं, परन्तु अबुद्धधमान और अनिुासनिीन आत्माओं वाले लोग यत्न करके भी उसे निींदेख पाते।

यदाहदत्यगत ांतेजो जगद्भासयतेऽणखलम् ्।

यच्चन्द्रमशस यच्चासौ तत्तेजो विद्धध मामकम् ॥12॥

(12) सूय वमें जो तेज िै, जो इस सारे संसार को प्रकाशित करता िै और चन्द्रमा में और अल्ग्न में जो तेज िै, उसको तू मेरा िी तेज समझ ।

गामाविश्य च भूतातन धारयाम्यिमोजसा ।

पुष्णाशमचौषधीः सिाःग सोमो भूतिारसात्मकः ॥13॥

(13) इस पृथ्वी में प्रववष्ट िोकर म ैंअपनी प्राणि–ल्क्त द्वारा सब प्राखणयों को धारण करता िूं; और रस से भरा िुआ सोम (चन्द्रमा) बनकर म ैंसब जडी-बूहटयों (या वनस्पततयों) का पोषण करता िूं।

अिं िैश्िानिरो भूतिा प्राणणनाांदेमाधश्रतः ।

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नांचतुविधगम् ्॥14॥

(14) जीववत प्राखणयों के िरीर में म ैंजीवन की अल्ग्न बनकर और उनके अन्दर आने वाले श्वास और बािर तनकलने वाले श्वास में शमलकर म ैंचारों प्रकार के अन्नों को पचाता िूं।

पचाशम : िददाथ वि पकाना।

सिस्गय चािां हृहद सस्न्नविष्टो मत्तः स्मृततज्ञानगमपोिनां च।

िेदैश्च सिैरिमेि िेद्यो िेदान्तकृद्धेदविदेि चािम् ्॥15॥

(15) और म ैंसबके हृदय में बैठा िुआ िूं, मुझसे िी स्मृतत और ज्ञान तथा उनका ववनाि िोता िै। वस्तुतः म ैं िी वेद्य िूं, ल्जसको सब वेदों द्वारा जाना जाता िै। म ैंिी वेदान्त का बनानेवाला िूं और म ैंिी वेदों का जानने वाला िूं।[446]

अपोिनम् ्: िातन, ववनाि, तनषेध। परम पुरुष

द्िाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एि च।

[446] भीष्मसेतुलनाकील्जएजोमिाभारत में कृष्ण के ववषय में किता िै : वेदवेदांगववज्ञाने बल चाप्यधधकं तथा।

क्षरः सिाणगण भूतातन कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥16॥

(16) इस संसार में दो पुरुष िैं - एक नश्वर और दूसूरा अनश्वर; नश्वर ये सब अल्स्तत्व (वस्तु एवंव्यल्क्त) िैं और अपररवतनवीिल (कूटस्थ) अनश्वर िै।447

उत्तमः पुरुषस्त्न्यिः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकरयमाविश्य त्रबभत्यव्गयय ईश्रिः ॥17॥

परन्तु इनसे शभन्न एक और सवोत्तम आत्मा िै, ल्जसे परम आत्मा किा जाता िै, जो अमर ईश्वर के रूप में इन तीनों लोकों में प्रववष्ट िोता िै और इनका भरण-पोषण करता िै।

सदा पररवतनविील ववश्व में ववद्यमान आत्मा क्षर िै; अक्षर वि तनत्य आत्मा िै, जो अपररवतनविील िै, गतिीन िै और जो पररवतनविील वस्तुओंमें भी अपररवतनविील िै। जब आत्मा इस अपररवतनविील की ओर अशभमुख िो जाती िै, तब सांसाररक गततववधध उससे छूट जाती िै और वि आत्मा अपनेअपररवतनविील तनत्य अल्स्तत्व में पिुंच जाती िै। ये दोनों परस्पर ऐसे ववरोधी निीं ंिैं, ल्जनमें कक मेल िो िी न सकता िो, क्योंकक ब्रह्म एक और अनेक दोनों िी िैं; वि तनत्य िी अजन्मा िै और साथ िी ववश्व के रूप में प्रविमान भी िै।

गीता की दृल्ष्ट में यि गततमय जगत् ्भगवान् ्की सृल्ष्ट िै। ब्रह्म इस संसार को अपना लेता िै और इसमें कम वकरता िै; वत वएव च कमखवण। ववश्व के उद्देश्य की दृल्ष्ट से भगवान् ्ईश्वर िै, पुरुषोत्तम, सारे संसार का स्वामी, जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में तनवास करता िै।"448

परम आत्मा : सवोच्च आत्मा। आत्मा में ववद्यमान ईश्वर। गीता का संकेत यिां अज्ञात-अथिा परमेश्वर की ओर निीं िै, अवपतु उस ईश्वर की ओर िै, जो इस सृल्ष्ट के अन्दर बसा िुआ िै और इसे चला रिा िै।

गीता उस व्यल्क्तक परमात्मा की धारणा की स्तुतत करती िै, जो अपनेमें कालातीत अल्स्तत्व (अक्षर) और लौकिकक आरम्भ (क्षर) इन दोनों को शमलाए िुए िै।

किराचाय वने पररवतनविील (क्षर) की व्याख्या इस पररवतततव िोते िुए संसार के रूप में और अपररवतनविील (अक्षर) की व्याख्या मायाि–ल्क्त या ईश्वर की िल्क्त के रूप में की िै और भगवान् ्को तनत्य, िुद्धि, बुद्ध और क्षर और अक्षर की पररशमततयों से मुक्त बताया िै।

रामानुज 'अक्षर' का अथ वमुक्त आत्मा लेता िै। इस संसार में दो सार तत्व िैं, ल्जनमें से एक आत्मा िै और दूसूरा जड (तनजीव); ये िी अक्षर और क्षर िैं। इन दोनों से ऊपर परमात्मा िै, जो ववश्व से परे िै और साथ िी

---

447 तुलनाकील्जएअ्मरकिो एकरूपतया तु यः कालव्यापी स कूटस्थः ।

448 अव्ययः, सवज्ञवत्वेन ईश्वरधमेण, अल्पज्ञत्वेन जीवधमेण वा, न व्येतत क्षीयतेवधतव वेत्यथःव। — नीलकण्ठ।

ववश्व में व्याप्त भी ि ै। दो पुरुषों की व्याख्या दो प्रकृततयों के रूप में भी की जा सकती ि ै; एक तो परमात्मा की अपनी सारभूत प्रकृतत, अध्यात्म, और दूसूरी तनम्नतर प्रकृतत, प्रकृतत । श्वेताश्वतर उपतनषद् से तुलना कील्जए, 1, 10।

यस्मात्सरमतीतोऽमिक्षरादवप चोत्तमः ।

अतोऽस्स्म लोके िेदे च प्रधथतः पुरुषोत्तमः ॥18॥

(18) क्योंकक म ैंक्षर (नश्वर) से ऊपर ि ूंू और अक्षर से भी ऊपर ि ूंू, इसशलए इस संसार में और वेद में म ैंि ी पुरुषोत्तम माना जाता ि ूंू।

मुण्डकोपतनषद् से तुलना कील्जए, 2, 1, 1-2। अक्षरात् ्परतः परः पुरुषः ।

यो मामिेमसम्मूढ़ो जानातत पुरुषोत्तमः ।

स सिवगिद्भजतत मा ंसिभगिेन भारत ॥19॥

(19) जो कोई भ्राल्न्तीन िोकर मुझ पुरुषोत्तम को इस प्रकार जान लेता ि ै, समझो कक उसनेसब-कुछ जान शलया ि ै। और ि े भारत (अजुनव), वि अपने सम्पूण ववअल्स्तत्व से (अपनी सम्पूण ववआत्मा से) मेरी पूजा करता ि ै। ज्ञान भल्क्त की ओर ले जाता ि ै।

इतत गुह्यतम ंशास्त्रशमदमुक्तं मयानघ ।

एतबुद्ध्ा बुद्धधमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ 20॥

(20) इस प्रकार ि े पापरहित (अजुनव), मनैं े तुझे ेयि सबसे अधधक रिस्यपूण वशसद्धान्त बता हदया ि ै। ि े भारत (अजुनव), इसको जानने ेके बाद मनुष्य बुद्धधमान् ्(ज्ञानी) बन जाता ि ै और उसके सब कतव्वय पूण विो जाते ि ैं।

इतत... पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।

यि ि ै 'पुरुषोत्तम योग' नामक पन्द्रिवां अध्याय ।

अध्याय 16

दैवीय और आसुरीय मन का स्वभाव

दैवीय स्वभाव वाले लोग

श्रीभगिानुिाच

अभय ंसत्सिशुांद्धधज्ञानगयोगव्यिस्स्थततः ।

दानां दमश्च यज्ञश्च स्िाध्यायस्तप आजिगम् ्॥1॥

श्री भगवान् ्ने किा :

तनभयवता, मन की िुद्धता, ज्ञान और योग का बुद्धधमत्तापूण ववभाग, दान, आत्म-संयम और यज्ञ,
(1)
ग्रन्थों का अध्ययन, तप और ईमानदारी;

भारतीय धाशमकव प्रतीकवाद में देवों, जो चमकते िुए िैं, और असुरों (दैत्यों) में, जो अन्धकार के पुत्न िैं, ककया गया भेद बिुत प्राचीन िै। ऋग्वेद में िमें देवताओं और उनके तमोमय ववरोधधयों में संघष वहदखाई पडता िै। रामायण में भी श्रेष्ठ संस्कृतत के प्रततनधधयों और असंयत अिवाहदयों में इसी प्रकार का संघष वहदखाया गया िै। मिाभारत में पाण्डवों, जो कक धम,व तनयम और न्याय के भक्त िैं, और कौरवों में, जो कक सत्ता के प्रेमी िैं, िुए युद्ध का वणनव ककया गया िै। ऐततिाशसक दृल्ष्ट से मानव जातत आश्चयजवनक रूप से एक िी नमूने ेकी रिी िै और आज भी िमें मिाभारत के काल की भातत िी कुछ मनुष्य ऐसे शमलते िैं, जो देवताओं के समान भले िैं और कुछ ऐसे, जो पिैधचक रूप से पतित िैं और कुछ ऐसे, जो तनन्दनीय रूप से उदासीन रितेिैं। ये िी उन मनुष्यों के सम्भाववत ववकास, जो कक कुछ कम या अधधक िम जैसे िी िैं। देव और असुर, दोनों का जन्म प्रजापतत से िुआ िै। छान्दोग्य उपतनषद् 1, 2, 1 ।

अहिसांा सत्यमक्रोषस्त्यागः शास्न्तरपैशुनुम् ्।
दया भूतेष्लोलुपुत्िंमादगिंरिचापलम् ्॥2॥

(2) अहिंसां, सत्य, क्रोधरहितता, त्याग, िाल्न्त, दूसूरों के दोष ढूंढ़ने ेसे ववरल्क्त, प्राखणयों पर दया, लोभरहितता, मृदुता, लज्जा और अचंचलता (ल्स्थरता);

तेजः क्षमा धृतृतः शौचमद्रिोो नाततमातनता ।
भिस्न्त सपांदां दैिमशभजातस्य भारत ॥3॥

(3) तेज, क्षमा, धैय,व पववत्नता, द्वेषिीनता, अत्यन्त अशभमानी न िोना, िे भारत (अजुनव), ये उस व्यल्क्त के गुण िैं, जो दैवीय स्वभाव लेकर जन्म लेता िै।

मानव-जातत अिुरमज्द के राज्य और अिरीमन के राज्य में निीं ंबेटी िुई। प्रत्येक मनुष्य में प्रकाि और अन्धकार के ये दोनों राज्य ववद्यमान िैं।

गुरु ने यिांपर उन लोगों के पिचान करानेवाले गुण बताए िैं, जो दैवीय पूणतवा तक पिुंचने की साधना कर रिे िैं। अब वि उन लोगों के गुण बताता िै, ल्जनका उद्देश्य सत्ता, यि और सुववधापूण वजीवन प्राप्त करना िै। दोनों में भेद न तो ऐकाल्न्तक िी िै और न सवागीण िी। अनेक व्यल्क्तयों में दोनों प्रकार के स्वभावों का अंिशमला रिता िै। मिाभारत में किा गया िै : "कुछ भी सम्पूणतवया अच्छा या सम्पूणतवया बुरा निीं ंिै।"[449]

[449] नात्यन्तगुणवत्ककल्ल्ञ्चन्नात्यन्तंदोषवत्तण।

आसुरीय स्वभाव वाले लोग

दम्भो दपोऽशभमानश्च क्रोधः पारुष्यमेि च ।
अज्ञानांचाशभजातस्य पाथ गसपांदमासुरीम् ्॥4॥

(4) पाखण्ड, घमण्ड, अत्यधधक अशभमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान, िे पाथ व(अजुनव), ये उन लोगों की वविेषताएं िैं, जो आसुरीय स्वभाव लेकर उत्पन्न िोतेिैं।

इनके अपने-अपनेपररणाम

दैिी सपांद्विमोक्षाय तनबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सपांदां दैिीमशभजातोऽशस पाण्डि ॥5॥

(5) दैवी सम्पदा (गुण) मोक्ष हदलानेवाली और आसुरी सम्पदा बन्धन में डालने वाली किी जाती िै। िे पाण्डव (अजुनव), तू दुःखी मत िो, क्योंकक तू (हदव्य भववतव्यता के शलए) हदव्य सम्पदा लेकर उत्पन्न आ िै।

यिां ंएक भक्त हिन्दू ूके परम्परागत गुणों को एक जगि संकशलत कर हदया गया िै, जो जीवन की एक 'दैवीय' दिा के सूचक िैं। असुर लोग चतुर और ऊजस्ववी (िल्क्तिाली) िोतेिैं, परन्तु वे अत्यधधक अिंकार के शिकार िोते िैं और उनमें नैततक धमभवीरुता निीं ंिोती और न उनका कोई आध्याल्त्मक लक्ष्य िी िोता िै।

आसुरीय स्वभाव

द्वौ भूतूसगौ लोकेऽस्स्मन्दैि आसुर एि च।
दैिो विस्तरशः प्रोक्त आसुरां पाथ गमे श्रृणु ु॥6॥

(6) इस संसार में दो प्रकार के प्राखणयों का सृजन ककया गया िै। दैवीय और दूसूरे आसुरीय । दैवीय स्वभाव वालों का ववस्तार से वणनव ककया जा चुका िै। िे पाथ व(अजुनव), अब तू मुझसे आसुरीय स्वभाव वालों के ववषय में सुन।

देखखए बृिदारण्यक उपतनषद् 1, 3, 1 ।

प्रिृत्त ंच तनिृत्त ंच जना न विदुरासुराः ।
न शौचांनावप चाचारो न सत्यां तेषु विद्यते॥7॥

(7) आसुरीय स्वभाव वाले लोग न तो कम व(प्रवृवृत्त) के माग वको जानते ि◌ं और न त्याग (तनवृवृत्त) के माग वको। उनमें न पववनता पाई जाती ि◌ै, न सदाचार और न सत्य ि◌ी उनमें पाया जाता ि◌ै।

असत्यमप्रततष्ठंठ ते ◌ेजगदािुरनीश्वरम् ◌्।
अपरस्परसंभूंतूं ककमन्यत्कामिैतुकम् ◌्॥8॥

(8) वेकिते ि◌ं कक यि संसार अवास्तववक ि◌ै; इसका कोई आधार निीं ◌ंि◌ै; इसका कोई ईश्वर (स्वामी) निीं ◌ं ि◌ै; यि ककसी तनयशमत कारण के पररणामस्वरूप निींबना; संक्षेप में, यि केवल इच्छा द्वारा बना ि◌ै।

अप्रततष्ठम् ◌्: आधार के बबना, नैततक आधार के बबना। यि भौततकवाहदयों का दृल्ष्टकोण ि◌ै।

अपरस्परसम्भूतम् ◌्: तनयशमत ववधध से न बना ि◌ुआ। इसकी दूसूरे रूप में भी व्याख्या की गई ि◌ै। ईश्वर द्वारा अधधल्ष्ठत जगत् ◌्एक सुतनल्श्चत व्यवस्था के अनुसार बना ि◌ै, ल्जसमें कक कुछ वस्तुएं तनयमों के अनुसार अन्य वस्तुओं से बनती ि◌ं और भौततकवादी इस बात को अस्वीकार करते ि◌ं कक संसार में कोई ऐसी व्यवस्था और तनयम ि◌ै; और उनका मत ि◌ै कक वस्तुएं योंिी बिन जाती ि◌ं। उनका ववश्वास ि◌ै कक संसार में कोई तनयशमत पौवापवय व निीं ◌ंि◌ै और यि संसार केवल आनन्द के उपभोग के शलए बना ि◌ै।

"यि लोकायततकों का दृल्ष्टकोण ि◌ै कक काम-वासना ि◌ी सब प्राखणयों का एकमाल कारण ि◌ै।" - िंराचाय व।

एता ◌ंदृस्ष्टमिष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभिन्त्युग्रकमाणगः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥9॥

(9) इस दृल्ष्टकोण को दृढ़तापूवकव अपनाकर ये अल्पबुद्धध, नष्टात्मा और कूरूरकमा वलोग संसार के ि◌तु बनकर इसके ववनिा के शलए उठ खडे ि◌ोतिं।

काममाधश्रत्य दुषुपूरां दम्भमानमदास्न्िताः ।
मोिाग्िृीत्िासद्ग्रािान् ◌्प्रितन्गतेऽशुधचव्रताः ॥10॥

(10) कभी तृपूत न ि◌ोनेवाली लालसा के विीभूत ि◌ोकर पाखण्ड, अत्यधधक अशभमान और अिंकार से युक्त मूढ़ता के कारण रालत दृल्ष्टकोण अपनाकर वे अपववत्न तनश्चयों के अनुसार काय वकरते ि◌ं।

बृिस्पततसूत्न से तुलना कील्जए, ल्जसमें किा गया ि◌ै कक काम (वासना) ि◌ी मनुष्य का सवोच्च लक्ष्य ि◌ै।[450]

450 कामएवैकैः पुरुषाथः व।

धचन्तामपररमेयां च प्रलयान्तामुपुाधश्रताः ।
कामोपभोगपरमा एतािहदतत तनस्श्चताः ॥11॥

(11) अनधगनत धचन्ताओं से, जो कक उनकी मृतूयु के साथ िी समाप्त िोंगी, दबे िुए और अपनी इच्छाओंकी तृलूप्त को िी सवोच्च लक्ष्य मानते िुए और यि समझते िुए कक बस, यिी सब-कुछ िै;

यि भौततकवादी शसद्धान्त िै जो िमसे किता िै कक खाओ, पीओ और मौज करो, क्योंकक मृतूयु अवश्यम्भावी िै और उसके आगे कुछ निीं िै।

आशापाशशतैबद्दधाः कामक्रोधपरायणाः ।
इिन्तेकामभोगाथमगन्यायेनाथसगञ्चयान् ्॥12॥

(12) लालसाओं के सैकडों जालों में बंधे िुए वासना और क्रोध के वि में िोकर वे अपनी इच्छाओंकी तृलूप्त के शलए अन्यायपूण वउपायों द्वारा ढेर-की-ढेर सम्पवत्त एकत्र करने ेके शलए प्रयत्न करते िैं।451

इदमद्य मया लब्धशमम ंप्राप्स्ये मनोरथम् ्।
इदमस्तीदमवप मे भविष्यतत पुनधनगम् ्॥13॥

(13) यि आज मनैं प्राप्त कर शलया िै; इस इच्छा को म ैंपूरा कर लूंगा। यि मेरा िै और यि धन भी (भववष्य में) मेरा िो जाएगा।

असौ मया ितः शरिुगतनष्ये चापरानवप।
ईश्िरीऽिमिं भोगी शसद्धोऽिं बिलान्सुखी ॥14॥

(14) इस ितु को मनैं ेमार डाला िै और अन्य ित्रुओंको भी म ैंमार डालूंगा। म ैंईश्वर िंू; म ैंउपभोग करने े वाला िू, म ैंसफल िंू, म ैंबलवान् ्िंू और सुखी िंू।

अपने-आप को ईश्वर समझना सबसे बडा पाप, िैतान का पाप िै।

सत्ता प्राप्त करनेऔर प्रभुत्व जमाने का प्रलोभन बिुत व्यापक रिा िै। अन्य लोगों पर िासन करने ेकी प्रववृत्त ने मनुष्य को दास बना हदया िै। हदव्य आत्माएं इस प्रलोभन को अस्वीकार कर देती िैं, जैसे कक एकान्त में

451 यावज्जीवेत्सुखं जीविेण कृत्वा घृतृ वपबेत् ्।
'भस्मीभूतस्य दिेस्य पुनरागमने कुतः ॥

ईसा ने ककया था। परन्तु आसुरी आत्माएं इन लक्ष्यों को अपना लेती िैं और वे अशभमान, आत्मश्लाघा, अततलोभ, द्वेष और निंसता को गुण बताकर उनकी प्रिंसा करती िैं।

आढ्योऽशभजनिानस्स्म कोऽन्योऽस्स्त सदृशोमया ।
यक्ष्ये दास्याशम मोहदष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥15॥

(15) 'म ैंधनवान िूं और ऊंचेकुल में उत्पन्न िुआ िूं मेरे समान और कौन िै ? म ैंयज्ञ करूंगा; म ैंदान दूंगा; म ैं आनन्द मनाऊंगा;' वे ेअज्ञान के कारण मूढ़ बनिुए इस प्रकार की बातें करते िैं।

अनेकधचत्तविरान्ता मोिजालसमािृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतस्न्त नरकेशुचौ ॥16॥

(16) अनेक ववचारों के कारण भ्रान्त, मूढ़ता के जाल में फंसे िुए और इच्छाओंकी तृलूप्त के आदी बनेवे अपववत्न नरक में धगरतेिैं।

आत्मसंभाववताः स्तदधा धनमानमदाल्न्वताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाववधधपूवकवम् ्॥17॥

(17) शमथ्या गव वमें भूले, िठी, अशभमान और धन के अिंकार से भरे वे उन यज्ञों को, जो केवल नाम के यज्ञ िोतेिैं, पाखण्ड के साथ और तनयमों का ध्यान रखे बबना करते िैं।

अिङ्कारां बल ांदप गकाम ांक्रोधांच सधांश्रताः ।
मामात्मपरदेिेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयूकाः ॥18॥

(18) अिंकार, बल और अशभमान और काम और क्रोध के वि में िोकर ये द्वेषी लोग उनके अपनेतथा अन्य लोगों के िरीरों में तनवास करनेवाले मुझसे घृणा करते िैं।

"परमात्मा उनके बुरे जीवन के साक्षी के रूप में तनवास करता िै।"िंकराचाय।व

तानिां द्विषतः क्रूरूरान्ससांारेषु नराधमान् ्।
क्षक्षपाम्यजरमशुभानासुरीष्िेि योतनषु ॥19॥

(19) इन क्रूरूर, द्वेष करने ेवालों को, जो कक मनुष्यों में सबसे नीचे िैं, और बुरे कम वकरने ेवाले िैं, म ैंजन्म और मरण के इस चक्कर में सदा आसुरीय योतनयों में िी भेजता रिता िूं।

आसुरी ांयोतनमापन्ना मूढ़ा जन्मतन जन्मतन।
मामप्राप्यैै कौन्तेय ततो यान्त्यधमाां गततम् ्॥20॥

(20) आसुरी योतनयों में पडे िुए ये मूढ़ प्राणी जन्म-जन्मान्तर में भी मुझे ेप्राप्त निीं ांकर पाते, अवपतु ि‍े कुन्ती के पुत्र (अजुनव), ये तनम्नतम दिा की ओर िी धगरते जाते िैं।

मिें सलिा दी गई िै कक िम इस आसुरीय स्वभाव को त्याग दें। इसका अथ वपूवतवनणयव निीं िै, क्योंकक यि किा गया िै कक परमात्मा की ओर मुडने और पूणतवा प्राप्त करनेका माग विमारे शलए सदा खुला िै। ककसी भी ल्स्थतत में यि असम्भव निीं। अन्तवासवी आत्मा प्रत्येक आत्मा में ववद्यमान िै, और इसका अथ वि कक अमरत्व की आिा सवदवा बनी रिती िै। बडे ेसे बडा पापी भी, यहद वि परमात्मा की ओर अशभमुख िो जाए, तो मोक्ष प्राप्त कर सकता िै। देखखए 4,361

नरक का ततिरा द्वार

त्रिविध ांनरकस्येदां द्विारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्रयत्ांयजेत् ्॥21॥

(21) आत्मा के ववनिा की ओर ले जानेवाले इस नरक का द्वार ततिरा िै, जो काम, क्रोध और लोभ से बना िै। इसशलए मनुष्य को इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

एतैविमुगकुतः कौन्तेय तमोद्विरैस्त्रिशभनरगः ।
आचरत्यात्मनः श्रेेयस्ततो यातत पराां गततम् ्॥22॥

(22) िे कुन्ती के पुत्न (अजुनव), जो अन्धकार की ओर ले जाने वाले इन तीन द्वारों से छूट जाता 5/6 वि उन कमों को करता िै, जो उसकी आत्मा के शलए कल्याणकारी िैं और तब वि सवोच्च ल्स्थतत (परम गतत) तक पिुंच जाता िै।

कतव्वय के शलए िास्त्र प्रामाखणक ग्रन्थ िै

यः शास्त्रविधधमुत्सृज्य ितकोमकारतः ।
न स शसद्धधमिाप्नोतत न सुखु ांन पराां गततम् ्॥23॥

(23) परन्तु जो व्यल्क्त िास्त्र के तनयम को छोड देता िै और अपनी इच्छाओंके अनुसार काय वकरता िै, उसे न तो पूणतवा (शसद्धध) प्राप्त िोती िै, न सुख प्राप्त िोता िै और न सवोच्च लक्ष्य िी प्राप्त िोता िै।

तस्माच्छास्त्र ंप्रमाण ंते कायाकगायव्गयिस्स्थतौ ।

ज्ञात्ा शास्त्रविधानोक्तांकम गकतुशगर्िमिागशस ॥23॥

(24)
इसशलए क्या करना चाहिए और क्या निींकरना चाहिए, इसके तनधारवण के शलए तू ि्ास्त्र को िी प्रमाण मान। िास्त्रों में बताए गए तनयमों को जानकर तुझेइस संसार में अपना काम करते जाना चाहिए।

शास्त्र : धमग्रवन्थ ।452

इच्छा की प्रेरणा के स्थान पर सिी कम वका ज्ञान आना चाहिए। परन्तु जब आत्मा की स्वतन्त्रता का सवोच्च लक्ष्य प्राप्त िोता िै, तब व्यल्क्त सिज प्रवृवृत्त द्वारा काय वनिीं ंकरता और न तनयमों के अनुसार िी काय व करता िै, अवपतु सम्पूण वजीवन की आत्मा में एक गम्भीर अन्तदृवल्ष्ट द्वारा काय वकरता िै। सामान्यतया िम अपनी व्यल्क्तगत इच्छाओं के अनुसार काय वकरते िैं, और उसके बाद अपनेआचरण को तनयत सामाल्जक ववधानों के अनुसार तनयशमत करते िैं, और अन्त में जाकर जीवन के अथ वके गम्भीरतर उद्देश्य को समझते िैं और उसके मागदविनव के अनुसार काय वकरते िैं। इच्छा की प्रेरणा (18, 59) , तनयमों द्वारा मागदविनव (16, 24) और आत्मा की स्वतःस्फूततवा (18,64, 11, 33) ये तीन सोपान (दिाएं) िैं।

इतत... दैासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ।

यि िै दैवीय और आसुरीय सम्पदाओां के भेद का योग' नामक सोलिवांअध्याय ।

---

452 तुलना कील्जए :
िल्स्त यत्साधनोपाय,व पुरुषाथस्वय तनमलवम् ्।
तथैव बाधनोपायं तत्ास्त्रिशमतत कथ्यते ।

अध्याय 17

धाशमकव तत्व पर लागू ककए गए तीनों गुण

श्रद्धा के तीन प्रकार

अजुनग उिाच

ये शास्रविधधमुत्सृज्य यजन्ते ेश्रद्धयास्न्तिाः ।

षा ांतनष्ठा तुका कृष्ण सत्त्मािो रजस्तमः ॥1॥

अजुनव ने किा :

(1) ि कृष्ण, जो लोग िास्त्रों के ववधानों की परविा न करते िुए श्रद्धा से युक्त िोकर यज्ञ करते िैं, उनकी क्या ल्स्थतत िोती िै? उनकी श्रद्धा साल्त्वक िोती िै या राजशसक या तामशसक ?

ये लोग जान-बूझकर िास्त्रों के तनयमों का उल्लंघन निीं करते, अवपतु इन्िें उन तनयमों का ज्ञान निीं

िोता।

किंराचाय वका कथन ि कक व्यल्क्त की श्रद्धा का प्रकार उसकी िास्त्रों के ववधानों के साथ अनुकूलता या प्रततकूलता पर तनभरव निीं ंिोता, अवपतु उस व्यल्क्त के चररत्न और उसके द्वारा अपनाई गई उपासना पर आधाररत िोता ि।

रामानुज ने अपेक्षाकृत कम उदार दृल्ष्टकोण अपनाया ि और उसका ववचार ि कक जो लोग अज्ञान के कारण अथवा जान-बूझकर उपेक्षा के कारण िास्त्रों का उल्लंघन करते िैं, चािे वे श्रद्धावान् ्िों या श्रद्धािीन, वे तनन्दनीय िैं।

श्रीभगिानुिाच

त्ररविधा भितत श्रद्धा देहिनाांसा स्िभािजा।

सास्त्त्ििकी राजसी चिै तामसी चेतत ता ांश्रृणु ु॥2॥

श्री भगवान् ्ने किा :

(2) प्राखणयों की श्रद्धा उनके स्वभाव के अनुसार साल्त्त्वक, राजशसक और तामशसक िोती िै। अब इसके ववषय में सुन।

सत्त्िानुरूपा सिस्गय श्रद्धा भितत भारत ।

श्रद्धामयोऽय ांपुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एि सः ॥3॥

(3) िे भारत (अजुनव), प्रत्येक व्यल्क्त की श्रद्धा उसके स्वभाव के अनुसार िोती िै। मनुष्य श्रद्धामय िोता

िै; ल्जसकी जैसी श्रद्धा िोती िै, वि ठीक विी िोता िै।

यिां ंपर लेखक उन कुछ प्रश्नों पर ववचार करता िै, जो सम्भवतः उसके काल में बिुत रुधचकर ववषय थे।

ये प्रश्न श्रद्धा, भोजन, यज्ञ, तपस्या, दान, संन्यास और त्याग के बारे में िैं।

सत्त्ि : स्वभाव, प्रकृतत।

श्रद्धा ककसी ववश्वास को स्वीकार कर लेने का नाम निींिै। यि तो ककसी तनल्श्चत आदि वके शलए मन

की िल्क्तयों के एकाग्रीकरण द्वारा आत्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न िै।

श्रद्धा मानवता पर पडने ेवाला आत्मा का दबाव िै। यि वि िल्क्त िै, जो मानवता को, न केवल ज्ञान की दृल्ष्ट से, अवपतु आध्याल्त्मक जीवन की समूची व्यवस्था की दृल्ष्ट से उत्कृष्टतर की ओर बढ़नेकी प्रेरणा देती िै। सत्य की आन्तररक अनुभूतत के रूप में आत्मा उस लक्ष्य की ओर संकेत करती िै, ल्जस पूरा प्रकिा बाद में पडता िै।

अन्ततोगत्वा ककसी भी धाशमकव ववश्वास का अल्न्तम और अवववाद्य प्रमाण ववश्वास करनेवाले के हृदय का साक्ष्य िी िै।

एक लोकवप्रय श्लोक में किा गया िै कक धम वल्जन लक्ष्यों को िमारे सम्मुख प्रस्तुत करता िै, वे व्यल्क्त की अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार शसद्धधदायक िोतेिैं।453' भागवत में किा गया िै कक उपासना का फल उपासक की श्रद्धा के अनुसार िी िोता िै।454 जो कुछ िम िैं, वि अपने अतीत के कारण िै और िम अपनेभववष्य का तनमाणव कर सकतेिैं। प्लेटो से तुलना कील्जए : "अपनी इच्छाओं का रुझान और िमारी आत्माओं का स्वभाव जैसा-जैसा िोता िै, िममें से प्रत्येक ठीक वैसा िी बन जाता िै।" गेटे से तुलना कील्जए: "केवल तनष्ठा िी जीवन को िाश्वत बनाती िै।"455

यजन्ते ेसास्त्त्किा दीन् ्यक्षरक्षाशांस राजसाः ।
प्ेरेतान्भूतूगणाश्ांचान्ये यजन्ते ेतामसा जनाः ॥4॥

(4) साल्त्वक मनुष्य देवताओं की पूजा करते िैं; राजशसंकं मनुष्य यक्षों और राक्षसों की पूजा करते िैं और तामशसक मनुष्य आत्माओं (प्ेरेतों) और भूतों की पूजा करते िैं।

तमोमय मनुष्य वे िैं, जो मृतृकों और भूत-प्ेरेतों की पूजा-पद्धतत को चलाते िैं।

अशास्त्रविहितांघोरां तप्यन्तेये तपो जनाः।
दम्भिाङ्कारसयुंक्ताः कामरागबलास्न्िताः ॥5॥

(5) वेलोग प्रदिनववप्रय और अिंकारपूण वऔर काम-वासना और राग (ककसी वस्तु की लालसा) की िल्क्त से प्ेररत िोकर उग्र तपों को करते िैं, जो कक िास्त्रों द्वारा ववहित निीं िैं।

कषयगन्तः शरीरस्थां भूतूग्राममचेतसः ।
माचैांन्तिः शरीरस्थां तास्न्चङ्ख्यासुरुतनश्चयान् ्॥5॥

(6) अपनी मूखतवा के कारण वे अपनिेरीर में ववद्यमान तत्वों के समूि को सतातेिैं और िरीर के अन्दर तनवास करने वाले मुझको भी सताते िैं। इन लोगों को तू ूआसुरीय संकल्प वाला समझ,

453 मन्त्रतीथे द्ववजे देवेदैवज्ञच भेषजेगुरौ।
यादृिी भावना यस्य शसद्धधभवतत तादृिी ।

454 श्रद्धानुरूपं फलिेतुकत्वात् ्। 8, 17

455 लौज, 904 सी।

यिां ंकुछ लोगों द्वारा प्रदिनव के उद्देश्य से बालों के कुते पिनने, या िरीर को कीलों से छेदने इत्याहद की अपने-आप को कष्ट देने की पद्धततयों की तनन्दा की गई िै। कई बार िारीररक दुबुलवता के कारण मततभ्रम उत्पन्न िो जाते िैं, ल्जन्िें किक ग़लती से आल्त्मक हदव्य दृल्ष्ट समझ शलया जाता िै। आत्म- अनुिासन को गलती से िारीररक यन्त्रणा निीं ंसमझ शलया जाना चाहिए। इसके साथ गौतम बुद्ध की चेतावनी की तुलना कील्जए : "तपस्या का आदत के अनुसार पडा िुआ अभ्यास, या अपने-आप को जड बना देनेका अभ्यास, जो कष्टदायक, अनुधचत और लाभरहित िै, निीं ंककया जाना चाहिए।"[456] िरीर का सच्चा अनुिासन स्वच्छता इत्याहद के अभ्यास द्वारा िोता िै, जो श्लोक 14 में हदया गया िै।

तीन प्रकार का भोजन

आिारस्त्वपि सिस्गय त्रत्रविधो भितत वप्रयः।
यज्ञस्तपस्तथा दानां तेषा ंभेदशमम ंश्रृणु ु॥7॥

(7) भोजन भी, जो कक सबको वप्रय िै, तीन प्रकार का िोता िै। इसी प्रकार यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के िोतेिैं। तू इनका भेद सुन।

आयुः सत्त्विलारोग्यसुखप्रीततविवधनगाः ।
रस्याः क्षक्षग्धाः स्स्थरािुया आिाराः सास्त्त्त्वकवप्रयाः ॥8॥

(8) जो भोजन जीवन, प्राणिल्क्त, बल, स्वास्थ्य, आनन्द और उल्लास को बढ़ाते िैं, जो मधुर, धचकनाई से युक्त, पोषक और रुधचकर िोतेिैं, वे साल्त्त्वक लोगों को वप्रय िोते िैं।

कट्वम्ललिणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आिारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥9॥

(9) जो भोजन तीखे, खट्टे, नमकीन, बिुत गरम, चरपरे, रूखे और जलन उत्पन्न करने वाले िोतेिैं, जो दुःख, िोक और रोग उत्पन्न करते िैं, वे राजशसक लोगों को पसन्द िोतेिैं।

यातयाम ंगतरस ंपूतत पयुवगषतांच यत् ्।
उस्च्छष्टमवप चामेध्यां भोजनां तामसवप्रयम् ्॥10॥

(10) जो भोजन बबगड गया िोबेस्वाद िो, सड गया िो, बासा िो, जूठा िो और गन्दा िो, वि तामशसक लोगों

456 धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त

भगवद्गीता 318 को वप्रय िोता िै। क्योंकक िरीर खाए िुए भोजन से िी बनता िै, इसशलए भोजन की ककस्म का बिुत मित्व िै।457

तीन प्रकार के यज्ञ

अफलाकाङ्क्षक्षशभयज्ञोवबधधदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेतत मनः समाधाय स साल्त्वकः ॥11॥

(11) जो यज्ञ फल की इच्छा न रखनेवाले लोगों द्वारा, ल्जनका यि ववश्वास िोता िै कक यज्ञ करना उनका कतव्वय िै, िास्त्रीय तनयमों के अनुसार ककया जाता िै, वि साल्त्वक किलाता िै।
गीता का यज्ञ वेदों के समारिोपूण वजैसा यज्ञ निीं ◌िै। यि तो सामान्य तौर पर बशलदान का काय वि, ल्जसके द्वारा मनुष्य अपनी सम्पवत्त और अपनेकायों को सबके अन्दर ववद्यमान एक िी जीवन की सेवा के शलए समवपतव कर देता िै। इस प्रकार की बशलदान की भावना वाले लोग प्रसन्नतापूवकव मृत्यु तक को भी, चािे वि अन्यायपूण विी क्यों न िो, स्वीकार कर लेंगे, ल्जससे कक संसार उनके बशलदान द्वारा उन्नतत कर सके। सावववत्री यम से किती िै कक अच्छे लोग अपनेकष्ट-सिन और बशलदान द्वारा संसार को संभालते िैं। सन्तो भूशमं ◌तपसा धारयल्न्त ।

अफलाकाङ्क्षक्षशभः : जो ककसी फल की आिा निीं ◌रखते। वे सिी काम करते जाते िैं, परन्तु उसके पररणामों के प्रतत तनरपेक्ष रिते िैं। ककसी भी सुकरात या गांधी को केवल इस बात का ध्यान रिता िै कक वि ठीक काम कर रिा िै या ग़लत काम; वि भले आदमी का अशभनय कर रिा िै या बुरे आदमी का; और इस बात का ध्यान निीं रिता कक वि जीववत रि सकेगा या उसे मरना पडेगा।

अशभसन्धाय तु फलांदम्भाथमगवप चैव यत् ◌।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं ◌यज्ञां विद्धध राजसम् ◌॥12॥

(12) परन्तु िे भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), जो यज्ञ ककसी फल की आिा से या प्रदिनव के शलए ककया जाता िै, तू समझ ले कक वि राजशसक िै।

---

457 छान्दोग्यउपतनषद्, 7,26, 2।आिारिुद्धौ सत्त्विुद्धधः। यिां ◌सत्व का अथ वि अन्तःकरण। िम ल्जस भी प्रकार का भोजन करते िैं, उसका िमारी आत्मसंयम की िल्क्त पर प्रभाव पडता िै। तुलना कील्जए :
ववश्वाशमत्नपरािरप्रभृतयः वाताम्बुपणािनाः,
तेऽवप स्त्रीमुखपङ्कजे सुलशलतं ◌दृष्टैव मोिं गताः ।
िाल्यन्न दधधदुग्धगोघृतयुतं ◌ये भुञ्जते ◌मानवाः,
तेषाशमल्न्द्रयतनग्रिो यहद भवेत्, ◌ ववन्ध्यस्तरेत् ◌सागरम् ◌॥

विधिधीनमसृषृटान्न मन्त्रीनमदक्षक्षणम् ्।
श्रद्धाविरहित ंयज्ञांतामस ंपररचक्षते ॥13॥

(13) जो यज्ञ तनयम के अनुसार निींि, ल्जसमें कोई अन्न निीं बांटा गया, ल्जसमें मन्त्र निीं ंपढ़े गए और ल्जसमें दक्षक्षणा (पुरोहित का िुलुक) निीं ंदी गई, जो श्रद्धा से रहित िै, उसे लोग तामशसक कितिें।

अन्न का ववतरण और िुल्क का देना दूसूरों की सिायता करने ेके प्रतीक िैं, ल्जनके बबना सारा कम व स्वाथपूवण विोगा।

तीन प्रकार का तप

दिेद्विजगुरुप्राज्ञपूजन ंशौचमाजिगम् ्।
ब्रह्मचयमगहिसांा च शारीरां तप उच्यते ॥14॥

(14) देवताओं की, ब्राह्मणों की, गुरुओं ंकी और ववद्वानों की पूजा, पववत्नता, ईमानदारी, ब्रह्मचय वऔर अहिंसां, यि िरीर का तप किलाता िै।

अनुदिेगकरां िाक्यांसत्यां वप्रयहितां च यत्।्
स्ाध्यायाभ्यसनां चिै िाक्यांतप उच्यते ॥15॥

(15) ऐसे िदद बोलना, जो दूसूरों को बुरे न लगें, जो सत्य िों, जो वप्रय िों, जो हितकारी िों और तनयशमत रूप से वेदों का पाठयि वाणी का तप किलाता िै।

तुलना कील्जए : "अवप्रय और हितकारी वचन का किने वाला और सुनने वाला कहठनाई से िी शमलता िै।"[458]

---

458 अवप्रयस्य च पथ्यस्यवक्ताश्रोताहि दुलुभवः। -मिाभारत, िाल्न्तपवव ,63,176.
यहद तुम चािते कक तुम्िारे िोंठ लुहटयों से बचे रिें,

तो सावधानी से पांच बातों का ध्यान रखो :

ककस ववषय में तुम्िें बोलना िै, ककससे तुम्िें बोलना िै,

और कैसे, और कब और किां ंबोलना िै।

- 'अनसैनै्सड वररकलैक्सिन्स' (देखखए थलबवी िाल, लेखक, डदल्यू. ई. नौररस, खण्ड 1, पू. 35)

मन:प्रसादः सौम्यत्ािमौनमात्मवितनग्रिः ।

भािसशुांद्धधररत्येतत्तपो मानसमुच्ुयते ॥16॥

(16) मन की प्रिान्तता, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम और मन की पववत्रता - यि मानशसक तप किलाता िै।

श्रद्धया परया तप्तां तपस्तशलविधां नरैः ।

अफलाकाङ्क्षक्षकृभयुक्गतैः सास्त्त्किां पररचक्षते॥17॥

(17) यहद इस तीन प्रकार के तप को सन्तुशलत मन वाले व्यल्क्तयों द्वारा फल की इच्छा रखे बबना, पूण व

श्रद्धा के साथ ककया जाए, तो वि साल्त्वक तप किलाता िै।

सत्कारमानपूजाथ गतपो दम्भेन चैि यत्।्

कक्रयते तहदि प्रोक्त ांराजस ांचलमध्रुिम् ्॥18॥

(18) जो तप सत्कार, सम्मान या प्रततष्ठा पाने के शलए ककया जाता िै या प्रदिनव के शलए ककया जाता िै, वि राजशसक तप किलाता िै, वि अल्स्थर और अस्थायी िोता िै।

मूढ्ग्रिेणात्मनो यत्पीडया कक्रयते तपः ।

परस्योत्सादनाथ गिा तत्तामसमुदाहृतम् ्॥18॥

(19) जो तप मूखतवापूण वदुराग्रि के साथ अपने-आप को कष्ट देकर या दूसूरों को िातन पिुंचाने के शलए ककया जाता िै, वि तामशसक तप किलाता िै। इसके बाद दान के तीन प्रकार बताए गए िैं।

तीन प्रकार का दान

दातव्यशमतत यदानां दीयतेऽनुपकाररण

देशे काले च पाने च तिानांसास्त्त्किां स्मृतृम् ्॥20॥

(20) जो दान ऐसे व्यल्क्त को, ल्जससे ककसी प्रततफल की आिा निीं ंिै, इस भावना से हदया जाता िै कक दान देना िमारा कतव्वय िै, और जो उधचत स्थान में, उधचत समय पर और योग्य व्यल्क्त को हदया जाता िै, वि दान साल्त्वक माना जाता िै।

इस प्रकार का दान पूण वआत्मसमपणव की ओर ले जाता िै। ग़रीबों को हदया गया दान केवल ग़रीबोंकी िी

निीं,ं अवपतु दान देने वालों की भी सिायता करता िै। जो देता िै, वि पाता िै।

यत्तु ुप्रत्युपकाराथ गफलमुद्दुहदश्य िा पुनः ।
दीयते च पररस्क्लष्टं तद्दानंराजस ांस्मृतृम् ्21॥

(21) परन्तु जो दान ककसी प्रततफल की आिा से या भववष्य में ककसी लाभ की आिा से हदया जाता िै और ल्जस दान को देनेमें क्लेि िोता िै, उसे राजशसक माना जाता िै।

अदेशकालेयद्दानमपालेभ्यश्चदीयते।
असत्कृतमिज्ञात ांतत्तामसमुदाहृतम् ्॥22॥

(22) जो दान ग़लत स्थान पर या ग़लत समय पर या अयोग्य व्यल्क्त को बबना उधचत समारिो के या ततरस्कारपूवकव हदया जाता िै, वि तामशसक दान किा जाता िै।

रिस्यमय ध्वतन 'ओम् ्तत् ्सत्'्

ओतत्सहदतत तनदेशो ब्रह्मणस्त्रविधः स्मृतृः ।
ब्राह्मणास्तेन िेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥23॥

(23) 'ओम् ्तत् ्सत्'् यि ब्रह्म का तीन प्रकार का प्रतीक समझा जाता िै। प्राचीन काल में इसके द्वारा ब्राह्मण,
वेद और यज्ञों का ववधान ककया गया था। देखखए 3, 10।
'ओम्'् परम सवोच्चता का सूचक िै; 'तत्'् सावभवौमता का और 'सत्,् ब्रह्म की वास्तववकता का सूचक िै। तैवत्तरीय उपतनषद् में किा गया िै, "सच्च तच्चाभवत्"्"। यि सत् ्(जो अल्स्तत्वमान िै) बन गया और तत् ्(जो परे[459] िै) बन गया। वि ब्रह्म ब्रह्माण्डीय संसार भी िै और उससे परे भी िै। यि चेतना की तीन दिाओं का प्रतीक िै- जागृतृत, स्वप्न और सुषुल्प्त – जो लोकातीत दिा (तुरीयः चौथी) की ओर ले जाती िैं। देखखए माण्डूक्य उपतनषद्। साथ िी देखखए भगवद्गीता 7, 8 और 8, 13।

तस्मादोशमत्युदाहृत्य यज्ञदानतपः कक्रयाः ।
प्रितन्गते विधानोक्ताः सतत ांब्रह्मिाहदनाम् ्॥24॥

(24) इसशलए ब्रह्मवादी लोगों द्वारा िास्त्रों द्वारा बताई गई यज्ञ, दान और तप की कक्रयाएं 'ओम्'् िदद का उच्चारण करके की जाती िैं।

तहदत्यनशभसन्धाय फल ांयज्ञतपः कक्रयाः ।

[459] 2,6

दानकक्रयाश्चविविधा: कक्रयन्तेमोक्षकाक्षक्षशभ:25॥

(25) 'तत्'् िदद का उच्चारण करके यज्ञ और तप और दान की वववववध कक्रयाएं प्रततफल की इच्छा रखे बबना मोक्ष की इच्छा रखनेवाले लोगों द्वारा की जाती िैं।

सद्भिो साधुभिो च सहदत्येतत्ययुज्यते े।
प्रशस्ते कमणगण तथा सच्छब्द: पाथ गयुज्यते ॥26॥

(26) 'सत्'् िदद का प्रयोग वास्तववकता और अच्छाई के अथ वमें ककया जाता िै; और िे पाथ व(अजुनव), 'सत्'् दिद का प्रयोग प्रिंसनीय काय वके शलए भी ककया जाता िै।

यज्ञेतपशस दाने च स्स्थततः सहदतत चोच्यते।
कम गचैव तदथीयां सहदत्यिैवाशभधीयते ॥27॥

(27) यज्ञ, तप और दान में दृढ़ता से ल्स्थत रिना भी 'सत्'् किलाता िै और इसी प्रकार इन प्रयोजनों के शलए ककया गया कोई काम भी 'सत्'् किलाता िै।

अश्रद्धया िुत ांदत्त ांतपस्तप्तां कृतांच यत् ्।
असहदत्युच्यते पाथ गन च तत्प्रेत्य नो इि ॥28॥

(28) बबना श्रद्धा के जो यज्ञ ककया जाता िै, जो दान हदया जाता िै, जो तप ककया जाता िै या कोई कम वककया जाता िै, िे पाथ व(अजुनव), वि 'असत्'् किलाता िै; उसका न तो इस लोक में और न परलोक में िी कोई लाभ िोता िै।

इतत... श्रद्धात्त्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय: ।

यि िै 'श्रद्धा के तीन प्रकार के भेद का योग' नामक सत्रिवाां अध्याय ।

अध्याय 18

तनष्कष व

संन्यास कम वका र्निं,ः अवपतु कम वके फल का ककया जाना चाहिए

अजुनग उिाच

सन्ांयासस्य मिाबािो तत्शिमच्छाशम िेहदतुम् ्।

त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशशतनषूदन ॥1॥

अजुनव ने किा :

ेिे मिाबािु (कृष्ण), म ैंसंन्यास और त्याग का पृथक् पृथक् सच्चा रूप जानना चािता िंूं, िे हृषीकेि (कृष्ण), िे केशितनषूदन (कृष्ण) ! (वि मुझे ेबता।)

गीता में कम वके संन्यास पर र्निं,ः अवपतु इच्छा का त्याग करके कम वकरते रिने पर ज़ोर हदया गया िै। यिी सच्चा संन्यास िै। इस श्लोक में 'संन्यास' िदद का प्रयोग सब कमों के पररत्याग के शलए और 'त्याग' िदद का प्रयोग सब कमों के फल के त्याग के शलए ककया गया िै। मुल्क्त कम वद्वारा या सन्तान द्वारा या धन द्वारा र्निं ःशमलती, अवपतु त्याग द्वारा शमलती िै।'[460]

गीता का कथन िै कक मुक्त आत्मा मुल्क्त के बाद भी सेवा में लगी रि सकती िै और गीता उस दृल्ष्टकोण का ववरोध करती िै, ल्जसका यि मत िै कक सारा कम वअज्ञान से उत्पन्न िोता िै और जब ज्ञान का उदय िो जाता ै, तिब कम वसमाप्त िो जाता िै। गीता का गुरु इस दृल्ष्टकोण को, कक जो व्यल्क्त कम वकरता िै, वि बन्धन में फंसा िुआ िै और जो स्वतन्त्र (मुक्त) िै और वि कम वकर िी र्निं सकता, ग़लत मानता िै।

460

नकमणवानप्रज़याधनेनत्यागे्नैकेनामृतृत्वमानुिः । तैवत्तरीय आरण्यक 10, 10, 3

श्रीभगिानुिाच

काम्यानाांकमणगान्ांयास ांसन्ांयास ांकियो विदुः ।

सिकगमफगलत्याग ांप्रािुस्त्याग ांविचक्षणाः ॥2॥

श्री भगवान् ्ने किा :

कुछ बुद्धिमान् ्लोग 'संन्यास' का अथ वइच्छा द्वारा पे्रेररत कमों का त्याग समझतेिैं; सब कमों के फलों के त्याग को ववद्वान् ्लोग 'त्याग' कितेिैं।

जडता या तनल्ष्क्रयता आदि वनििं ांिै। िमारे सम्मुख जो आदि वरखा गया िै, वि स्वाथपूवण वइच्छा के बबना और लाभ की आिा के बबना, इस भावना के साथ ककया गया कम िैकक 'म ैंकताव निीिं; म ैंअपने-आप को सावभवौम आत्मा के प्रतत समवपतव कर रिा िूंां।' गीता कमों के पूण वसंन्यास की शिक्षा निीिंदेती, अवपतु सब कमों

को तनष्काम कम वअथवात्म्् इच्छारहित कम वमें बदल डालनेकी शिक्षा देती िै।

परन्तु िांकराचाय वका मत िै कक यिाांल्जस प्रकार के त्याग की शिक्षा दी गई िै, वि केवल कमयवोधगयों पर लागू िोती िै और ज्ञातनयों के शलए कमों का पूण वपररत्याग अत्यावश्यक िै। िांकराचाय वका मत िै कक ज्ञान और कम वसाथ- साथ रि िी निीिंसकते।

त्याज्यांदोषिहदत्येके कम गप्रािुमनगीवषणः ।

यज्ञदानतपःकम गन त्याज्यशमतत चापरे ॥3॥

(3) कुछ ववद्वान् ्लोगों का कथन िै कक 'कम वको दोष समझकर त्याग देना चाहिए,' जब कक अन्य ववद्वानों का कथन िै कक 'यज्ञ, दान और तप के कमों का त्याग निीं ांकरना चाहिए।'

तनश्चयां श्रृणु ुमे तर त्यागे भरतसत्तम् ्।

त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रविधः सप्रांकीतततगः ॥4॥

(4) िे भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), अब तू मुझसे त्याग के सम्बन्ध में सच्चाई को सुन; िे मनुष्यों में श्रेष्ठ (अजुनव),

त्याग तीन प्रकार का बताया गया िै।

रामानुज ने त्याग को (1) फल का त्याग, (2) इस ववचार का त्याग कक आत्मा कताव िै और इस प्रकार आसल्क्त का भी त्याग और (3) यि अनुभव करते िुए कक सब कमों का करनेवाला परमात्मा िै, कतृत्वव के सम्पूण व ववचार का त्याग- इन तीन भागों में बांटा िै।

यज्ञदानतप:कम गन त्याज्यांकायमेगि तत्।्
यज्ञो दानां तपश्चै पिानातन मनीवषणाम् ्॥4॥

(5) यज्ञ, दान और तप के कमों का त्याग निीं ंकरना चाहिए, अवपतुउन्िें करते िी रिना चाहिए. क्योंकक यज्ञ, दान और तप बुद्धिमान लोगों को पववत्न करने वाले िोते िैं।

इस दृल्ष्टकोण के ववरुद्ध, कक सब कमों का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकक वे बन्धन में डालने वाले िैं,

गीता यि किती िै कक यज्ञ, दान और तप461 का त्याग निींकरना चाहिए।

एतान्यवप तु कमाणगण सङ्ग त्यक्त्िा फलातन च।
कतव्गयानीतत मे पाथ गतनस्श्चत ंमतयुत्तमम् ्॥6॥

(6) परन्तु इन कमों को भी आसल्क्त को और फलों की इच्छा को त्यागकर िी करना चाहिए। िे पाथ व (अजुनव) यि मेरा सुतनल्श्चत और अल्न्तम मत िै।

गुरु सुतनल्श्चत रूप से कमयवोग के अभ्यास के पक्ष में िै। कमों का त्याग निींकरना केवल उन कमों को स्वाथपूवण वआसल्क्त और फलों की आिा के बबना करना िै। मुल्क्त बाह्य कम वया अकम वका ववषय निीं िै; यि तो एक अकतृकव दृल्ष्टकोण को अपनाना और अिंकार का आन्तररक पररत्याग िै।

किंराचाय वके इस कथन का, कक यि बात ज्ञातनयों के शलए, जो कक सब कमों का पररत्याग कर देते िैं, निीं ंकिी गई (ज्ञानतनष्ठाः सवकवमसंवन्याशसनः), गीता के मूल पाठ द्वारा समथनव निीं ंिोता। तुलना कील्जए, बृिदारण्यक उपतनषद्, 4, 4, 22। "वि ब्रह्म िी िै, ल्जसे ब्राह्मण लोग वेदों के अध्ययन द्वारा और आसल्क्तरहित िोकर ककए गए यज्ञ, दान और तप द्वारा जानना चािते िैं।"

तनयतस्य तु सन्ांयासः कमणगो नोपपद्यते।
मोित्तस्य पररत्यागस्तामसः पररकीतततगः ॥7॥

(7) ककसी भी तनयत ककए गए (करनेयोग्य) कम वका त्याग उधचत निीं ंिै। अज्ञान के कारण इस प्रकार के कम वका त्याग तामशसक ढंग का त्याग किलाता िै।

दुःखशमत्यिे यत्कम गकायक्लेशभयात्त्यजेत् ्।
सकृत्िाराजस ंत्याग ंनैत्यागफलांलभेत्॥8॥

(8) जो व्यल्क्त कतव्वय का त्याग इसशलए कर देता िै कक उसे करने मे कष्ट िोता िै, या उसमें िारीररक दुःख

461 तुलनाकील्जए ल्योधमस्वकन्धायज्ञस्तपोदानशमतत।

का भय ि◌, वि राजशसक प्रकार का त्याग करता ि◌ै और उसे त्याग का फल निीं ◌ं शमलता।

कायशगमत्यै यत्कम गतनयतांकक्रयतेऽजुनग ।
सङ्गत्यक्त्ाफिलचैांसित्यागः सास्त्त्किोमतः ॥9॥

(9) परन्तु जो व्यल्क्त तनयत कतव्वय को अपना करने ◌ेयोग्य काय वमानकर करता रिता ि◌ै और उसके प्रतत सम्पूण वआसल्क्त तथा फल को त्याग देता ि◌ै, उसका त्याग साल्त्वक माना जाता ि◌ै।

करने ◌ेयोग्य कम ववि ि◌ै, जो ववश्व के प्रयोजन के साथ समस्वर ि◌ो।

न द्वेष्ट्यकुशल ◌ांकम गकुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्सिमाविष्टो मेधिी तछन्नसशांयः ॥ 10॥

(10) उस बुद्धिमान् ◌्व्यल्क्त को, जो त्याग करता ि◌ै, ल्जसके संयि समाप्त ि◌ो गए ि◌ैं और ल्जसका स्वभाव साल्त्वक ि◌ै, अवप्रय कम वसे कोई घृणा निींिोती और वप्रय कम वसे कोई अनुराग निीं ◌ंि◌ोता।

न हि दिेभृता शक्यां त्यक्तु ◌ांकमाण्गयशेषतः ।
यस्तुकमफगलत्यागी स त्यागीत्यशभधीयते ॥11॥

(11) ककसी भी दिेधारी प्राणी के शलए कम वका पूण वत्याग कर देना असम्भव ि◌ै। परन्तुजो कम वके फल को त्याग देता ि◌ै, विी त्यागी किलाता ि◌ै।

अतनष्टशमष्ट शमनांच त्ररविधांकमणगः फलम्।
भित्यत्याधगनाां पे्रत्य न तु ◌ुसन्यांाशसनाां क्वचित्॥12॥

(12) ल्जन्िोंनेत्याग निीं ◌ंककया ि◌ै, उन्िें मृत्यु के पश्चात् ◌्कम वका तीन प्रकार का-वप्रय, अवप्रय और शमधश्रत (शमला-जुला) - फल शमलता ि◌ै। परन्तु ल्जन्िोंनेत्याग कर हदया ि◌ै, उन्िें कोई फल निीं शमलता।

किराचाय वअत्यागी कमयवोधगयों को मानते ि◌ैं और संन्यासी उनको माननिें, ल्जन्िोंनेरीर-धारण

के शलए अतनवाय वकम वके शसवाय बाकी सब कमों का त्याग कर हदया ि◌ै।स्टिनालाइ्र तार स्टनज चाचा ररसक छ

कम वप्रकृतत का एक काय वि◌ै

पञ्चैतातन मिाबािो कारणातन तनबोध मे।

साख्यांयेकृतान्तेप्रोक्तातनशसद्धयेसिकगमणगाम् ॥13॥

(13) ेमिाबािु (अजुनव), अब तू मुझसे सब कमों को करने के शलए आवश्यक इन पांच उपकरणों को समझ ले, जैसे कक वे ेसांख्य-शसद्धान्त में बताए गए िैं।
यिां ेसांख्य का अथ ववेदान्त िै। - िंकराचाय।व

'कृतान्ते' की व्याख्या 'कृतयुग के अन्त में', इस प्रकार की गई िै; अथात्

व ्उस रूप में, जैसा कक मूल सांख्य में बताया गया िै।

अधधष्ठानांतथा कतागकरण ंच पृथृस्ग्धिम् ्।

विविधाश्चपृथृक्चेष्टादैिंचैात्ल पञ्चमम्॥14॥ ्

(14) कम वका स्थान और इसी प्रकार कताव, ववववध प्रकार के साधन, ववववध प्रकार की चेष्टाएं और पांचवां भाग्य;

'अधधष्ठान' या कम वका स्थान, इससे भौततक िरीर की ओर संकेत िै।

कताग : करनेवाला। िंकराचाय वके मतानुसार वि गोचर आत्मा िै- उपाधधलक्षणो अववद्याकल्पतो भोक्ता मनःिरीररक आत्म, जो ग़लती से जीव को सच्ची आत्मा समझ लेता िै। रामानुज की दृल्ष्ट में यि वैयल्क्तक आत्मा जीवात्मा िै; मध्व की दृल्ष्ट से यि सवोच्च भगवान् ्ववष्णु िैं।

कताव कम वके पांच कारणों में से एक िै। सांख्य-शसद्धान्त के अनुसार पुरुष या आत्मा केवल साक्षी िै। यद्यवप, यहद बबलकुल ठीक-ठीक किा जाए, तो आत्मा अकताव अथात्व ्कम वको न करने वाली िै, कफर भी उसका साक्षी-रूप में रिना प्रकृतत की गततववधधयों को प्रारम्भ कर देता िै और इसशलए आत्मा को तनधारवक कारणों में सल्म्मशलत ककया गया िै।

चेष्टा : प्रयन : िरीर के अन्दर प्राण िल्क्तयों की कक्रयाएं।

दैिम् ्: भाग्य : यि उस अमानवीय तत्व का प्रततततनधध िै, जो मानवीय प्रयत्न में बाधा डालता िै और उसका तनपटारा करता िै। यि वि बुद्धधमान् ्और सवदिी संकल्प िै, जो संसार में कक्रयािील िै। सब मानवीय कक्रयाओं में एक ऐसा तत्व िै, ल्जसकी कोई व्याख्या निीं की जा सकती; ल्जसे संयोग, भववतव्यता, भाग्य या मनुष्य के अतीत जीवनों के कमों द्वारा संधचत िल्क्त किा जाता िै। यिांउसे दैव किा गया िै। मनुष्य का काम समय के तालाब में एक कंकड छोड देना िै और सम्भव िै कक िम उससे उठने वाली लिरों को दूरू ककनारे तक पिुंचते न देख सकें। िो सकता िै कक िम बीज बोएं, ककन्तु उस फसल को तैयार िोते न देख सकें, जो िमारे अपने िाथों की अपेक्षा उच्चतर िाथों में रखी िुई िै। दैव या मानवोत्तर भाग्य एक सामान्य ब्रह्माण्डीय आवश्यकता िै, जो उस सबका पररणाम िै, जो कक अतीत में िो चुका िै, और जो अलक्षक्षत रिकर िासन करती िै। यि अपने अगखणत उद्देश्यों के शलए व्यल्क्त के अन्दर काय वकरती रिती िै।

दैव या भाग्य में ववश्वास तनल्ष्क्रयता के शलए बिाना निीं बनना चाहिए। मनुष्य एक संक्रमण की एक दिा िै। उसे अपनी पिाववक आनुवंशिकता से ऊपर उठकर दैवीय आदि वतक पिुंचने के अपनेउद्देश्य का ज्ञान िै। प्रकृतत, आनुवंशिकता और पररवेि के दबाव को मनुष्य के संकल्प द्वारा जीता जा सकता िै।462

शरीरिाङ्गनोशभयत्गकम गप्रारभतेनरः।
नीम न्याय्यांिा विपरीत ांिा पञ्चैतेतस्य िेतिः15॥

(15) मनुष्य अपनेिरीर, वाणी या मन द्वारा जो भी कोई उधचत या अनुधचत कम वकरता िै, उसमें ये पांच उपकरण अवश्य िोतेिैं।

तत्रैंसतत कतारगमात्मानां किल ांतु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धधत्वान्न स पश्यतत दुमुतगतः 16॥

(16) ऐसी दिा में जो ववकृत मन वाला मनुष्य अपनी अप्रशिक्षक्षत बुद्धध के कारण अपने-आप को एकमात्र कताव समझता िै, वि सच्ची बात को निीं देख रिा िोता।

कताव पांच उपकरणों में से एक िै और इस प्रकार जब वि कताव को िी एकमात्न कारण मान लेता िै, तब वि एक तथ्य को गलत समझ रिा िोता िै।

िंकराचाय वने व्याख्या इस प्रकार की िै, "वविुद्ध आत्मा को कताव समझता िै।" यहद वि वविुद्ध आत्मा पर कतृत्वव का आरोप करता िै, तो वि तथ्य को गलत समझता िै। सामान्यतया जीव को कताव समझा जाता िै, परन्तु वि मानवीय कम वके मुख्य तनधारवकों में से, जो सबके सब प्रकृतत की उपज िै, केवल एक िै। जब अिंकार को अिंकाररूप में पिचान शलया जाता िै, तब िम उसके बन्धनकारी प्रभाव से मुक्त िो जाते िैं और िम ववश्वात्मा के वविालतर ज्ञान में जीवन-यापन करते िैं; और उस आत्मदिनव में सब कम वप्रकृतत की उपज िैं।

यस्य नािांकृतो भािो बुद्धधयस्गय न शलप्यते।
ित्िापि स इमाल्लोकान्न िस्न्त न तनबध्यते।17॥

(17) जो अिंकार की भावना से मुक्त िै, ल्जसकी बुद्धध मशलन निीं िै, वि इन सब मनुष्यों को मारता िुआ भी मारता निीं िै और वि (अपने कमों के कारण) बन्धन में निीं पडता।

मुक्त मनुष्य अपनेकाय वको ववश्वात्मा के उपकरण के रूप में और ववश्व की व्यवस्था को बनाए रखने के शलए करता िै। वि भयंकर कमों को भी ककसी स्वाथपूवण वउद्देश्य या इच्छा के बबना करता िै, केवल इसशलए कक

462 तुलनाकील्जए पूववजवन्मकृतंकमतत्तद् दैवशमतत कथ्यते। - हितोपदेि।

वि उसका आहदष्ट कत्तव्वय ि ै। मित्व कम वका निीं,ं अवपतु उस भावना का ि ै, ल्जसके साथ वि ककया गया ि ै। "यद्यवप वि लौककक दृल्ष्ट से मारता ि ै, कफर भी वि वस्तुतः निींमारता।" - िंकराचाय।व"[463] इस स्थल का यि अथ वनिीं ि ै कक िम दंड से मुक्त िोकर अपराध करते रि सकतिैं। जो व्यल्क्त वविाल आल्त्मक चेतना में जीवन-यापन करता ि ै, उसे कोई पाप करने ेकी आवश्यकता िी न िोगी। बुरे काम अज्ञान और पृथृक् चेतना के फलस्वरूप उत्पन्न िोते िैं और परमात्मा के साथ एकता की चेतना के फलस्वरूप केवल अच्छे काम िी ककए जा सकतिै।

ज्ञान और कम व

ज्ञान ंज्ञेयांपररज्ञाता त्ररविधा कमचगोदना ।
करण ंकम गकतेतत त्ररविधः कमसगग्रांि ॥18॥

(18) ज्ञान, ज्ञान का उद्देश्य और जानने ेवाला कताव, कम वके शलए प्ेरेरणा इन तीन प्रकारों की िोती ि ै। साधन, कम वऔर कताव, यि तीन प्रकार का कम वका संग्रि ि ै।

देखखए 13, 20।

'कमचवोदना' का अशभप्राय मानशसक आयोजना, और कमसंवग्रि का अशभप्राय कम वके वास्तववक कायान्ववयन से ि ै और इन दोनों के तीन-तीन पिलिूं।

ज्ञान ंकम गच कता गच तनधिे गुणुभेदतः ।
प्रोच्यतेगुणुसख्ांयाने यथािच्छृणु ुतान्यवप ॥19॥

(19) गुणों के ववज्ञान में ज्ञान, कम वऔर कताव गुणों के अन्तर के अनुसार केवल तीन प्रकार के कि गए िैं। अब तू ूइनके ववषय में ठीक-ठीक सुन।

यिां ंसांख्य-दिनव का तनदिे ककया गया ि ै और वि कुछ मामलों में प्रामाखणक ि ै, िालांकक सवोच्च सत्य के मामले में प्रामाखणक निीं ि ै।

तीन प्रकार का ज्ञान

सिभूगतूेषु येनैकां भिामव्ययमीक्षते ।

अविभक्तवांभिक्तेषुतज्ज्ञानवांद्धिधसास्त्त्किम् ् ॥20॥

[463] लौककक दृल्ष्टम्आ्धश्रत्यित्वावप... पारमाधथकवों दृल्ष्टम् ्आधश्रत्य न िल्न्त ।

(20) ल्जस ज्ञान के द्वारा सब वस्तुओंऔर प्राखणयों में एक ि◌ी अनश्वर सत्त हदखाई पडती ि◌ै, जो ववभक्तों में
भी अववभक्त रूप में ववद्यमान ि◌ै, उन ज्ञान को तू ◌ूसाल्त्वक ज्ञान समझ ।

पृथृक्त्नेि तुयज्ज्ञानांनानाभिाान्पृथृस्ग्धिान् ◌्।
वेत्ति सिेषुभूतेषु तज्ज्ञानां विद्धि राजसम् ◌्॥21॥

(21) ल्जस ज्ञान के द्वारा ववशभन्न प्राखणयों में उनकी पृथुकता के कारणा अल्स्तत्व की वववववधता हदखाई
पडती ि, उस ज्ञान को राजशसका समझना चाहिए।

यत्तु ◌ुकृत्निदेकस्स्मन् ◌्काये सक्तमिैतुकम् ◌्।
अतत्त्िाथिगदल्पां च तत्तामसमुदाहृतम् ◌्॥22॥

(22) परन्तु जो ज्ञान ककसी एक काय वको ि◌ी सब-कुछ मान लेता ि◌ै और उसके कारण का कोई ध्यान नििं
रखता और तत्त्वाथ वको नििंसमझ पाता और जो संकीण वि, वि तामशसक ढंग का ज्ञान किलाता ि◌ै।

तीन प्रकार का कम व

तनयतां सगरहितमरागद्वेषितः कृतम्।
◌्
अफलप्रेप्सुना कम गयत्तत्सास्त्त्किमुच्यते॥23॥

(23) वि कम,व ल्जसे करना आवश्यक ि◌ै, ल्जसे आसल्क्त के बबना ककया जाता ि◌ै और ल्जसे राग-द्वेष से ि◌ूनूय
िोकर, फल की इच्छा से रहित व्यल्क्त द्वारा ककया जाता ि◌ै, साल्त्वक कम वकिलाता ि◌ै।

यत्तु ◌ुकामेप्सुना कम गसािङ्कारेण ि◌ा पुनः ।
कक्रयते बिुलायास ◌ंतद्राजसमुदाहृतम् ◌्॥24॥

(24) परन्तु जो कम वफल की प्राल्प्त की इच्छा रखनेवाले व्यल्क्त द्वारा बडे ◌ेपरश्रमपूवकव या अिंकार की
भावना से प्रेररत ि◌ोकर ककया जाता ि◌ै, वि राजशसक ढंग का कम वकिलाता ि◌ै।

बिुलायासम् ◌्: बिुत पररश्रम के साथ।

कष्ट की अनुभूतत, यि भावना कक ि◌म कुछ अवप्रय काय वकर रिे ि◌ैं और यि कक ि◌में बडे ◌ेकष्ट और
पररश्रम में से गुज़रना पड रिा ि◌ै, कम वके मूल्य को समाप्त कर देती ि◌ै। चेतनापूवकव यि अनुभव करना कक ि◌म

कोई बडा काम कर रिे िैं, िम कोई मित्वपूण वबशलदान कर रिे िैं, स्वयं बशलदान की ववफलता िै। परन्तु जब कोई काम ककसी आदि वके शलए ककया जाता िै, तब वि प्रेेमपूवकव ककया जा रिा श्रम िोता िै और उस दिा में बशलदान भी बशलदान के रूप में अनुभव निीं ंिोता। ककसी अवप्रय काय वको कतव्वय की भावना से, सारे समय अवप्रयता का अनुभव करते िुए करना राजशसक ढंग की वस्तु िै, परन्तु उसे पूणतवया आत्मचेतना-रहित िोकर प्रसन्नतापूवकव मुस्कुराते िुए करना, जैसे कक सुकरात्त ने िेलिाल वपया था, साल्त्त्वक ढंग का कम वि। प्रेेम द्वारा ककए जानेवाले कम वऔर कानून द्वारा ककए जानेवाले कम वमें, करुणा द्वारा ककए जानेवाले कम वऔर दातयत्व (ववविता) के कारण ककए जानेवाले कम वमें यिी अन्तर िै।

अनुबन्ध ंक्षयां हिसांामनिेक्ष्य च पौरुषम्।ु्
मिोदारभ्यते ेकम गयत्तत्तामसमुचुयते ॥25॥

(25) जो कम वअज्ञान के कारण िातन या हिंसा का ववचार ककए बबना और अपनी मानवीय क्षमता का ववचार ककए बबना ककया जाता िै, वि तामशसक कम वकिलाता िै।

कमों के अन्य लोगों पर िोने ेवाले पररणामों का भी सदा ववचार कर शलया जाना चाहिए; केवल स्वाथपूवण व उद्देश्यों का त्याग कर हदया जाना चाहिए।

तीन प्रकार के कताव

मुकुतसङ्गोऽनिांदिी धृतूयुतुसिासमस्न्तिः ।

शसद्ध्यशसद्ध्योतनवगिकगारः कतासगास्त्त्किउच्यते ॥26॥

(26) जो कताव आसल्क्त से रहित िै, जो अिकारपूण वबातें निीं ंकरता, जो धैय वऔर उत्सिा से युक्त िै और जो सफलता और ववफलता द्वारा ववचशलत निीं ंिोता, वि साल्त्त्वक ढंग का कताव कि जाता िै।

रागी कमफगलप्रेेप्सुलुबुधो हिसांात्मकोऽशुधचः ।
षिशगोकास्न्तिः कतागराजसः पररकीततततगः ॥27॥

(27) जो कताव राग (आवि) से प्रेेररत िोता िै, जो अपनेकमों का फल पाने के शलए उत्सुक रिता िै, जो लोभी िोता िै, ल्जसका स्वभाव हिंसापूण विोता िै, जो अपववत्न िोता िै, जो आनन्द और िोक के कारण ववचशलत िो जाता िै, वि कताव राजशसक किलाता िै।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोनैष्कृततकोऽलसः ।
विषादी दीघसूगलूी च कतागतामस उच्यते ॥28॥

(28) जो कताव असन्तुशलत, असंस्कृत, िठी, धोखेबाज़, द्वेषी, आलसी, दुःखी और काम को टालता जानेवाला िोता िै, वि तामशसक किलाता िै।

प्राकृतः : 'बौद्धधक दृल्ष्ट से बबलकुल असस्कृत और बच्चे ेकी तरि।' तीन प्रकार की बुद्धध - िंकराचाय।व

बुद्धेभेदां धृतेश्चै गुणतस्त्रिविधां श्रृणु।ु

प्रोच्यमानमषेणे पृथृक्त्ेन धनञ्जय ॥29॥

(29) िधन को जीतने वाले (अजुनव), अब तू गुणों के अनुसार बुद्धध और धृतृत (धैय वया धारणा करने ेकी ल्क्ति) के तीन भेदों को सुन, ल्जन्िें मैं पूणतवया और पृथृक् पृथृक् करके बताता िंूं।

प्रिवृत्त ांच तन्निवृत्त ांच कायावकायभये।

बन्ध ांमोक्ष ांच या िेवत्त बुद्धधः सा पाथ गसास्त्त्विकी ॥30॥

(30) जो बुद्धध कम वऔर अकम वको समझती िै; जो करने ेयोग्य काय वऔर न करनेयोग्य काय वको समझती िै; जो इस बात को समझती िै कक ककससे डरना चाहिए और ककससे निीं डरना चाहिए क्या वस्तु आत्मा को बन्धन में डालती िै और क्या वस्तु मुक्त करती िै; िे पाथ व(अजुनव), वि बुद्धध साल्त्वक िोती िै।

यथा धममगधम गच काय गचाकायमेगि च।

अयथावत्प्रजानातत बुद्धधःसापाथगराजसी ॥31॥

(31) ल्जस बुद्धध के द्वारा मनुष्य धम वऔर अधम वको, करने ेयोग्य काय वऔर न करने ेयोग्य काय वको गलत
ढंग से समझता िै, िे पाथ व(अजुनव), वि बुद्धध राजशसक िोती िै।

अधम गधमशगमतत या मन्यतेतमसािृता ।

सिाथगावगिपरीताश्ांच बुद्धधः सा पाथ गतामसी ॥

(32) ल्जस बुद्धध के द्वारा अन्धकार में डूबा िुआ मनुष्य अधम वको धम वसमझता िै और सब बातों को एक ववकृत रूप में (सत्य के ववपरीत) देखता िै, िे पाथ व(अजुनव), वि बुद्धध तामशसक िोती िै।

तीन प्रकार की धृतृत

धृतृया यया धारयतेमनःप्राणेन्द्रियकक्रयाः ।

योगेनाव्यशभचाररण्या धृतृतः सापाथसगास्त्त्विकी ॥

वि३अववचल धृतृत, ल्जससे एकाग्रता द्वारा मनुष्य मन, प्राण (जीवन देने वाला श्वास) और इल्न्द्रयों की गततववधधयों को तनयन्त्रण में रखता िै, िे पाथ व(अजुनव), वि धृतृत साल्त्वक प्रकार की िोती िै।

धृतृतः : ध्यान की ल्स्थरता, ल्जसके द्वारा िम उन बिुत-सी बातों को जान. पाति ैं, ल्जन्िें िमारी साधारण दृल्ष्ट देख पाने में समथ विीं िै : इसकी िल्क्त अतीत के शलए पश्चात्ताप और भववष्य के शलए धचन्ताओं के साथ मिारी अनासल्क्त के अनुपात में िोती िै।

यया तु धमकगामाथान्गधृतृ्या धारयतेऽजुनग ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतृतः सा पाथ गराजसी34॥

(34) ल्जसंधृतृत के द्वारा मनुष्य अपनेकत्तव्वय, आनन्द और सम्पवत्त से उनके पररणामस्वरूप फलों की इच्छा करते िुए दृढ़तापूवकव धचपका रिता िै, िे पाथ व(अजुनव), वि राजशसक प्रकार की िोती िै।

यया स्िप्नं भयां शोकां विषादां मदमेि च।
न विमुञ्चतत दुमेधा धृतृतः सा पाथ गतामसी35॥

(35) ल्जस धृतृत के द्वारा कोई मूख वव्यल्क्त तनद्रा, भय, िोक, ववषाद और अशभमान को निीं त्यागता, िे पाथ व (अजुनव), वि तामशसक प्रकार की िोती िै।

तीन प्रकार का सुख

सुखु ंस्त्िदानी त्ररविधां श्रृणु मे भरतषभग ।

अभ्यासाद्रमते यत्न दुःखान्त ंच तनगच्छतत36॥

(36) िे भरतों में श्रेष्ठ (अजुनव), अब तू मुझसे तीन प्रकार के सुख के ववषय में सुन। ल्जस सुख में मनुष्य दीघ व अभ्यास के द्वारा आनन्द अनुभव करता िै और ल्जसमें उसके दुःख का अन्त िो जाता िै;

यत्तदग्रे विषशमि पररणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखुांसाल्त्त्िकां प्रोक्तमात्मबुद्धधप्रसादजम् 37॥

(37) जो सुख िुरू में तो ववष जैसा प्रतीत िोता िै और जो अन्त में अमृत के समान िोता िै, जो आत्मा को स्पष्ट रूप में समझ लेनेके फलस्वरूप उत्पन्न िोता िै, वि साल्त्वक प्रकार का सुख िोता िै।

विषयेल्न्द्रयसयोगायत्तदयेऽमृतोपमम्।
पररणामे विषशमि तत्सुखुांराजस ंस्मृतम्38॥

(38) जो सुख इल्न्द्रयों और इल्न्द्रयों के ववषयों के संयोग से उत्पन्न िोता ि और जो िुरू में अमृत-सा ककन्तु अन्त में ववष जैसा लगता ि, वि सुख राजशसक किलाता ि।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखु ांमोिनमात्मनः ।
तनद्रालस्यप्रमादोत्थां तत्तामसमुदाहृतम् ्॥39॥

(39) जो सुख आरम्भ और अन्त, दोनों में आत्मा को भ्रम में डाले रखता ि, जो तनद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न िोता ि, वि तामशसक प्रकार का सुख किा जाता ि।

सुख जीवन का सावभवौम उद्देश्य ि। बात केवल इतनी ि कक यि उन गुणों के अनुसार, ल्जनकी कक िमारे स्वभाव में प्रधानता ि, ववशभन्न प्रकार का िोता ि। यहद िमारे अन्दर तमस् ्प्रधान िोता ि, तो िम हिंसा और जडता, अन्धता और लुहटयों से सन्तुष्ट रिते िैं। यहद िमारे अन्दर रजस् ्की प्रधानता ि, तो िमें सम्पवत्त और सत्ता, अशभमान और यि में सुख शमलता ि। मानव-प्राणी का सच्चा सुख बाह्य वस्तुओंपर अधधकार करने में निीं ि, अवपतु उच्चतर मन और आत्मा की पूणतवा में, जो वस्तु िमारे अन्दर आन्तररकतम ि, उसके ववकास में ि। िो सकता ि कक इसका अथ वकष्ट और संयम िो, परन्तु यि िमें आनन्द और मोक्ष तक पिुंचा देगा। जब िम सवोच्च आत्मा के साथ और अन्य सब प्राखणयों के साथ एक िो जाते िैं, तब िम ज्ञान और सदाचार के आनन्द से ऊपर उठकर िाश्वत िाल्न्त और उल्लास, आत्मा के आनन्द, तक पिुंच सकतिैं।

मनुष्य के स्वभाव और स्वधम वद्वारा तनयत ककए गए ववशभन्न कत्तव्वय

न तदस्स्त पृधृथव्यांाां हदवि देिेषु िा पुनः ।
सत्त्ाां प्रकृततजैमुैक्गतयांदेशभः स्यास्त्रशभगुणैगः ॥40॥

(40) न तो इस पृथ्वी पर और न स्वग वमें देवताओं में िी कोई ऐसा प्राणी ि, जो प्रकृतत से उत्पन्न िुए इन तीन गुणों से मुक्त िो।

ब्राह्मणक्षत्रयविशा ांशूद्राणा ांच परन्तप।
आणण प्रविभक्तातन स्िभािप्रभिगणैगः ॥ 41॥

(41) ित्रुओंको जीतने वाले (अजुनव), ब्राह्मणों, क्षबत्रयों, वैश्यों और िूद्रों की गततववधधयां उनके स्वभाव से उत्पन्न गुणों के अनुसार अलग-अलग प्रकार की िोती िैं।

चार वणों वाली यि व्यवस्था हिन्दू ूसमाज की कोई अपनी ववलक्षण वस्तु निीं ि। यि सब जगि लागू िोती ि। यि वगीकरण मानव-स्वभाव के प्रकारों पर आधाररत ि। चारों वगों में से प्रत्येक की कुछ सुतनहदवष्ट

वविषेताएं ि ैं, भले ि ी उन्ेंआत्यल्न्तक या अनन्य निीं ंसमझना चाहिए। ये सदा जन्म (आनुवंशिकता) द्वारा तनधारवरत निींिोती।

गीता का उपयोग इस समय ववद्यमान समाज-व्यवस्था के, जो कक बिुत ि ी अनम्य (लचकिीन) और गडबडझाले की ि ै, समथनव के शलए निीं ंकिा जा सकता। गीता चार वगों के शसद्धान्त को अपनाती ि ै और उसके क्षेत्र और अथ वको ववस्तृत करती ि ै। मनुष्य का बाह्य जीवन ऐसा ि ोना चाहिए जो उसके आन्तररक अल्स्तत्व को अशभव्यक्त करता ि ो; ऊपरी तल आन्तररक गिराई को प्रततबबल्म्बत करनेवाला ि ोना चाहिए। प्रत्येक व्यल्क्त का एक अपना जन्मजात स्वभाव ि ोता ि ै और उसको अपनेजीवन में प्रभावी बनाना उसका कत्तव्वय, स्वधम वि ै। प्रत्येक व्यल्क्त भगवान् ्का एक केन्द्र-बबन्दु ु(फोकस), ब्रह्म का एक अंि ि ै। उसकी भववतव्यता अपने जीवन में इस हदव्य सम्भावना को साकार करना ि ै। ववश्व की एक आत्मा ने संसार में आत्माओं की ववववधता उत्पन्न की ि ै, परन्तु ब्रह्म का ववचार ि मारी सारभूत प्रकृतत, ि मारे अल्स्तत्व का सत्य, ि मारा स्वभाव ि ै; गुणों का उपकरण (यन्त्र) ि मारा स्वभाव निीं ि ै, जो कक अशभव्यल्क्त का माध्यम माल ि ै। यहद प्रत्येक व्यल्क्त उस काम को करे, जो उसके शलए उपयुक्त ि ै, यहद वि अपने स्वभाव के ववधान का, अपने स्वधम वका, पालन करे, तो परमात्मा अपने-आप को मानव-प्राखणयों की स्वतन्त्र इच्छा–ल्क्तयों में अशभव्यक्त कर सकेगा। संसार के शलए जो कुछ भी आवश्यक ि ै, वि सब संघष वके बबना ि ो जाएगा। परन्तु मनुष्य वि काम कम ि ी करते ि ैं, जो उन्ेंकरना चाहिए। जब वे यि समझकर कक वे ेसम्पूण वजगत् ्की योजना को जानते ि ैं, घटनाओंका तनधारवण करना ि ुरू कर देते ि ैं, तब वे इस धरती पर ि ारात करने ेलगते ि ैं। जब तक ि मारा कम विमारे स्वभाव के अनुकूल ि ोता रिता ि ै, तब तक मि धमात्वमा रिते ि ैं; और यहद ि म उसे परमात्मा को समवपतव कर दें, तो ि मारा कम वआध्याल्त्मक पूणतवा का एक साधन बन जाता ि ै। जब व्यल्क्त में ववद्यमान ब्रह्म पूरी तरि प्रकट ि ो जाता ि ै, तब वि ि ाश्वत अनश्वर पद को, िाश्वतं पद्म अव्ययम् ्को, प्राप्त कर लेता ि ै। मानव जीवन ि मारे सम्मुख जो समस्या प्रस्तुत करता ि ै, वि मिारे अपने सच्चेआत्म को खोज तनकालनेऔर उसके सत्य के अनुसार जीवन-यापन करने ेकी समस्या ि ै। अन्यथा ि म अपनेस्वभाव के प्रतत पाप कर रि े ि ैं। स्वभाव पर इतना ज़ोर देना इस बात का सूचक ि ै कक मानव-प्राखणयों को व्यल्ष्टयों के रूप में देखा जाना चाहिए और प्रकारों (वगो) के रूप में निीं। अजुनव को बताया गया ि ै कक जो व्यल्क्त एक योद्धा के रूप में वीरतापूवकव युद्ध करता ि ै, वि ज्ञान की ि ाल्न्त के शलए पररपक्व बन जाता ि ै।

स्वभाव के मोटे तौर पर चार प्रकार ि ैं और उनके अनुरूप ि ी सामाल्जक जीवन के भी चार प्रकार ि ैं। इन चार वणों का तनधारवण जन्म या रंग द्वारा निीं ंि ोता, अवपतु ुउन मनोवैज्ञातनक वविेषताओं द्वारा ि ोता ि ै, जो मिें समाज के कुछ सुतनल्श्चत कत्तव्वयों के शलए उपयुक्त बनाती ि ैं।

शमो दमस्तपः शौचांक्षास्न्तराजिगमि च।

ज्ञान ंविज्ञानमास्स्तक्यां ब्रह्मकम गस्भिाजम् ्॥42॥

(42) प्रिान्तता, आत्मसंयम, तपस्या, पववत्नता, सिनिीलता, ईमानदारी, ज्ञान, ववज्ञान और धम वमें श्रद्धा, ये

ब्राह्मण के स्वाभाववक गुण िैं।

जो लोग ब्राह्मण-वण वके िैं, उनसे आिा की जाती िै कक उनमें मानशसक और नैततक गुण िोंगे। तुलना कील्जए, धम्मपद, 393 : "बडे–बडे ेबालों से या वंिसे या उच्च कुल में जन्म लेनेसे कोई ब्राह्मण निीं ंबनता। ल्जसमें सत्य और धम विै, विी ब्राह्मण िै।" सत्ता अन्तदृल्ष्ट को दूवूषत और अन्धा कर देती िै। अतनयल्न्त्रत सत्ता मानशसक िाल्न्त के शलए घातक िै। इसशलए ब्राह्मण प्रत्यक्ष सत्ता को त्याग देते िैं और आग्रि तथा प्ेरम द्वारा एक सामान्य तनयन्त्रण बनाए रखते िैं और सत्ता को धारण करने ेवाले लोगों को पथभ्रष्ट िोने ेसे बचातेिैं।

शौय गतेजो धृतृतदाक्षगयांयुद्धे चाप्यपलायनम् ्।
दानमीश्रिभािश्च क्षाले कम गस्ििभाजम् ्॥43॥

(43) वीरता, तेज, धीरता, सूझ-बूझ, युद्ध से मुंि न मोडना, दानिीलता और नेतृतृव ये क्षल्त्नय के स्वाभाववक कतव्वय िैं।

यद्यवप क्षबत्रय आध्याल्त्मक नेता िोने ेका दावा निीं ंकर सकते, कफर 'भी उनमें वे ेगुण िोतेिैं, ल्जनके

द्वारा वे आध्याल्त्मक सत्यों को कम वकी आवश्यकताओं के अनुसार ढाल सकतेिैं।

कृवषगौरक्ष्यिाणणज्यौश्यिकम गस्ििभाजम् ्।
पररचयात्गमकां कम गशूद्रस्यावप स्ििभाजम् ्॥44॥

(44) कृवष, पिुपालन और व्यापार, ये वैश्य के स्वाभाववक कतव्वय िैं। िूद्र का स्वाभाववक कत्तव्वय सेवा का काय वकरना िै।

यि सब मनुष्यों को सामाल्जक जीवन में उच्चतम ल्स्थतत तक उठनेके शलए एक जैसी सुववधाएं देनेका प्रश्न निीं िै, क्योंकक मनुष्यों की िल्क्तया अलग- अलग प्रकार की िोती िैं, अवपतु यि सब लोगों को एक समान अवसर देने का प्रश्न िै, ल्जससे कक वे अपनी-अपनी प्रततभाओं को फलवती बना सकें। िर ककसी को अपनी दिाओं ं और प्रयत्न के अनुसार अपनी मानवीय पूणतवा तक पिुंचने का अवसर शमलना चाहिए, जो कक ज्ञान और सदाचार का फल िै। इस बात से बिुत कम अन्तर पडता िै कक िम शमट्टी खोदते िैं या कोई व्यवसाय चलाते िैं या ककसी राज्य का िासन करते िैं या ककसी कोठरी में बैठकर ध्यान लगाते िैं। वण-व व्यवस्था इस बात को मानती िै कक ववशभन्न मनुष्य सामान्य हित के शलए ववशभन्न रूपों में, प्रत्यक्ष रूप से उन तीव्र आवश्यकताओंको पूरा करने के द्वारा, ल्जनका कक पता सबको चलता रिता िै, और अपने जीवन और काय वमें सत्य और सौन्दय वके साक्षी रिने े के द्वारा अपना अंिदान करते िैं। समाज एक कृत्यात्मक संगठन िै और उन सब कृत्यों को, जो कक समाज के स्वास्थ्य के शलए आवश्यक िैं, सामाल्जक दृल्ष्ट से समान समझा जाना चाहिए। अलग-अलग प्रकार की क्षमताओं वाले व्यल्क्त एक सप्राण सुगहठत सामाल्जक व्यवस्था में बंधे िुए िै। प्रजातन्त्र एकरूपता की स्थापना

के शलए प्रयत्न निीं ंिै, क्योंकक वि असम्भव िै, अवपतु ुयि संगहठत वववववधता के शलए प्रयत्न िै। मनुष्यों की क्षमताएं समान निीं िोती, परन्तु समाज के शलए सब मनुष्य समान रूप से आवश्यक िैं और उनकी ववशभन्न ल्स्थततयों से प्राप्त िोने वाले उनके अंदिानों का मूल्य भी समान िै।"[464]

स्ेस्ेकिमण्गयशभरतः सशांसद्धध लभते ेनरः ।

स्किमतगनरतः शसद्धध ंयथा विन्दतत तच्छृणु ु॥45॥

(45) अपने-अपने काम में लगा िुआ प्रत्येक व्यल्क्त शसद्धध (पूणतवा) को प्राप्त कर लेता िै। अब तू ूयि सुन कक ककस प्रकार अपना कत्तव्वय करते िुए मनुष्य शसद्धध प्राप्त करता िै।

स्स्ेकिमणगण अशभरतः : अपने-अपनेकाम में तनष्ठापूवकव लगा िुआ। िममें से प्रत्येक को िमारे अपने

स्तर पर अपनी अनुभूततयों और मनोवेगों के प्रतत तनष्ठावान् ्िोना चाहिए; अपने स्वभाव के स्तर से ऊपर का कम वकरनेकी चेष्टा खतरनाक िै। िमें अपनेस्वभाव की िल्क्त के अन्दर रितेिुए पूणतवया अपनेकतव्वय का पालन करना चाहिए।

यतः प्रिवृत्तभूतूानाांयेन सिशगमदां ततम् ्।

स्किमणगा तमभ्यच्य गशसद्धध ंविन्दतत मार्नः॥46॥

(46) ल्जससे ये सब प्राणी उत्पन्न िोतिें और ल्जसने इन सबको व्याप्त ककया िुआ िै, उस परमात्मा की पूजा अपनेकत्तव्वय के पालन द्वारा करता िुआ मनुष्य शसद्धध (पूणतवा) को प्राप्त कर लेता िै।

---

464 श्रीगैरल्ड िडवनेअपनी पुस्तक मैन दी मास्टर' (1942) में समाज के 'चतुववधव संगठन' की आवश्यकता पर ज़ोर हदया िै। वि शलखतिें: "ऐसा प्रतीत िोता िै कक मानव-समाज में सवा से चेतना के चार प्रकार या स्तर रि िैं। पिले स्तर के ववषय में ्मि पिले िी बता चुके िैं। पे आंखें या स्पि-वसूतूर (ऐंटेना) िैं, संकंट-काल में देखने वाले और अनुभव करने वाले। आंखों के नीचे

िाथ िैं; अग्रमल्स्तष्क के पीछे चालक केन्द्र िै। देखनेवालों के नीचे दो मानशसक श्रेखणयां ंिैं; ऊपरी और तनचली मध्यम श्रेखणयां, राजनीततज्ञ और तकनीक-वविेषज्ञ। िमारी वतमवान संकंट की दिा मुख्य रूप से उनके कारण िी िै। इनमें से एक ने प्रिासन के क्षेत्न में, सामाल्जक उपकरणों के क्षेते्र में बिुत प्रगतत करके दैत्याकार राज्यों का अल्स्तत्व सम्भव बना हदया िै और इस प्रकार अपने उन आन्तररक दबावों को, ल्जनका कक समाधान निीं िुआ िै, और अधधक तीव्र बना हदया िै। दूसूरे ने, अथात्व ्तकनीक-वविेषज्ञ ने, संयंन्त्रों में, िल्क्त के यन्त्रजात में और भौततक उपकरणों में और भी अधधक तकनीकी प्रगतत करके िमारे समाजों को अधधवृद्ूधयां ं(िाइपररौफीज), असन्तुशलत आन्तररक रचना वाले िरीर, बना हदया िै और ये एक-
दूसूरे के शलए घातक िैं। इन दो मध्यम वगों के अलावा, जो कक पिले िी व्यष्टीकृत िोनेके कारण अल्स्थर और ववघटनिील बन चुके िैं, एक और आधारभूतू, अवविेषज्ञ, ननुनच न करने वाला वग,व या जनता, बच जाता िै अथात्व ्अनुयायी वग।व यि वग वन केवल श्रद्धा रखने में समथ वि, अवपतु यि श्रद्धा के बबना इकट्ठा रि िी निीं सकता, श्रद्धा के बबना यि जो िै निीं ं सकता।" (पृ.ृ 133-37)। श्री िड वने यि भी स्मरण कराया िै कक "समाजववज्ञान की आय-वसंस्कृत ववचारधारा, ल्जसने पिले-पिल समाज के इस चतुववधव गठन की रूपरेखा बनाई थी, और उसका नामकरण ककया था, िमारी भी उतनी िी िै, ल्जतनी की
भारत की।" (पृ.ृ 145)।

काय वभगवान् ्की पूजा िै, परमात्मा के प्रतत मनुष्य की श्रद्धांजशल।

गीता का मत िै कक गुण और क्षमता कृत्यात्मक ववभागों का आधार िैं। पुनजन्वम के शसद्धान्त को स्वीकार करते िुए गीता यि मानती िै कक मनुष्य का जन्मजात स्वभाव उसके अपने अतीत-जीवनों द्वारा तनधारवरत िोता िै। पूणतवा के सब रूप एक िी हदिा में निींिैं। प्रत्येक व्यल्क्त अपने से ऊपर ककसी वस्तु को, अपनेसे ऊपर उठनेको लक्ष्य मानकर चलता िै, चािे वि व्यल्क्तगत पूणतवा के शलए यत्न करता िो, चािे वि कला के शलए जीता िो या चािे वि अपने साधथयों के हित के शलए काय वकरता िो। साथ िी देखखए 18, 48 और 60।

श्रेयान्स्धिमो विगुणुः परधमात्गस्निुस्ष्ठतात् ्।
स्भाितनयत ांकम गकुिन्गनाप्नोतत ककस्ल्बषम् ्॥47॥

(47) अपना धम व(तनयम) यहद अपूण वढंग से भी पालन ककया जा रिा िो, तो भी वि दूसूरे के धम वसे, ल्जसका कक पालन पूणतवा के साथ ककया जा सकता िै, अधधक अच्छा िै। अपनेस्वभाव के द्वारा तनयत ककए गए कतव्वय का पालन करने वाले व्यल्क्त को पाप निीं ंलगता।

देखखए 3, 35। अपनेमन को उन कामों में लगानेका, जो कक िमारे स्वभाव से मेल निीं खाते,े कोई लाभ

निीं। िममें से प्रत्येक के अन्दर अल्स्तत्वमान् ्(नाम-रूपमय) िोने का एक मूल तत्व ववद्यमान िै, हदव्य आत्म-अशभव्यल्क्त का एक ववचार। विी िमारा वास्तववक स्वभाव िै, जो िमारी ववशभन्न गततववधधयों में अंतः अशभव्यक्त िोता िै। अपनेववचारों, मित्वाकांक्षाओं और प्रयत्नों में उसके द्वारा हदखाए गए पथ पर चलकर िम परमात्मा द्वारा िमारे शलए तनयत लक्ष्य को अधधकाधधक रूप में प्राप्त करते जाते िैं। ल्जसे िम प्रजातन्त्र किते िैं, वि जीवन की एक ऐसी पद्धतत िै, ल्जसमें प्रत्येक मानव-प्राणी के एक व्यल्ष्ट बननेके, एक अपूव वइकाई बनने के अधधकारों का सम्मान करनेकी आवश्यकता िोती िै। िमें ककसी भी मनुष्य से कभी भी घृणा न करनी चाहिए, क्योंकक वि कुछ ऐसा काम कर सकता िै, ल्जसे अन्य लोग निीं ंकर सकते।

सिज ांकम गकौन्तेय सदोषमवप न त्यजेत् ्।
सिारगम्भा हि दोषेण धूमेनाल्ग्नररवािृताः ॥48॥

(48) िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), मनुष्य को अपनेस्वभाव के उपयुक्त काय वको छोडना निीं चाहिए, चािे उसमें दोष भी क्यों न िों; क्योंकक जैसे आग धुएं से ढकी रिती िै, उसी प्रकार सब काय वदोषों से आच्छन्न िैं।

कमयवोग और परम शसद्धध (पूणतवा)

असक्तबुद्धधः सिरग स्जतात्मा विगतस्पृिः ।
नैष्कम्यशगसद्धध ांपरमा ांसन्यांासेनाधधगच्छतत ॥49॥

(49) ल्जसकी बुद्धध सब जगि अनासक्त रिती िै, ल्जसने ेअपने आत्म को वि में कर शलया िै और ल्जसे कोई इच्छा िेषे निीं रिी िै-वि संन्यास द्वारा उस सवोच्च दिा तक पिुंच जाता िै, जो सब प्रकार के कम वसे ऊपर िैं।

गीता ने इस बात को दिुराया िै कक आध्याल्त्मक पूणतवा के शलए संयम और इच्छारहित िोना आवश्यक

ै। ववषयों के प्रतत आसल्क्त, एक अिंकार की भावना, िमारे तनम्नतर स्वभाव की वविेषेता िै। यहद िमें अपने आत्मविी और स्वतः प्रकाशित सच्चे आत्म का ज्ञान प्राप्त करना िो, तो िमें अज्ञान और जडता से युक्त तथा सांसाररक सम्पवत्त से प्ेरम रखनेवाले अपने तनम्नतर स्वभाव पर ववजय पानी िोगी।

नैष्कम्य ग: सब कमों से ऊपर उठ जानेकी ल्स्थतत। यि सब प्रकार के कमों से पूण वप्रत्यावतनव निीं िैं। इस प्रकार की तनल्ष्क्रयता तब तक सम्भव निीं िै, जब तक िम िरीर धारण ककए िुए िैं। गीता का आग्रि आन्तररक संन्यास पर िै। क्योंकक अिंकार और प्रकृतत एकजातीय िैं, इसशलए मुक्त आत्मा ब्रह्म या वविुद्ध आत्मा बनकर, ल्जसे कक तनस्तदध, िान्त और तनल्ष्क्रय बताया गया िै, प्रकृतत के जगत् ्में यि जानते िुए काय वकरती िै कक ब्रह्म क्या िै।

यिां ंसवोच्च दिा का वणनव ब्रह्म में प्रवि करनेके रूप में सकारात्मक रूप में निीं, अवपतु काम (इच्छा) से मुक्त िोनेके नकारात्मक रूप में ककया गया िै।

शसद्धध और ब्रह्म

शसद्धध ंप्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोतत तनबोध मे।

समासेनैि कौन्तेय तनष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥50॥

(50) िे कुन्ती के पुत्र (अजुनव), अब तू ूसंक्षेप में मुझसे यि सुन कक शसद्धध को प्राप्त कर लेने के बाद व्यल्क्त ब्रह्म को कैसे प्राप्त करता िै, जो कक ज्ञान की सवोच्च तनष्पवत्त िै।

िंकराचाय वने शलखा िै : "इस प्रकार बबलकुल स्वतःस्पष्ट, सरलता से ज्ञेय, बबलकुल तनकटस्थ और मनुष्य की आत्मा बना िुआ ब्रह्म भी अज्ञानी मनुष्यों को, ल्जनकी बुद्धध अज्ञान द्वारा उत्पन्न नाम-रूपों के पृथकववध तत्वों में बिकी िुई िै, अज्ञात, कहठनाई से जाननेयोग्य, बिुत दूरूस्थ और ऐसा प्रतीत िोता िै, मानो वि कोई पृथक् वस्तु िो।"[465] ल्जस प्रकार अपने िरीर को जाननेके शलए ककसी प्रमाण की आवश्यकता निींिोती, उसी प्रकार आत्मा को जाननेके शलए भी ककसी प्रमाण की आवश्यकता निीं िै, क्योंकक वि तो िरीर से भी तनकटतर िै। जब िम बाह्य वस्तुओंसे ववमुख िो जाते िैं और अपनी बुद्धध को प्रशिक्षक्षत करते िैं, तो वि तुरन्त पिचानी जाती िै। देखखए 9, 21

465 अववद्याकल्ल्पतनामरूपवविेषाकारापितबुद्धीनाम्, ् अत्यन्तप्रशसद्धं सुववज्ञेयेम्, ् आसत्रान्तरम्, ् आत्मभूतूम्, ् अप्यप्रशसद्धं, दुवुवज्ञे यम्, ् अततदुरिम्, ् अन्यहदव च प्रततभात्यववेककनाम् ्।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानां तनयम्य च ।
शब्दादीविषयास्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥51॥

(51) ववविुद्ध बुद्धध से युक्त िोकर, अपने-आप को दृढ़तापूवकव संयम में रखकर, िदद आहद इल्न्द्रयों के ववषयों को त्यागकर और राग और द्वेष को छोडकर;

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतिाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो तनत्यां िैराग्यां समुपाधश्रतः ॥52॥

(52) एकान्त में तनवास करता िुआ, अल्प आिार करता िुआ, वाणी, िरीर और मन को संयम में रखता िुआ और सदा ध्यान और एकाग्रता में लीन रिता िुआ और वैराग्य में िरण शलये िुए;

ध्यानयोग को यिां द्वन्द्व समास माना जाता िै, ल्जसका अथ वि 'आत्मा के स्वभाव के ववषय में ध्यान और उसपर मानशसक एकाग्रता ।' - िंकराचायव

अिङ्कारां बल ांदद्ग कामे क्रोधां पररग्रिम् ।
विमुच्य तनममगः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥53॥

(53) अिंकार, बल, घमण्ड, इच्छा, क्रोध और सम्पवत्त को त्यागकर, ममत्त्व की भावना से रहित और िान्ति धचत्त वाला वि ब्रह्म के साथ 548 एकाकार िोने के योग्य िो जाता िै।

अत्तार ने इब्रािीम एधम की एक उल्क्त उद्धृत की िै : "साथक के शलए आनन्द का द्वार खुले, इससे पिले उसके हृदय से तीन आवरण िटने चाहिए। पिला आवरण तो यि िै कक यहद उसे दोनों लोकों का साम्राज्य एक िाश्वत उपिार के रूप में हदया जाने लगे, तो भी वि आनल्न्दत न िो; क्योंकक जो भी कोई ककसी शसरजी गई वस्तु के शलए आनल्न्दत िोता िै, वि लोभी िै; और लोभी मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान निीं िो सकता। दूसरा आवरण यि िै कक यहद उसके पास दोनों लोकों का साम्राज्य िो और वि उससे ले शलया जाए, तो उसे इस प्रकार अपनेदररद्र िो जानेपर िोक निीं करना चाहिए, क्योंकक यि क्रोध का धचह्न िै; और जो क्रुद्ध िोता िै वि कष्ट पाता िै। तीसरा आवरण यि िै कक उसे ककसी भी स्तुतत या पक्षपात के कारण बिकना निीं चाहिए, क्योंकक जो कोई बिकता िै उसकी आत्मा क्षुद्र िोती िै और इस प्रकार के व्यल्क्त की आंखों पर (सत्य की ओर से) पदाव पडा रिता िै। साधक को उच्च मन वाला िोना चाहिए।" ब्राउन : ए शलटरेरी हिस्री ऑफ पशियवा, खण्ड I, (1902), पृ. 425

ब्रह्मभूतूः प्रसन्नात्मा न शोचतत न काङ्क्षतत ।

समः सिेषु भूतेषु मद्भस्क्त लभतेपराम् ्॥54॥

(54) ब्रह्म के साथ एकाकार िोकर और प्रिान्तात्मा बननेपर उसे न तो कोई िोक िोता िै और न कोई इच्छा िी िोती िै। सब प्राखणयों को समान समझता िुआ वि मेरी सवोच्च भल्क्त को प्राप्त कर लेता िै।

यि श्लोक इस बात का एक और संकेत िै कक गीता की दृल्ष्ट में व्यल्क्त का तनगुणव ब्रह्म में ववलीन िो जाना िी सवोच्च ल्स्थतत निीं, अवपतु उस भगवान् ्की भल्क्त सवोच्च ल्स्थतत िै, जो अपनेअन्दर अचल और चल दोनों को शमलाए िुए िै।

भक्त्यामामशभजानाततयािान्यश्चास्स्मतत्तिः ।

ततो मा ांतत्तिो ज्ञात्िा विशतेतदनन्तरम् ्॥55॥

(55) भल्क्त के द्वारा वि इस बात को जान लेता िै कक म ैंवस्तुतः कौन िंूं और ककतना िंूं; तब तत्व-रूप में मुझे े जान लेने के बाद वि मुझमें प्रविे करता िै।

ज्ञाता अथवा भक्त परमेश्वर, पूणपुवरुष, के साथ आत्मज्ञान और आत्मानुभाव में एकाकार िो जाता िै। ज्ञान और भल्क्त दोनों का एक िी लक्ष्य िै। ब्रह्म बननेका अथ िै- परमात्मा से प्ेरेम करना, उसे पूरी तरि जानना और उसमें प्रविे कर जाना।

इस शिक्षा का अजुनव के मामले में प्रयोग

सिकगमाण्गयवप सदा क्िुोणामद्व्यपाश्रयः ।

मत्प्रसादादिाप्नोतत शाश्िताांपदमव्ययम् ्॥56॥

(56) मेरी िरण में आकर तनरन्तर सब प्रकार के कमों को करता िुआ वि मेरी कृपा से िाश्वत और अमर पद प्राप्त करता िै।

कमयवोग का भी लक्ष्य यिी िै। इन तीन श्लोकों में लेखक बताता िै कक ज्ञान, भल्क्त और कम वसाथ-साथ िी रिते िैं। बात केवल इतनी िै कक कम वइस ज्ञान के साथ ककया जाता िै कक प्रकृतत ब्रह्म की िल्क्त िै और व्यल्क्त परमात्मा का केवल एक उपकरण (तनशमत्त) िै। अपनेमन को परब्रह्म में लगाकर और उसकी कृपा से, चािे वि कुछ भी क्यों न करता रिे, वि िाश्वत रूप से परम धाम में तनवास करता िै।

चेतसा सिकगमाणगण मतय सन्न्यस्य मत्परः ।

बुद्धधयोगमुपाधश्रत्य मस्च्त्तः सततांभि ॥57॥

(57) अपनेधचत्त में सब कमों को मुझे ेसमवपतव करके मुझेभगवान् ्समझकर बुद्धध की ल्स्थरता का अभ्यास करता िुआ तू ूअपनेववचारों को तनरन्तर मुझमें लगाए रख।

"मन, संकल्प और चेतना द्वारा सदा मेरे साथ एकाकार रि।" ववश्व के ईश्वर के प्रतत पूण वआत्मदान के फलस्वरूप वि ईश्वर िमारे जीवन की आत्मा बन जाता िै।

मस्च्चत्तः सिदुगगुाणगण मत्प्रसादात्तररष्यशस ।
अथ चेत्त्िमिङ्कारान्न श्रोष्यशस विनश्यशस ॥58॥

(58) अपनेधचत्त को मुझमें ल्स्थर करके तू मेरी कृपा से सब कहठनाइयों को पार कर जाएगा; परन्तुयहद अिंकार के कारण तू ूमेरी बात न सुनेगा, तो तू ूववनष्ट िो जाएगा।

मनुष्य मुल्क्त या नरकवास में से ककसी एक को चुनने ेके शलए स्वतन्त्र िै। यहद मिोवि यि समझें कक मि सविवल्क्तमान् ्की इच्छा का प्रततरोध कर सकतिैं, तो िमें कष्ट उठाना पडेगो। परमात्मा की अवज्ञा अिंकार की भावना के कारण िोती िै और अन्ततोगत्वा वि तनश्क्ति रिती िै।

यदिङ्कारमाधश्रत्य न योत्स्य इतत मन्यसे ।
शमर्थ्यैष व्यिसायस्ते प्रकृततस्त्ाि ां तनयोक्ष्यतत ॥59॥

(59) यहद अिंकार के वि में िोकर तू ूयि सोचेकक 'म ैंनिीं लडगा' तो तेरा यि तनश्चय व्यथ वि।ै प्रकृतत तुझे े वववि करेगी।

'न लडने ेकी इच्छा उसकी केवल ऊपरी प्रकृतत (स्वभाव) की अशभव्यल्क्त िोगी; उसका गम्भीरतर अल्स्तत्व उसे युद्ध की ओर ले जाएगा। यहद वि कष्ट के भय से अपने िस्त्र त्याग देता िै और युद्ध से ववरत िो जाता िै और यहद युद्ध उसके बबना भी चलता रिता िै और वि अनुभव करता िै कक उसके युद्ध से ववरत रिने के पररणाम मानवता के शलए ववनािकारी िोंगे, तो वि ववश्वात्मा के तनष्ठुर दबाव द्वारा िधथयार उठानेके शलए प्रेररत ककया जाएगा। इसशलए उसे ववश्व के ववकास का तनषेध और ववरोध करने ेके बजाय उसमें सियोग करना और उसे आगे बढ़ानेका यत्न करना चाहिए। यहद वि ऐसा करे, तो वि सारतः तनधारवरत उपकरण से बदलकर एक तनधारवक उपकरण बन जाएगा। अजुनव की तनम्नतर प्रकृतत उसके भ्रम का और उसके अपने अल्स्तत्व के उच्चतर सत्य से पतन का कारण बनेगी। अब अजुनव ने सत्य को देख शलया िै और वि स्वाथ वके शलए निीं, अवपतु भगवान् ्के सचेत उपकरण के रूप में काय वकर सकता िै। साधक को सारे स्वाथपूवण वभय का त्याग करना िोगा और अपने आन्तररक प्रकाि का आदेि मानना िोगा, जो उसे सब संकटों और बाधाओं के पार ले जाएगा।

परमात्मा ि◌मारे सम्मुख ि◌ते रख देता ि◌ै और उन्ेंस्वीकार करना ि◌मारा काम ि◌ै। ि◌में बिाव के ववरुद्ध संघष वकरने में अपनी ि◌ल्क्त का अपव्यय निींकरना चाहिए। ि◌ममें से अधधकांिलोग स्वाभाववक मनुष्य ि◌ोतेिैं, जो अपनी छोटी-छोटी योजनाओं के ववषय में बिुत उत्सुक, आवेिपूण वऔर सुतनल्श्चत ि◌ोते ि◌ैं। परन्तु ि◌में बदलना िोगा। ल्जस उपाय द्वारा ि◌म अधधकतम उपयोगी शसद्ध ि◌ो सकते ि◌ैं वि परमात्मा की इच्छा के सम्मुख शसर झुका देने का ि◌ी ि◌ै। सेण्ट फ्रांशसस डड सालेस की एक वप्रय प्राथनवा में इस पूण वअधीनता की इस भावना को संक्षेप में इस प्रकार प्रकट ककया गया ि◌ै : "ि◌ां ◌ंवपता, ि◌ां,◌ं और सवदवा ि◌ा।"

स्िभािजेन कौन्तेय तनबद्धः स्र्ेन कमणगा।

कतुंनेंच्छशसयन्मोिात्कररष्यस्यिशोऽवपतत् ◌्॥60॥

(60) ि◌े कुन्ती के पुत्र (अजुनव), तू भ्रम के कारण (मोिवि) ल्जसे करना निींचािता, उसे भी तू इच्छा न ि◌ोते िुए भी अपनेस्वभाव से उत्पन्न कम वके कारण बंधा ि◌ुआ करेगा।

अपनेस्वभाव की ववकि कर देनेवाली ि◌ल्क्त के द्वारा तुम उसकी ओर धकेल ि◌ी हदए जाओगे।

ईश्िरः सिभूगतूानाांहृद्देऽशेजुेनग ततष्ठतत ।

रामयन्सिभूगतूातन यन्रारूढ़ातन मायया ॥62॥

(61) अजुनव, ईश्वर सब प्राखणयों के हृदय में तनवास करता ि◌ै और वि उन सबको इस प्रकार घुमा रिा ि◌ै मानो वे ककसी यन्त्र पर चढ़े ि◌ुए ि◌ों।

मिारे जन्मजात स्वभाव और उसके भाग्यतनणायवक बलप्रयोग का सम्बन्ध उस भगवान् ◌्द्वारा तनयल्न्त्रत रिता ि◌ै, जो ि◌मारे हृदय में तनवास करता ि◌ै और ि◌मारे ववकास का पथप्रदिनव करता ि◌ै और उसे संयत रखता ि◌ै। वि ि◌ल्क्त, जो घटनाओं का तनधारवण करती ि◌ै, जैसा कक ि◌ाडी की रचनाओं में हदखाई पडता ि◌ै, अन्धी, अनुभूततिून्य और ववचारिीन संकल्पि–ल्क्त निीं ि◌ै, ल्जसे कक ि◌म 'भाग्य', 'भववतव्यता' या दैवयोग' का नाम देते ि◌ैं।466' ववश्व के तनयमों पर ि◌ासन करने वाली आत्मा, ववश्व की आयोजना के ववकास का अध्यक्ष परमात्मा, प्रत्येक प्राणी के हृदय में भी ल्स्थत ि◌ै और उसे ि◌ान्त निीं बैठनेदेता। "तेरे बबना ि◌म क्षण-भर भी जीववत निीं ◌ंरि सकते। सत्य-रूप में तू ि◌मारे अन्दर और बािर सदा ववद्यमान रिता ि◌ै।"[467]

---

466 एक ऊंघतेिुए बुनने वाले की भांतत,

ल्जसकी उंगशलयां दक्षतायुक्त लापरवािी सेखेलती रिती ि◌ैं,

संकल्पि–ल्क्त ने एक अनमनेभाव से बुनना ि◌ुरू ककया ि◌ै,

तब से, जब जीवन पिले-पिल ि◌ुरू ि◌ुआ था, और वि सदा इसी प्रकार बुनती रिेगी।

467 त्वां ववनाय न ि◌क्रोशम जीववतुं क्षणमेव हि।
अन्तबहविश्च तनत्यं त्वंसत्यरूपेण वतसेव ॥

भगवान् ्िमारे अल्स्तत्व का आन्तररकतम आत्म ि। सम्पूण वजीवन उसके जीवन की लय की गतत िै और िमारी िल्क्तयां और कम वसबके सब उससे िी तनकले िैं। यहद िम अपने अज्ञान के कारण इस गम्भीरतम सत्य को भूल जाएं, तो इससे सत्य निीं बदल जाता। यहद िम सचेत रूप से उस परमात्मा के सत्य में जीवन-यापन करें, तो िम अपने सब कम वपरमात्मा के िाथों में छोड देंगे और अपनेअिंकार से छुटकारा पा जाएंगे। यहद मि ऐसा न करें, तब भी सत्य की िी ववजय िोगी। कभी-न-कभी िमें परमात्मा के प्रयोजन के सम्मुख घुटने ेटेकने िी पडेंगे, परन्तु उस समय तक इस बीच की अवधध में ककसी प्रकार की वववविता निीं ंिै। भगवान् ्िमारा स्वेच्छापूवकव सियोग चािता िै, ल्जससे सौन्दय वऔर अच्छाई का प्रसव पीडा के बबना और प्रयासिीन रूप से जन्म िो जाए। जब िम परमात्मा के प्रकाि के शलए पारदिकव माध्यम बन जाते िैं, तो वि अपने काय वके शलए मिारा उपयोग करता िै।

तमेि शरण ंगच्छ सिभगिोन भारत।
तत्प्रसादात्पराशांल्स्तस्थान ंप्राप्स्यशसशाश्तिम्् ॥62॥

(62) िे भारत (अजुनव), तू ूअपनेसम्पूण वअल्स्तत्व के साथ उसी की िरण मे जा। उसकी कृपा से तुझे ेपरम िाल्न्त और िाश्वत धाम प्राप्त िोगा।

सिभगिोन : अपनेसम्पूण वअल्स्तत्व के साथ। िमें अपनेअल्स्तत्व सब स्तरों पर ब्रह्म की चेतना अनुभव िोनी चाहिए। राधा का कृष्ण के प्रतत प्रेेमा आध्याल्त्मक से लेकर िारीररक तक, अल्स्तत्व के सब स्तरों पर अखण्ड प्रेेम का प्रतीक िै।

अजुनव से किा गया िै कक वि परमात्मा के साथ सियोग करे और अपना कतव्वय पूरा करे। उसे अपने अल्स्तत्व की सम्पूण वल्स्थतत को बदलना िोगा। अपने-आप को भगवान् ्की सेवा में लगा देना िोगा। तब उसका मिो समाप्त िो जाएगा, काय वऔर कारण का बन्धन टूट जाएगा और वि कफर छायािीन प्रकाि को, पूण व समस्वरता और सवोच्च आनन्द को प्राप्त कर लेगा।

इतत ते ज्ञानमाख्यातंगुह्युयाद्गुह्युयतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छशस तथा कुरु ॥63॥

(63) इस प्रकार मनैं तुझे ेयि ज्ञान बतलाया िै, जो सब रिस्यों से बडा रिस्य िै। इस पर भलीभांतत ववचार करने ेके बाद तेरी जैसी इच्छा िो, वैसा कर।

विमृश्यैतद् अशेषेण : इस पर भलीभांतत ववचार करके। िमें अपनी बुद्धध का प्रयोग करना िोगा468, और अपनेवववेक से काम लेना िोगा।

यथा इच्छशस तथा कुरु : जैसी तेरी इच्छा िो, वैसा कर। परमात्मा देखनेमें तटस्थ या तनरपेक्ष प्रतीत िोता िै, क्योंकक उसने चुनने का तनणयव अजुनव के िाथ में छोड हदया िै। उसकी यि प्रतीयमान तनरपेक्षता उसकी इस धचन्ता के कारण िै कक िममें से प्रत्येक उसके पास अपनी स्वेच्छा से िी पिुंचे। वि ककसी पर भी दबाव निीं डालता, क्योंकक स्वतन्त्र स्वतःस्फूततवा बिुत मूल्यवान् ्िै। सियोग के शलए मनुष्य को मनाया जाना िै, उस पर दबाव निींडाला जाना; उसको आकृष्ट ककया जाना िै, िांका निीं ंजाना; उसे मनाकर तैयार ककया जाना िै, वववि निीं ंककया जाना। भगवान् ्अपना आदेि ऊपर से निीं थोप देता। परमात्मा की पुकार को स्वीकार करनेके शलए या अस्वीकार कर देनेके शलए िम िर समय स्वतन्त्र िैं। एकत्व स्थावपत करने ेवाला आत्मसमपणव साथक की पूणतवम सिमतत से ककया जाना चाहिए। परमात्मा िमारे बदले आरोिण का काम निींकरता, िालांकक यहद िम लडखडाने लगें, तो वि िमें सिायता देनेके शलए सदा तैयार रिता िै और जब िम धगर पडें, तो िमें धीरज बंधाता िै। वि तब तक धैय वसे प्रतीक्षा करने ेको तैयार िै, जब तक िम उसकी ओर अशभमुख न िों।

मानवीय स्वतन्त्रता के शसद्धान्त और पूव वतनयतवाद (पूवतवनणयवन) के शसद्धान्त के मध्य संघष वके कारण यूरोप और भारत में काफ़ी वाद-वववाद िुआ िै। टॉमस ऐक्वाइनास का मत िै कक संकल्पिल्क्त और मानवीय प्रयत्न की स्वतन्त्रता का मनुष्य के उद्धार में बिुत बडा िाथ िोता िै, यद्यवप स्वयंसंकल्प- िल्क्त को भी परमात्मा की कृपा के समथनव की आवश्यकता पड सकती िै। "पूवतवनणयवनवाहदयों को भी अच्छे कायों और प्राथनवा के शलए यत्न करना िोगा; क्योंकक इन उपायों के द्वारा पूववववधान को सुतनल्श्चतम रूप से पूरा ककया जा सकता िै... और इसशलए प्राणी पूववववधान को आगे बढ़ाने में सिायक तो िो सकते िैं, परन्तु वे उसमें बाधा निीं डाल सकते।"[469] मनुष्य इस बात के शलए स्वतन्त्र िै कक वि परमात्मा द्वारा प्रस्तुत की गई उसकी कृपा को अस्वीकार कर दे। बोनावेन्त्यूरा का ववचार िै कक परमात्मा मनुष्यों पर कृपा करना चािता िै, परन्तु केवल उन लोगों पर, जो अपनेआचरण द्वारा अपने-आप को उस कृपा को ग्रिण करने के शलए. तैयार करते िैं। डन्स स्कौटस की दृल्ष्ट में, क्योंकक इच्छा की स्वतन्त्रता परमात्मा का आदेि िै, इसशलए परमात्मा भी मनुष्य के तनश्चय पर कोई सीधा प्रभाव निीं ंडाल सकता। मनुष्य चािे तो परमात्मा की कृपा के साथ सियोग कर सकता िै, पर वि चािे तो सियोग से ववरत भी रि सकता िै।

आध्याल्त्मक नेता िम पर िारीररक हिंसा द्वारा, चमत्कार-प्रदिनव द्वारा या जादू ूद्वारा प्रभाव निीं डालते। सच्चा गुरु शमथ्या दातयत्व निीं लेता। यहद शिष्य कोई ग़लती भी कर बैठे, तो वि उसे केवल सलाि देगा और यहद शिष्य की चुनाव करनेकी स्वतन्त्रता पर आंच आती िो, तो वि उसे ग़लत रास्ते से भी वापस लौट आने े

468 तुलना कील्जए, मिाभारत, 12, 141, 102 तस्मात् ्कौन्तेय ववदुषा धमाधवमववतनश्चये। बुद्धधमास्थाय लोकेल्स्मन् ् वततततव्यं ंकृतात्मना ॥

469 सम्मा धथयोलोल्जका । अंग्रेजी अनुवाद इंगशलि डोमोतनकन प्रौववन्स के पादररयों द्वारा । द्ववतीय संस्करण (1929), खण्ड 1, क्यू. 23, अनुच्छेद 8

के शलए वववि निीं ंकरेगा। ग़लती भी ववकास की एक दिा िै। गुरु शिष्य के प्रारल्म्भक कदमो को उसी प्रकार उत्साहित करता िै, ल्जस प्रकार वपता बच्चेके लडखडातें कदमो को बढ़ावा देता िै। जब शिष्य कफसलकर धगरता ै, तो गुरु सियता के शलए अपना िाथ आगे बढ़ाता िै, पर अपनेमाग वको चुनने ेऔर अपनेकदमों को संभालकर रखनेका काम वि शिष्य पर िी छोड देता िै।

कृष्ण केवल सारथी िै; वि अजुनव के तनदेि का पालन करेगा। उसनेकोई िस्त्र धारण निीं ंककया िुआ। यहद वि अजुनव पर कोई प्रभाव डालता िै, तो वि अपने उस सवजवयी प्रेम द्वारा डालता िै, जो कभी समाप्त निीं िोता। अजुनव को अपनेशलए स्वयंववचार करना चाहिए और अपने शलए स्वयंिी माग वखोज तनकालना चाहिए। उसे उन सीधे-सादे अन्धववश्वासों के आधार पर काय वनिींकरना चाहिए, जो कक आदत से या िददप्रमाण से प्राप्त िुए िैं। अस्पष्ट मान्यताओं को अतनवाय वरूप से और भावुकतापूवकव अपना शलए जानेके फलस्वरूप कट्टर धमान्वधताएं उत्पन्न िुई िैं और उनके कारण मनुष्यों को अकथनीय कष्ट उठाना पडा िै। इसशलए यि आवश्यक ै कक मन और ववश्वासों के शलए कोई तकवसंगत और अनुभवात्मक औधचत्य ढूंढे। अजुनव को एक वास्तववक अखण्डता की अनुभूतत प्राप्त करनी िोगी; परन्तु उसके ववचार उसके अपनेिैं और गुरु द्वारा उस पर थोपे निीं गए िैं। दूसूरों पर अपनेशसद्धान्तों को थोपना शिक्षण निीं ंिै।

अल्न्तम अनुरोध

सिगुह्यतम ंभूयः श्रृणु ुमे परम ंिचः।

इष्टोऽशस मे दृढ़शमतत ततो िक्ष्याशम ते हितम् ॥64॥

(64) अब तू ूमेरे सवोच्च वचनों को सुन, जो सबसे अधधक रिस्यपूण विैं। क्योंकक तू मेरा वप्रय िै, इसशलए म ैं तुझे ेयि बतलाऊगा कक तेरे शलए क्या वस्तु हितकर िै।

मन्मना भि भद्भक्तो मद्याजी मा ंनमस्कुरु ।

मामेिैष्यशस सत्यां ते प्रततजाने वप्रयोऽशस मे ॥65॥

(65) अपनेमन को मुझमें लगा; मेरा भक्त बन; मेरे शलए यज्ञ कर; मुझेप्रणाम कर। इस प्रकार तू मुझ तक पिुंच जाएगा। म ैंतुझे ेसचमुच इस बात का वचन देता िंूं, क्योंकक तू मुझे ेवप्रय िै।

ल्जस सवोच्च उपदेि के साथ गुरु ने नौवें अध्याय (34) को समाप्त ककया था, उसी चरम रिस्य को यिां कफर दुिराया गया िै।

ववचार, पूजा, यज्ञ और श्रद्धा इन सबको परमात्मा की और लगाया जाना चाहिए। िमें परमात्मा के सम्मुख एक सरल, अववराम और ववश्वासपूण वआत्मसमपणव के साथ पिुंचना चाहिए। िमें अपने-आप को इस ईसाई पद के िददों में उसके सम्मुख खोल देना चाहिए :

"िे वप्रय, म ैंअपने-आप को तेरे िाथों में सौंपता िंूं, सदा तेरा, केवल तेरा बननेके शलए।"

परमात्मा िमें वापस अपनेपास ले आने के शलए अपनी दयालुता, प्रेम और उत्सुकता के अपनेस्वभाव को प्रकट करता िै। वि इस बात की प्रतीक्षा कर रिा िै कक यहद िम केवल अपने हृदय उसके शलए खोल दें, तो वि उनमे प्रविे कर जाए और िम पर अधधकार कर ले। िमारा आल्त्मक जीवन िमारे उस तक जानेपर भी उतना िी तनभरव िै, ल्जतना कक उसके िम तक आने पर। यि केवल िमारा परमात्मा तक आरोिण निीं, अवपतु परमात्मा का मनुष्य तक अवरोिण भी िै। कवव ठाकुर के िददों पर ध्यान दें:

"तुमने उसकी तनःिदद पदचाप निीं सुनी ? वि आता िै, आता िै, तनत्य आता िै।"

परमात्मा का प्रेम िमारी आत्माओं पर दबाव डाल रिा िै और यहद िम अपने-आप को उसके अनवरत आगमन के शलए खोल दें, तो वि िमारी आत्मा में प्रववष्ट िो जाएगा, वि िमारे स्वभाव को स्वच्छ कर देगा और उसे मुक्त कर देगा और िमें दमकतिुए प्रकाि की भांतत चमका देगा। परमात्मा, जो सिायता के शलए सदा उद्यत िै, केवल इस बात की प्रतीक्षा कर रिा िै कक िम उससे ववश्वासपूवकव सिायता के शलए अनुरोध करें।

सिधगमाम्परररत्यज्य मामेकां शरण ांव्रज ।
अिां त्िा सिपगापेभ्यो मोक्षतयष्याशम मा शुचः॥66॥

(66)सब कतव्वयों को छोडकर तू केवल मेरी िरण में आ जा। तू दुःखी मत िो; म ैंतुझे सब पापों (बुराइयों) से मुक्त कर दूंगा।

मिें स्वेच्छापूवकव उस परमात्मा के दबाव के प्रतत आत्मसमपणव कर देना चाहिए िमें उसकी इच्छा के सम्मुख पूरी तरि झुक जाना चाहिए और उसके प्रेम में िरण लेनी चाहिए। यहद िम अपने छोटे-से आत्म में ववश्वास को नष्ट कर दें और उसके स्थान पर परमात्मा में पूण ववववश्वास जमा लें, तो वि परमात्मा िमारा उद्धार करेगा। परमात्मा िमसे पूण वआत्मसमपणव चािता िै और उसके बदले में िमें आत्मा की वि िल्क्त प्रदान करता िै, जो प्रत्येक परररल्स्थतत को बदल देती िै।

अजुनव ववशभन्न कत्तव्वयों के कारण कमकवाण्डीय और नैततक कतव्वयों के कारण-धचल्न्तत था। वि सोचता था कक युद्ध के परररणामस्वरूप वणसंवकरता उत्पन्न िो जाएगी, वपतरों की उपेक्षा िो जाएगी और गुरुओं के प्रतत आदर करने इत्याहद पववत्न कतव्वयों का उल्लंघन िो जाएगा। कृष्ण उसे इन तनयमों और प्रथाओंके ववषय में धचन्ता न करनेको किता िै और उसे केवल उसमें (कृष्ण में) ववश्वास करने और उसकी इच्छा के सम्मुख शसर झुकाने को किता िै। यहद अजुनव अपनेजीवन, कम,व अनुभूततयों और ववचारों का पववत्रीकरण कर ले और अपने-आप को परमात्मा को समवपतव कर दे, तो परमात्मा जीवन के संघष वमें उसका मागदविनव करता रिेगा और अजुनव को ककसी बात से डरने की आवश्यकता निीं िै। आत्मसमपणव अपने-आप से ऊपर उठनेका सरलतम उपाय िै।

"केवल विी व्यल्क्त हदव्य प्रकिा का धचन्तन करने के उपयुक्त िै, जो ककसी वस्तु का दास निीं, यिांतक कक अपनेसद्गुणों तक का भी दास निीं ंिै।" - राइज़ब्रोक।

यहद िमें अपनी भववतव्यताओं को वास्तववक रूप देना िो, तो िमें भगवान् ्के सम्मुख नग्न और तनश्छल रूप में खडे िोना चाहिए। िम कभी-कभी अपने-आप को ढांपनेऔर सत्य को परमात्मा से तछपाने का व्यथ वप्रयास करते िैं। गोवपयां इसी ढंग से अपनी भववतव्यताओं को वास्तववक रूप देनेमें असफल रिी थीं।

मि परमात्मा की खोज तक निीं ंकरते, उसके स्पि वकी प्रतीक्षा करने ेकी तो बात िी दूरू की िै। जब िम उसकी ओर अशभमुख िो जाते िैं और उसे अपनेसम्पूण वअल्स्तत्व में रम जानेदेते िैं, तब िमारी ल्ज़म्मेदारी समाप्त िो जाती िै। तब विी िमसे काम करवाता िै और िमें सब दु:खों के पार ले जाता िै। यि उस भगवान् ्के प्रतत तनश्ेषि आत्मसमपणव िै, जो िमें संभाल लेता िै और िमें िमारी अधधकतम सम्भाववत पूणतवा तक ऊपर उठाता जाता िै। यद्यवप ईश्वर इस संसार को कुछ तनयत तनयमों के अनुसार चलाता िै और िमसे आिा करता िै कक िम अपने स्वभाव और जीवन में अपनेस्थान पर आधाररत उधचत कमों के तनयमों के अनुकूल काम करें, परन्तु यहद िम उसकी िरण में चले जाते िैं, तो िम इन सब तनयमों से ऊपर उठ जाते िैं। मनुष्य को कोई ऐसी सिायता प्राप्त िोनी चाहिए, जो बािरी सिायता प्रतीत िोती िो, क्योंकक उसकी आत्मा अपने-आप को उस जाल में से निीं छुडा सकती, ल्जसमें वि अपने िी प्रयत्न द्वारा बंधी िुई िै। जब िम तनश्िदि रिकर परमात्मा की प्रतीक्षा करते िैं और केवल यि चािते िैं कक वि िम पर अधधकार कर ले, तब वि सिायता आ पिुंचती िै। तुलना कील्जए : "जो व्यल्क्त स्वयं मेरे द्वारा बताए गए गुणों और दोषों की परवाि निीं करता, जो सब कतव्वयों को छोडकर केवल मेरी सेवा करता िै, वि सबसे श्रेष्ठ िै। "[470]

रामानुज के अनुयायी इस श्लोक को चरम श्लोक अथात् व ्सम्पूण वपुस्तक का अल्न्तम श्लोक मानतेिैं।

इस उपदेि का पालन करने ेका फल

इदां ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।

न चाशुश्रूषिे िाच्यांन च मा ांयोऽभ्यसूयूतत ॥67॥

(67) तू इसको ककसी ऐसे व्यल्क्त को मत बताना, ल्जसने जीवन में तप न ककया िो, या ल्जसके अन्दर श्रद्धा न िि, या जो आज्ञाकारी न िो, या जो मेरी बुराई करता िो।

---

470 अज्ञात्वैवं गुणान् ्दोषान् ्मयाहदष्टानवप स्वकान् ्।
धमान्ु ्सन्त्यज्य यः सवाब् ्भजेत् ्स ककल सत्तमः ॥

इस सन्दिे को समझने ेमें केवल वे िी लोग समथ विं, जो अनुिाशसत िैं, प्ेरेमपूण विं और ल्जनमें सेवा करने ेकी इच्छा ववद्यमान िै; अन्य लोग, सम्भव िै, इस सन्दिे को सुनें और सुनकर इसका दुरुपयोग करें।

य इम ंपरम ंगुह्युयांमद्भक्तेष्ुशिभधास्यतत ।
भस्क्त मतय परा ंकृत्िा मामिैष्यत्यसशांय: ॥68॥

(68) जो इस परम रिस्य को मेरे भक्तों को शसखाता िै और मेरे प्रतत अधधकतम भल्क्त हदखाता िै, वि अवश्य िी मुझ तक पिुंचेगा।

जो लोग पिले दीक्षक्षत िो चुके िैं, उनका यि कत्तव्वय िो जाता िै कक वे अपनेअदीक्षक्षत भाइयों को भी दीक्षक्षत करें।[471]

न च तस्मान्मनुष्येषु ुकस्श्चश्मे वप्रयकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः वप्रयतरो भुवि ॥69॥

(69) मनुष्यों में उससे अधधक मेरा वप्रय काय वकरनेवाला और कोई निीं िै; और संसार में उससे बढ़कर मुझे े और कोई वप्रय िोगा भी निीं।

वेमिात्मा लोग, जो संसार के सागर को पार कर चुके िैं और जो दूसूरे लोगों को उसे पार करने में सिायता देते िैं, परमात्मा को सबसे अधधक वप्रय िैं।

अध्येष्यते च य इम ंधम्य गसिांदमिायोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनिािशमष्टः स्याशमतत मे मततः ॥70॥

(70) और जो व्यल्क्त िमारे इस पववत्न संवाद का अध्ययन करेगा, म ैंऐसा समझता िंूंू कक वि ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी पूजा कर रिा िोगा।

---

[471] असंसं्कृतास्तुसंस्काया:वभ्रातृशृभ:पूवसंवस्कृतै: ।
तुलना कील्जए :

दुजुनवः सज्जनो भूयात् ्सज्जनः िाल्न्तमाप्नुयात् ्।

िान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुकु्तश्चान्यान् ्ववमोचयेत् ्॥

दृष्ट मनुष्य सज्जन बन जाएः सज्जन को िाल्न्त प्राप्त िो; िान्त मनुष्य बन्धन से छूट जाए और मुक्त मनुष्य दूसूरों को मुक्त कराए।

श्रद्धिाननसूयूश्च श्रृणुयुादवप यो नरः ।
सोऽवप मुकुतः शुभाल्ांलोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकमणगाम् ॥71॥

(71) और जो मनुष्य श्रद्धा के साथ बबना ईष्या वककये इस संवाद को सुनेगा, वि भी मुक्त िोकर पुण्यात्माओं के
आनन्दमय लोकों में पिुंच जाएगा।

कस्च्चदेतच्रतांपाथ गत्यैकाग्रेण चेतसा ।
कस्च्चदज्ञानसम्मोिः प्रनष्टस्तेधनञ्जय ॥72॥

(72) िे पाथ व(अजुनव), क्या तूने एकाग्रधचत्त िोकर इस सबको सुना िै? िे धनञ्जय (अजुनव), क्या तेरी अज्ञान के
कारण उत्पन्न घबरािट (सम्मोि) दूर िो गई िै?

तनष्कष व

अजुनग उिाच

नष्टो मोिः स्मृततलब्गधा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्स्थतोऽस्स्म गतसन्देिः कररष्ये िचनं ति ॥73॥

अजुनव ने किा :

(73) िे अच्युत (कृष्ण), तेरी कृपा से मेरा मोि (भ्रम) नष्ट िो गया िै और स्मृतत कफर लौट आई िै। अब मेरे
सन्देि समाप्त िो गए िैं और मैं स्स्थर िो गया िूं। मैं तेरे किे के अनुसार काम करूंगा।

अजुनव अपने तनयत ककए गए कम वकी ओर अशभमुख िोता िै, अिंकारपूण वमन से निीं, अवपतु आत्मज्ञान के कारण।472 उसके भ्रम नष्ट िो गए िैं और उसके सन्देि दूर िो गए िैं। परमात्मा के चुने िुए साधन के रूप में वि संसार के स्वामी द्वारा तनयत ककए गए कत्तव्वय को स्वीकार करता िै। अब वि परमात्मा के आदेि के अनुसार काम करेगा। उसने इस बात को अनुभव कर शलया िै कक परमात्मा ने उसे अपनेप्रयोजन के शलए बनाया िै, उसके अपनेप्रयोजन के शलए निीं। ठीक वस्तु का चुनाव करने की स्वतन्त्रता नैततक प्रशिक्षण पर तनभरव िै। केवल अच्छाई द्वारा िम आत्मा की स्वतन्त्रता तक ऊपर उठ सकते िैं, जो िमें उस अपररष्कृतता में से बािर तनकाल ले जाती िै, स्जसकी ओर िरीर का झुकाव रिता िै। अजुनव पर प्रलोभन का आक्रमण िुआ था और उसने मुस्क्त देने वाली ववजय की ओर जानेवाला माग वखोज शलया। वि अनुभव करता िै कक वि परमात्मा के आदेि को पूण व

---

472 अज्ञानसम्मोिनािआत्मस्मृततलाभः । - िंकराचाय व

करेगा, क्योंकक उसे बल देने के शलए परमात्मा ववद्यमान ि ै। िमारा कत्तव्वय ि ै कक िम इस श्लोक की भावना के अनुसार जीवन- यापन करें, "ि े हृषीकेि, मेरे हृदय में बैठा िुआ तू जैसा मुझे ेआदेि देता जाता ि ै, वैसा म ैंकरता जाता ि ूं ।"[473] ईसा किता ि ै : "म ैंअपनी इच्छा पूरी करना निीं चािता, अवपतु उसकी इच्छा पूरी करना चािता ि ूं , ल्जसने ेमुझे ेभेजा ि ै।" िमें उस प्रकार जीवन बबताना चाहिए, ल्जस प्रकार परमात्मा अपनीेश्वत जीवन में िमसे अपनेजीवन-यापन करवाता। उसी वस्तु को चािना, जो कुछ परमात्मा चािता ि ै, हदव्य जीवन का रिस्य ि ै। जब ईसा ने धचल्लाकर किा था कक 'यि प्याला मुझसे आगे चला जाए', उस समय भी वि अपनी रुधच को प्रधानता दे रिा था और व्यल्क्तगत तृलूप्त चािता था। वि कटु अपमान और मृतूयु से बचना चािता था, परन्तु जब उसनेकिा कक 'तेरी इच्छा पूण िोगी' - 'कररष्ये वचनंतव'-तब उसनेअपनेपृथक् अल्स्तत्व को त्याग हदया और अपने-आप को उस वपता (परमात्मा) के काय वके साथ एकरूप कर हदया, ल्जसने उसे भेजा था।474 इस ववकास का अथ वैि सब बिानों और चालबाल्ज़यों को त्याग देना, सब आवरणों को िटा देना, एक वस्त्रापिरण (चीरिरण), आत्मा का अपने-आप को ि ूनूय बना देना।

सजांय उिाच

इत्यिां िासुदेिस्य पाथस्गय च मिात्मनः ।

सिांादशमममश्रौषमद्भुतु ंरोमिषणगमद् ॥74॥

संजय ने किा :

(74) इस प्रकार मनैं वासुदेव और मिान् ्आत्मा वाले पाथ व(अजुनव) के मध्य िुए इस आश्चयजवनक संवाद को सुना ि ै, ल्जससे मेरे रोंगटे खडे िो गए ि ैं।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतिानेतद्गुह्यमिां परम्।्

योग ंयोगेश्ररात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्ियम् ्75॥

(75) व्यास की कृपा से मनैं ेस्वयंइस परम रिस्यपूण वयोग को साक्षात् ्स्वयंयोगेश्वर कृष्ण द्वारा उपदि

हदए जाते िुए सुना ि ै।

व्यास ने संजय को यि िल्क्त प्रदान की थी कक वि रणभूशम में िोती िुई घटनाओंको दूरू बैठा िुआ भी

देख और सुन सकेगा, ल्जससे वि उन सब घटनाओं को अन्धे राजा धृतूराष्र को सुना सके।

राजन्ससांमृतूय ससांमृतूय सिांादशमममद्भुतुम्

्। केशिाजुनगयोः पुण्य ंहृष्याशम च मुिमुिुः

॥76॥

473 त्वया हृषीकेिहृहदल्स्थतेनयथातनयुक्तोऽल्स्म तथाकरोशम ।

474 माकव 14, 32-41। "वपता (परमात्मा) ने मुझेजैसा आदेि हदया था, म ैंवैसा करता ि ैंजॉन 14,31

(76) मिराज, म ैंकिव (कृष्ण) और अजुनव के इस अद्भुत और पववत्न संवाद को बारम्बार स्मरण करके आनन्द से पुलककत िो रिा िूं।

तच्च सस्ांमृत्ृय सस्ांमृत्ृय रूपमत्यद्भुतुांरिः ।
विस्मयो मे मिान् ्राजन् ्हृष्याशम च पुनः पुनः77॥

(77) और जब-जब म ैंिरर (कृष्ण) के उस अत्यन्त आश्चयजवनक रूप को याद करता िूं, तो मुझे ेबिुत ववस्मय िोता िै; म ैंबार-बार पुलककत िो उठता िूं।

सस्ांमृत्ृय सांस्मृत्ृय : जब-जब म ैंयाद करता िूं। कृष्ण और अजुनव का संवाद तथा परमात्मा की वास्तववकता कोई दितवनक प्रस्थापनाएं निीं, अवपतु आध्यात्मिक तथ्य िैं। िम उनके अथ वको केवल उनको कि-सुन-भर लेनेसे निींसमझ सकते, अवपतु प्राथनवा और ध्यान के रूप में उन पर मनन करके समझ सकतेिैं।

यत्न योगेश्िरिः कृष्णो यत्न पाथो धनुधरगः ।
तत्न श्रीविजयो भूतूतध्रिा नीततमततममग ॥78॥

(78) जिां योगेश्वर कृष्ण िै और जिांधनुधारवी पाथ व(अजुनव) िै, मुझे ेलगता िै कक श्री (सौभाग्य), ववजय, कल्याण और नीतत (नैततकता) भी अवश्य िोंगी।

गीता का उपदि योग िै और उस उपदि को देनेवाला योगेश्वर िै। जब मानव-आत्मा प्रबुद्ध और ब्रह्म के साथ एक िो जाती िै, तब सौभाग्य और ववजय, कल्याण और नैततकता सुतनल्श्चत िो जाती िैं। िमसे किा गया िै कक िम हदव्य दिनव (योग) और ऊजाव (धनुः) का संयोग करें और इनमें से पिले को ववकृत िोकर पागलपन में या वपछले को बबरवता में न बदल जानेदें। हदव्य जीवन के सुमिान् ्तत्व - ल्जन्िें बैरन वौन ह्या गल 'धम वके मिान् ्केन्द्रीय तत्व' किना पसन्द करता था - योग, उपासना द्वारा परमात्मा की प्राल्प्त, और उस परमात्मा की इच्छा के सम्मुख पूण ववववततवा, और धनुः अथात्व ्ववश्व की आयोजना को आगे बढ़ाने में सकक्रय भाग लेना िै। आल्त्मक हदव्य दिनव तथा समाज-सेवा साथ-साथ चलनेचाहिए। यिां ंमानवीय जीवन के दुिरे उद्देश्य, व्यल्क्तगत पूणतवा तथा सामाल्जक कायक्षवमता का संकेत ककया गया िै।475 जब प्लेटो ने यि भववष्यवाणी की थी कक तब तक संसार में अच्छी िासन-व्यवस्था स्थावपत निींिोगी, जब तक कक दितवनक लोग राजा निीं ंबन जाएंगे, तब उसका अशभप्राय यिी था कक मानवीय पूणतवा उच्च ववचार और न्याय कम वके परस्पर ववविा की-सी एक वस्तुिै। गीता के अनुसार, मनुष्य का सवदवा यिी लक्ष्य रिना चाहिए।

---

475 तुलनाकील्जए : "मैंतो उसपववत्नसंसार को जानना चािता िूंल्जसमें ब्राह्मणत्व (िा) और राजत्व (क्षन) दोनों शमलकर साथ-साथ चलते िों।"

इतत... 'मोक्षसन्यांासयोगो नामाष्टदशोऽध्यायः ।

इतत श्रीमद्भगिद्गीता-उपतनषदः समाप्ताः ।

यि िै 'सन्यांास द्ारि मोक्ष' नामक अठाारिाां अध्याय ।

भगिद्गीता उपतनषद् समाप्त।

सिायक ग्रन्थ सूची

- के. टी. तैलंग : हद भगवद्गीता, 1882
- ऐडववन आनल्वड : हद सांग सैलेशियल, 1885
- ए. मिादेव िास्त्री : हद भगवद्गीता, 1901
- एल. डी. बानेट : हद भगवद्गीता, 1905
- ऐनी बेसटें तथा भगवानदास : भगवद्गीता, 1905
- श्री अरववन्द : ऐस्सेज़ ऑन गीता, 1928
- डदल्यू. डगलस पी. हिल : हद भगवद्गीता, 1928
- बालगंगाधर ततलक : गीतारिस्य अंग्रेजी, अनुवाद, 1935
- डी. एस. िमाव: हद भगवद्गीता, 1937
- फ्रैंकशलन ऐजटवन : हद भगवद्गीता, 1944
- स्वामी प्रणवानन्द तथा कक्रस्टोऱ इिुडां : हद भगवद्गीता
-
-
- ,1945
- मिादेव देसाई : हद गीता एकाडडगां टू गांधी, 1946

अनुक्रमखणका

- अकबर, 192 हटप्पणी
- अत्तार, 427
- अथववेद, 236 हट.
- अध्यात्म रामायण, 93 हट.
- अनसैन्सड वररकलैक्न्सि, 402 हट.
- अपरोक्षानुभूतत, 118
- अपोसल-सम्प्रदाय, 40 हट.
- अबुल़ज़ल, 192
- अशभनवगुप्त, अनेक स्थानों पर
- अमरकिो, 180 हट., 385 हट.
- अमृतृ-तरंधगणी, 24 हट.
- अरववन्द, श्री, 24
- अरस्तू, 255
- अलैग्जैण्डर सैमुएल, 157 • अवधूत गीता, 80 हट., 344
- अववमार, 211 हट.
- अष्टावक्रगीता, 197
- आईने-अकबरी, 193 • ऑगस्टाइन, सेण्ट, 80; उसकी. कन्फ़ैन्स ',184
- आनन्द के. कुमारस्वामी; उसकी हिन्दूइज़्म एण्ड बुद्धधज्म ',200 .हट
- आनन्दधगरर, 20 हट., 40 हट., 93 हट., 161, 173 हट ., 228, 287, 305 हट ., 365, 270, 3723 उसकी 'िंकरहदल्वजय', 24 हट.
- आपस्तम्ब का धमसूवल, 145
- इब्रिीम एधम, 427
- इमसनव, 213 हट.; उसकी 'ब्रह्म', 132 हट.

इशमटिेन, 129 हट.
- ईसाइयिा, 319 हट., 335, 371 हट.
- ड़िीपितनषद्, 26 हट., 51 हट., 86 हट., 93 हट., 144, 360
- ईसा (जीसस क्राइस्ट), 25 हट., 38 हट., 44 हट., 45 हट., 46 हट .,169,185, 301, 318, 336, 340, 392, 440
- उत्तरगीता, 91
- उदयनाचाय,व 192
- उपतनषद्, अनेक स्थानों पर
- ऋग्वेद, 26 हट., 28 हट., 31, 32, 35 हट., 38, 120, 165 और उसकी हट.,187, 287, 291,

315 हट., 336, 388

- एररयस, 44 हट.
- ऐक्वाइनास, सेण्ट टॉमस; उसकी 'सम्मा धथयोलोल्जया, 92 हट., 170 हट .,433
- ऐक्सौडस, 319 हट.
- कुलाणव-तन्त्र, 26 हट.
- ऐंगेलस शसलेशसयस, 27 हट., 45 हट.
- ऐकिाटव, 27 हट., 248
- ऐडववन आनल्वड, सर, 87 हट.
- ऐपीसल टू हद रोमन्स, 81, 189

हट.

- ऐशलज़ाबेथ वाटररिाउस, उसकी 'थोट्स ऑ ए टशियवरी', 191 हट.
- ऐल्डुअस, िक्सले, 14 हट.
- ओल्ड टेस्टामेण्ट, 255, 336
- ओररगैन, 231
- ओटो रूडोल्फ, उसकी 'ओररजनल गीता', 332
- औकफवक ताशलका, 379 हद.
- औक़्रयस के शसद्धान्त, 300
- कठोपतनषद् 27 हट., 28 हट., 51 हट., 107 हट

.,132,133,137,142,180,214, 275, 358 हट,379, 381

- कवपल, 311
- काशलदास, उसका 'कुमारसम्भव', 152 हट., उसका 'रघुवंि', 274 हट.
- कीथ, ए. बी., प्रोफेसर, 18
- कुल्ण्टशलयन वैरस, 299 हट.

केन उपतनषद् 282

- किेव कश्मीरी, 23
- कैल्ल्वन, 81
- कोररल्न्थतयन्स, 92 हट.
- कौन्स्टैण्टाइन, 318
- कौीतकक उपतनषद्, 38
- कौीतकक ब्राह्मण, 35 कक्रस्टोऱ इिवुड, 14 हट.

• गरुड पुराण, 298 हट.

• गने, 17

• गांधी, एम. के., 12, 24; उसकी 'सोंग्स फ्रॉम वप्रजन', 344 हट., 351 हट.

• धगयोडानो ब्रूनो, 146

• गेटे, 155, 398

• गैरल्ड ि‍ड,व उसकी 'मैन दी मास्टर', 422 हट.

• गैलेशियन्स, 92 हट. • गौतम बुद्ध, 25 हट., 135 हट .,185,189,264,291, 300 हट,399

• चाल्स वशसंगंर, उसकी 'स्टडीज़ इन दी हिस्री एण्ड मैथड ऑ साइन्स ',318 हट.

• चैतन्य, 300 हट., उसकी

'शिक्षाष्टक', 76 हट.

• डन्स स्कौटस, 433

• छान्दोग्य उपतनषद्, 35, 217, 235, 257, 272, 334, 388, 400 हट.

• जनक, 93

• जामी, 226 हट.

• जंग का 'इण्टगे्रिन ऑ पसनैवशलटी', 71 हट.

• जैकोबी, 18

• जैशमनीय उपतनषद्, 92 हट.

• जॉन ऑ आकव, 318

• जॉन ऑ डेमेस्कस, सेण्ट, 26 हट., 345 हट. जॉन ऑफ हद क्रोस, सेण्ट

,226 हट,

• जॉन के मतानुसार सुसमाचार, 39 हट., 84 हट., 92 हट., 185, 440

हट.

• जौन बर्नेट, उसकी 'अली ग्रीक कफलॉसफी', 300

• जॉन वूलमैन, 65 हट.

• जौब, 330

• ज्ञानसंकशलनी तन्त्र, 236

• टॉमस ि‍ाडी, 236 हट., 431

• टॉलर, 92 हट., 119 हट.

• डायोनीशसयस, एररयोपेगाइट, 27 हट., 360

- डैसै्काटीज़, 57
- ततलक, बालगंगाधर, 24
- तुकाराम, 267, 297, 344
- तुलसीदास, 298, 251
- तेबबज सुत्त, 189 हट.
- तैवत्तरीय आरण्यक, 32
- तैवत्तरीय उपतनषद्, 27, 32 हट., 53, 379 हट., 404
- तैवत्तरीय ब्राह्मण, 287 हट.
- तैवत्तरीय संहिता, 166 हट. नयी (हरतनटी), 30 हट.
- द्रौपदी, 120
- धम्मपद, 156, 225, 421
- नाइसीन सम्प्रदाय, 40 हट.
- नारद पंचराल, 51 हट.
- नारदभल्क्तसून, 77 हट.
- तनकलसन, आर. ए.; उसकी 'ए

शलटरेरी हिस्री ऑफ हद अरदस',

293 हट.

- तनद्देस, 36
- तनम्बाकव, 23
- तनी, ॆ 157
- नीलकण्ठ, अनेक स्थानों पर
- नौररस, डदल्यू. ई. उसकी 'थलबवी िाल', 402 हट.
- न्यायसूल, 91 हट.
- न्यूटन, 216 हट.
- पंचदिी, 53 हट.
- पताचारा, 135 हट.
- पतंजशल का मिाभाष्य

,37

- पतंजशल का योगसून ,70,76,152,235,245,275

- पद्मपुराण, 32 हट.
- पाइथागोरस, 234
- पाखणतन, 35
- पास्कल, 128
- पुरुषसूक्त, 315 हट.051
- पैलेधगयस, 81
- पौल्ण्टयस पाइलेट, 25 हट.
- पौल, सेण्ट, 81, 330
- प्रश्नोपतनषद्, 235, 272
- प्रह्लाद, 83
- प्रॉक्लस, 49 हट.
- प्लेटो 234, 242; 255, 258, 308, 313, 369, 442, उसकी "ऐल्सीबबयेड्स', 313, उसकी 'लौज '107 हट.,398,

उसकी 'मैनो', 232, उसकी 'फ्रेडो', 149

हट., 157 हट., 204 हट., उसकी 'हटमेइयस', 379 हट.
- प्लौहटनस. 26 हट., 27 हट., 68 हट., 126 हट., 204 हट., 234, 242
- ाइलो, 242
- क्विार, उसकी 'आउटलाइन ऑ हद ररशलजस शलटरेचर ऑ इल्ण्डया', 18 हट.
- कफट्ज़ ज़ेरल्ड, 199 हट.
- फ्रांशसस डड सालेस, सेण्ट, 430
- फ्रेज़र, 298 हट.
- फ्रैंकशलन ऐजटवन, प्रोफेसर, 361
- बादरायण, 355
- बानेट, एल. डी., 18
- बुक ऑफ प्रोवज,व 230
- बैरन वौन ह्य गल, 442
- बोइधथयस, 67, 168
- बोएिमी जैकब, 31 हट., 280 हट.; उसकी 'श्री वप्रंशंसपल्स', 29 हट.
- बोनावेन्त्यूरा, 433
- बौधायन धमसूवन, 297
- बृिदारण्यक उपतनषद् 25, 26 हट.,

27 हट., 131 हट., 360, 390, 408

- बृिन्नारदीय, 192 हट.
- बृिस्पततसूल, 391
- ब्रह्मसूल, 19, 50 हट., 255 हट., 355 ब्राउन, उसकी 'ए शलटरेरी हिस्री ऑफ पशियवा, 427
- दलाखमैन, 193 हट.
- भल्क्तरत्नावली, 83 हट.
- भागवत धम,व 37, 75, 86, 211
- भागवतपुराण, 29, 36 हट., 43, 44 हट., 77 हट., 84 हट., 86 हट., 186 हट., 188, 219 हट.,222, 225 हट.,288, 346, 398
- भोज, 76
- माराथीज़, 298 हट.
- माकव के मतानुसार सुसमाचार, 39 हट., 318 हट., 440 हट.
- माक्स,व 118
- शमशलन्दपि, 107 हट., 183
- मुण्डकोपतनषद्, 27 हट., 29 हट., 144, 255 हट., 334, 358 हट., 360, 381,387
- मैक्कैना स्टीन, 27 हट.
- मैकातनकोल की 'साम्स ऑफ हद मराठा सेण्ट्स', 267 हट.
- मैगस्थनीज़, 36
- मैनायणी उपतनषद्, 192 हट., 315 हट., 353 हट.
- मण्डन. शमश्र की 'ब्रह्मशसद्ध', 95 हट.

मैत्नी उपतनषद् 70-71, 249 हट.

- मल्ज्झमतनकाय, 83 हट.
- मधुसूदन, अनेक स्थानों पर मनु, 103 हट., 165, 179 हट., 225, 236 हट.
- मल्न्तक उत् ्तैर, 199 हट.
- मिाभारत, अनेक स्थानों पर
- मिायान बौद्ध-सम्प्रदाय, 189
- मिायान श्रद्धोत्पवत्त, 13 हट.
- मिावस्तु, 76 हट.
- मिावीर, 183
- माण्डूक्य उपतनषद्, 271, 404
- मध्व, अनेक स्थानों पर
- मध्व पारिार, 248 हट.

• मैथ्यू के मतानुसार सुसमाचार,
231, 349
• मोक्षधम,व 134, 319 हट.
• मोन्तेस्क्यू, 299 हट.
• मॉड पीटर, 46 हट.
• मॉफेट, 189 हट.
• यजुवेद, 336
• याज्ञवल्क्य स्मृतृत, 90 हट.,
235 हट. यामुनाचाय,व उसकी
'आगमप्रामाण्य', 36 हट., उसकी
'गीताथसंवग्रि', 21, 181
• योगभाष्य, 242 हट.
• योगवाशिष्ठ, 167 हट., 282 हट.
• वल्लभाचाय,व उसकी 'अमृतृ- तरंधगणी', 24, 24 हट.
• रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 435
• राइज़ब्रोक, 436
• राइस डेवेवड्स, श्रीमती, 135 हट.
• राधा उपतनषद्, 50 हट.
• राबबया, 293 हट.
• रामानुज, अनेक स्थानों पर
• रामायण, 300 हट.
• ररल्के की 'लैटस वटू ए यंग पोइट', 231 हट.
• रीवैलिैन, 319 हट.
• रुमी, 29 हट.
• रोहदन, 236 हट.
• लवाइि, 226 हट.
• लाओत्से, 25
• लॉरेंस ब्रदर, उसकी 'हद प्रैल्क्टस ऑफ हद प्रजेण्ट ऑफ गॉड

',218
• लोइसी, ए., 46 हट.
• ल्यूक के मतानुसार सुसमाचार, 39 हट., 233 हट.

• ल्यूक्रेशियस की 'डड रेरम नाट्यरा', 151 हट.

• ल्यूथर, 140 हट.

• वरुण, 187

• वड्सवथ,व 161 हट., 179 हट.

• वाजसनेतयसंहिता, 128 हट., 442 हट

• ववज़न ॲाॅ ऐजेककयेल, 319 हट.

• ववलमि, 221 हट.

• वववेकचूडामखण, 100 हट..

• ववष्णुपुराण, 84 हट., 86 हट., 186 हट., 313, 350 हट.

•ववष्णुस्मृतृत, 129

• वेदान्तदेशिका, 198

• वेदान्त-रल-मंजूषा, 33 हट.

• वैष्णवीय तन्त्रसार, 16 हट.

• व्याघ्रपाद, 248 हट.

• व्यास, 141 हट.

• ल्ह्ननफील्ड, 226 हट.

• िंकराचाय,व अनेक स्थानों पर

• िंकरानन्द, 382

• िम्स-ए-तबरीज, 29 हट.

• िाल्ण्डल्यभल्क्तसून, 52 हट., 76, 77.0

• िुकुल यजुवेद, 34 हट.

• श्रीधर, अनेक स्थानों पर • श्रेडर, एफ. ए., उसकी 'हद कश्मीर ररसैन्नि ऑफ हद भगवद्गीता', 19 हट.

• श्वेताश्वतर उपतनषद्, 18, 27 और उसकी टीका, 52 हट., 141 हट., 214, 274, 353 हट,360, 389

• सूसो, 127 सैबैशलयस, 44 हट.

• सद्धमपुवण्डरीक, 13 हट., 185, 319 हट.

• सनत्सुजातीय, 90

- साऊल, 318
- सामवेद, 31
- साम, 336 हट.
- सांग्स ऑफ हद शसस्टस,व 135 हट.
- साच,व जां पाल, 301
- साववत्री, 401
- सीक्रेट ऑ॒ हद गोल्डन फ्लावर, 221 हट.
- सुकरात, 106, 134 हट., 232, 242, 369, 415
- सूटहिल, उसकी 'हद श्री ररशलजन्स ऑफ चाइना', 25 सूयगवीता ,348
- ल्स्पनोज़ा, 46 हट., 179 हट.
- िरवं,ि36 हट.
- हितोपदिे, 101, 135, 411 हट. हिबटव जनलव, 13 हट.
- हिल्डेगोड,व सेण्ट, 318 हट.
- िीशलयोडोरस, 36
- िूकर की 'ऐक्लील्जयेल्स्टकल पॉशलटी', 40 हट.
- िेनरी ऐडम्स, 216 हट.
- िेनरी बगसवन, 364
- िोअर, जे. डदल्यू, 13 हट.
- िोपककन्स, उसकी 'ररशलजन्स ऑ॒ इल्ण्डया', 17, 18 हट.
- िोल्ट्ज़मन, 18

...

"गीता के ककसी भी अनुवाद में वि प्रभाव और चारुता निंआ सकती, जो मूल में िै। मनैं ेभी मूल की आत्मा को सामने लाने का भरसक प्रयत्न ककया िै ।"

डॉ. राधाकृष्णन् ्

शिक्षा और राजनीतत के क्षेत्रों में भारत के शलए अद्वितीय उपलल्दधयाँ िाशसल करनेवाले पूव वउप राष्ट्रपतत और राष्ट्रपतत डॉ. राधाकृष्णन् ्ने इस पुस्तक में भगवद्गीता को बित िी सिज-सरल भाषा में प्रस्तुत ककया िै। लेखक के अपनिेददों में, यि पुस्तक उस सामान्य पाठक को ध्यान में रखकर तैयार की गई िै, जो अपनेआध्याल्त्मक पररवेि का ववस्तार करना चािता िै। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते िुए ववद्वान लेखक ने इसमें गीता के प्रत्येक श्लोक का अथ वऔर व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की िै कक प्राचीन वववेक का नया रूप आज के मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रकट िो जाता िै।